CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्त, साधना एवं रहस्य

रुद्रयामलम्

उत्तरतन्त्रम्

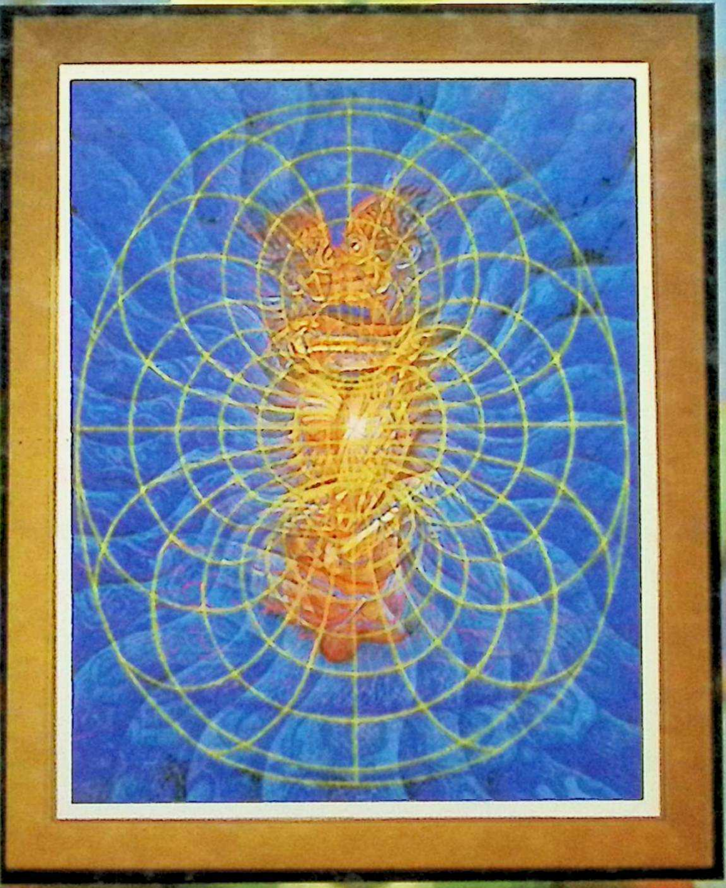

डॉ. मनोज कुमार रजक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रयामलम्

(उत्तरतन्त्रम्)

सिद्धान्त, साधना एवं रहस्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
516

रुद्रयामलम्

(उत्तरतन्त्रम्)

सिद्धान्त, साधना एवं रहस्य

लेखक
डॉ. मनोज कुमार रजक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

© **सर्वाधिकार सुरक्षित।** इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉडिग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, लेखक व प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नही किया जा सकता है। यह स्पष्ट रूप से घोषित किया जाता है कि इस पुस्तक के माध्यम से अभिव्यक्त विचार एवं सिद्धान्त संदर्भित पुस्तकों से लिए गए हैं एतं अन्वेषित निष्पत्तियों के लिए लेखक स्वयं जिम्मेवार हैं तथा इनका भारत सरकार से कोई सरोकार नहीं है।

आवश्यक सूचना पाठकों को सूचित किया जाता है कि वे इस पुस्तक में वर्णित साधना - विधानों पर सिद्ध गुरु के मार्ग-दर्शन में ही अमल करें, अन्यथा नहीं। यदि किसी साधना पद्धति से, विशेषकर शव-साधना, चीनाचार, राक्षसीचीनसाधना आदि, भारतीय दंड संहिता या किसी कानून का उल्लंघन होता है, तो उसे न करें अथवा सक्षम अधिकारी से आवश्यक अनुमति लेकर ही करें। इस सदर्भ में यदि किसी व्यक्ति द्वारा किसी कानून का उल्लंघन होता है तो उसके लिए **लेखक या प्रकाशक** किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं होगा।

ISBN : 978-93-80326-78-8

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

प्रथम संस्करण : 2011
मूल्य : 600.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
दूरभाषः (011) 32996391, टेलीफैक्सः (011) 23286537

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली-10007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक : डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समर्पण

अपने अग्रज
श्री प्रवीण कुमार रजक
को,
परमात्मा से इस प्रार्थना के साथ
कि भ्रातृ-प्रेम और भ्रातृ-सहयोग
की
यह किरण हर घर के आँगन में उतरे
और कहीं पिता की अकाल मृत्यु हो जाये
तो
बड़ा भाई पिता की भूमिका में बख़ूबी उभरे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-सूची

प्राक्कथन साभार — ix

प्रथम अध्याय : तंत्र का उद्भव, स्वरूप एवं वर्गीकरण — १-५१

- १.१ उद्भव — १
- १.२ स्वरूप — ८
  - १.२.२ तंत्र शब्द का अर्थ — ८
  - १.२.२ आगम, यामल और तंत्र — ११
  - १.२.३ तंत्रः भ्रान्तियाँ और निराकरण — १२
  - १.२.४ तंत्र एवं दर्शन — १७
  - १.२.५ तंत्र एवं धर्म — १८
  - १.२.६ तंत्र एवं नैतिकता — २०
  - १.२.७ तंत्र एवं विज्ञान — २३
  - १.२.८ निष्कर्ष — २५
- १.३ वर्गीकरण — २८
  - १.३.१ शैलीमूलक — २९
  - १.३.२ उपास्यदेव-भेदमूलक — ३७
  - १.३.३ क्षेत्रमूलक — ४०
  - १.३.४ सम्प्रदायमूलक — ४१
  - १.३.५ आस्तिकता-नास्तिकता मूलक — ४८
  - १.३.६ बौद्धतंत्र — ४८

द्वितीय अध्यायः तान्त्रिक वाड्मय में रुद्रयामल — ५२-७१

- २.१ यामलशास्त्र और रुद्रयामल — ५२
- २.२ रुद्रयामल उत्तरतंत्र-रुद्रयामल — ६०
- २.३ रुद्रयामल का काल-निर्धारण — ६२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२.४ रुद्रयामल की दिव्यता एवं स्वरूप दर्शन	६२
२.५ वर्ण्य-विषय	६४
तृतीय अध्याय: रुद्रयामल और तान्त्रिक विलक्षणता	७२-१४३
३.१ संवाद-शैली का रहस्य	७२
३.२ गुरू-गरिमा	७४
३.३ दीक्षा-रहस्य	८०
३.४ समग्रता, समानता, सहजता और सर्वस्वीकार्यता	८७
३.५ पञ्चमकार-रहस्य	९६
३.५.१ मद्य	१०१
३.५.२ मांस	१०७
३.५.३ मत्स्य	१०९
३.५.४ मुद्रा	११०
३.५.५ मैथुन	११२
चतुर्थ अध्याय : रुद्रयामल और योगदर्शन	१४४-१७८
४.१ तंत्र एवं योग	१४४
४.२ विभिन्न योग	१४९
४.३ योगतत्व-विमर्श	१५२
४.३.१ यम	१५३
४.३.२ नियम	१५६
४.३.३ आसन	१६२
४.३.४ प्राणायाम	१६५
४.३.५ प्रत्याहार	१६८
४.३.६ धारणा	१६९
४.३.७ ध्यान	१७०
४.३.८ समाधि	१७३
पञ्चम अध्याय : रुद्रयामल और तत्वमीमांसा	१७९-२३६
५.१ परमतत्व-परम शिव (परशिव) या पराशक्ति	१७९
५.२ सृष्टि-प्रक्रिया	१८५
५.२.१ शैवागम सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया	१८६
५.२.२ शाक्तागम सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया	१८८
५.२.३ कौलागम सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया	१९०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५.३ छत्तीस तत्त्व — १९३

५.४ आत्मा, बन्धन और मोक्ष — १९८

५.५ भाव — २०८

- ५.५.१ पशुभाव — २०८
- ५.५.२ वीरभाव — २१५
- ५.५.३ दिव्यभाव — २३१

षष्ठ अध्याय : रुद्रयामल और साधना एवं उपासना — २३७-३४२

६.१ उपासना — २३७

- ६.१.१ पटल — २३८
- ६.१.२ पद्धति या पूजा-पद्धति — २४५
- ६.१.३ कवच — २५७
- ६.१.४ सहस्रनाम — २६३
- ६.१.५ स्तोत्र — २६८

६.२ शारीरिक चक्र और उनकी साधना — २७५

- ६.२.१ मूलाधार चक्र — २७९
- ६.२.२ स्वाधिष्ठान चक्र — २८३
- ६.२.३ मणिपुर चक्र — २८६
- ६.२.४ अनाहत चक्र — २९०
- ६.२.५ विशुद्ध चक्र — २९४
- ६.२.६ आज्ञा चक्र — ३०१
- ६.२.७ सहस्रार — ३०४

६.३ कुण्डलिनी-साधना या कुण्डलिनी-जागरण — ३०६

- ६.३.१ नामकरण — ३०७
- ६.३.२ कुण्डलिनी का प्रतीक-सर्प — ३०९
- ६.३.३ स्थान व स्वरूप — ३११
- ६.३.४ कुण्डलिनी-जागरण — ३१३
- ६.३.५ कुण्डलिनी-जागरण-प्रविधि — ३१७
- ६.३.६ कुण्डलिनी-जागरण का स्वरूप एवं अनुभूति — ३२०
- [illegible] कुण्डलिनी-जागरण का प्रभाव — ३२१

६.४ [illegible]ना — ३२३

- ६.४.१ शव-साधना — ३२४
- ६.४.२ चीनाचार या राक्षसीचीनसाधना — ३२९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६.५ साधना के कतिपय आयाम ३३६
६.५.१ न्यास-विद्या ३३६
६.५.२ रिपुविद्वेषण ३३८
६.५.३ पराशक्ति-निर्मूल-स्थाननिर्णय ३३८
६.५.४ वाराणसीपीठनाथान्तयजन ३३९
६.५.५ वाराणसीपञ्चपीठपद्धति ३४१

उपसंहार ३४३-३४७
परिशिष्ट १ : रुद्रयामल की साहित्य-सम्पदा ३४९-३५७
परिशिष्ट २ : बीजमन्त्र या बीजाक्षर ३५८-३६४
परिशिष्ट ३ : रुद्रयामल के विभिन्न प्रमुख संस्करण ३६५-३६८
सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचीः ३६९-३७७
(क) संस्कृत-ग्रन्थ-सूची ३६९
(ख) हिन्दी- ग्रन्थ-सूची ३७२
(ग) अँग्रेजी-ग्रन्थ-सूची ३७५
(घ) पत्रिकाएँ ३७७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन साभार

भारतीय तंत्र-साहित्य हमें उस युग का स्मरण कराता है, जब मनुष्यों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था, न ही लैंगिक आधार पर, न ही जाति-धर्म के आधार पर और न किसी पारम्परिक आधार पर। जब स्त्री-पुरूष जीवन के पथ पर समान भूमिका का निर्वाह कर रहे थे और परस्पर प्रतियोगी न होकर एक-दूसरे के पूरक थे। तब जीवन बड़ा सहज और स्वाभाविक था। तब मनुष्य की यात्रा थी ऐहिक आनन्द से परमानन्द तक। यद्यपि यह कहना कठिन है कि प्रागैतिहासिक काल में तंत्र का सैद्धान्तिक रूप से विकास हुआ था या नहीं, किन्तु तान्त्रिक विशेषताएँ उस काल में भी परिलक्षित होती हैं। मातृदेवी की मूर्तियाँ, लिङ्ग एवं योनि के प्रतीक आदि साक्ष्य प्रागैतिहाासिक काल, सिन्धु-सभ्यता आदि से प्रवाहित होते हुए आधुनिक युग तक दृष्टिगोचर होते हैं।

'तन्त्र' शब्द निष्पन्न हुआ है 'तन्' धातु से, जिसका अर्थ है-विस्तार करना, फैलाना। तन्त्रशास्त्र का अर्थ है वैसा शास्त्र, जिसके अनुपालन से ज्ञान का विस्तार हो। अज्ञानता ही बन्धन है, अविद्या ही पाश है। मुक्ति तो ज्ञान से ही सम्भव है। इसलिए वृहदारण्यकोपनिषद् (१.३.२८) का उद्घोष है-

'असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय'।

किन्तु तंत्र को बहुत गलत रूप में समझा गया। तंत्र को अश्लील तक कहा गया। वस्तुतः तंत्र को सम्यक् रूप से समझा ही नहीं गया। पंचमकारों के द्वारा भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है- इस पर लोगों ने विश्वास नहीं किया। हाँ, यह सच है कि कुछ लोगों ने तंत्र के नाम पर समाज में उच्छृंखलताएँ प्रदर्शित कीं और अब भी कर रहे हैं। यह भी सच है कि कुछ तान्त्रिक ग्रन्थों में काला जादू का वर्णन हुआ है और कुछ लोग तंत्र के नाम पर काला जादू और चमत्कार दिखाकर अन्य लोगों का शोषण कर रहे हैं। पर यह तंत्र की मूल धारा नहीं है।

तंत्र एक जीवन-पद्धति है-बिल्कुल सहज और स्वाभाविक जीवन पद्धति। सामान्य व्यक्ति का या दूसरे शब्दों में कहें तो जीवन का आकर्षण मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन में ही है। इसी के चलते जगत् में क्या-क्या अत्याचार-अनाचार नहीं होते। इन सबके पीछे है आनन्द की खोज। तंत्र इसका निषेध नहीं करता, बल्कि इसी के सदुपयोग द्वारा परमानन्द की यात्रा कराने का आश्वासन देता है। ऐहिक आनन्द तो क्षणभंगुर है, साथ ही इन्द्रियाधीन भी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल इन्द्रियाँ शिथिल भी होंगी। क्यों न ऐहिक आनन्द की कुंजी से परमानन्द का ताला खोला जाय, जहाँ शाश्वत आनन्द है, जहाँ आनन्द का कभी ह्रास नहीं होता। तंत्र यही कला सिखाता है। तंत्र का उद्घोष यही है कि ऐहिक आनन्द को परमान्द में बदल लेना ही बुद्धिमत्ता है। इसलिए तंत्र किसी ऐसे ईश्वर का उपदेश नहीं देता, जो सुदूर स्वर्ग में बैठा हुआ सारे ब्रह्माण्ड पर शासन करता हो। तंत्र की दृष्टि में तो साधक-शरीर ही विश्व है और उसमें जो आत्म-शक्ति स्थित है, वही उसका आराध्य देव है। साधना द्वारा साधक इसी आत्म शक्ति का दर्शन करता है।

जीवन-विरोधी दर्शन से समाज में अब तक पाखण्ड ही पैदा हुआ है और व्यक्ति असहज जीवन जीने लगा है। परिणामस्वरूप मनुष्य सतत् तनावग्रस्त रहने लगा है, कहीं आनन्द नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए ठीक ही कहा है- दूसरे सब शास्त्र मानसिक विनोद-मात्र हैं; उनका कोई फल इस संसार में दृष्टिगत नहीं होता। परन्तु चिकित्सा, ज्योतिष और तन्त्रशास्त्र पद-पद पर अपनी सत्यता प्रदान करते हैं-

अन्यान्य-शास्त्रेषु विनोद-मात्रं, न तेषु किञ्चिद् भुवि दृष्टिमस्ति।
चिकित्सित-ज्योतिष-तन्त्रवादाः, पदे-पदे प्रत्यवगाहयन्ति।।[१]

अस्तु! यामल भी तन्त्रशास्त्र का ही एक प्रकार है। रुद्र और उसकी शक्ति के सामरस्य रूप शास्त्र को 'यामल' कहा जाता है। भैरव-भैरवी, आनन्दभैदव-आनन्दभैरवी आदि के परस्पर वार्तालाप के द्वारा विषय-वस्तु का प्रवर्तन करने से भी ऐसे शास्त्र को 'यामल' कहा गया। रूदयामल भी यामलशास्त्र है। इसमें भैरव या आनन्दभैरव जिज्ञासा करते हैं तथा भैरवी या आनन्दभैरवी उनका समाधान करती हैं। रुद्रयामल का काल कतिपय साक्ष्यों के आधार पर ७वीं-८वीं सदी के बीच निर्धारित होता है। रूदयामल का उल्लेख वाराही तंत्र,[२] श्रीकण्ठीसंहिता,[३] जयद्रथयामल[४] आदि में मिलता है। स्वयं रुद्रयामल में कहा गया है कि श्री यामल, विष्णुयामल, शक्तियामल और ब्रह्मयामल के बाद रुद्रयामल पाँचवाँ यामल ग्रन्थ है।[५] अन्य यामल सम्भवतः इसके परवर्त्ती रहे होंगे।

यहाँ मैं अनेक महापुरुषों एवं व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उचित समझता हूँ। सर्वप्रथम कृतज्ञ हूँ परम गुरु एवं रहस्यदर्शी ओशो के प्रति, जिनकी पुस्तक 'तंत्र-सूत्र, भाग-१' ने १९८४ से ही मुझमें तंत्र के प्रति गहरी उत्सुकता जागृत कर दी। उसी प्रगाढ़ उत्सुकता की परिणति यह पुस्तक है। तंत्र के गुह्यतम आयामों में प्रवेश एवं नकली व पाखंडी दृष्टिकोण से बचाव- उनके बिना संभव न था।

---

१. वाममार्ग, पृ० १८ पर उद्धृत
२. रुद्रयामल, उ०त०, प्रस्ताविकम्, पृ० १ (सम्पूर्णानन्द सं०)
३. तान्त्रिक साहित्य, भूमिका, पृ० १६
४. वही, भूमिका, पृ० २४
५. रुद्रयामल, उ०त० १/१-३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य परंपरा में सर्वप्रथम मैं जिनके प्रति नतमस्तक एवं कृतज्ञ हूँ, वे हैं–श्री राम नरेश शर्मा (नरेश दा, प्राचार्य, मुन्ना ज्ञानकुञ्ज, मोर), दिवंगत श्री सुरेश पासवान (पूर्व अध्यापक एवं सहायक प्रबंधक, एस०एफ०सी०, विहार) एवं श्री राम प्रसाद जी (अध्यापक, मोर-इंग्लिश)। ये महापुरुष बाल्यकाल से लेकर अब तक ज्ञान के विभिन्न आयामों में समुचित मार्गदर्शन करते रहे हैं।

तदनन्तर मैं उन आचार्यों के प्रति आभार-प्रदर्शन करता हूँ, जिन्होंने मुझे तंत्र जैसे गूढ़ विषय पर संस्कृत की बँधी-बँधायी अवधारणाओं एवं परिपाटी से हटकर उन्मुक्त रूप से एवं क्रांतिकारी ढंग से कार्य करने दिया ताकि तंत्र का सच्चा स्वरूप उभर कर आ सके एवं लोगों में तंत्र के सन्दर्भ में परिव्याप्त भ्रांतियों का निराकरण हो सके। इस सिलसिले में उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं–प्रो० पुष्पेन्द्र कुमार (इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक एवं भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, दिल्ली वि०वि०), प्रो० अवनीन्द्र कुमार (संस्कृत-विभाग, दिल्ली वि०वि०) एवं प्रो० मदनमोहन अग्रवाल (विभागाध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, दिल्ली वि०वि०)।

मैं यहाँ दो आचार्यों का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूँ–डॉ० रमाशंकर मिश्र (संस्कृत-विभाग, लखनऊ वि०वि०) एवं प्रो० पुण्यानंद भगत (दर्शनशास्त्र-विभाग, पटना कॉलेज, पटना वि०वि०)। डॉ० रमाशंकर मिश्र ने रुद्रयामल पर अलग तरीके से कार्य किया है, जिसे 'रुद्रयामल उत्तरतंत्र : धर्म एवं दर्शन', (परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित) नामक पुस्तक में देखा जा सकता है। इस पुस्तक के कारण मैं अपने कार्य को एक अलग दिशा दे सकने में सक्षम हुआ एवं उपेक्षित पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डाल सका। इसलिए मैं डॉ० मिश्र का आभारी हूँ। डॉ० पुण्यानंद भगत एक सफल प्रशासक भी हैं। जब मैं पटना विश्वविद्यालय का छात्र था एवं पटना कॉलेज के नूतन छात्रावास में रहता था, तो डॉ० भगत छात्रावास के वार्डेन थे। उनकी निडरता, स्पष्टवादिता, बुराई का डटकर मुकाबला करने की दृढता, सकारात्मक सोच को आगे बढ़ाने की प्रवृत्ति आदि कई ऐसी बातें हैं, जो अब तक मेरे काम आती हैं। मैं हार्दिक रूप से उनका आभारी हूँ।

विश्वविद्यालय से इतर एवं वस्तुतः गुरू-पद को शोभित करने वाले स्वामी आनंद विजय एवं मा प्रेम अर्चना (जबलपुर) के प्रति नतमस्तक हूँ, जिन्होंने तंत्र के प्रसिद्ध 'चौंसठ योगिनियाँ का मंदिर' (जबलपुर) के बारे में रहस्योद्घाटन किया एवं खजुराहो-कोणार्क के तांत्रिक मूर्तियों के रहस्य की गुत्थियों को सुलझाया। स्वभावतः दीक्षा तो उनसे ही लेनी थी। ध्यान की गहराईयों में डुबकी लगाने वाले स्वामी आनन्द स्वभाव (मेहसाणा), स्वामी शून्यम् प्रकाश (भीमताल) एवं मा धर्म ज्योति (दिल्ली) के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ।

अग्रज एवं मित्र श्री तेजस्कर पाण्डेय (लेखक एवं उप निदेशक, उद्योग, लखनऊ) के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे लखनऊ-प्रवास के दौरान यथासंभव सहायता एवं सुविधा प्रदान की। उन्हीं के यहाँ रहकर मैंने इस पुस्तक का पञ्चम अध्याय 'रुद्रयामल और तत्त्वमीमांसा' लिखा था।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथाशीघ्र इस पुस्तक के पूर्ण होने में जिन मित्रों ने सामग्री-संकलन में पर्याप्त तत्परता का परिचय दिया है, उन सबका आभारी हूँ; विशेषकर डॉ० ओमनाथ विमली (एसोसिएट प्रोफेसर, राजधानी कॉलेज, दिल्ली), डॉ० दीपक कुमार उर्फ दीपू बाबू (रीडर, महाराजा कॉलेज, आरा), डॉ० योगेन्द्र कुमार (रीडर, राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर), श्री राजीव शुक्ला (पत्रकार व शिक्षाविद, पटना) एवं श्री रमेश प्रसाद सिंह (उपनिरीक्षक, दिल्ली पुलिस)।

बाल्यकाल से लेकर अब तक कतिपय मित्रों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ, जिनके निश्छल प्रेम एवं अटूट सहयोग के बिना शिक्षा की यह यात्रा संभव न थी। उल्लेखनीय नामों में शामिल हैं–साधन मजूमदार (तेलता), ललित पासवान (मोर), अरूणसिंह (मोर), मदन सिंह (मोर), रंजीत (बिन्दटोली, मोर), पटना विश्वविद्यालय के मित्र राजीव रंजन, रंजीत कुमार (बी०डी०ओ०, बिहार), सतीश राय साहब एवं ललन जी (सिवान), दिल्ली विश्वविद्यालय के मित्र शरणानन्द जी (एडवोकेट, दिल्ली), उमाकांत मंडल (अध्यापक, बोमडिला, अरूणाचल प्रदेश), मिथिलेश झा (मुँगेर), मुन्ना प्रसाद गुप्ता (आइ०पी०एस०, असम), दिवंगत विजय जी (भारतीय वन सेवा), वशिष्ठ प्रसाद एवं विनोद गहलोत (भारतीय राजस्व सेवा), बी०एल० पगारिया (उदयपुर) एवं राधेश्याम जी (कलोल)। मित्रों की सूची बहुत लम्बी है, इसलिए अन्त में उन सभी प्रिय मित्रों को मीता के अन्तर्गत समाहित किया जा रहा है।

इस अवसर पर माता-पिता का स्मरण न करना कृतघ्नता होगी। दिवंगत पिताश्री (श्री द्वारिका प्रसाद रजक) का सदैव आशीर्वाद रहा, जिनकी आकांक्षा थी कि मैं उच्चतर शिक्षा ग्रहण करूँ। जिन्होंने कहा था कि तुम अपना मनोबल हमेशा ऊँचा इस बात से बनाए रखना कि तुम्हारे परदादा बाबू श्री नोखेलाल जी रजक जो ब्रिटिश राज में मोकामा में तार बाबू के पद पर थे एवं मोर गांव के पहले स्नातक थे; गांव में जमींदार तो बहुत थे, किन्तु विद्या के मामले में नोखेलाल जी का घर ही आलोकित था। मैं ये तो नहीं कह सकता कि मैं उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरा या नहीं, किन्तु आज वे होते तो मुझे बहुत खुशी होती पुस्तक की एक प्रति उनके हाथों में देकर, फिर साभार उनका चरण-स्पर्श करना। इस संदर्भ में पिता की भूमिका का निर्वाह करने वाले अपने अग्रज आदरणीय एवं अविस्मरणीय श्री प्रवीण कुमार रजक का आजीवन ऋणी हूँ, जिनके पूर्ण सहयोग एवं प्रेरणा के कारण आज मैं इस मुक़ाम पर हूँ। अन्यथा इन्टरमीडिएट पास कर कहीं छोटी-मोटी कोई नौकरी या व्यवसाय कर रहा होता।

अन्त में मैं उन सभी व्यक्तियों व मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जो किसी न किसी रूप में इस पुस्तक के आविर्भाव में संलग्न एवं सम्बद्ध रहे हैं।

कतिपय सावधानी के बावजूद यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो या किसी विचार से किसी प्रकार की ठेस पहुँची हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

मनोज कुमार रजक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथम अध्याय

तन्त्र का उद्भव, स्वरूप एवं वर्गीकरण

तन्त्र का उद्भव

कई समाजशास्त्रियों तथा पुराविदों का मत है कि परिवार तथा समाज के आविर्भाव एवं प्रारम्भिक गठन में माता के रूप मे स्त्री ने वड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके कारण विश्व के कई भागों में मातृसत्तात्मक संस्थाएं बनीं। इसलिए मातृदेवी की पूजा का प्रचलन हुआ। .....संसार के कई प्रागैतिहासिक स्थलों से स्त्री-देवता या मातृदेवियों की मूर्तियाँ मिली हैं और इनमें बहुत सी पुराश्म युग के परवर्त्ती प्रखण्डों से जुड़ी हैं। इस दृष्टि से फ्रांस, इटली, रूस आदि में प्राप्त मूर्तियाँ दर्शनीय हैं.... ये सभी देवियाँ नग्नावस्था में हैं। ......इनमें अधिकतर प्रौढ़ मातृत्व के तत्त्व प्रदर्शित हैं, यथा विस्तृत नितम्ब, प्रस्फुटित योनि और लम्बित स्तन। विद्वानों के मतानुसार इस प्रकार की प्रतिमाएँ नारी के उर्वरत्व तथा प्रजनन-शक्ति की परिचायिका के रूप में कल्पित की गयी हैं।[१]

जेम्स जे० प्रिस्टन का मत है कि देवी-पूजा के साक्ष्य ३०,००० वर्ष पूर्व नवपाषाणकाल तक मिलते हैं।[२] भारत में पुरातत्त्विक अन्वेषणों के फलस्वरूप स्वर्गीय प्रो० गोवर्धन राय शर्मा ने उत्तर पुराश्मकालीन मातृ-पूजा के महत्वपूर्ण साक्ष्य खोज निकाले थे। उन्हें ये साक्ष्य इलाहाबाद-मिर्ज़ापुर के निकट बेलन नदी की घाटी तथा सोन नदी के अंचल में बसे बघोर से प्राप्त हुए हैं। बेलन के सीमेंटेड ग्रेबल तृतीय से, जिसकी रेडियो कार्बन तिथियाँ २३, ८४०(±८३०) ई० पू० तथा १७७६ (±३४०) ई० पू० प्राप्त हुई हैं, वाण के फलक से मिलती-जुलती हड्डी की मातृदेवी की मूर्ति पायी गयी है, जिससे भारत में देवी-पूजन की परम्परा की प्राचीनता सिद्ध होती है।[३]

भारतीय सन्दर्भ में मातृपूजा के दूसरे चरण के साक्ष्य ताम्राश्मयुगीन संस्कृतियों में मिलते हैं। इस दृष्टि से पाकिस्तान के झोव तथा कुल्ल क्षेत्र की रूढ़िबद्ध मातृ-मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।.......ये मातृ-आकृतियाँ ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्दी की मानी जाती हैं।[४]

---

१. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-१६
२. कल्ट ऑफ द गोडेज, पृ०-६
३. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-१६
४. वही, पृ०-१०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्रशास्त्र के आधुनिक चिन्तकों और शोधकर्त्ताओं के ज्ञान का केन्द्र सिन्धुघाटी की सभ्यता है। सिन्धुघाटी की सभ्यता की जितनी भी मूर्तियाँ, चित्र या अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनमें शक्ति, शिवलिङ्ग या तन्त्र से सम्बन्धित यन्त्रों के चित्र और उल्लेख प्रमुख हैं। पुरातत्त्व विभाग के अनुसार सिंधु घाटी सभ्यता लगभग तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व की है। इसके पूर्व भी यह सिद्धान्त तथा विज्ञान तो अवश्य रहा होगा। बीच की अवधि में तन्त्र गुप्त हो गया। पुनः इसकी जागृति होती है ७ वीं और १२ वीं शताब्दियों के मध्य।[१] यह सम्भव है कि आर्य संस्कृति से वह पूर्व संस्कृति अभिभूत हो गई हो और वैदिक संस्कृति के प्रभाव से तान्त्रिक संस्कृति के नैरन्तर्य में एक दीर्घ अन्तराल आ गया हो तथा वैदिक वाङ्मय की सीमा समाप्त होते ही शनैःशनै यत्र तत्र बिखरे हुए तान्त्रिक संस्कृति के अवशेष पुनः प्रतिष्ठापित हो सके हों।...... .....जहाँ कहीं भी तान्त्रिक साधना के बीज पड़े होंगे, अवसर पाकर वे ऋषियों की अनुश्रवण परम्परा से पुनः अस्तित्त्व में आ गये होंगे।[२]

तन्त्रों का जो भी समय रहा हो अथवा उनकी प्रामाणिकता के विषय में जो भी मत-वैभिन्य रहे हों, किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि उनमें ऐसे आचार निर्दिष्ट हैं, जो उनकी अति प्राचीनता की पुष्टि करते हैं।[३] इस बात की पुष्टि कई बातो से होती है। यथा, तान्त्रिक प्रयोगों का विकास यहाँ के निम्न जातियों के द्वारा हुआ है। जयद्रथयामल के द्वितीय षटक में एक स्थल पर यह निर्देश किया गया है कि तैलिक और कुम्भकार के घर में जाकर परमेश्वरी की पूजा की जानी चाहिए।

तैलिकानां गृहं गत्वा कुम्भकारगुहं तु वा।
तत्र तत्पतिभिः सार्धं यजेत् परमेश्वरीम्।।[४]

इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यों के आगमन के पूर्व अनार्यों में तन्त्र-साधना अपने उत्कर्ष पर रही होगी। सिन्धु घाटी की सभ्यता के धर्म का प्रकाशन करने में पशुपति की एक मूर्ति महत्वपूर्ण भूमिका रखती है, जिसका विवरण मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारत की मूल संस्कृति अवैदिक या आगमिक है और वैदिक संस्कृति परवर्त्ती है।[५] प्राचीनकाल से ही आदिम मनुष्यों में षट्कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वषण और स्वस्तययन), पञ्चमकार (मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा और मैथुन); मन्त्र और बीज-मन्त्रों का प्रयोग प्रचलित था। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए उनकी प्रतिमा बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करके उसे नष्ट कर दिया जाता था।[६] प्राचीन काल से ही यह प्रचलन है कि प्रेतबाधा को दूर करने के लिए तान्त्रिक अंगुठियों को धारण किया

---

१. तंत्र दर्शन, पृ० ६
२. रुद्रयामल उ० त०: धर्म और दर्शन, पृ०-११
३. तन्त्राज: स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ०-७
४. स्टडीज इन द तन्त्राज, भाग-१, पृ०-११२ पर उद्धृत
५. तन्त्राज: ए जनरल स्टडी, पृ०-५
६. रुद्रयामस उ० त०: धर्म और दर्शन, पृ०-११

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाता है। शिव की लिङ्ग-पूजा तो प्राचीनकाल से ही प्रचलित थी। बीज मन्त्रों की ध्वनियों से प्रयोजनविशेष का सम्बन्ध होता था। प्रेत आत्माओं के निवारणार्थ विचित्र ध्वनिपरक बीजमन्त्रों का उच्चारण किया जाता था। यह पद्धति आज भी देखी जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तान्त्रिक साधना अनार्यों की सम्पत्ति थी। यह भी कहा जा सकता है कि उस वैभव को आर्यों ने उनसे छीनकर तन्त्र के रूप में क्रमबद्ध किये हों।[१]

वैदिक और वैदिकोत्तर साहित्य में तन्त्र-साधना

(१) वैदिक साहित्य—यह सामान्य मान्यता है कि तन्त्र शास्त्र अवैदिक है, किन्तु यह भ्रामक है। वेदों में भी 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग हुआ है।[२] यद्यपि तान्त्रिक परम्परा का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ, किन्तु इसके विकास की दिशा वैदिक परम्परा की विरोधी न होकर पूरक रूप में ही रही। तन्त्र दर्शन जिन विचारों, सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, वे सभी अस्फुट रूप में वैदिक साहित्य में पाए जाते हैं। इसी अर्थ में तन्त्र को वेद की व्याख्या कहने की भी परम्परा है।[३]

महत्वपूर्ण ऋग्वेदीय देवियों में रात्रि, उषस् के अतिरिक्त अदिति, पृथिवी, वाक् और सरस्वती का नाम लिया जा सकता है। द्यावा-पृथिवी को संसार का पिता-माता कहा गया है। कुछ उसी प्रकार जैसे प्रकृति और पुरूष या तंत्रों के शिव एवं शक्ति को।[४] ऋग्वेद के दशम मण्डल में 'देवीसूक्त' (ऋ० १०-१२५) तन्त्रों की अधिष्ठातृ देवी की प्राचीनता की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर आर्यों ने दासों को 'शिश्नदेवाः' (जो लिङ्ग की पूजा करते हैं) कहा है।[५] ऋग्वेद के दशम मण्डल के बहुत से सूक्त रोगमुक्ति, विषहरण, प्रेतनिवारण के साधन रूप हैं। तदनन्तर अथर्ववेद में हमें ऐसी अनेकशः आचार-पद्धतियों का दर्शन होता है, जो तान्त्रिक आचार के समान हैं।[६]

वैदिक साहित्य में रुद्र का उल्लेख हुआ है। पूर्व वैदिक सम्प्रदाय को 'आदिशिव' से सम्बद्ध माना जाता है। यही आदिशिव और वैदिकयुग के रुद्र परवर्त्ती शैव शास्त्र और सम्प्रदाय के मूल स्रोत माने जाते हैं।[७] अथर्ववेद में ऋषि कात्यायन के द्वारा महिषमर्दिनी का पूजा-प्रसङ्ग आता है। देवी प्रसन्न होकर महिषासुर को मारने के लिए आविर्भूत होती है। दत्तात्रेय, विश्वामित्र, वसिष्ठ, श्रीकृष्ण, नारद, गौतम, कपिल आदि अनेक वैदिक ऋषि तान्त्रिक सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित प्रतीत होते हैं।[८]

---

१. तन्त्राजः स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर,पृ०-६
२. तंत्र दर्शन, पृ० १
३. भारतीय दर्शन, पृ०-६४१
४. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्ततंत्र, पृ०-२२
५. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ०-८२
६. तन्त्राजः देयर फिलॉसफी एण्ड अकल्ट सीक्रेट्स, पृ० ४-५
७. पुराणिक एण्ड तान्त्रिक रिलिजन, पृ०-६३
८. तन्त्राजः देयर फिलॉसफी एण्ड अकल्ट सीक्रेट्स, पृ०-५ पर सन्दर्भित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परम्परागत ऐसा विचार है कि अथर्ववेद के सौभाग्य काण्ड से तन्त्रों का उद्‌भव हुआ। कुछ तान्त्रिक ग्रन्थों ने इस मान्यता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। यथा 'काली कुलार्णव तंत्रं' की प्रारभिक पंक्तियों में कहा गया है कि अब देवी आथर्वण-संहिता में कहती है।[१] रूदयामल उ० त० में देवी को अथर्ववेदरूपिणी तथा सर्वमन्त्रात्मिका विद्या वेद-विद्या-प्रकाशिनी कहा गया है।[२] अथर्ववेद के कुछ आचार ऐसे हैं, जो तन्त्र से अधिक साम्य रखते हैं। अथर्ववेद के विषय जादू, चमत्कार तथा रहस्य से आपूरित हैं, जो तन्त्रों के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। इस प्रकार अभिचार, स्त्रीकर्म, पौष्टिक आदि कर्म अथर्ववेद और तन्त्र दोनों में मिलते हैं। अथर्ववेद में कुछ ऐसे मन्त्रों का संकेत किया गया है, जिनका जप स्त्री के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। रक्षा के लिए ताबीजों के प्रयोग का अथर्ववेद-काल में पर्याप्त प्रचलन था।[३]

वेदों के ही समान उत्तर-वैदिक साहित्य अर्थात उपनिषद्, आरण्यक आदि में भी तान्त्रिक-साधना-पद्धतियों के बीज प्राप्त होते हैं। प्रश्नोपनिषद में षटचक्र-भेद का विवेचन हुआ है, जो तान्त्रिक जगत् की उत्कृष्ट साधना है।[४] वाजसनेयी-संहिता में देवी अम्बिका को रुद्र देवता के बहन के रूप में संबोधित किया गया है एवं यज्ञ में आने तथा रुद्र के साथ अपना भाग लेने के लिए उसकी स्तुति की गई है।[५] परवर्त्ती काल में इस तरह का भेंट विशेष रूप से मातृदेवियों को दिया जाने लगा।[६] श्वेताश्वेतर उपनिषद् के ऋषि जगत् के मूल में शक्ति को ही देखते हैं-

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन देवात्मशक्तिस्वगुणैर्निगूढाम'।[७] वृहदारण्यक उपनिषद् (७ अ० व्रा ४) में वाक् को धेनु या गौ मानकर उसके चारों थनों को क्रमशः स्वाहाकार, वषटाकार हन्तकार एवं स्वधाकार का प्रतीक बताया है-

वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वारः स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारः... ....।[८]

मुण्डकोपनिषद् में अग्नि की सात जिह्वाओं (लपटों) को काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी तथा विश्वरूची देवी के नाम से पुकारा गया है।[९] त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद् में हमें त्रिपुरा-सुन्दरी या श्रीविद्या का वितृत वर्णन मिलता है।[१०] इसमें तंत्र के कर्म की सभी सादृश्यताएं विद्यमान हैं। यथा-चक्र, कामकला, मुद्रा और कौल।

---

१. सेतुबन्ध, पृ०-५ (रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-११४ पर वर्णित)
२. रुद्रयामल उ०त०, १७/३, १२
३. तन्त्राजः स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ०-१४
४. तन्त्राजः देयर फिलॉसफी एण्ड अकल्ट सीक्रेट्स, पृ०-५
५. वाजसनेयी संहिता, ३/५३ (प्रिंसुप्ल ऑफ शक्ति, पृ०-१४ पर वर्णित)
६. मृच्छकटिक १/१५
७. श्वेताश्वेतर उपनिषद्, प्रथम अध्याय
८. वृहदारण्यक उपनिषद् ७/४ (ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-२७ पर उद्धृत)
९. मुण्डक उ०, २, ४ (ऐतिहासिक सन्दर्भ में शावत तंत्र, पृ०-२८ पर सन्दर्भित)
१०. त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद्-१/५ (प्रिंसुप्ल ऑफ शक्ति, पृ०-२० पर सन्दर्भित)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाक्त उपनिषदों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि तंत्र के पारिभाषिक शब्दों के विभिन्न सन्दर्भों से वे भरे पड़े हैं। इनमें से कुछ उपनिषद् तो चरित्र के दृष्टिकोण से पूर्णरूपेण तान्त्रिक ही हैं। इनमें तंत्र के सांकेतिक पदों का वर्णन किया गया है। यथा, बिन्दु, नाद, रजस्, बीज, स्नान, शक्ति, मन्त्र, यंत्र आदि।[१]

इसी प्रकार ऐन्द्रिक सुख की चर्चा वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र देखने को मिलती है। 'ऐतरेय आरण्यक' (११. ३. ७. ३) के अनुसार न तो पुरूष के वीर्य और न स्त्री के रक्त से घृणा करनी चाहिए, क्योंकि वे क्रमशः आदित्य ओर अग्नि के स्वरूप हैं।[२] यज्ञीय प्रयोजन के लिए सोमरस का पान एक प्रकार का मद्यपान ही था। 'शतपथ ब्राह्मण' में वर्णित अतिरात्र यज्ञ मद्यपान के उत्सव को सफल करने के लिए सम्पन्न किया जाता था। वैदिक यज्ञों मे मनुष्य, अश्व, वृषभ, वृक अज आदि का आलम्भन होता था। यज्ञों की समाप्ति पर गोमांस-ग्रहण करने का भी विधान था।[३]

इस प्रकार स्पषट है कि तन्त्रों का लिखित रूप जब सामने आया, उसके बहुत समय पूर्व तान्त्रिक धर्म तथा क्रियाओं का पूर्ण अस्तित्त्व रहा होगा। हमारी संस्कृति ने दो मुख्य विचारधाराएं प्रस्तुत की हैं-वैदिक और तान्त्रिक। वैसे तंत्र की परम्परा को वेदों से भी प्राचीन माना गया है, पर दोनों लगभग समानान्तर ही चली हैं, कभी एक-दूसरे का आलिंगन किया है, तो कभी एक दसरे को उपालम्भ भी दिए हैं।[४] भारतीय संस्कृति वस्ततुतः वैदिक और तान्त्रिक परम्परा का मिश्रित रूप है।[५]

(२) धर्मशास्त्र और पुराणादि में तंत्र–स्रौत-सूत्रों एंव गृह्य-सूत्रों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि सांख्यायन स्रौत-सूत्र एवं गृह्य-सूत्र में भद्रकाली का वर्णन है। बौधायन सूत्र एवं मनु-संहिता में दुर्गा तथा ज्येष्ठा का न केवल वर्णन है, अपितु उनको अर्पित किए गये भेंटों का भी उल्लेख है।[६] 'ब्रह्म-सूत्र' में पाशुपत और बौद्ध[७] आदि सम्प्रदायों की ओर संकेत मिलता है। पतञ्जलि ने अपने योग-सूत्र (४/१) में पूर्णसिद्धि प्राप्त करने के लिए मन्त्रों की सामर्थ्य का उल्लेख किया है।

पुराणों में अनेक तान्त्रिक आचारों के संकेत मिलते हैं। पुराणों में शक्ति को सर्वोच्च

१. प्रिंस्पुल ऑफ शक्ति पृ०-१६
२. तन्त्राजः स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ-१२ पर उद्धृत)
३. वही, पृ०-१३
४. तंत्र दर्शन, आमुख
५. भारतीय दर्शन, पृ० ६४१
६. सांख्यायन स्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र II/IV/20/14/1 (क) मनु III/89
भवान्यै स्वाहा शर्वाण्ये स्वाहा रुद्राण्यै।
स्वाहेशान्यै स्वाहाम्नायै स्वाहेति।। –सांख्यान श्रौत सूत्र प्ट्ध्२०
(क) बौधायन धर्मसूत्र II/5/6 (ख) बौधायन गृह्य सूत्र 1/2/7/1, III/3.2, III/3.9
(पिंस्पुल ऑफ शक्ति, पृ०-१७ के पादटिप्पणी पर सन्दर्भित)
७. ब्रह्मसूत्र, २/२/३०-३२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थान मिला है, जहाँ उसे त्रिदेव अर्थात् विष्णु, शिव एवं शक्ति में परिगणित किया गया है।. ....देवी भागवत पुराण, देवी पुराण, कालिका पुराण एवं महाभागवत पुराण में शक्ति को विष्णु एवं शिव से भी अधिक महत्ता प्रदान की गई हे।[१] पद्मपुराण (स्वर्ग खण्ड अध्याय-२७) तथा कालिका पुराण (अध्याय-५४) में तान्त्रिक षट्कर्मों के ऊपर प्रकाश डाला गया है। महाभारत के क्षेपक अंशों में शिव की लिङ्ग-पूजा तथा अन्य तान्त्रिक देवताओं की पूजा का उल्लेख मिलता है।[२]

रामायण में भी मद्य और मांस के प्रयोग का उल्लेख किया गया है- 'सुराघट-सहस्त्रेण मांस-भूतौदनेन च'।[३]

रामायण के युद्धकाण्ड में मेघनाद के द्वारा अग्निदेवता को रक्त का होम किये जाने का उल्लेख हुआ है।[४]

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' (१४/३) में प्राणियों की मूर्च्छा के लिये यन्त्रों और जादू का वर्णन किया गया है।[५]

(३) बौद्ध साहित्य में तंत्र–बौद्ध साहित्य में बहुत से तान्त्रिक प्रयोग मिलते हैं। बुद्धपञ्चकामगुण दिट्ठ-धम्म निब्बानवाद का संकेत करते हैं, जिसके अनुसार पाँच ऐन्द्रिक सुख की पूर्ण तुष्टि होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है।[६] 'ललित-विस्तर' (अध्याय-१२) में ज्ञान के अन्य स्रोतों के साथ निगमों में भगवान बुद्ध के परम बोध की ओर संकेत किया गया है। अध्याय-१७ में प्रसङ्गवशात् बुद्ध के समय के तान्त्रिक प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला गया है। वहाँ पर मन्त्रों के प्रयोग के साथ धार्मिक प्रयोजनों के लिये मद्य और मांस के ग्रहण का उल्लेख किया गया है। वहाँ कपाल और खट्वाङ्ग-ग्रहण का भी संकेत है। मातृ देवी और कात्यायनी आदि देवी तथा अन्य देवताओं की पूजा श्मशान भूमि में सम्पन्न किये जाने का विवरण भी वहाँ मिलता है। अश्वघोष के द्वारा तान्त्रिक देवी 'काली' का वर्णन किया गया है।[७] 'बुद्धचरित' (१३/३९) में मार की सहयोगिनी महाकाली का वर्णन किया गया है, जो अपने हाथ में कपाल-थाल लेकर बोधिसत्व के समक्ष खड़ी होकर उन्हें प्रत्येक प्रकार की मनोहर चेष्टा क्रे द्वारा आनन्द के लिये लालायित करती है। कथावत्थु (२३/१-२) के अनुसार मैथुन को धर्म माना जाता था। तान्त्रिकों के समान कपालों का प्रयोग भी 'चुल्लवग्ग' के एक सन्दर्भ से प्रमाणित होता है। वहाँ एक भिक्षु की ओर संकेत किया गया है, जो श्मशान भूमि

---

१. प्रिंस्पुल ऑफ शक्ति, पृ०-४१.
२. तन्त्राज: स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ० १७
३. रामायण: अयोध्या काण्ड, ५२/८९
४. वही, युद्धकाण्ड ८२/२७
५. रुद्रयमाल उ०त०:धर्म और दर्शन पृ०१८ पर सन्दर्भित
६. तन्त्राज: स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ० १४ पर उद्धृत
७. वही, पृ०-१७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से प्राप्त वस्तुओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहनता था। वह कपाल को लेकर भिक्षा-वृत्ति के लिये भ्रमण करता था। 'मज्झिम निकाय' (१/७८) के अनुसार बुद्ध अपनी साधना के प्रारम्भिक दिनों में शव की कुछ जली हुई हड्डियों को तकिया बनाकर श्मशान भूमि में रहते थे। 'तेविज्जिय सुत्त' के अनुसार कुछ श्रमण और ब्राह्मण घावों को समाप्त करने तथा शरीर को सुरक्षित रखने की जादू की शिक्षा देकर अपनी आजीविका चलाते थे। 'ब्रह्मजाल सुत्त' (२१) के अनुसार घुटने से रक्त निकालकर यज्ञ के रूप में देवों को समर्पित किया जाता था।[१]

(४) जैन साहित्य में तन्त्र–प्राकृत भाषा में प्राप्त जैन ग्रन्थों में तान्त्रिक आचारों का परिचय मिलता है। 'रथानाङ्ग सूत्र' (४/४) में महावीर ने मैथुन से आनन्द प्राप्त करनेवाले 'सायवादियों की ओर संकेत किया है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में आरोग्यकर यन्त्रों का उल्लख किया गया है। 'सूत्रकृताङ्ग' (२/२) में ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है, जो किसी को प्रसन्न या दुःखी करने के लिए जादू का प्रयोग करते थे।[२] मध्ययुग या उससे पूर्व कई देवियों की कल्पना की गयी, जिनमें उल्लेखनीय हैं काली, कराली और धूम्रवर्णा। इसी काल में मनोजवा का नाम जैन यक्षियों में भी जोड़ा गया।[३]

तन्त्र का मिथकीय उद्‌भव

तन्त्रों के अवतरण के विषय में 'ब्रह्मयामल' में ईश्वर कहते हैं कि सर्वप्रथम पराशक्ति रूप शिव ने 'इच्छा' धारण की। इच्छा से बिन्दु शक्तिमान् हुआ। इसी बिन्दु से ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। यह ज्ञान सर्वप्रथम सदाशिव से अवतरित होता है। सदाशिव के द्वारा यह ज्ञान 'अमृत' को प्राप्त हुआ और 'अमृत' ने १२५ सहस्र अनुष्टुप् छन्दों में अन्यों को प्रदान किया तथा इसी शृंखला में इस ज्ञान को श्रीकण्ठ ने प्राप्त किया। उन्होंने इसे करोड़ों श्लोक में अन्यों को प्रदान किया। श्रीकण्ठ से उक्त ज्ञान को प्राप्त कर ईश्वर ने अपनी देवी को १२५ सहस्र श्लोक सुनाया।[४] वहीं ईश्वर का कथन है कि भैरव ने क्रोध भैरव को १२५ सहस्र श्लोक प्रदान किया। कपाल भैरव ने २४ सहस्र श्लोकों को संगृहीत कर कुरूक्षेत्र के एक ब्राह्मण पद्मभैरव को प्रदान किया। पद्मभैरव ने इन २४ सहस्र श्लोकों को उड्रदेश में उत्पन्न देवदत्त को सुनाया। पद्मभैरव से शिष्यों की एक दीर्घ परम्परा शुरू हुई, जिससे इस ज्ञान का अङ्कुरण हुआ। इनमें प्रमुख इस प्रकार हैं- रक्तभैरव, ज्वाला, हेला, वाम, विजय, सीसंस, गजकर्ण, चण्ड यज्ञसोम आदि।[५]

जयद्रथयामल (प्रथम षट्क) के अन्तिम पटल में मङ्गलाष्टक, चक्राष्टक तथा शिखाष्टक के अन्तर्गत आने वाले तन्त्रों का उल्लेख हुआ है। इसक साथ ही वहाँ पर तन्त्रों के आविर्भावक

१. रुद्रयामल उ० त०: धर्म और दर्शन पृ० १६ पर सन्दर्भित
२. वही, पृ०-१६-१७ पर सन्दर्भित
३. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र पृ०-२८
४. स्टडीज इन तन्त्राज, भाग-१, पृ० १०३ उद्‌धृत
५. वही, पृ०-१०३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋषियों की एक दीर्घ परम्परा विवेचित है।[१] उन ऋषियों के नामों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है–

१. दुर्वासा, सनक, विष्णु, कपिल, काश्यप, कुरू, संवर्त, शङ्खपाल और भैरव।

२. भृगु, श्वेतोनिवीश, विश्वामित्र, गौतम, गालव, याज्ञवल्क्य और विभाण्ड।

३. कुरचाल, कुन्दन, कंक, केकर, काबन, क्षमी, काटराक्ष, संवर्त और मनाख्य।

४. विन्दु, सविन्दु, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, बुभुख्या (बुभुख्य) और कात्यानन।

५. उलूक, स्थूलनाडी, हंश, हंशख, शुक, मनु और पीटेक्षक।

६. वशिष्ठ, दक्ष, शुक्र, कनक, कोकिल, शुक, विश्वभू, काश्यप और श्वेत।

७. वृहस्पति, घंट, कंकर, श्यामक, शिखि, कर्णजट और धीष।

८. हंस, सोम, अनुलोम, विलोम, लोमक, शत, जट और वाल्मीकि (?)

इसी प्रकार तिब्बत मे लामाओं की शृंखला में सिद्धों या नाथों की परम्परा का उदय होता है। इतिहास की दृष्टि से इस परम्परा का सूत्रपात ८०० ई० के आस-पास माना जा सकता है।[२] कुलमार्ग के प्रर्वतक 'मत्स्येन्द्रनाथ' का नाम भी इसी परम्परा में लिया जाता है। वैसे तो इस परम्परा में ८४ सिद्धों के नाम आते हैं, किन्तु इनमें नौ अतिप्रसिद्ध हैं-गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ, नागार्जुन, सहस्त्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जडभरत, आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ।[३] इसी शृंखला में आगे चलकर अनेक प्रकार की वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, पाशुपत, कालामुख, सौम्य, सिद्धान्त, काश्मीरी शैव, त्रिक, क्रम, स्पन्द आदि तान्त्रिक दर्शन-पद्धतियाँ प्रचलित हुईं।[४]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में तान्त्रिक साधना के बीज प्रागैतिहासिक काल में मौजूद थे। धीरे धीरे उपयुक्त समय मिलने पर वे वैदिक तथा लौकिककाल में उत्तरोत्तर विकसित होते गए और एक समय ऐसा भी आया जब उन्होंने खजुराहो, पुरी और कोणार्क जैसे मन्दिरों पर अपने अमिट चित्र अंकित कर दिए।

तंत्र का स्वरूप

(क) तंत्र शब्द का अर्थ

तंत्र शब्द का प्रयोग ऋग्वेद (१०/७१/९) में हुआ है, किन्तु वहाँ वह करघा के अर्थ में ही प्रयुक्त है।[५] वहाँ कहा गया है कि "ये अबोध व्यक्ति नीचे (इस विश्व में) नहीं चलते

१. स्टडीज इन तन्त्राज, भाग-१, पृ०-११२

२. योग दर्शन-डॉ० सम्पूर्णानन्द, पृ०-५

३. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-२४

४. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-७

५. ऋग्वेद (१०/७१/९)-इमे येऽर्वाङ न पाश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरास:।
त एते वाचमाध पद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञय:।।

–(धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड-५)उत्तरार्ध, पृ०-१)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(घूमते) और न उच्च लोक में ही (घूमते), न तो ये विद्वान ब्राह्मण हैं और न सोम निकालने वाले पुरोहित हैं, ये (दुष्ट प्रकार की बोली) बोलते हैं और उस दुष्ट (या पापमय) बोली के साथ हलों एवं तन्त्रों को चलाते हैं।" अथर्ववेद (१०/७/४२), तैत्तिरीय ब्राह्मण (२/५/५/३), पाणिनि (५/२/७०) आदि में तंत्र का यही अर्थ है।

अमरकोष के अनुसार तंत्र का अर्थ है-'प्रमुख विषय या भाग', 'सिद्धान्त' (अर्थात-मत, तत्त्व, वाद या शास्त्र), 'करघा' या सामग्री या उपकरण। किन्तु इससे यह नहीं पता चलता कि तन्त्र कार्यों का कोई विलक्षण वर्ग है। अतः ऐसा अनुमान निकालना दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि अमरकोश के काल में तन्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन नहीं हुआ था या हुआ भी होगा, तो ग्रन्थ अभी जन सामान्य की बुद्धि में बैठ नही सके थे।[१]

चिन्तकों के मतानुसार 'तन्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति तन् धातु से ष्ट्रन्-प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ होता है विस्तार करना, फैलाना। किसका विस्तार? परम्परा के अनुसार इसका तात्पर्य ज्ञान के, विद्या के विस्तार से है- तन्यते विस्तार्यते ज्ञानम् अनेन इति तन्त्रम्[२]। यहाँ विचारधारा यह है कि जब तक मनुष्य के जीवन में विद्या का विस्तार और ज्ञान का उद्भव नहीं होता, तब तक वह अज्ञानता के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता।[३] तन्त्र शब्द, का सम्बन्ध जीवन में चेतना और शक्ति से है। तन् धातु या तनोति शब्द, जिसका अर्थ होता है विस्तार करना, जिसका वास्तविक तात्पर्य है, हमारी चेतना का विस्तार।[४] तन्त्र व्यक्ति को और अधिक चेतन बनाने का प्रयास है। तंत्र शब्द का अर्थ है जागरूकता का प्रसार,........चेतना का प्रसार और सबसे आधारभूत तथ्य यह है कि व्यक्ति गहरी निद्रा में है। उसे जागना है।[५] जब तक जीवन में चेतना का विस्तार नहीं होता है, तब तक व्यक्ति किसी भी प्रकार की विद्या को या शिक्षा को अपना नहीं सकता है। इस अवस्था को बुद्धि का विस्तार कहना ठीक नही होगा, क्योंकि यह बुद्धि के स्तर के परे का अनुभव है। चेतना के विस्तार से जीवन में अनेक अनुभूतियाँ जागृत होती हैं। इन अनुभूतियों के द्वारा मानव बाह्य, स्थूल या पदार्थमय जगत् को पार कर अपने आपको परा अवस्था में स्थित कर सकता है।[६]

'त्र' शब्द का तात्पर्य 'त्रायति' से है। त्रायति का अभिप्राय होता है, स्वतन्त्र करना, छोड़ना या बन्धन-मुक्त करना। जीवन का एक पहलू है चेतना, दूसरा पक्ष है शक्ति। मनुष्य के भीतर में आन्तरिक, अतीन्द्रिय और सुषुप्त शक्ति छिपी हुई है। अपनी बहिर्मुखता के कारण वह उसका उपयोग नहीं कर पाता है। 'त्रायति' का तात्पर्य है, उस अदृश्य शक्ति को स्वतन्त्र या मुक्त करना, उसे जीवन में अनुभव करना, उसका उपयोग या प्रयोग करना। इसीलिये तंत्र को एक शास्त्र की संज्ञा दी गई है।[७]

---

१. धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड-५) उत्तरार्ध, पृ०-१
२. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-५४ पर उद्धृत
३. तंत्र दर्शन, पृ० १-२
४. वही, पृ०-२
५. द तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-१२६
६. तंत्र दर्शन, पृ०-२
७. वही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र शब्द का सम्बन्ध तन् धातु के अतिरिक्त 'तन्तृ' धातु से भी है, जिसका अर्थ व्याख्या करना है।[१] तंत्र शब्द विस्तार जैसे सर्वप्रसिद्ध अर्थ के अतिरिक्त बीजगणित के सूत्र के समान अतिसूक्ष्म सूत्रार्थ को भी व्यक्त करता है। तभी तो इसमें मन्त्रों के अनेक वर्णों की समष्टि निहित है।[२] म० म० हर प्रसाद शास्त्री के अनुसार तंत्र, बीजगणित के सूत्र के समान अति सूक्ष्म सूत्र रूप हैं, जिनमें मन्त्रों के अनेक वर्णों की समष्टि निहित है। मानव-जीवन के मनोभाव तथा वासना आदि समस्त क्षेत्र के व्यावहारिक प्रयोग का साधन तंत्रशास्त्र है। तंत्र के द्वारा कामशक्ति चेतना, मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य तथा मानस प्रभुत्व के विभिन्न स्तर में निहित की जा सकती है। यह व्यवहार, विनम्रता, शुद्धता, शारीरिक तथा यौन-आकर्षण का साधन है।[३] तन्त्र परा आनन्द का विज्ञान है। यह नाद, बोध और यौन-संसर्ग का मार्ग हे।[४] ईशानशिवगुरूदेव मिश्र तत् (जानने अर्थ में) से तन्त्र की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं और तंत्र को शैव सम्प्रदाय के पशु, पाश, पति, शक्ति, विचार और क्रियाचार आदि छः तत्त्वों की व्याख्या करने वाला शास्त्र मानते हैं।[५] 'पिङ्गलामत' के अनुसार सब ओर से या हर प्रकार से वस्तु या प्रमेय का ज्ञान कराने वाला शास्त्र 'आगम' और विस्तार, त्राण तथा व्याख्या करने वाला शास्त्र 'तन्त्र' कहलाता है-

आज्ञा वस्तु समन्ताच्च गम्यत इत्यागमो मतः।
तनुते त्रायते नित्यं तन्त्रमित्थं विदुर्बुधाः।।[६]

'तन्त्र' शब्द व्यापक अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे ज्योतिष के अंग विशेष को तन्त्र कहते हैं। सांख्य दर्शन को भी 'तन्त्र' कहा गया है।[७] आचार्य शङ्कर 'तन्त्र' नामक एक स्मृति का संकेत करते हैं।[८] कालिदास ने तन्त्र शब्द का अर्थ शासन व्यवस्था से लगाया था। आज भी शासन के विभिन्न स्वरूपों के लिए प्रजातंत्र, राजतंत्र, अधिनायक-तंत्र आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

म० म० गोपीनाथ कविराज ने 'तन्त्र' शब्द की प्रसिद्ध व्युत्पत्ति को स्वीकारते हुए 'तंत्र' का अर्थ 'विस्तारपूर्वक रक्षा करना' स्वीकार किया है। उसके साथ ही उनहोंने 'तंत्र' शब्द का अर्थ 'विज्ञानसहित ज्ञान' माना है।[९] इसलिए तंत्र की प्रसिद्ध परिभाषाएं हैं-

---

१. तन्त्राः स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ०-१
२. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-२१
३. तन्त्र द इरोटिक कल्ट, पृ०-३०, ३१
४. तंत्रः द सीक्रेट पावर ऑफ सेक्स, पृ०-५
५. ईशान शिवगुरुदेवपद्धति, भाग-३, पृ०-२८
६. तंत्राज : स्टडीज ऑन देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ०-२ पर उद्धृत
७. सांख्य कारिका, ७०
८. ब्रह्मसूत्र, २-१-१ का शाङ्कर भाष्य
९. तंत्रकल्पतरू, पृ०-६२ (रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-६३ पर संदर्भित)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्व-मन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरूते यस्मात्-तन्त्रमित्यभिधीयते।।[१]
व्यवहार कथ्यते यत्र तथा चाध्यात्म-वर्णनम्।
इत्यादि-लक्ष्णैर्युक्तं तन्त्रमित्यमिधीमते।।[२]

अर्थात्–"केवल तत्त्वपूर्ण वचनों-विषयों से समन्वित अर्थों का विस्तार एवं उनके ही माध्यम से साधकों का संरक्षण करनेवाला शास्त्र तंत्र कहलाता है। इसी प्रकार व्यवहार का कथन और अध्यात्म का वर्णन आदि करने वाला शास्त्र भी 'तन्त्र' कहा जाता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से (१) तननं तन्त्रम्, (२) तन्यतेऽनेनेति तन्त्रम्, (३) तन्त्रणं तन्त्रम् (४) तन्त्र्यते अनेनेति तन्त्रम् तथा (५) तनोति त्रायते चेति तन्त्रम्' के अनुसार भी उपर्युक्त अर्थों की पुष्टि होती है।[३] सम्भवतः इन्हीं सब अर्थों को ध्यान में रखकर कहा गया है–

सर्वेऽर्था येन तन्यते त्रायन्ते च भयाज्जनाः।
इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिचक्षते।।[४]

इसी प्रकार सर्वविध उपायों का विस्तार और उनके द्वारा उत्पन्न भय से लोगों की रक्षा ही तन्त्र का चरम और परम लक्ष्य निर्धारित हो गया।

कहा जाता है कि 'तन्त्र' शब्द का अँग्रेजी भाषा में सर्वप्रथम प्रयोग १७९९ ई० में हुआ, जब मिशनरियों ने भारत में आकर में आकर तंत्रों का अन्वेषण किया।[५] पाश्चात्य विद्वानों ने 'तंत्र' को संस्कृत 'प्रबन्ध' की संज्ञा दी, जिसका अर्थ उन्होंने 'नैरन्तर्य' स्वीकार किया। उनके मत में 'क्रिया तंत्र', 'चर्यातंत्र', 'योगतंत्र' तथा 'महायोग तंत्र' के रूप में तंत्रशास्त्र स्वीकार किये गए।[६] यह पाश्चात्य विचार है कि 'तन्त्र' का शाब्दिक अर्थ 'संघटन' है। इसी अर्थ में महर्षि अरविन्द ने भी कहा है कि–'तंत्र' व्यक्तित्त्व के विकास में निहित विभिन्न प्रकार के वैशिष्ट्य तथा पद्धतियों का एकीभाव है।[७]

(ख) आगम, यामल और तंत्र

तात्विक दृष्टि से आगम, यामल और तंत्र तीनों 'तंत्र' के अर्थ को ही द्योतित करते हैं। यह तो रचना परम्परा की धर्मिता है, उस शास्त्र को आगम, यामल या तंत्र कहा गया। तीनों शास्त्रों की अभिन्नता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि कहीं-कहीं 'यामल' ग्रन्थों के साथ 'तंत्र' शब्द भी जुड़ा देखा गया है। जैसे रुद्रयामल उत्तरतंत्र। सर्वानन्दनाथ ने ६४ आगमों[८] का संकेत

१. कामिकागम (तन्त्रान्तरपटल), शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-५५ पर उद्धृत
२. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-६५ पर उद्धृत
३. वही
४. वही, पृ० ३५ पर उद्धृत
५. द डान ऑफ तंत्र, पृ०-१ तथा बुद्धिस्ट फिलोस्फी इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, पृ०-१५५
६. द डान ऑफ तंत्र, पृ०-२-४
७. श्री अरविन्दो ऑन तंत्र, पृ०१
८. सर्वोल्लास तंत्र, १/२०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया और जिनका नाम संकीर्तन करते समय कालीतंत्र, वीरतंत्र, नीलतंत्र आदि तंत्रों का उल्लेख किया है।[१] आगम, यामल और तंत्र-साहित्य में रचना-शैली की दृष्टि से पौर्वापर्य हो सकता है, किन्तु स्वरूप की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। हाँ, एक बात अवश्य है कि कुछ आगम अभेदरपरक, कुछ भेदपरक तथा कुछ भेदाभेदपरक हैं। यह भेद शिव की भेद, भेदाभेद तथा अभेद दशाओं पर आधारित है। यह क्रम या व्यवस्था आगमों में अधिक पुष्ट है।[२] आगम यामल और तंत्र परस्पर पर्याय के समान हैं। इसकी भी पुष्टि रुद्रयामल उत्तरतंत्र से की जा सकती है। यह ग्रन्थ शिव के योगिनी वक्त्र से आविर्भूत ६४ भैरवागमों के अन्तर्गत है। यह आगम, यामल और तंत्र-तीनों विद्या का समष्टि रूप है। ६४ भैरवागमों में भैरवाष्टक, यामलाष्टक, मताख्याष्टक, मंगलाष्टक, चक्राष्टक, शिखाष्टक, बहुरूपाष्टक तथा वागीशाष्टक की गणना की जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तन्त्रशास्त्र आगम, यामल और तंत्र-तीनों रूपों में आविर्भूत हुआ देखा जाता है-

तन्त्रशास्त्रं तु प्रधानस्त्रिधा विभक्तं आगम-यामल-तन्त्रभेदतः।[३]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आगम, यामल और तंत्र परस्पर सम्बद्ध हैं।

(ग) तंत्र : भ्रान्तियाँ और निराकरण

तंत्र के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ हैं। इसकी समृद्ध साहित्य-सम्पदा एवं व्यवस्थित दर्शन के बावजूद यह अध्ययन की एक उपेक्षित शाखा रही है। तंत्र-साधना के विरूद्ध कई आरोप लगाये जाते रहे हैं। कुछ तंत्र अश्लीलता और अन्धविश्वास से परिपूर्ण हैं। कुछ में काला जादू एवं विकृत साधना का वर्णन है। किन्तु ऐसा केवल तंत्र के विज्ञान एवं रहस्यवाद की उपेक्षा के कारण प्रतीत होता है। निश्चय ही कुछ तंत्रों में काला जादू आदि का वर्णन है, किन्तु वे तान्त्रिक-साहित्य की मुख्य धारा का निर्माण नहीं करते।[४]

तंत्र बहुत जाना-माना नहीं है। यदि जाना-माना भी है तो बहुत गलत समझा गया है। जो विज्ञान जितना ही ऊँचा और शुद्ध होगा, उतना ही कम जनसाधारण उसे जान-समझ सकेगा। किसी प्रशिक्षण से काम नहीं चल सकता। तंत्र को समझने के लिए केवल रूपान्तरण मदद कर सकता है। यही कारण है कि जनसाधारण के लिए तंत्र नहीं समझा गया। और सदा यह होता है कि जब व्यक्ति किसी चीज़ को नहीं समझता है तो उसे ग़लत जरूर समझता है। यह इसलिए कि वह व्यक्ति को अपमानजनक लगता है, वह सोचता है मैं और नहीं समझूँ, यह असम्भव है। उस चीज़ के साथ ही कुछ भूल होगी और व्यक्ति गाली देने लगता है।[५]

तंत्र के सम्बन्ध में भ्रान्ति केवल इस कारण है कि तान्त्रिक साहित्य प्रतीकों से, प्रतीकवाद से भरे पड़े हैं, ये प्रतीक वे सत्य हैं जो केवल साधक के समक्ष प्रकट होते हैं। एक साधारण

१. वही, /६-१८
२. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-६४
३. मातृकाभेद तंत्र, भूमिका, पृ०-२(तंत्रकल्पतरू, पृ०६५ पर उद्धृत)
४. तंत्राः इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१७६
५. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ० १७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदमी इसे नहीं समझ सकता। तंत्र के आन्तरिक विज्ञान की उसकी समझ यदि छिछला और सतही हो तो वह विभिन्न प्रतीकों का गहरा आध्यात्मिक एवं रहस्यपूर्ण महत्त्व नहीं सकता।[१]

पञ्चमकार-साधना के कारण भी भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं। कुछ आलोचकों का मत है कि यह मद्य और स्त्री के मनमाने उपयोग की धार्मिक स्वीकृति देता है। उनका कथन है कि मद्य और स्त्री का उपयोग उन्मुक्त रूप से ऐन्द्रिक सुख-सन्तुष्टि के लिए किया जाता है। इस प्रकार तान्त्रिक साधना धार्मिक रूप से पाप को बढ़ावा देता है।[२] किन्तु यह मन को धीरे धीरे सौम्य एवं शान्त बनाने का तरीका है। वह भी इस तरह कि मन जो चाहता है, उसे उसकी अनुमति देते हुए साथ ही इसमें मन को ऐन्द्रिक सुख का व्यर्थता-निस्सारता को समझने का मौका भी दिया जाता है, जिससे यह धीरे-धीरे ऐन्द्रिक सुख को छोड़ने की प्रवृति विकसित करता है एवं संसार में दिव्य तत्त्वों का आनन्द लेना सीखता है।[३] तंत्र व्यक्ति को उसके भोग में सहयोग देने के लिए नहीं है, वह व्यक्ति को रूपान्तरित करने के लिए है। तंत्र के द्वारा व्यक्ति अपने को आसानी से धोखा दे सकता है। इसलिए तंत्र सदा गलत कारणों से प्रभावी होता है। अगर कोई काम या सेक्स का मज़ा लेना चाहता है तो वह तंत्र के नाम पर उसे तर्कसंगत बना सकता है। लेकिन तब वह वस्तुतः तंत्र में उत्सुक नहीं है, तंत्र उसके लिए बस एक मुखौटा है, बहाना है। व्यक्ति का आकर्षण किसी और चीज़ में है। तंत्र से बढ़ कर विस्मयजनक और रहस्यपूर्ण घटना मनुष्य की चेतना में दूसरी नहीं घटी है। अन्य कोई विद्या इतनी गहरी नहीं गई है। लेकिन यह खतरनाक भी है। खतरनाक इसलिए कि व्यक्ति इसे सही होने के कारण नही, बल्कि इसलिए पसन्द करेगा कि वह उसे उच्छृंखल होने की अनुमति देता है।[४]

तंत्र के प्रति भ्रान्तियों का एक कारण यह भी है कि चूँकि तंत्र द्वैत के पार जाता है, इसलिए उसका दृष्टिकोण अतिनैतिक है।....जो चीज़ अतिनैतिक हो जाती है, नैतिक-अनैतिक के पार चली जाती है, तब उसे समझना कठिन हो जाता है। तंत्र अतिनैतिक है, जैसे औषधि अतिनैतिक है। वह न नैतिक है और न अनैतिक। औषधि चोर और संत में कोई भेद नहीं करती। तंत्र कहता है-कोई नैतिकता जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि व्यक्ति अनैतिक है, क्योंकि उसका चित्त अशान्त है। इसलिए तंत्र शर्त नहीं लगाता कि पहले व्यक्ति नैतिक बने, फिर तंत्र की साधना करे। तंत्र के लिए यह बात ही बेतुकी है।[५]

मनुष्य शराबी है या चोर है या अनैतिक है, क्योंकि उसका चित्त अशान्त है, रूग्ण है। ये तो रूग्ण चित्त के प्रभाव हैं, परिणाम हैं। तंत्र अतिनैतिक है। वह नहीं पूछता कि व्यक्ति क्या है? व्यक्ति का मनुष्य होना काफी है। वह जहाँ भी है, जो भी है, स्वीकृत है। तंत्र कहता है-आदमी को बदलाहट की प्रामाणिक विधि के बिना बदला नहीं जा सकता। मात्र उपदेश से

१. तंत्राः इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ० १७३
२. तंत्राः इटस् मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ० १७३-१७४
३. तंत्राभिलाषिर साधुसंग, भाग-१, पृ०-३९-४०
४. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पां० बुक संस्करण) पृ० २४२-४३
५. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण), पृ० १८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ नहीं बदलता है।[१] तंत्र मनुष्य की तथाकथित नैतिकता की, उसके सामाजिक रस्म-रिवाज़ आदि की चिन्ता नहीं करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि तंत्र मनुष्य को अनैतिक होने को कहता है। नहीं, तंत्र जब मनुष्य की नैतिकता की ही इतनी कम चिन्ता करता है तो वह उसे अनैतिक होने को नहीं कह सकता। तंत्र तो वैज्ञानिक विधि बताता है कि कैसे चित्त को बदला जाय। और एक बार चित्त दूसरा हुआ कि मनुष्य का चरित्र दूसरा हो जाएगा। इसी अतिनैतिक सुझाव के कारण तंत्र तथाकथित साधु-महात्माओं को बर्दाश्त नहीं हुआ। वे सब उसके विरोध में खड़े हो गए। अगर तंत्र सफल होता है तो धर्म के नाम पर चलने वाली सारी नासमझी समाप्त हो जायेगी। ईसाइयत वैज्ञानिक प्रगति के विरुद्ध जोर से लड़ती रही, क्योंकि उसने सोचा कि यदि भौतिक जगत् में वैज्ञानिक प्रगति आयी तो वह दिन दूर नहीं है, जब विज्ञान मनोवैज्ञानिक और धार्मिक जगत् में भी प्रवेश कर जाएगा, और मन सूक्ष्म पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। तंत्र की यही प्रस्तावना है कि मन सूक्ष्म पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और यह बदला जा सकता है। और मन बदला कि संसार बदल गया, क्योंकि मनुष्य मन के द्वारा ही देखता है। और जब मन अ-मन हो जाये-वह तंत्र का आत्यंतिक लक्ष्य है कि एक ऐसी अवस्था आये जहाँ मन हीं न रहे-तब संसार को बिना माध्यम के देखा जा सकता है। जब माध्यम नहीं रहा तब व्यक्ति सत्य के बिल्कुल आमने-सामने होता है। तब कुछ भी विरूप-विकृत नहीं किया जा सकेगा। तंत्र उस अवस्था का नाम 'भैरव' कहता है।[२]

वाममार्ग, अघोरपन्थ और नाथपन्थ का शाब्दिक सौन्दर्य

वाममार्गः-लोग तंत्र वाममार्ग, अघोर पन्थ, नाथपन्थ जैसे नामों से डरते हैं। ये सब तंत्र के ही नाम हैं। तंत्र का ही एक नाम वाममार्ग है। वाममार्ग का अर्थ होता है- बायें हाथ का रास्ता। व्यक्ति के पास दो हाथ हैं। ये दो हाथ बस दो हाथ ही नहीं हैं, इनके पीछे बड़े राज छिपे हैं। मस्तिष्क दो खण्डों में बँटा है। दायाँ मस्तिष्क जो कि बायें हाथ से जुड़ा है, काव्य का स्रोत है-अनुभूति का, भाव का, कला का, प्रज्ञा का, आनन्द, मस्ती, नृत्य, संगीत, उत्सव, कल्पना। जो भी मधुर है, जो भी स्त्रैण है, जो भी सुन्दर है, उस सब का जन्म दायें मस्तिष्क में होता है, उस दायें मस्तिष्क का प्रतीक है बायाँ हाथ।[३]

दायां हाथ जुड़ा है बायें मस्तिष्क से। बायें मस्तिष्क में पैदा होता है-तर्क, गणित, कर्मठता, कार्यकुशलता, चालाकी, राजनीति, कूटनीति, संसार, गद्य, विज्ञान, हिसाब-किताब, उपयोगिता, बाज़ार। इन सबका सम्बन्ध बायें मस्तिष्क से है। संसार सदा से दायें हाथ पर जोर देता रहा है, क्योंकि दायें हाथ में उपयोगिता है, हिसाब-किताब है, गणित है, तर्क है, बाज़ार है, दुकान है, व्यवहार है। बायाँ हाथ खतरनाक मालूम होता रहा है, सदा से खतरनाक मालूम होता रहा है। कवि का क्या भरोसा। गणितज्ञ का भरोसा किया जा सकता है। फिर विज्ञान का

---

१. वही, पृ०-१८
२. वही, पृ०-१९-२०
३. मरौ हे जोगी मरौ, पृ०-३५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपयोग है, नृत्य का क्या उपयोग है, नृत्य तो है स्वान्तः सुखाय। बायां हाथ स्वान्तः सुखाय का प्रतीक है। इसका कोई लक्ष्य नहीं है। यह तो इसी क्षण में आनन्द-मस्त, मुग्ध होकर जीने की कला है।[१] एक आध आदमी कवि हो जाये समाज में, हम बर्दाश्त करते हैं; लेकिन हम कवियों की जमात बर्दाश्त नही करेंगे क्योंकि कवि किसी काम का नहीं मालूम पड़ेगा। उसकी उपयोगिता क्या है?...... मगर जीवन उपयोगिता पर ही समाप्त नहीं होता। ......रोटी के बिना कविता नहीं हो सकती, यह सच है; मगर अगर कविता के बिना रोटी हो तो जीवन हुआ न हुआ बराबर है। ..... अगर जीवन में काव्य न जगा, गीत न उठा, वीणा, बांसुरी पर संगीत न खिला तो क्या सार है? स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा। जो स्वान्तः सुख से भरा है, वही उस परमप्रिय के भाव से भी भरता है। इसलिए बायां हाथ सदा से खतरे का सूचक रहा है। इसलिए जिनसे भी हम डरते हैं, उनको हम वाममार्गी कहते हैं।[२]

हिसाब-किताब ही सब कुछ नहीं है, हिसाब-किताब के बाहर भी एक जगत् है और वही जगत् तृप्तिदायी है, उसी जगत् में परितोष है। उसी जगत् में प्रकाश है। .... काम की उपयोगिता यही है कि व्यक्ति बेकाम क्षणों मे आनन्दित हो सके। काम की उपयोगिता यही है कि व्यक्ति निष्काम हो सके।[३] जिनके जीवन में विश्राम नहीं है, ध्यान नहीं है उनके जीत्रन में विक्षिप्तता आनी शुरू हो जाती है। वाममार्ग का अर्थ होता है- जीवन का लक्ष्य काम नहीं है, विश्राम है, जीवन का लक्ष्य धन नहीं है, ध्यान है। जीवन का लक्ष्य गणित नहीं है, काव्य है। जीवन का चरम शिखर विज्ञान से उपलब्ध नहीं होगा, धर्म से उपलब्ध होगा।[४]

प्रायः 'वाममार्ग' निन्दा का शब्द रहा है और अतीत में तो स्वभावतः कारण भी थे। पहले दुनिया दीन थी, दरिद्र थी, साधन नहीं थे। उन दीन-दरिद्रता के दिनों में अगर लोगों ने काम को बहुत बहुमूल्य बना दिया, बहुत कीमत दी, स्वाभाविक मालूम होता है। और जिन लोगों ने काम की जगह विश्राम को मूल्य दिया, उनसे अगर समाज ने विरोध किया तो कुछ आश्चर्य नहीं है। मगर पुरानी आदत अब भी ग्रन्थि की तरह बनी रह गयी है। अब भी हमारे भीतर भय है। फिर जो गणित, हिसाब-किताब वाला मन है, वह सदा से उन सारी चीज़ों का विरोधी रहा है, जिनसे व्यक्ति के भीतर सुख उत्पन्न होता है। वह स्वाद का विरोधी है, तो वह अस्वाद का व्रत सधवाता है, सौन्दर्य का विरोधी है तो वह कुरूपता को आध्यात्मिक बना लेता है।...... वाममार्ग ने इसके विपरीत सन्देश दिया है। वाममार्ग कहता है प्रेम प्रार्थना है और प्रेम परमात्मा है और वाममार्ग कहता है-कुछ भी छोड़ना नहीं है, क्योंकि जो भी परमात्मा ने दिया है उसकी उपयोगिता है। ..... वाममार्ग का अद्भुत सन्देश है कि "अगर तुम बुद्धिमान हो तो तुम जहर का ऐसा उपयोग करोगे कि वह औषधि हो जाये; अगर तुम बुद्धू हो तो तुम औषधि को भी जहर बना लोगे। .... भगोड़े कायर होते हैं, बुद्धिमान नहीं होते। वाममार्ग भगोड़ा नहीं है।"[५]

१. वही, पृ०-३५
२. वही, पृ०-३५-३६
३. वही, पृ० ३६
४. वही, पृ० ३७
५. मरौ हे जोगी मरौ, पृ०-३७-३८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाममार्ग है.......जीवन का सहज स्वीकार, उत्साहपूर्वक स्वीकार, स्वागतपूर्ण स्वीकार......। जीवन को उसकी समग्र विधा में जीने की क्षमता, साहस...। जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। अगर काँटे भी हैं तो फूल की रक्षा के लिए तप्तर हैं, इसलिए हैं। जीवन में जो भी है, सुन्दर है। और अगर किसी चीज़ का सौदर्य हमें दिखाई नहीं पड़ा है तो हमारी कहीं भूल-चूक हो रही है। परमात्मा असुन्दर बना कैसे सकता है? परमात्मा ही प्रगट हुआ है सारे रूपों में। काम में भी राम ही छिपा है। इतना साहस बहुत कम लोग जुटा पाते हैं। इतनी दृष्टि भी नहीं होती। इसलिए तंत्र, वाममार्ग, अघोरपन्थ, नाथपन्थ जैसे नामों से लोग डरने लगे, क्योंकि ये व्यक्ति के व्यवस्थित रूढ़ि को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। ये प्यारे नाम गालियाँ बन गये।[१]

अघोरपन्थ–अघोर का अर्थ होता है-सरल। किसी को 'घोरी' कहो तो गाली हो सकती है। घोर का अर्थ होता है जटिल .... खूब भयंकर युद्ध हुआ, तो उसको कहते हैं घोर-घमासान-जटिल, उलझा हुआ तो घोर....। अघोर का अर्थ होता है सरल, बच्चे जैसा निर्दोष। लेकिन लोग 'अघोरी' गाली देना चाहते हैं, तब कहते हैं।......अघोर तो सिर्फ थोड़े से बुद्धों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। गौतमबुद्ध-अघोरी, कृष्ण अघोरी, क्राइस्ट-अघोरी, लाओत्सु-अघोरी, गोरख-अघोरी। सरल, निर्दोष, सीधे सादे ...। इतने सरल कि गणित जीवन में है ही नहीं। हिसाब-किताब लगाने का भाव ही चला गया है। अघोरी का अर्थ होता है-सरल, सीधा-जिसके जीवन से हिसाब-किताब समाप्त ही हो गया। जो बच्चों की भाँति जीता है। यह तो परम अवस्था है-अघोर। मगर ये गालियां बन गयीं दुर्भाग्य से।[२]

नाथपन्थ–गोरखनाथ और उनके गुरू मच्छिंदरनाथ के कारण तंत्र की यह शाखा नाथपन्थ कहलाने लगी। नाथ का अर्थ होता है मालिक। जिसको सूफी कहते हैं- 'या मालिक'। सब उसका है, मालिक का है। हम भी मालिक के, संसार भी उसका है, सब उसका है। जैसी उसकी मर्ज़ी, वैसे जीयेंगे। जैसा जिलायेगा, वैसे जीयेंगे। हम अपने संकल्प को आरोपित न करेंगे। हम चेष्टा से न जीयेंगे। हम ऐसे बहेंगे जैसे कोई नदी की धार में बह जाये, हम तैरेंगे नहीं। यह भाव है। उस मालिक के रहते हम अपना संकल्प क्यों बीच में लायें ? हमारा संकल्प आया कि अहंकार आया, अहंकार आया कि हम भटके। तो हम तो बिना अहंकार के जीयेंगे, उसकी जैसी मर्ज़ी......। ऐसा जो हो जाये वह नाथपन्थी। ऐसे ही रहे गोरख।[३]

सत्य आता है मस्तिष्क के दायें हिस्से से, जो बायें हाथ से जुड़ा है। हिसाब-किताब आता है मस्तिष्क के बायें हिस्से से, जो दायें हाथ से जुड़ा है। हिसाब-किताब वाला आदमी कविता के प्रति कभी भी राजी नहीं होता। धन-दौलत को मूल्य समझने वाला व्यक्ति, ध्यान का मूल्य नहीं समझ पाता। और दुकान ही जिसके लिए सब कुछ है, वह मन्दिर का नहीं हो पाता।[४]

---

१. मरौ हे जोगी मरौ, पृ० ३९
२. वही, पृ० ३९-४०
३. वही, पृ०-४०
४. वही, पृ०-४३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(घ) तंत्र और दर्शन

तंत्र शब्द का अर्थ ही है–विधि, उपाय, मार्ग। यह कोई मीमांसा नहीं है। बौद्धिक समस्याओं और उनके ऊहापोह से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह चीज़ों के 'क्यों' की चिन्ता भर नहीं लेता, उनके 'कैसे' की चिन्ता लेता है; सत्य क्या है इसकी नहीं, वरन् इसकी कि सत्य को कैसे उपलब्ध हुआ जाये।[१]

तंत्र का अर्थ विधि है। अत: यह विज्ञान है। विज्ञान 'क्यों' की नहीं, 'कैसे' की फिक्र करता है। दर्शन और विज्ञान में यही बुनियादी भेद है। दर्शन पूछता है: यह अस्तित्त्व क्यों है? विज्ञान पूछता है: यह अस्तित्त्व कैसे है? जब 'कैसे' का प्रश्न पूछा जाता है तब उपाय, विधि महत्वपूर्ण हो जाती है, सिद्धान्त व्यर्थ हो जाते हैं; अनुभव केन्द्र बन जाता है। तंत्र विज्ञान है, दर्शन नहीं।[२]

तंत्र कोई धारणा या दृष्टिकोण नहीं है क्योंकि तंत्र जीवन को देखने की पूर्ण दृष्टि है। यह कोई दर्शन नहीं है, न ही कोई धर्म। यह शब्दों, सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता। यह जीवन को बिना किसी दर्शन, बिना किसी सिद्धान्त, बिना किसी धर्मशास्त्र के देखता है। जीवन जैसा है, यह उसे वैसा ही देखना चाहता है, बिना बीच में किसी मन, मस्तिष्क को लाए। क्योंकि मन तब प्रक्षेपित करेगा, तब मन कुछ मिलाएगा। तंत्र मन की अवहेलना करता है और वह जीवन का सीधा सामना करता है, बिना यह सोचे कि यह अच्छा है या बुरा। इसलिए यह कहना मुश्किल है कि तंत्र कोई धारणा है। वास्तव में यह अधारणा है।[३]

दर्शन को समझना आसान है; क्योंकि उसके लिए सिर्फ मस्तिष्क की जरूरत पडती है।[४] यदि कोई व्यक्ति भाषा जानता है, प्रत्यय समझता है तो वह दर्शन समझ सकता है। उसके लिए उसे बदलने की, संपरिवर्तित होने की कोई जरूरत नहीं है। किन्तु तंत्र को समझने के लिए आमूल बदलाहट की जरूरत होगी। कारण, तंत्र कोई बौद्धिक प्रस्तावना नहीं है, वह एक अनुभव है। जब तक कोई व्यक्ति अनुभव के प्रति संवदेनशील, तैयार, खुला हुआ नहीं होता, तब तक वह अनुभव उसके पास आने का नहीं है।

दर्शन की चिन्ता व्यक्ति के मन के साथ है। उसके लिए व्यक्ति का मस्तिष्क काफी है, उसको व्यक्ति की समग्रता नहीं चाहिए। किन्तु तंत्र व्यक्ति को उसकी समग्रता में मांगता है। यह बहुत गंहरी चुनौती है। इसमें व्यक्ति पूरे और इकट्ठे होकर ही उतर सकता है। तंत्र खण्डित नहीं है। उसकी अगवानी के लिए और ही तरह का रूझान, और ही तरह की आत्रा, और ही तरह के मन की जरूरत है।

तंत्र केवल दर्शन नहीं है, तंत्र परम अस्तित्त्वगत है। तंत्र को अस्तित्त्वगत कहने का तात्पर्य सार्त्र, कामू, मार्शल आदि के अस्तित्त्ववाद से नहीं है। वह अस्तित्त्ववाद पुन: एक दर्शन है,

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-५
२. वही.
३. तंत्रा: द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-९५
४. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राज संस्करण) पृ०-५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्तित्त्व का दर्शन। पश्चिम के अस्तित्त्ववादी दार्शनिकों का जोर केवल नकारात्मक पर है, परिताप, विषाद, उदासी, चिन्ता, निराशा, अर्थहीनता, निरूद्देश्यता-सभी नकारात्मक हैं। तंत्र ने जोर दिया है उस पर, जो सुन्दर है, उल्लासपूर्ण-आनन्दमय है। तंत्र का कथन है कि अस्तित्त्व एक कामोन्माद है, एक शाश्वत कामोन्माद, जो हमेशा जारी है।[१]

तंत्र बुद्धि-विलास नहीं है। यह पूर्णतया व्यावहारिक साधन है।[२] तंत्र के लिए करना ही जानना है, और कोई जानना नहीं है।[३] जब तक व्यक्ति कुछ करता नहीं, तब तक बदलता नहीं; जब तक बुद्धि के अतिरिक्त किसी अन्य ही आयाम में नहीं प्रवेश करता, तब तक कोई उत्तर नहीं है। इसलिए हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई या जैन से कुछ अन्तर नहीं पड़ता। इन मुखौटों के पीछे जो असली व्यक्ति है, वह वही रहता है। सिर्फ शब्दों का या वस्त्रों का भेद है। क्या मुस्लिम कामुकता हिन्दू कामुकता से भिन्न है? क्या ईसाई हिंसा और हिन्दू हिंसा में अन्तर है? वह एक ही है। सिर्फ वस्त्र भिन्न है। तंत्र को इन वस्त्रों से कुछ लेना-देना नहीं है। उसे सीधे व्यक्ति से लेना-देना है। एक अन्धा आदमी पूछता है प्रकाश क्या है? दर्शन बताना शुरू कर देगा कि प्रकाश क्या है। मगर तंत्र केवल यह निष्पत्ति निकालेगा कि प्रकाश के बारे में प्रश्न पूछने वाला महज आँख का अन्धा है, और तब तंत्र उस आदमी का उपचार शुरू करेगा, उसे बदलने का उपाय करेगा कि उसकी आँखें देख सकें। तंत्र यह नहीं बताएगा कि प्रकाश क्या है; तंत्र सिर्फ यह बताएगा कि व्यक्ति किस तरह आँख को, दृष्टि को, देखने को उपलब्ध हो सकता है, और दृष्टि की उपलब्धि के साथ ही उत्तर उपलब्ध हो जाएगा। इसलिए तंत्र समाधान नहीं देता है, समाधान को उपलब्ध होने की विधि देता है। यह समाधान बौद्धिक नहीं होगा, बल्कि अस्तित्त्वगत होगा।[४]

(ङ) तंत्र और धर्म

तंत्र धर्म नहीं, विज्ञान है, किसी विश्वास की जरूरत नहीं। विज्ञान कोई वर्ण या धर्म नहीं है। तंत्र हिन्दू कतई नही है। तान्त्रिक विधियां हिन्दुओं की ईजाद अवश्य हैं, लेकिन वे स्वयं हिन्दू नहीं हैं। प्रयोग करने का महासाहस पर्याप्त है और यही इसका सौन्दर्य है। तंत्र शुद्ध विज्ञान है। व्यक्ति हिन्दू हो सकता है, या मुसलमान या पारसी या कोई भी। तंत्र धर्म को ज़रा भी नहीं छूता है। तंत्र का कहना है कि धर्म सामाजिक मामला है। व्यक्ति किसी भी धर्म में रहे, यह अप्रासंगिक है। लेकिन व्यक्ति अपने को रूपान्तरित कर सकता है, और उस रूपान्तरण के लिए वैज्ञानिक प्रणाली जरूरी है। जब कोई बीमार पड़ता है तो बीमारी को हिन्दू-मुस्लिम या किसी भी राजनीतिक या सामाजिक विश्वास के साथ लेना-देना नहीं है। बीमारी का इलाज वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए।[५] व्यक्ति अज्ञान में है, द्वन्द्व में है, मूर्च्छा में है यह

---

१. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-२४४-२४५
२. तंत्रदर्शन, आमुख
३. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-६
४. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्कण) पृ०- ७
५. वही, पृ०-१७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक आध्यात्मिक रोग है। इसका इलाज तंत्र कर सकता है। इसमें व्यक्ति अप्रासंगिक है, उसके विश्वास अप्रासंगिक हैं। यह आकस्मिक है कि व्यक्ति कहीं पैदा हुआ है और कोई दूसरा कहीं और पैदा हुआ है। यह सांयोगिक है। व्यक्ति का धर्म भी सांयोगिक है। इसलिए व्यक्ति के रूपान्तरण के लिए तंत्र की वैज्ञानिक प्रणाली उपयोगी है।[१]

सामान्य अर्थ में तंत्र धर्म नहीं है। धर्म एक मन का खेल है, धर्म एक निश्चत ढंग देता है। ईसाई का एक निश्चित ढंग है, उसी तरह हिन्दू एवं मुस्लिम के निश्चित ढंग-शैली हैं। धर्म एक निश्चित शैली, एक निर्धारित अनुशासन देता है। तंत्र सभी अनुशासनों को दूर करता है, ले लेता है।[२] तंत्र स्वतन्त्रता है, मन की सभी रचनाओं से स्वतन्त्रता, मन के खेल से स्वतन्त्रता, दूसरों से स्वतन्त्रता। तंत्र 'होने' का एक स्थान है।[३]

तंत्र आध्यात्मिकता है, न कि धर्म।[४] तंत्र के लिए सब कुछ पवित्र है। तंत्र के लिए शैतान नही है, केवल दिव्य अस्तित्त्व है। धर्म शैतान के बिना जीवित नहीं रह सकते हैं। उन्हें ईश्वर की भी जरूरत है और शैतान की भी। वहाँ समग्र नहीं स्वीकृत है, सिर्फ अंश स्वीकृत है। धर्म व्यक्ति को उसकी समग्रता में नहीं, आंशिक रूप में, खण्ड में ही स्वीकारता है। धर्म कहता है कि हम आपके प्रेम को स्वीकारते हैं, घृणा को नहीं, इसलिए घृणा को मिटाओ। और यह एक बहुत गहरी समस्या है, क्योंकि जब घृणा को पूरी तरह मिटा दिया जाता है तब उसके साथ ही प्रेम भी मिट जाता है। क्योंकि घृणा और प्रेम दो नहीं हैं। धर्म सदा व्यक्ति को दो में, शुभ और अशुभ में बाँटते हैं। शुभ को वे स्वीकार करते हैं और अशुभ के विरोध में खड़े होते हैं।[५]

तंत्र व्यक्ति को उसकी समग्रता में पूरे का पूरा स्वीकार करता है। वह कहता है कि हम पूरे मनुष्य को स्वीकार करते हैं, क्योंकि मनुष्य एक जैविक एकता है। अगर मनुष्य जैविक एकता नही है, तो इस ब्रह्माण्ड में कुछ भी जैविक एकता नहीं है। मनुष्य जैविक सम्पूर्णता का शिखर है। सड़क पर पड़ा पत्थर वह एकता है। वृक्ष एकता है, फूल और पक्षी एकता है। सब एकता है तो मनुष्य क्यों नहीं? मनुष्य तो शिखर है, एक महाएकता है, एक जटिल जैविक सम्पूर्णता। इसलिए तंत्र किसी को भी अस्वीकृत नहीं करता। उसका मतलब यह नहीं है कि व्यक्ति को बदलने की जरूरत नहीं है। उसका यह मतलब भी नहीं है कि अब उसे विकास नहीं करना है। वरन् उसका अर्थ तो यह है कि तंत्र व्यक्ति के विकास के मूलाधार को स्वीकार कर रहा है।[६] तंत्र व्यक्ति की समस्त ऊर्जा को स्वीकार करता है। तंत्र किसी के छोड़े जाने के पक्ष में नहीं है, वह उसे रूपान्तरित करने के पक्ष में है।[७]

साधारण अर्थों में तंत्र धर्म नहीं है, क्योंकि इसमें न कर्मकाण्ड है, न पुरोहित। यह सत्य

---

१. वही, पृ०-१७
२. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-५
३. वही,
४. तंत्र : इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०१७८
५. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (वि०सं०रा०) पृ०-१५३
६. वही, पृ०-१५४-५५
७. वही, पृ०-१५६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की ओर व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। यह पूर्ण रूप से विद्रोही है।[१] तंत्र का दृष्टिकोण सीधे परमात्मा, सत्य के प्रति है। इसमें किसी मध्यस्थ, किसी पुरोहित की कोई जरूरत नहीं। तंत्र का कथन है कि जिस क्षण पुरोहित घुसता है, धर्म भ्रष्ट हो जाता है। धर्म को भ्रष्ट करने वाला कोई शैतान नहीं है, बल्कि पुरोहित ही है। पुरोहित शैतान की सेवा में है।[२] तंत्र किसी तरह के पुरोहितवाद की बात नहीं करता। जहाँ कहीं भी पुरोहितवाद नहीं है, धर्म वहाँ शुद्ध है। तंत्र कहता है कि यह केवल आपके और सत्य के बीच की बात है आपके और सत्य के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होना चाहिए। अपने हृदय को सत्य के प्रति खुला रखें और सत्य पर्याप्त है। किसी को इसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। वस्तुत: जितने आप व्याख्याओं से भरे होंगे, सत्य को जानने की सम्भावना और कमतर हो जायेगी।[३] इसलिए तान्त्रिक साधना में पुरोहित का कोई स्थान नहीं होता।[४]

तंत्र-दृष्टि मनुष्य के द्वारा खोजी गई एक महानतम दृष्टि है। यह बिना किसी पुरोहित का, बिना किसी मन्दिर-संगठन का धर्म है। यह ऐसा धर्म है जो व्यक्ति की निजता को नष्ट नहीं करता, बल्कि उसका सम्मान करता है, जो एक साधारण पुरूष और स्त्री में विश्वास करता है। यह विश्वास बहुत गहरा है। तंत्र का विश्वास शरीर में है, कोई दूसरा धर्म शरीर में विश्वास नहीं करता। और जब धर्म शरीर में विश्वास नहीं करता तो वह व्यक्ति और उसके शरीर में द्वन्द्व पैदा करता है। तब वे शरीर का दुश्मन होना सिखाते हैं और इस तरह शरीर की बुद्धिमता को नष्ट करते हैं।[५] इस प्रकार कहा जा सकता है कि तंत्र तथाकथित धर्म नहीं है।

(च) तंत्र और नैतिकता

तंत्र कोई नैतिक धारणा नहीं है। वह न नैतिक है, न अनैतिक; तंत्र अधिनैतिक है। तंत्र विज्ञान है और विज्ञान नैतिक-अनैतिक कुछ नहीं है। तंत्र आदर्शों की चिन्ता नहीं लेता है। तंत्र की बुनियादी चिन्ता यह है कि यथार्थ क्या है? व्यक्ति वास्तव में क्या है? नैतिकता आदर्शों की फिक्र करती है, उसे फिक्र है कि व्यक्ति को कैसा होना चाहिए, क्या होना चाहिए? इसलिए नैतिकता बुनियादी रूप से निन्दात्मक है। व्यक्ति कभी आदर्श नहीं हो सकता, इसलिए निन्दित हो जाता है। सब नैतिकता अपराध-भाव निर्मित करती है। व्यक्ति और आदर्श के बीच सदा खाई बनी रहेगी; क्योंकि आदर्श असम्भव है और नैतिकता उसे और भी असम्भव बना देती है। आदर्श सदा भविष्य में है और व्यक्ति यहाँ है। व्यक्ति सदा अपने यथार्थ की तुलना अपने आदर्श से करते रहता है। वह कभी पूर्ण मनुष्य नहीं है, सदा कुछ न कुछ कमी रह जाती है। तब वह अपने को अपराधी अनुभव करता है; आत्म-निन्दा अनुभव करता है।[६]

---

१. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०१८४
२. वही,
३. द तंत्रा एक्सपीरिन्स, पृ०१८३-८४
४. तंत्रा: इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१२४
५. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-१८५
६. तंत्र-सूत्र भाग-५ (पॉ० बु० सुं०) पृ०-३६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र आत्म निन्दा के विरोध में है; क्योंकि आत्म-निन्दा व्यक्ति को कभी रूपान्तरित नहीं कर सकती। निन्दा से सिर्फ पाखण्ड पैदा होता है। तब वह यह दिखाने की चेष्टा करता है कि मैं वह हूँ जो कि मैं वास्तव में नही हूँ। उससे व्यक्ति के भीतर टूट पैदा होती है, वह खंडित हो जाता है। तब वह एक झूठा चेहरा ओढ़ लेता है और उसके भीतर एक झूठा आदमी पैदा हो जाता है। तंत्र बुनियादी रूप से सच्चे आदमी की खोज है, झूठे की नहीं।[१] एक नैतिक आदमी कभी स्वाभाविक नहीं हो सकता। यदि वह क्रोध अनुभव करता है तो वह क्रोधित नहीं हो सकता क्योंकि नैतिकता इसकी अनुमति नहीं देती। जो कुछ वह करता है, हमेशा नैतिकता के अनुसार ही होता है, कभी उसके स्वभाव के अनुसार नहीं होता।[२]

जादू और विज्ञान में जो भेद है, वही भेद नीति और तंत्र में है। जादू यथार्थ को जाने बिना सिर्फ शब्दों के जरिए चीज़ों को बदलने की चेष्टा करता है। जादूगर कह सकता है कि अब वर्षा बन्द हो जाएगी। लेकिन वास्तव में वह वर्षा को रोक नहीं सकता। वह महज शब्दों का खेल है। कभी-कभी संयोग घट सकता है। अगर उसकी भविष्यवाणी के मुताबिक कोई चीज़ नहीं घटती है तो वह सदा यह कह सकता है कि कुछ भूल-चूक रह गई होगी। उसके धंधे में सदा इतनी रियायत छिपी रहती है। जादूगरी में सब कुछ 'अगर' से शुरू होता है। जादू अगर से शुरू करता है और वह 'अगर' बहुत बड़ा है। विज्ञान कभी अगर से नहीं शुरू करता। विज्ञान सबसे पहले यह जानने की चेष्टा करता है कि तथ्य क्या है, यथार्थ क्या है। यथार्थ को जाानकर ही उसे रूपान्तरित किया जा सकता है।[३]

नीति जादू जैसी है। वह पूर्ण मनुष्य की चर्चा किये जाती है और उसे यह नहीं मालूम कि मनुष्य क्या है, यथार्थ-मनुष्य क्या है। उसका पूर्ण मनुष्य स्वप्न बना रहता है; और वह उसका उपयोग यथार्थ मनुष्य की निन्दा करने के लिए करता है। मनुष्य उस लक्ष्य को कभी नहीं प्राप्त करता है।[४]

तंत्र विज्ञान है। तंत्र कहता है कि पहले जानो कि यथार्थ क्या है, मनुष्य क्या है। अभी ही मूल्य नहीं निर्मित करता है, अभी ही आदर्श नहीं खड़ा करता। पहले उसे जानना है, जो है। दसका विचार नहीं कि क्या होना चाहिए। और जब वह जान लिया जाए जो है, तो व्यक्ति उसे बदल सकता है।[५] तंत्र शास्त्र कहता है कि जीवन को जीते समय तत्काल के जो अनुभव हो रहे हैं, चाहे वे नकारात्मक ही क्यों न हों, उन्हें सोपानाधार के रूप में स्वीकार करना चाहिए। अगर जीवन में बुराई भी है, तो आगे बढ़ने के लिए उस बुराई का सहारा लेना चाहिए। जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नही है, जिसका सृष्टि में कोई महत्व नहीं हो, कोई स्थान या पहचान नहीं हो। अगर मनुष्य में तामसिकता प्रबल है, तो वही उसकी पहचान है, वहीं से उसे आगे

१. वही, पृ० ३७
२. तंत्राः द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिग, पृ०२१
३. तंत्र-सूत्र, भाग-५ (पां०बु०सु०)पृ०-४६-४७
४. वही, पृ०-४७
५. वही, पृ०-४७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बढ़ना है। अगर व्यक्ति भोगी है, तो उसी धरातल से ऊपर उठना है। चेतना के विस्तार से मनुष्य स्वयं को पहचानने लगता है, स्वयं की परिस्थिति को जानकर, समझकर वह ऊपर उठने का प्रयत्न कर सकता है।[१] यथा, तंत्र कहता है कामवासना का विरोध मत करो। अगर व्यक्ति काम-वासना के विरोध में जाए और ब्रह्मचर्य प्राप्त करने की चेष्टा करे, तो वह असम्भव की चेष्टा करेगा। वह जादूगरी है। काम-ऊर्जा को जाने बिना, काम की सरंचना को समझे बिना, उसके रहस्यों को जाने बिना व्यक्ति ब्रह्मचर्य का आदर्श निर्मित कर सकता है। लेकिन तब व्यक्ति सिर्फ दमन करेगा। लेकिन जो व्यक्ति काम-वासना का दमन करता है, वह उस व्यक्ति से ज्यादा कामुक है जो कामभोग में संलग्न है। भोग के द्वारा ऊर्जा रिहा हो जाती है, दमन के द्वारा वह व्यक्ति के भीतर चक्कर लगाती रहती है। जो व्यक्ति काम दमन करता है, उसे सर्वत्र कामुकता ही नजर आती है। उसके लिए सब कुछ कामुक हो जाता है। ऐसा नहीं है कि सब कुछ कामुक हैं, लेकिन वह सर्वत्र उसका प्रक्षेपण कर लेता है।[२]

ब्रह्मचर्य का मतलब इन्द्रिय-निग्रह नहीं है। यह (इन्द्रिय-निग्रह) मनुष्य के शरीर विज्ञान के जैविक सिद्वान्त के खिलाफ है। तंत्र इस तरह के असामान्य-असहज जीवन को प्रोत्साहित नहीं करता, जहाँ पतन के बीज छिपे हों।[३] हाँ, एक भिन्न गुण वाला ब्रह्मचर्य, एक अलग ढंग-ढांचे का ब्रह्मचर्य तंत्र के साधक को घटित होता है लेकिन उसकी पूरी प्रक्रिया उल्टी है। तंत्र पहले यह सिखाता है कि व्यक्ति पहले कामवासना में प्रवेश करे, उसे कैसे जाने, कैसे अनुभव करे उस शिखर को, उसमें छिपे सार-सौन्दर्य को उपलब्ध होए। अगर व्यक्ति उस रहस्य को जान ले तो वह उसका अतिक्रमण कर सकता है।[४] इसलिए तंत्र में पञ्चमकारों का स्वीकरण है। तंत्र का कथन है कि जिन बातों से सामान्यतया पतन होता है, उन्हीं बातों के द्वारा हम ऊपर उठते हैं।[५] इसलिए कहा है-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य दिखाई देने पर इस बुद्धि को संन्यस्त (विलयन) करने पर तत्त्व (सत्य) का ही अवशेष रह जाता है-

काम-क्रोध-लोभ-मोहमद-मात्सर्य-गोचरे ।
बुद्धिं निस्तिमितां कृत्वा तत्तत्वमवशिष्यते।।[६]

नैतिकता आवश्यक रूप से पाखण्ड पैदा करती है। पाखण्ड और नैतिकता में चोली-दामन का सम्बन्ध है। और जब तक दुनिया से नैतिकता नहीं जाती, तब तक पाखंड भी नहीं जा सकता है।[७] लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि तंत्र मनुष्य को अनैतिक होने को कहता है। नहीं। तंत्र जब मनुष्य की नैतिकता की ही इतनी कम चिन्ता करता है तो वह उसे अनैतिक होने को

---

१. तंत्र-दर्शन, पृ०-३
२. तंत्र-सूत्र, भाग-५ (पां. बु०सं०) पृ०-४८
३. तंत्राः इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१४१
४. तंत्र-सूत्र, भाग-५ (पां. बु०सं०) पृ०-४८-४९
५. कुलार्णव तंत्र, ५/४८
६. विज्ञान, भैरव, धारणा-७६
७. तंत्र-सूत्र, भाग-५ (पां. बु०सं०) पृ०-३७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं कह सकता। तंत्र तो वैज्ञानिक विधि बताता है कि कैसे चित्त को बदला जाए। और एक बार चित्त दूसरा हुआ कि मनुष्य का चरित्र दूसरा हो जाएगा।[१]

(छ) तंत्र और विज्ञान

तंत्र का अर्थ विधि है, अतः यह विज्ञान है।[२] किसी विश्वास की जरूरत नहीं। प्रयोग करने का महासाहस पर्याप्त है और यही इसका सौन्दर्य है। तंत्र शुद्ध विज्ञान है।.... जब कोई बीमार पड़ता है, तो बीमारी को हिन्दू-इस्लाम या किसी भी राजनीतिक या सामाजिक विश्वास के साथ लेना-देना नहीं है। बीमारी का इलाज वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए। व्यक्ति अज्ञान में है, द्वन्द्व में है, मूर्च्छा में है ...... यह एक आध्यात्मिक रोग है इसका इलाज तंत्र कर सकता है। इसमें व्यक्ति अप्रासंगिक है, उसके विश्वास अप्रासंगिक है।...इसलिए व्यक्ति के रूपान्तरण के लिए तंत्र की वैज्ञानिक प्रणाली उपयोगी है।[३]

तंत्र विज्ञान है, और वह परमाणु विज्ञान से भी ज्यादा गहन विज्ञान है। परमाणु विज्ञान पदार्थ से सम्बन्धित है, तंत्र व्यक्ति से सम्बन्धित है। और व्यक्ति सदा ही किसी भी परमाणु ऊर्जा से अधिक खतरनाक है। तंत्र व्यक्ति से, जीवित कोशिका से, स्वयं जीवन-चेतना से सम्बन्धित है। यही वज़ह है कि काम या सेक्स में तंत्र की इतनी गहरी रूचि है। जो व्यक्ति जीवन और चेतन में रूचि रखता है, वह अपने आप काम में दिलचस्पी लेगा, क्योंकि काम जीवन का स्रोत है, प्रेम का स्रोत है। चेतना के जगत् में जो भी घट रहा है, उसका आधार काम है।[४]

तंत्र अंतर्दृष्टि का विज्ञान है। यह एक ऐसा विज्ञान है, जो मन और प्रकृति के रहस्यों को खोलता है तथा मनुष्य को सत्य की अनुभूति तक ले जाता है।[५] तंत्र विज्ञान है एक अन्तर के साथ। विज्ञान विषयपरक होता है और तंत्र विषयीपरक, विज्ञान की खोज बाहर है और तंत्र की खोज भीतर। विज्ञान विषय को, विषयपरक संसार को-उस सत्य को जो व्यक्ति के आखों के सामने है-समझने की चेष्टा करता है। तंत्र उस सत्य का विज्ञान है जो व्यक्ति की आँखों के पीछे हे। लेकिन तंत्र की दृष्टि बिल्कुल वैज्ञानिक है; वह विचार में नहीं, प्रयोग और अनुभव में विश्वास करता है।[६] विज्ञान विश्लेषणात्मक एवं वस्तुनिष्ठ है, तंत्र अन्तर्बोधात्मक तथा आत्मनिष्ठ है। तंत्र रहस्यवाद एवं अर्न्तदृष्टि पर आधृत है।[७]

'परमतत्त्व', 'बिन्दु', 'नाद' और 'कला' की तान्त्रिक अवधारणा अतिवैज्ञानिक है।[८] तंत्र

१. तंत्र सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-१९
२. वही, पृ०-५
३. वही, पृ०-१६-१७
४. तंत्र, सूत्र, भाग-४ (पां०बु०सं०) भूमिका
५. तंत्रा: इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१५७
६. तंत्र सूत्र, भाग-४ (पां०बु०सं०) पृ०-२०२
७. तंत्रा: इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१६७
८. वही, पृ०-१५८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्य के सामाजिक एवं जैविक लक्ष्यों, यथा अर्थ, काम, धर्म की उपेक्षा नहीं करता। तंत्र का यह दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। यह विभिन्न समस्याओं का निश्चित समाधान आध्यात्मिक सत्य के साथ प्रयोग करके ढूंढता है। सत्य एवं तान्त्रिक साधना की प्रामाणिकता की जांच अन्तः प्रज्ञात्मक अनुभव में किया जाता है।[१]

तंत्र मानस शक्ति का विज्ञान है। यह जैविक शक्ति को चेतना में रूपान्तरित एवं उदात्तीकरण करने की प्रक्रिया है। जैविक ऊर्जा को कई ऊर्जाओं में रूपान्तरित किया जा सकता है।[२]

पिनियल (pineal) ग्रंथि का वैज्ञानिक अध्ययन मानव जीवन के शारीरिक एवं जैविक कार्यों पर नया प्रकाश डालता है। इस सन्दर्भ में डॉ० पी० के० केमल कहते हैं–"एक नया यौगिक 'मेलाटोनिन' पीनियल ग्रन्थि में पाया गया है, जिसका प्रभाव उभयचर जन्तुओं के त्वचा को विवर्ण या रंगविहीन करने पर पड़ता है। जैवरासायनिक रूप से यह यौगिक निष्क्रिय मिथोक्सॉलेट है, जिसे अपनी जैविक सक्रियता के लिए एक आक्सीजन के परमाणु के साथ मिथाइल समूह की आवश्यकता होती है। पीनियल ग्रन्थि में इस यौगिक को बनाने के लिए सभी जैवरासायनिक मशीनरी होती है। यह अग्रगामी अमीनो अम्ल से बनता है, जो रक्तधारा से प्राप्त होता है। जहाँ तक ज्ञात है कि इन्जाइमप्रणाली, जो कि इस यौगिक के निर्माण के लिए आवश्यक होता है, केवल पीनियल ग्रन्थि में ही पाया जाता है।"[३] तंत्र में जो हार्मोन पीनियल ग्रन्थि (सहस्रार) से स्रावित होता है, वह सुधा कहलाता है। तान्त्रिक योगी पीनियल सुधा का पान कराने के लिए कुण्डलिनी को जगाता है, जिससे उसे शाश्वत वरदान प्राप्त होता है।[४] कहा गया है कि सुन्दरी कुण्डलिनी परमशिव से स्रावित लाल परम अमृत को पीती है और वहाँ से लौटती है, जहाँ शाश्वत एवं लोकातीत परमानन्द अपनी पूर्ण गरिमा में प्रकाशित होता है एवं कुलमार्ग से लौटकर पुनः मूलाधार में प्रवेश करती है–

लाक्षाभं परमामृतं परशिवात्पीत्वा पुनः कुण्डली
नित्यानन्द-महोदयात्कुलपथान्मूले विशेत्सुन्दरी।
तद्दिव्यामृत-धारया स्थिरमतिः संतर्पयेद्दैवतं
योगी योगपरम्परा-विदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम्।।[५]

इस प्रकार स्पष्ट है कि तंत्र की प्रक्रिया, उसका दृष्टिकोण–सभी कुछ वैज्ञानिक है। हम कह सकते हैं कि तंत्र विज्ञान है।

---

१. वही, पृ०-१६०
२. वही, पृ०-१६१
३. द पिनियल ग्लैण्ड:इटस फंक्सन, 'कास्मिक सोसाइटी', voll, III No.7, New Delhi, July, 1967
४. तंत्रा : इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१६७
५. षटचक्र निरूपण, श्लोक-५३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निष्कर्ष

तंत्र न भोग है न दमन, वरन् जागरण है

तंत्र भोग नहीं है। पञ्चमकारों को देखकर ऐसा भ्रम हो सकता है कि तंत्र भोग की बात करता है। किन्तु वस्तुतः ऐसा है नहीं। तंत्र का कथन है कि जो बुरी तरह से (भोग में) आसक्त है, लिप्त है, वह कभी नहीं समझ सकता, क्योंकि वह एक आदत की पुनरावृत्ति करेगा; वह आदत को उसके जड़ों तक नहीं देखेगा, वह कारण की खोज नहीं करेगा। जितना वह लिप्त रहेगा, उतना ही वह यान्त्रिक होता जाएगा।[१] तंत्र व्यक्ति को उसके भोग में सहयोग देने के लिए नहीं है; वह व्यक्ति को रूपान्तरित करने के लिए है। इसलिए तंत्र ने कहा है कि संभोग मात्र से यदि मुक्ति मिलती हो तो सभी जन्तु संसार में स्त्री-निषेवण के कारण मुक्त हो जाते-

शक्ति-संभोग-मात्रेण, यदि मोक्षो भवेत् वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके, मुक्ताः स्युःस्त्री-निषेवणात्।।[२]

इसका अर्थ यह नही है कि तंत्र जगत् से पलायन या किसी तरह के दमन की बात करता है। दमन सदा खतरनाक है, जहर है। व्यक्ति जो भी दमित करता है, उससे वह सिर्फ आंतरिक जटिलताएँ ही निर्मित करता है। वे जटिलताएं जारी रहती हैं और उसे अंततः पागल बनाकर छोड़ेंगीं। दमन की अंतिम परिणति पागलपन है।[३] जिस आदमी ने काम का दमन किया है वह सदा प्रेम से भयभीत रहेगा, क्योंकि प्रेम के साथ कामवासना चली आती है। प्रेम आत्मा है और काम-वासना शरीर है। कामवासना सरलता से प्रेम में गति करती है, वह उसका सहज प्रवाह है।[४]

दमन का मनोविज्ञान

व्यक्ति दमन क्यों करता है- इसके समाधान के लिए मन एवं शरीर के आपसी सम्बन्धों पर दृष्टिपात करना जरूरी है। मन के साथ व्यक्ति मन ही है; शरीर के साथ वह उसका मालिक है। व्यक्ति शरीर के विरोध में जाता है; क्योंकि शरीर अहंकारहंता है। व्यक्ति जो भी तय करता है; वह उसे सुनता ही नहीं है। तपस्या की सारी मूढ़ता इसी से पैदा हुई; शरीर सुनता ही नहीं है। शरीर प्रकृति है; शरीर जागतिक समग्रता का एक अंश है। शरीर के अपने नियम हैं। वे नियम अचेतन हैं और शरीर उनके मुताबिक काम करता है। मन शरीर के ऊपर भी अपने नियम बनाने और थोपने की चेष्टा करता है। तब द्वन्द्व पैदा होता है। तब मन शरीर से लड़ने लगता है। तब मन शरीर को भूखा मारने लगता है; हर तरह से उसकी हत्या के उपाय करता है। अतीत में यही हुआ; तथाकथित धार्मिक लोग सचमुच पागल की तरह शरीर के

---

१. तान्त्रिक ट्रांसफारमेशन, पृ०-६३
२. कुलार्णव तंत्र, २/११९
३. तंत्र सूत्र, भाग-४ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-२७५
४. वही, भाग-४ (पां०बु०सं०) पृ०-४९-५०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पीछे पड़ गए। यथार्थतः ईश्वर की खोज शरीर-विरोध का पर्याय बन गई। धार्मिक लोगों ने यही रूख अपनाया कि शरीर को मारो, शरीर को नष्ट करो, शरीर शत्रु है। किन्तु यह तो धार्मिक दृष्टि न हुई, क्योंकि यह सर्वाधिक अहंकारभरी है। व्यक्ति कामवासना के विरूद्ध निर्णय लेता और कामवासना धर दबाती है। फिर वह नाराज़ होता है और शरीर को दण्ड देने की चेष्टा करता है। तपस्या दण्ड के सिवाय और क्या है? व्यक्ति शरीर को दंडित करता है ताकि वह उसके अहंकार के अनुकूल चलने को मजबूर हो।[१]

यह मन, यह सोच विचार की प्रकिया, यह अहंकार व्यक्ति के समूचे अस्तित्त्व का एक अंश भर है और यह अंश मालिक होने की, सर्वेसर्वा होने की कोशिश करता है। यह सम्भव नहीं है; अंश सर्वेसर्वा नहीं हो सकता है। उसका निष्फल होना अनिवार्य है। यही कारण है कि जीवन में इतनी निराशा है। सम्पूर्ण अंश से बहुत बड़ा है। इस कारण समूची मनुष्यता असफल सिद्ध हुई है। प्रत्येक व्यक्ति दुःख-द्वन्द्व में है, चिन्ता में है, संताप में है; प्रत्येक व्यक्ति भय से काँप रहा है क्योंकि असम्भव की चेष्टा चल रही है। लेकिन अहंकार सदा असम्भव की चेष्टा करता है। सम्भव उसके लिए चुनौती नहीं बन पाता, असम्भव चुनौती बन जाता है।[२]

इसलिए तंत्र अतिक्रमण है। यह न ता भोग है, न दमन। यह तनी हुई रस्सी पर चलता है, यह सभी सन्तुलनों में बड़ा सन्तुलन है; यह उतना आसान नहीं है, यह गहरी जागरूकता की माँग करता है।[३] तंत्र कहता है कि ज्ञान मुक्त करता है। यदि आप ठीक तरह से जानते हैं कि 'लोभ' क्या है तो आप लोभ से मुक्त हैं; तब उसकी पुनरावृत्ति की जरूरत नहीं है। पुनरावृत्ति की आवश्यकता तभी महसूस होती है जब आप 'लोभ' क्या है-इसे नहीं समझते।[४] तंत्र कहता है-'कामवासना' को समझो, उसका नियमन करने की चेष्टा मत करो। चेतना नियमन करने के लिए नहीं है। चेतना एक ही काम कर सकती है- वह समझ सकती है और समझ ही रूपान्तरण बनती है।[५]

ऊर्जा तटस्थ है। वही ऊर्जा क्रोध बनती है, वही ऊर्जा घृणा बनती है और वही ऊर्जा प्रेम बनती है, वही ऊर्जा करूणा बनती है। ऊर्जा तो एक है; क्रोध, घृणा, प्रेम उसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। और ऐसी कुछ आधारभूत स्थितियाँ हैं जिनमें ऊर्जा कोई विशेष वृत्ति का रूप ले लेती है।[६] अगर व्यक्ति मूर्च्छित है तो ऊर्जा क्रोध बन सकती है, काम बन सकती है, हिंसा बन सकती है। अगर व्यक्ति जागरूक है तो ऊर्जा यह सब नहीं बन सकती; होश, बोध, चैतन्य ऊर्जा को उन मार्गों में जाने नहीं देता है। तब ऊर्जा एक भिन्न धरातल पर गति करती है- वही ऊर्जा। इसलिए तंत्र की कीमिया कहती है कि लड़ना नहीं है, जो भी ऊर्जा मिली है उनके साथ

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पां०बु०सं०) पृ०-९-१०
२. वही, पृ०-१०-११
३. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-६२
४. वही, पृ०-६३
५. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पां०बु०सं०) पृ०५०
६. वही, (विशेष राजसंस्करण) पृ० २७३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैत्रीपूर्ण होना है। तंत्र के अनुसार काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु नहीं हैं। क्रोध बीजरूप में करूणा ही है। क्रोध की ऊर्जा ही करूणा बन जाती है। तंत्र कहता है कि होश रखो और क्रोध करो। तंत्र का यही गुह्य रहस्य है कि अगर व्यक्ति होशपूर्ण रहे तो क्रोध रूपानतरित हो जाता है, क्रोध करूणा बन जाता है। किन्तु दमन के कारण क्रोध तो नहीं रहेगा, लेकिन उसी कारण करूणा भी जाती रहेगी। वैसे ही काम के दमन में काम तो नहीं रहेगा, लेकिन उसके साथ ही प्रेम भी नहीं रहेगा। और तब सारा खेल ही खत्म हो जाएगा, क्योंकि प्रेम के बिना भगवत्ता कहाँ है ?[१] इसलिए कहा है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य दिखाई देने पर इस बुद्धि को सन्यस्त (विलयन) करने पर तत्त्व (सत्य) का ही अवशेष रह जाता है।[२] तीव्र भूख में इच्छित भोजन, तीव्र प्यास में इच्छित पेय से जिस रस और आनन्द का आविर्भाव होता है उसकी भावना करनी चाहिए। तब उसकी परिपूर्ण अवस्था में महाआनन्द की प्राप्ति होती है–

जग्धिपान कृतोल्लास रसानन्द विजृम्भणात्।
भावयेद् भरितावस्थां महानन्दस्ततो भवेत्।।[३]

अगर क्रोध है, कामवासना है, लोभ है तो तंत्र कहता है कि वे सब भी शुभ हैं। बस एक ही चीज की कमी है कि व्यक्ति अपने में केन्द्रित नहीं है और इस कारण उसका उपयोग नहीं पर पाता।[४] तूफान के भीतर एक केन्द्र होता है जो सदा शान्त रहता है। वैसे ही क्रोध के तूफान के केन्द्र पर, काम के तूफान के केन्द्र पर तूफान नहीं है। और तूफान शान्त केन्द्र के बिना नहीं हो सकता। कोई भी चीज़ अपने विपरीत तत्त्व के बिना नहीं हो सकती। अभिव्यक्ति और दमन सरल है, साक्षी कठिन है। तंत्र वासना के विरोध में नहीं है। वह कहता है वासना में होओ; लेकिन उस केन्द्र को स्मरण रखो जो शान्त है। जो भी हो रहा है, वह परिधि पर हो रहा है और व्यक्ति मात्र तमाशबीन रहे, दर्शक रहे।[५] क्रोध बुरा नहीं है। असली समस्या यह है कि व्यक्ति अपने भीतर नहीं है और यही कारण है कि क्रोध तबाही लाता है। अगर व्यक्ति अपने भीतर उपस्थित रहे तो क्रोध स्वस्थ ऊर्जा बन जाता है, स्वास्थ्य बन जाता है।[६]

अभिव्यक्ति और दमन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे विराधाभासी हैं, लेकिन बुनियादी रूप से भिन्न नहीं हैं। अभिव्यक्ति और दमन दोनों में दूसरा व्यक्ंति केन्द्र रहता है, दूसरा ही महत्वपूर्ण रहता है।[७] दमन में ऊर्जा के स्रोत की खोज नहीं होती, बल्कि व्यक्ति उस ऊर्जा के साथ संघर्ष करता है, जो उठी है और प्रकट होना चाहती है। व्यक्ति उसे सतत् दबाकर नहीं रख सकता, कहीं न कहीं से वह ऊर्जा फूट निकलेगी। इसलिए दमन यथार्थतः स्थगन है, टालना है। लेकिन उठी हुई ऊर्जा के साथ व्यक्ति उसके स्रोत तक पहुँच सकता है।

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-२९
२. विज्ञान भैरव, धारणा-७६
३. वही, धारणा-४८
४. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-१५२
५. वही, भाग-५ (पां०बु०सं०) पांचवा अध्याय
६. वही, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-१५२-१५३
७. वही, पृ०-३०३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बच्चा इतना क्यों निर्दोष है? इसलिए कि उसकी ऊर्जा अभी स्रोत पर है, वहाँ से अलग नहीं हुई है। वही घटना दूसरी बार घटती है, जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को प्राप्त होता है। तब उसकी सब ऊर्जा स्रोत में लौट आती है और वह व्यक्ति बच्चे की भाँति हो जाता है। जीसस का यही मतलब है, जब वे कहते हैं कि मेरे प्रभु के राज्य में वे ही प्रवेश कर सकेंगे जो बच्चों की भाँति होंगे।[१]

मनोविज्ञान कहता है कि दमन की बजाय अभिव्यक्ति बेहतर है, लेकिन धर्म या तंत्र ऐसा नहीं कह सकता। धर्म कहता है कि दमन और अभिव्यक्ति दोनों मूढ़ताएं हैं। ऊर्जा को अभिव्यक्ति देकर व्यक्ति दूसरे को हानि पहुँचाता है और अपने को भी। दमन करके वह अपनी हानि करता है और किसी दिन दूसरे की भी हानि करेगा। धर्म कहता है कि स्रोत की तरफ लौट चलो, जहाँ पहुँच कर ऊर्जा निराकार हो जाती है।[२] तंत्र न भोग है न दमन, वरन् जागरण है।

तान्त्रिक साहित्य का वर्गीकरण

सम्पूर्ण तान्त्रिक वाङ्मय के मूल स्रोत-रूप तीन देवता हैं- शिव, शक्ति और विष्णु। उन्हीं से तान्त्रिक वाङ्मय तीन भागों में विभक्त हुआ- शैव, शाक्त और वैष्णव। उत्तरोत्तर धीरे-धीरे इन तीनों के अनेक उपविभाग होते गए तथा उन सबके परस्पर सांकर्य से विपुल तंत्र-साहित्य का विकास हुआ। 'शक्ति-संगम तंत्र' में शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वैष्णव, महावीर, पाशुपत, वीर-वैष्णव, वीर-शैव, चान्द्र, स्वायम्भुव, ११ प्रकार के शाबर, ११ प्रकार के घोर, माया-कापालिक, वीर, बौद्ध, जैन, २०० प्रकार के चीन, १०० प्रकार के बौद्ध, १० प्रकार के पाशुपत और ८ प्रकार के कौल आगमों का उल्लेख किया गया है।[३]

तान्त्रिक वाङ्मय का भण्डार इतना विपुल है कि उसका वर्गीकरण करना स्वयं अपने में गवेषणा का विषय हो सकता है। तथापि सुविधानुसार उनका वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया जा सकता है-

(i) शैलीमूलक

(ii) उपास्यदेवभेदमूलक

(iii) क्षेत्रमूलक

(iv) सम्प्रदायमूलक

(v) आस्तिकता-नास्तिकता मूलक

(vi) बौद्ध तंत्र

---

१. वही, पृ०-३०६

२. वही, पृ०-३०७

३. शक्ति सङ्गम तंत्र, ताराखण्ड, १/२४-३२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(i) शैलीमूलक वर्गीकरण

तंत्र-साहित्य अनेक रूपों में मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप, आगम, डामर, यामल, अर्णव, उड्डीश, उड्डाल, सूत्र, आम्नाय, अर्णवक, कक्षपुटी, संहिता, कल्पका, अवतार आदि। इनमें अधिकांश लुप्त हो चुके हैं। अतः कुछ का ही विवरण देना सम्भव है। यथा–

(१) आगम–सृष्टि, प्रलय, षट्कर्म, उपासना, अर्चना, पुरश्चरण और ध्यानादि क्रियाओं, विधियों और सिद्धान्तों का वर्णन जिनमें किया गया है, वे हैं आगम ग्रन्थ।[१] तान्त्रिक वाङ्मय का सर्वप्राचीन साहित्य 'आगमों' के रूप में प्राप्त होता है। आगमों के वर्गीकरण के आधार-स्वरूप तीन प्रमुख देवता हैं- शिव, शक्ति और विष्णु। इन्हीं देवताओं से शैवागम, शाक्तागम और वैष्णवागम का आविर्भाव हुआ माना जाता है।

(क) शैवागम–जिस भगवान को तंत्र शास्त्र का प्रणेता माना जाता है, वे पंचानन शिव हैं। उन्हें पंचवक्त्र या पंचमुखी शंकर भी कहते हैं। इनके पांच मुखों से ही तंत्र विद्या का विस्तार हुआ है।[२] परमशिव के ईशान, तत्पुरूष, सद्योजात, वामदेव और अघोर- इन पाँच मुखों से उत्पन्न चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया-इन पांच शक्तियों की सहायता से १० भेद प्रधान, १८ भेदाभेद प्रधान और ६४ अभेद प्रधान दशायें उत्पन्न होती हैं। इन्हीं से १० शैवागम, १८ रुद्रागम और ६४ भैरवागम की उत्पत्ति बताई जाती है। भेद-दशा के अधिष्ठातृ देव शिव, भेदाभेददशा के रुद्र तथा अभेद दशा के भैरव हैं। शैवागम, रुद्रागम और भैरवागम का विवरण इस प्रकार है–

दस शैवागम

क्रम संख्या	आगमात्मक[३] ज्ञान	प्रथम[४] प्राप्तिकर्त्ता	द्वितीय[५] प्राप्तिकर्त्ता	तृतीय[६] प्राप्तिकर्त्ता	भेद[७]	परिमाण[८]
१.	कामिक	प्रणव	त्रिकल	हर	–	परार्द्ध-परिमाण
२.	योगज	सुधा	भस्मसंग	प्रभु	५	एक लाख
३.	चिन्त्य	दीप्ताख्य	गोपति	अम्बिका	६	एक लाख
४.	कारण	कारणाख्य	शर्व	प्रजापति	७	एक करोड़
५.	अजित	सुशिव	उमेश	अच्युत	४	एक लाख
६.	सुदीप्त	ईश	त्रिमूर्ति	हुताशन	९	एक लाख
७.	सूक्ष्म	सूक्ष्म	भव	प्रभञ्जन		एक लाख
८.	सहस्त्र	काल	भीम	मन	१०	–
९.	सुप्रभेद	गणेश	अविघ्नेश	शशी		तीन करोड़
१०.	अंशुमान्	अंशु	अग्र	रवि	१२	–

१. तंत्र-दर्शन, पृ०-५ २. तंत्र-दर्शन, पृ०-३
३-६ तान्त्रिक साहित्य, पृ०-१६ (भूमिका)
७-८ तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-५९-६०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्री कण्ठी संहिता की दी हुई सूची में सुप्रभेद का नाम नहीं है। उसकी जगह मुकुट या मुकुटागम का नाम है।[१]

अष्टादश रुद्रागम[२]

क्रम संख्या	आगम	प्रथम प्राप्तिकर्त्ता	द्वितीय प्राप्तिकर्त्ता
१.	विजय	अनादि	परमेश्वर
२.	परमेश्वर	श्रीरूप	उशना
३.	निःश्वास	दशार्ण	शैलसम्भवा
४.	प्रोद्गीत	शूली	कच
५.	मुखबिम्ब	प्रशान्त	दधीचि
६.	सिद्धमत	बिन्दु	चण्डेश्वर
७.	सन्तान	शिवनिष्ठ	हंसवाहन
८.	नारसिंह	सौम्य	नृसिंह
९.	चन्द्रहास	अनन्त	बृहस्पति
१०.	भद्र	सर्वात्मा	वीरभद्र
११.	स्वायंभुव	निधन	ब्रह्मा
१२.	विरज	तेज	प्रजापति
१३.	कौरव्य	ब्रह्मेश	नन्दिकेश्वर
१४.	माकुट	शिव	ध्वजाश्रय
१५.	किरण	देवपिता	संवर्तक
१६.	ललित	आलय	भैरव
१७.	आग्नेय	व्योम	हुतभुक्
१८.	?	शिव	×

श्री कण्ठी संहिता के अनुसार प्रोद्गीत, चन्द्रहास, भद्र, विरज, कौरव्य और माकुट के स्थान पर क्रमशः मद्गीत, चन्द्रांशु, वीरभद्र, विसर, रौरव और विमल प्रयुक्त हुआ है। अन्यत् मुखबिम्ब के स्थान पर चन्द्रज्ञान, नारसिंह के स्थान पर विसर आया है।

निःश्वासतन्त्रसंहिता[३] पञ्चसूत्रों में विभक्त है- लौकिक, धर्मसूत्र, मूलसूत्र, उत्तरसूत्र, नयसूत्र और गुह्यसूत्र।.......उत्तरसूत्र में १८ प्राचीन शिवसूत्रों का नाम है। वास्तव में ये सूत्र भिन्न -भिन्न आगमों के ही नाम हैं। ये सब आगम शिवतंत्र के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके नाम हैं-विजय, माकुट, ललित, निःश्वास, विरस, सिद्ध, स्वायम्भुव, चन्द्रहास, सन्तान, वाथुल, ज्ञान सर्वोद्रगीत, वीरभद्र, मुखबिम्ब, किरण, रौरव, प्रोद्गीत और पारमेश्वर।

१. वही, पृ०-६० पर वर्णित
२. तान्त्रिक साहित्य, भूमिका, पृ०-१६-१७
३. तान्त्रिक साहित्य, भूमिका, पृ०-१८ पर उद्धृत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मयामल[1] में भी १८ आगमों के नाम हैं- यथा, विरज, निःश्वास, स्वायंभुव, वाथुल, वीरभद्र, रौरव, मुकुट, वीरेश, चन्द्रज्ञान, प्रोद्गीत, ललित, सिद्धसन्तान, सर्वोद्गीत, किरण और पारमेश्वर।

चौंसठ भैरवागम

६४ आगमों या ६४ तंत्रों के नाम भी शास्त्रों में यत्र-तत्र मिलते हैं। श्रीकण्ठीसंहिता, श्रीशंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी, सर्वोल्लासतंत्र और लक्ष्मीधर सम्मत वामकेश्वर तंत्र में ६४ तंत्रों का वर्णन है। इन ६४ तंत्रों की सूची इस प्रकार है -

(अ) श्रीकण्ठीसंहिता के अनुसार[2]–

१-८ भैरवतंत्र-स्वच्छन्दतंत्र, भैरव, चण्ड, क्रोध, उन्मत्तभैरव, असिताङ्गभैरव, महोच्छुष्म, कपालीश

९-१६ यामलतंत्र-ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, स्वच्छन्दयामल, रुद्रयामल, अथर्वण, रुद्र, वेताल

१७-२४ मततंत्र- रक्त, लम्पट, रश्मिमत, मत, चालिका, पिङ्गला, उत्फुल्ल, विश्वाद्य

२५-३२ मङ्गलतंत्र-पिचुभैरवी, तंत्रभैरवी, तत, ब्राह्मीकला, विजया, चन्द्रा, मंगला, सर्वमंगला

३३-४० चक्राष्टक-मन्त्रचक्र, वर्णचक्र, शक्तिचक्र, कलाचक्र, बिन्दुचक्र, नादचक्र, गुह्यचक्र, खचक्र

४१-४८ बहुरूपतंत्र- अन्धक, रूरूभेद, अज, मूल, वर्णमण्ट, विडङ्ग, मात्रादान, ज्वालिन

४९-५६ वागीश- भैरवी, चित्रिका, हंसा, कदम्बिका, हल्लेखा, चन्द्रलेखा, विद्युल्लेखा, विद्युमत

५७-६४ शिखातंत्र-भैरवी, वीणा, वीणामणि, संमोह, डामर, अथर्वक, कबन्ध, शिरश्छेद

(आ) लक्ष्मीधरसम्मत वामकेश्वर तंत्रानुसार[3]–

१-४ महामाया, शम्बर, योगिनीजालशम्बर, तत्त्वशम्बर

५-१२ भैरवाष्टक-सिद्धभैरव, वटुकभैरव, कंकालभैरव, कालाग्निभैरव, योगिनीभैरव, महाभैरव, शक्तिभैरव

१३-२० बहुरूपाष्टक-ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, शिवदूती, २१-६४ यामलाष्टक

चन्द्रज्ञान, मालिनीविद्या, महासंमोहन, वामजुष्ट, महादेवतंत्र, वातुल, वातुलोत्तर, कामिक,

---

१. वही, पृ०-१८ पर उद्धृत
२. वही, भूमिका, पृ०-१९
३. वही, पृ०-२०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदभेद, तंत्रभेद, गुह्यतंत्र, कलावाद, कलासार, कुण्डिकामत, मतोत्तरमत, वीणारव्य, त्रोतल, त्रोतलोत्तर, पञ्चामृत, रूपभेद, भूतोड्डामर, कुलसार, कुलोड्डीश, कुलचूडामणि, सर्वज्ञानोत्तर, महाकालीमत, अरूणेश, मोदिनीश, विकुण्ठेश्वर, पूर्वपक्ष, पश्चिमपक्ष, उत्तरपक्ष, निरूत्तर, विमत, विमलोत्थ और देवीमत।

(ख) शक्तागम–शक्ति तत्त्व की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता ऋग्वेद के देवी, रात्रि तथा सरस्वती सूक्त से सिद्ध होती है। यजुर्वेद में शिवा को कल्याणरूपा कहा गया है।[१]

जिन तंत्रों को इस मत में समाविष्ट किया गया है, उनका वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। सौन्दर्यलहरी में ६४ तंत्रों का उल्लेख हुआ है,[२] जिनकी टीका करते हुए लक्ष्मीधर ने वामकेश्वर तंत्र से ६४ तंत्रों की सूची प्रस्तुत की है।[३] सौन्दर्यलहरी की एक गौर्जर टीका में भी ६४ तंत्रों की सूची प्राप्त होती है, जो किञ्चित् पाठ–भेद से लक्ष्मीधर सम्मत सूची के समान है।[४] सर्वानन्दनाथ ने भी 'तोडलोत्तर तंत्र' के अनुसार ६४ तंत्रों की सूची प्रस्तुत की है।[५] भास्कररायसम्मत तथा तोडलोत्तर तंत्रानुसार सर्वानन्दनाथ सम्मत शाक्तागमों के नामों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(अ) भास्करसम्मत[६]–

१–६ महामाया, शम्बर, योगिनी, जालशम्बर, तत्त्वशम्बर, भैरवाष्टक,

७–१४ बहुरूपाष्टक- ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वारही, माहेन्द्री, चामुण्डा, शिवदूती,

१५–२२ यामलाष्टक- ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, जयद्रथयामल

२३–६४ चन्द्रज्ञान, वासुकि, महासंमोहन, महोच्छ्ष्म, वातुल, वातुलोत्तर, हद्भेद, तन्त्रभेद, गुह्यतंत्र, कामिक, कलावाद, कलासार, कुब्जिकामत, तन्त्रोत्तर, चीनाख्य, त्रोतल, त्रोतलोत्तर, पञ्चामृत, रूपभेद, भूतोड्डामर, कुलसार, कुलोडडीश, कुलचूड़ामणि, सर्वज्ञानोत्तर, महाकालीमत, महालक्ष्मीमत, सिद्धयोगेश्वरीमत, कुरूपिकामत, रूपिकामत, सर्ववीरमत, विमलामत, पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय, वैशेषिक तंत्र, ज्ञानार्णव, वीरावली, अरूणेश, मोहिनीश, विशुद्धेश्वर।

(आ) सर्वोल्लास तंत्र में उद्धृत तोडलोत्तर तंत्रानुसार[७]–

अक्षया, उड्डीश, उत्तर, उत्तम, ऊर्ध्वाम्नाय, काली, कुमारी, कुलार्णव, कालिकाकुलर्सवस्व,

---

१. शक्ति तत्त्व, पृ०–२१
२. सौन्दर्यलहरी, श्लोक–३१
३. वही, ३१(लक्ष्मी धारा, पृ०–१३७)
४. परशुरामकल्पसूत्र (द्वितीय परिशिष्ट) पृ०–३३३ पर उद्धृत
५. स्र्वोल्लास तंत्र, २/६
६. तान्त्रिक साहित्य, पृ०–२०–२१(भूमिका)
७. वही, भूमिका, पृ०–२१–२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालिकाकल्प, कुक्कुट, कामधेनु, कालीविलास, कामाख्या, कुब्जिका, कुलचूडामणि, गुप्तसाधन, गणेश, गन्धर्व, गौतमीय, चिदम्बरनट, चिन्तामणि, ज्ञानार्णव, ज्ञानदीप, तोडल, तारा, तन्त्रमुक्तावली, त्रिपुरासार, निर्वाण, नील, निरूत्तर, नारायणी, नित्या, फेत्त्कारिणी, बृहत्श्रीक्रम, भैरव, भूततन्त्र, भैरवीतंत्र, भावचूड़ामणि, मुण्डमाला, मालिनी, महामाया, माया, मातृका, मातृभेद, योगिनीविजय, योनि, योगिनीहृदय, योगिनी, लिङ्गार्चन, लतार्चन, वाराही, वरदा, विज्ञापन, वीरभद्र, विश्वसार, वीर, वामकेश्वर, शिवसार, सनत्कुमार, स्वंतत्र, समय, हंस, ?

सभी शाक्त तंत्रों में शक्ति की प्रधानता है। यही शक्ति शिव से उत्पन्न होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि के लिए विजृम्भण करती है। इसलिए तात्त्विक दृष्टि से शैव और शाक्ततंत्र बहुत भिन्न नहीं हैं।[१]

(ग) वैष्णवागम—इन आगमों के अधिष्ठातृ देव विष्णु माने जाते हैं। वैष्णवागम को वैखानस और पाञ्चरात्र-इन दो भेदों में विभाजित किया जाता है।[२] वैरवानस आगम विखानस ऋषि द्वारा प्रवर्तित माना जाता है। इस आगम का प्रारम्भिक साहित्य वैरवानस-सूत्र है, जिसका मूल वेद की वैरवानस शाखा है।[३] वैखानस सूत्रों के आधार पर जिन चार महर्षियों ने आगमों की रचना की, उनके नाम हैं-काश्यप, अत्रि, भृगु और मरीचि। इन्हीं से वैखानस आगम का विकास माना जाता है।

पाञ्चरात्र आगमों की मूलभूत श्रुति का नाम एकायन श्रुति या एकायन वेद है। इसे शुक्ल यजुर्वेद के अन्तर्गत माना जाता है।[४] पाञ्चरात्र के अनुयायियों को भागवत, सात्वत, एकान्तिन तथा परमैकान्तिन भी कहते हैं।[५] पाञ्चरात्र शास्त्र को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जाता है- दिव्य, मुनिभाषित और मानव। दिव्यशास्त्र के अन्तर्गत सात्वतसंहिता, जयाख्यसंहिता तथा पौष्करसंहिता आती हैं। मुनिभाषित संहिताओं में ईश्वरसंहिता, पारमेश्वरसंहिता, भारद्वाजसंहिता, अत्रिसंहिता, परिगणित हैं। पाञ्चरात्र-साहित्य का एक और प्रकार से विभाजन प्राप्त होता है-आगम, मन्त्र, तंत्र और तन्त्रान्तर।

वैखानस और पाञ्चरात्र से भिन्न सात और भागवतसंहिताओ का उल्लेख मिलता है- अष्टाक्षर, तन्त्रभागवत, शिवोक्त, विष्णुभाषित, पद्मोद्भव, पुराण और वाराह।[६]

विष्णुतंत्र के अन्तर्गत नव तंत्रों का उल्लेख मिलता है- पाद्मतंत्र, विष्णुतंत्र, कपिञ्जलसंहिता, ब्रह्मसंहिता, मार्कण्डेयसंहिता, श्रीधरसंहिता, परमतंत्र, भारद्वाजसंहिता, और नारायणतंत्र। इसी प्रकार पाद्मतंत्र के अन्तर्गत छः तंत्रों को श्रेष्ठ बताया गया है- पाद्मतंत्र, सनत्कुमारसंहिता, परमसंहिता, पद्मोभवसंहिता, महेन्द्रतंत्र तथा कण्ठसंहिता।[७]

---

१. शिवयोगप्रदीपिका, १/२
२. लक्ष्मीतंत्रः धर्म और दर्शन, पृ०१४
३. वही, पृ०-१५ ४. वही, पृ०-२३
५. पाद्मसंहिता, ४/२/८८ (रुद्रयामल उ०त०धर्म और दर्शन, पृ०-२७ पर वर्णित)
६. हयशीर्षपाञ्चारात्र, २/७-९
७. रुद्रयामल उ० त०:धर्म और दर्शन, पृ०-२७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) डामर

डामर का अर्थ है उत्तेजित होना। इसके अतंर्गत छ: प्रकार के तंत्रों का उल्लेख मिलता है- योगतंत्र, शिवतत्त्वतंत्र, दुर्गातंत्र, सारस्वततंत्र, ब्रह्मातंत्र और गान्धर्वतंत्र। इनकी पद्धतियों का सम्बन्ध नाद, मन्त्र, क्रिया तथा सामाजिक और व्यक्तिगत साधना के नियमों से रहता है, जिन्हें हम यम और नियम के नाम से जानते हैं।[१]

(३) आम्नाय

कुलार्णवतंत्र के अनुसार सभी शास्त्रों का आदि होने के कारण, मनोल्लास के प्रवर्द्धन के कारण तथा यज्ञादि धर्म का हेतु होने के कारण, इसे 'आम्नाय' कहा जाता है।[२]

आम्नाय पाँच माने जाते हैं-पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वाम्नाय।[३] शक्तिसङ्गमतंत्र के अनुसार 'षडाम्नाय' की ही मान्यता है-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और पाताल या अध:।[४] शक्तिसङ्गम तंत्र (छिन्नमस्ताखण्ड) के पञ्चम तथा षष्ठ पटल में उक्त आम्नाय के अन्तर्गत विभिन्न शक्तियों की चर्चा हुई है। 'निर्वाणतंत्र' के अनुसार शिव के पश्चिम मुख-सद्योजात से पश्चिमाम्नाय, उत्तरमुख-वामदेव से उत्तराम्नाय, दक्षिणमुख-अघोर से दक्षिणाम्यनाय, पूर्वमुख-तत्पुरूष से पूर्वाम्नाय और और मध्यमुख-ईशान से ऊर्ध्वाम्नाय का आविर्भाव हुआ है।[५] छठे अधराम्नाय का आविर्भाव कालाग्नि रुद्रमुख से हुआ बताया जाता है।[६] पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय पशुभाव के लिए, पश्चिमाम्नाय पशु तथा वीरभाव के लिये, उत्तराम्नाय दिव्य तथा वीरभाव के लिये तथा ऊर्ध्वाम्नाय दिव्यभाव के साधक के लिये उपयोगी होता है।[७]

उपरोक्त पाँच आम्नायों में २८ आगमों का अन्तर्भाव किया जाता है[८]-

पश्चिमाम्नाय-कामिक, योग, चिन्त्य, कारण और अजित।

उत्तराम्नाय-दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमान् और सुप्रभेद।

दक्षिणाम्नाय-विजय, नि:श्वास, स्वायम्भुव, पर और वीर।

पूर्वाम्नाय-रौरव, मुकुट, विमल, चन्द्रज्ञान और बिम्ब।

ऊर्ध्वाम्नाय-प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोक्त, पारमेश्वर, किरण और वातुल।

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-५
२. कुलार्णव तंत्र, १७/४८
३. वही, ३/७
४. शक्ति संगम तंत्र, सुन्दरी खण्ड, ३/१८२/८७, वही, छिन्नमस्ता खण्ड, ५/५८
५. तंत्रकल्पतरू, पृ०-६८पर सन्दर्भित (रुद्रयामल उ०त०:धर्म और दर्शन, पृ०-२८ पर वर्णित)
६. साधना और आम्नाय, पृ०-४८, (वही, पृ०-२८ पर वर्णित)
७. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-२८
८. वही, पृ०-२९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(क) पश्चिमाम्नाय–सम्मोहनतंत्र के सातवें पटल में 'तान्त्रिक-साधन' पर चर्चा की गई है, जिनमें मुख्य हैं–वटुकमत, महामूर्तिमत, आम्नाय वर्ग, दीक्षाम्नाय और दर्शनपर्याय।[१]

इसके अन्तर्गत वटुकमत, की विद्यायें इस प्रकार हैं–कुब्जिका, संकर्षिणी, क्रिया संकर्षिणी, कालसंकर्षिणी, महाविद्या, शूलिनी और माधवी। महामूर्तिमत के अन्तर्गत विद्याओं के नाम इस प्रकार हैं–राजमातंगिनी, लघुवाराही, शूतिरस्कारिणी, स्वप्नवाराही, पादुका, वाराहीपादुका, जम्बुकिक्किका, शूका, वागशी, शुकतुण्डा, मोहिनी, कीरादिनी, क्षेमङ्करी। आम्नायवर्ग की दृष्टि से इसमें ९६ उपतंत्र हैं। दीक्षाम्नाय के अन्तर्गत इसमें वगला, महिषन्धा, महालक्ष्मी विद्याओं के साथ ८ तंत्र और ९ उपतंत्र समाविष्ट किए गयें हैं। एतदतिरिक्त इसमें महासरस्वती, वाग्वादिनी, प्रत्यङ्‌गिरा तथा भवानी आदि विद्याओं का भी उल्लेख किया गया है। दर्शनपर्याय के अन्तर्गत इसमें समान संख्या वाले वैष्णवतंत्र और उपतंत्रों का समावेश किया गया है।

(ख) उत्तराम्नाय–इस आम्नाय मुं वटुकमत के अन्तर्गत चण्ड योगेश्वरी, चामुंडा, रत्नविद्या और योगविद्या को स्वीकारा जाता है। महामूर्ति सम्मत विद्याएं हैं–सुमूर्ति और पादुका, वार्तालिपादुका (वातालिपादुका), श्रीमहातिमिरावती, कालमाया और चामुण्डा। आम्नायवर्ग के अन्तर्गत इसमें २५ तंत्र और ३६४ उपतंत्रों को स्वीकार किया जाता है। दीक्षाम्नाय की दृष्टि से इसमें २० तंत्र और ८ उपतंत्रों के साथ कालिका, तारा-मातङ्गिनी, भैरवी छिन्नमस्ता और धूमावती विद्यायें उल्लिखित हैं। दर्शनपर्याय की दृष्टि से गाणपत्यमत के ७० तंत्र और उपतंत्र हैं।

(ग) दक्षिणाम्नाय–वटुकमत की विद्याएं इस प्रकार हैं–माया, मायावती, रमा, धनदा, शबरी, दुर्गा और रेणुका। महामूर्तिमत सम्मत विद्याएं है–वाग्वादिनी, चाण्डाली, सुसुखी, मातङ्गिनी और माहेश्वरी। आम्नायवर्ग के अन्तर्गत ४०० तंत्र तथा ३७५ उपतंत्र हैं। दीक्षाम्नाय के २० तंत्र, ३ उपतंत्र तथा २२ प्रकार की पराविद्या दक्षिणाम्नाय के अन्तर्गत स्वीकारा जाता है। दर्शनपर्याय के ५० शैवतंत्र तथा ५ उपतंत्र इसके अन्तर्गत हैं।

(घ) पूर्वाम्नाय–इसमें वटुकमत सम्मत विद्याएं हैं–गायत्री, ऐन्द्री, ब्रह्मविद्या, गन्धर्व, महागणपति, अर्द्धनारीश्वरी, मृत्युञ्जय, श्रुतिधरी, मातृका, सरस्वती, चण्डयोगेश्वरी, शाम्भवी, श्री परापरा, कामराजेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, चैतन्यभैरवी, अघोरभैरवी, त्रिपुरनिकृन्तभैरवी, अन्नपूर्णा, कुक्कुटा, शिवा और भोगवती। महामूर्तिमत के अन्तर्गत आनेवाली विद्याएं हैं–लोपा, अगस्त्य, मनु, मनु (द्वितीय), अगस्त्यविद्या (द्वितीय), चन्द्र, अगस्त्यविद्या (तृतीय), नन्दीश्वर, सूर्य, विष्णु और दुर्वासा। पूर्वाम्नाय में ६४ तंत्र तथा ६७० उपतंत्रों को स्वीकार किया है। दीक्षाम्नाय के अंतर्गत पूर्वाम्नाय में लमयाविद्या, श्रीविद्या, बालत्रिपुरा, अन्नपूर्णा आदि विद्याओं के साथ १० तंत्र और ५ उपतंत्र का संकेत किया गया है। दर्शन पर्याय के अन्तर्गत पूर्वाम्नाय में १० शाक्ततंत्र और ८ उपतंत्र का विवेचन किया गया है।

(ङ) ऊर्ध्वाम्नाय–इसमें वटुकमत की विद्याएं हैं–साम्राज्यसुन्दरी, राजराजेश्वरी और

---

१. स्टडीज इन द तंत्राज, भाग-१, पृ०-१००-१०१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महासाम्राजयविद्या। महामूर्तिमत सम्मत विद्याएं हैं-षोड्शी, श्रीपराविद्या, चरणरूपिणी और छः शाम्भव विद्या। आम्नायवर्ग के ६४ तंत्र और ८५ उपतंत्र ऊर्ध्वाम्नाय के अन्तर्गत आते हैं। दर्शन पर्याय के १२ सौरतंत्र तथा १० उपतंत्र ऊर्ध्वाम्नाय के अन्तर्गत परिगणित होते हैं।

(च) पातालाम्नाय–इसमें वटुकमत सम्मत विद्याएं हैं-यक्षिणी, किन्नरी, सिद्धि, पूतना, कवचा तथा कूष्माण्डिनी। आम्नायवर्ग के १०५ तंत्र तथा ७०० उपतंत्र इसमें परिगणित हैं। दीक्षाम्नाय की नागशक्ति के साथ इसमें ९ तंत्र तथा २ उपतंत्र अन्तर्भूत हैं। दर्शनपर्याय के १०० बौद्ध तंत्र तथा ६३ उपतंत्र इसमें समावेशित हैं। ये सभी आम्नाय मोक्ष-प्राप्ति के साधन हैं।

(४) यामल–जहाँ सामान्य और विशेष की समान स्थिति है, सूर्य, सोम आदि इच्छात्मक पदार्थों की अविनाभाव से स्थिति है, वहीं यामलतंत्र का स्वरूप परिलक्षित होता है, वहीं तत्त्व परिलक्षित होता है।[१] तान्त्रिक परम्परा में वेदों की उत्पत्ति यामल से ही मानी जाती है –'यामलाद् वेदः संजातः'।[२]

भैरवागम के अन्तर्गत यामलाष्टक में 'ब्रहा, विष्णु, शक्ति, रुद्र, आथर्वण, रूरू, वेताल और स्वछन्द'–इन आठ यामलों की गणना की गई है। 'ब्रह्मयामल' (नेपाल दरबार लाइब्ररी में उपलब्ध) की एक पाण्डुलिपि में 'रुद्र, स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु, यम, वायु, कुवेर तथा इन्द्र'–इन यामलों का उल्लेख किया गया है, जिनके वक्ता क्रमशः स्वच्छन्द, क्रोध, उन्मत्त, उग्र, कपाली झंकार, शेखर तथा विजय हैं।[३] विद्यानन्द ने यामलाष्टक के अन्तर्गत 'ब्रह्मयामल', विष्णुयामल, रुद्रयामल, जयद्रथयामल, स्कन्दयामल, उमायामल, लक्ष्मीयामल और गणेशयामल, को स्वीकार किया है।[४] 'विद्यापीठ' में रुद्रयामल, स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु, यम, वायु, कुबेर और इन्द्रयामल' का उल्लेख हुआ है। 'श्रीकण्ठीसंहिता' में ब्रह्म, विष्णु, स्वच्छन्द, रूरू, आथर्वण, रुद्र तथा वेताल' आदि सात यामलों का वर्णन किया गया है। 'जयद्रथयामल' में ब्रह्म, रुद्र, स्कन्द, गौतमी, रूरू तथा हरि'–इन छः यामलों का निर्देश किया गया है।[५] 'सम्मोहन तंत्र' में दो शैवयामल, एक वैष्णव यामल, दो और यामल तथा एक चन्द्र यामल का उल्लेख है। 'आगमतत्त्वविलास' में 'ब्रह्म, आदि, रुद्र, बृहद् तथा सिद्ध यामल का उल्लेख मिलता है।[६]

म० म० गोपीनाथ कविराज ने अपने ग्रन्थ 'तान्त्रिक साहित्य' में अनेक यामल ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया है, जिनमें से कुछ तो प्रकाशित हैं, कुछ की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं तथा कुछ का विभिन्न ग्रन्थों में नामोल्लेख मात्र हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है–

अघोरयामल तंत्र (लिखित), आदित्ययामल (तंत्रसार तथा पुरश्चर्यार्णव में उल्लिखित),

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-२८
२. सर्वोल्लास तंत्र, १/२१
३. तंत्र कल्पतरू, पृ०-६६। (रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३० पर वर्णित)
४. नित्यषोडशिकार्णव तंत्र, १/१५ की अर्थ रत्नावली टीका, पृ०-४३
५. स्टडीज इन दि तंत्राज, भाग १, पृ० १११
६. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३०-३१ पर सन्दर्भित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्रयामल तंत्र (तारा-भक्ति-सुधार्णव में उल्लिखित), उमायामल (लिखित), कालीयामल (कुल-पूजन-चन्द्रिका में उल्लिखित), कृष्णयामल (लिखित), गणेशयामल (लिखित), गौरीयामल (तारा-भक्ति सुधार्णव तथा पुरचर्श्यार्णव में उल्लिखित), ग्रहयामल (लिखित, चन्द्रयामल (ताराभक्तिसुधार्णव में उल्लिखित), जयद्रथयामल (लिखित), पंचयामल (कुलप्रदीप में उल्लिखित), बिन्दुयामल (लिखित), बृहद् रुद्रयामल (लिखित), ब्रह्मयामल (लिखित), ब्रह्माण्डयामल (लिखित), भैरवयामल (लिखित), रुद्रयामल (लिखित), रुद्रयामल उत्तरषट्क (लिखित), लक्ष्मीयामल (लिखित), विष्णुयामल (लिखित), वीरतंत्रयामल (प्राणेताषिणी तथा विज्ञान भैरव में उल्लिखित), वीरभद्रयामल (लिखित), वीरयामल (विज्ञान भैरव की शिवोपाध्याय कृत टीका में उल्लिखित), संकेतयामल (लिखित), सिद्ध (सिद्धि), यामल (लिखित), स्कनदयामल (प्राणतोषिणी में उल्लिखित), स्वच्छयामल तंत्र (योगिनी हृदय में उल्लिखित), हंसयामल (लिखित)।

सम्भव है और भी यामल ग्रन्थ हों। एम. कृष्णमाचारी ने तंजौर पैलेस लाइब्रेरी में उपलब्ध ३२ यामल ग्रन्थों का संकेत किया है।[१]

यामल-साहित्य की इस सुदीर्घ शृंखला में 'रुद्रयामल' की विशिष्टता सर्वोपरि है। यह 'उत्तरतंत्र' अर्थात् सर्वतंत्रों से उत्तरकाल में कथित है अथवा 'उत्तरकाण्ड' के रूप में कहा गया है। रुद्रयामल के अनुसार विष्णुयामल और ब्रह्मयामल के पश्चात् उपदिष्ट होने से भी रुद्रयामल को उत्तरतंत्र कहा गया है।

(ii) उपास्यदेव-भेदमूलक वर्गीकरण

यहाँ पर यह वर्गीकरण विशेषकर दशमहाविद्याओं से सम्बद्ध है। दश महाविद्याओं का सम्बन्ध सती, शिवा और पार्वती से बहुधा वर्णित है। महाभारत में-दक्षप्रजापति के द्वारा अपने यथ में शिव को आमन्त्रित नहीं करना और पितृगृह में होनेवाले उत्सव में दक्ष की पुत्री भगवती सती का जाने के लिए आग्रह तथा उसी के सन्दर्भ में सती का वहाँ जाने से रोकने के कारण क्रुद्ध होकर उग्ररूप धारण करने से भयभीत शिव के पलायन को दसों दिशाओं द्वारा रोकना वर्णित है। सती के वे स्वरूप ही दश महाविद्याएं है। इनका परिचय भी वहीं (८/६५-७१) स्वयं भगवती ने स्वमुख से कह दिया है।[२]

दश महाविद्याओं के नाम हैं-काली, तारा, श्रीविद्या (षोडशी), भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, वगला, मातङ्गी और कमला। ये शक्तियाँ उच्च चेतना की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ हैं, इसलिए कहा गया है कि एक को समझकर ही दूसरे में प्रवेश करना होता है। दर्शनों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जीवन में जैसे-जैसे साधक चेतना की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता है, वैसे-वैसे चेतना और आन्तरिक अभिव्यक्तियों के साथ

---

१. हिस्टरी ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ०-७८
२. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-१६९ पर सन्दर्भित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक सम्बन्ध स्थापित होता है।[१] महाविद्याओं का स्वरूप वस्तुतः एक ही आद्या शक्ति के विभिन्न स्वरूपों का विस्तार है। दस महाविद्याओं का अंकगणित वेदशास्त्र के दस के अंक की प्रधानता की ओर ही संकेत करता है। यजुर्वेद में[२]-तेभ्योदशप्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो दीचीर्दशोर्ध्वा'-मन्त्र इसकी सूचना देते हैं। अंक कुल ९ हैं और दसवां उसकी पूर्णता का सूचक '०' (शून्य) है, जो पूर्ण से पूर्ण और पुनः पूर्ण होने का आध्यात्मिक सन्देश देता है।[३]

मानव-स्वभाव तथा कर्म, कामना, स्वरूप, वैभव आदि के आधार पर ही एक ही वस्तु अनेक रूपों में ग्राह्य बनती है। यहाँ भी साधकों की रूचि-विचित्रता से विविधता आई है, यह स्पष्ट है और हमारी विविधता में जो एकरूपता निहित है, वही यहाँ भी नित्य स्थिर है, इसी दृष्टि से उपासना करनी चाहिए।[४]

दशमहाविद्यानुसार तान्त्रिक साहित्य का विवरण इस प्रकार है[५]-

(१) काली-इससे सम्बद्ध लगभग ३० तंत्र ग्रन्थ हैं। इनमें प्रमुख है-'महाकाल-संहिता'। 'महाकालसंहिता' के दो खण्ड हैं-कामकला खण्ड और गुह्यकाली खण्ड। कामकला का तात्पर्य यौन सम्बन्धी विचारों या कार्यों से नहीं, इस बात से है कि साधक अपने भीतर की क़ामना, इच्छा और आसक्ति के बीज को देखे, समझे, निराकरण करे और शुद्ध बने। गुह्यकाली खण्ड में कलीतत्त्व के मूल रूप को पहचानने की कोशिश की शिक्षा दी गई है। अन्य ग्रथ हैं-

कालज्ञान, कालीकुल-क्रमार्चन (विमलबोधकृत), भद्रकालीचिन्तामणि, व्योमकेश-संहिता, कालीयामल, कालीकल्प, कालीसपर्या-क्रमकल्पवल्ली, श्यामारहस्य (पूर्णानन्दकृत), कालीविलासतंत्र, कालीकुलसर्वस्व, कालीतंत्र, कालीपरा, कालिकार्णव, विश्वसारतंत्र, कामेश्वरीतंत्र, कुलचूडामणि, कौलावली, कालीकुल, कुलमूलावतार, श्यामासर्पया (काशीनाथ भट्टार्चाकृत), शक्तिसङ्गमतंत्र का कालीखण्ड, कालिकार्चामुकुर, कालीकुलामृत, कुलमुक्ति-कल्लोलिनी, कर्पूरस्तव (स्तोत्र), कालीभूजङ्गप्रयात (स्तोत्र)।

(२) तारा-तारा से सम्बन्धित लगभग २६ ग्रन्थ शास्त्र और संहिताये हैं। प्रमुख हैं-तारातंत्र (तारिणीतंत्र), तारासूक्त, तोडलतंत्र, तारार्णव, नीलतंत्र, महानीलतंत्र, नीलसरस्वतीतंत्र, चीनचार तन्त्ररत्न, ताराशाबरतंत्र, तारोपनिषत्, एकजटीतंत्र, एकजटाकल्प, ब्रह्मयामलस्थ, महाचीनाचारक्रम, एकवीरतंत्र, तारिणीनिर्णय आदि।

प्रकरण ग्रन्थ-ताराप्रदीप, तराभक्तिसुधार्णव, तारारहस्य, ताराभक्तितरङ्गिणी, ताराकल्पलतापद्धति, तारिणीपारिजात, महोग्रताराकल्प आदि।

---

१. तंत्र-दर्शन, पृ०-७२
२. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-१७० पर सन्दर्भित
३. वही, पृ०-१७०
४. वही.
५. तान्त्रिक साहित्य, भूमिका , पृ०-२३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तोत्र–ताराकर्पूरस्तोत्र, तारासहस्रनाम आदि।

(३) श्रीविद्या (षोडशी)–इस साधना से सम्बन्धित लगभग ४० तंत्र ग्रन्थ हैं। इसमें मुख्यतः तीन विद्याएं हैं–सादि, कादि और हादि। सादि विद्या में शुद्ध तंत्र मार्ग की चर्चा है और कादि व हादि विद्या में मिश्रित (वैदिक विचारधारा भी समाविष्ट) तंत्र की।[१] श्रीविद्या से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं–

त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद्, त्रिपुरातापिनी उपनिषद्, तंत्रराज, मातृकार्णव, योगिनीहृदय, त्रिपुरार्णव, परमानन्द या परानन्दतंत्र, वामकेश्वरतंत्र, ज्ञानार्णव, श्रीक्रमसंहिता, बृहत्–श्रीक्रमसंहिता, दक्षिणामूर्तिसंहिता, स्वच्छन्दतंत्र, कालोत्तरवासना, श्रीपराक्रम, ललितार्चनचन्द्रिका, सौभाग्यतंत्रोत्तर, सौभाग्यरत्नाकर, सौभाग्यसुभगोदय, शक्तिसङ्गम सुन्दरी खण्ड, त्रिपुरारहस्य–ज्ञानखण्ड और माहात्म्यखण्ड, श्रीक्रमोत्तम, सुभगार्चापारिजात, सुभगाचरित्न, आज्ञावतार, संकेतपादुका, चन्द्रपीठ, सुन्दरीमहोदय, हृदयामृत, नित्योत्सवनिबन्ध, लक्ष्मीतंत्र, ललितोपाख्यान, त्रिपुरासारसमुच्चय, श्रीतत्त्वचिन्तामणि, शाक्तक्रम, विरूपाक्षपञ्चाशिका, कामकलाविलास, सौभाग्यचन्द्रोदय, वरिवस्यारहस्य, वरिवस्याप्रकाश, शाम्भवानन्दकल्पलता, त्रिपुरासार, संकेतपद्धति, सौभाग्यसुधोदय, परापूजाक्रम, गौडपादाचार्यविरचित–सुभगोदयस्तुति एंव श्रीविद्यारत्नसूत्र।

(४) भुवनेश्वरी–इससे सम्बन्धित चार मुख्य ग्रथ हैं–भुवनेश्वरीरहस्य, भुवनेश्वरी–स्तोत्र, भुवनेश्वरीतंत्र और भुवनेश्वरीपारिजात।

(५) भैरवी–भैरवीतंत्र, भैरवीरहस्य, भैरवीसपर्याविधि, भैरवीयामल आदि।

(६) छिन्नमस्ता–छिन्नमस्ता से सम्बन्धित शक्तिसङ्गम तंत्र, छिन्नमस्ताहृदय और छिन्नमस्ताखण्ड मुख्य ग्रन्थ हैं। छिन्नमस्ता का विस्तृत उल्लेख शक्तिसङ्गम तंत्र में मिलता है।

(७) धूमावती तंत्र–धूमावती से सम्बन्धित ग्रन्थ–'धूमावती तंत्र' और 'प्राणतोषिणी तंत्र' हैं। धूमावतीतंत्र में देवी के रूप और सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। प्राणतोषिणी तंत्र में उपासना और साधना का उल्लेख किया गया है।

(८) वगला या वगलामुखी–देवी वगलामुखी से सम्बन्धित संखायन या शाङ्खायनतंत्र, वगलामुखी, शाक्तप्रमोदतंत्र, संमोहनतंत्र, गवलाक्रमकल्पवल्ली आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं।

(९) मातङ्गी–मातङ्गी देवी से सम्बन्धित चार तंत्र ग्रन्थ हैं–मातंगीतंत्र, मातंगहृदय, शाक्तप्रमोद और मातङ्गीसहस्रनाम। शाक्तप्रमोद में अन्य विषयों के साथ–साथ मातङ्गीदेवी की भी चर्चा की गई है।[२] म० म० गोपीनाथ कविराज ने तान्त्रिक साहित्य में इस देवी से सम्बन्धित 'मातङ्गीक्रम', 'मातङ्गीपद्धति' और 'सुमुखी पूजापद्धति' ग्रन्थ की चर्चा की है।

---

१. तंत्र-दर्शन, पृ०-९४
२. तंत्र-दर्शन, पृ०-१२५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१०) कमला-कमला महाविद्या से सम्बन्धित १२ तंत्र ग्रन्थों में केवल तीन प्रमुख हैं- तंत्रसार, शारदातिलक और कमलात्मिका तंत्र।

(iii) क्षेत्र मूलक वर्गीकरण

बंगाल, बिहार, असम, महाराष्ट्र और गुजरात आदि प्रांतों में तंत्र बड़े व्यापक रूप में प्रचलित था। कहावत है कि बंगाल में तंत्र की उत्पत्ति होती है, मिथिला में उसको परिष्कृत किया जाता है, महाराष्ट्र में उसका अभ्यास किया जाता है और गुजरात में वह समाप्त हो जाता है-

गौड़े प्रचारिता विद्या, मैथिले प्रबलीकृता।
क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे, गुर्जरे प्रलयंगता।।[१]

इस सम्बन्ध में एक और तथ्य भी विचारणीय है-अधिकांश शक्तिपीठ, बंगाल, असम और बिहार में ही हैं। असम और बंगाल गौड़ क्षेत्र में आते हैं। महाराष्ट्र और गुजरात में भी अनेक शक्तिपीठ हैं। शक्तिपीठों के ये मुख्य स्थान हैं। इससे मालूम पड़ता है कि तंत्र का प्रचलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक था। अन्य स्थानों में विकसित होने के बाद तंत्र कश्मीर में पहुँचा।[२]

महासिद्धिसारतंत्र[३] में तंत्रों को भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकृत किया गया है, जिनके नाम हैं, विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता और अश्वक्रान्ता। भारतवर्ष का पूर्वोत्तर भाग विष्णुक्रान्ता के अन्तर्गत माना जाता है। पश्चिमोत्तर भाग रथक्रान्ता के अन्तर्गत तथा शेष व दक्षिणी भाग अश्वक्रान्ता के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। विष्णुक्रान्ता का क्षेत्र-विस्तार विन्ध्य से चत्तल या चित्तगोंग तक माना जाता है। रथक्रान्ता का क्षेत्र विन्ध्य से तिब्बत और चीन तक स्वीकारा जाता है एवं अश्वक्रान्ता का क्षेत्र विन्ध्य से दक्षिणी समुद्र पर्यनत है। यह क्षेत्र करतोया नदी से जावा तक माना जा सकता है।[४] प्रत्यके वर्ग में तंत्रों की संख्या ६४ बताई गई है।[५]

(क) रथक्रान्ता के अनुसार

आकाश-भैरव, आचारचार, इन्द्रजाल, उड्डामरेश्वर, एकजटा, कंकालमालिनी, कृकलासदीपिका, करालभैरव, कैवल्य, कुलसद्‌भाव, कृत्तिसार, कालभैरव, कालोत्तम, गरूड, चिन्मय, चीनाचार, छायानील, ज्ञानभैरव, देवडामर, दक्षिणामूर्ति, नवरत्नेश्वर, नागार्जुन, नारदीय, पुरश्चरणचंद्रिका पुरश्चरणरसोल्लास, पञ्चदशी, पिच्छिला, प्रपञ्चसार, परमेश्वर, बृहद्‌गौतमीय, बालाविलास, बृहद्‌योनि, ब्रह्मजाल, बीजचिन्तामणि, भूतभैरव, भूतडामर, मत्स्यसूक्त, महिषमर्दिनी, मातृकोय, महानील, मेरू, महानिर्वाण, महाकाल, महालक्ष्मी, यक्षिणी, योगस्वरोदय,

१. वही, पृ०-६ पर उद्‌धृत
२. वही, पृ०-७
३. तान्त्रिक साहित्य (भूमिका) पृ०-२१-२२
४. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-१६६
५. तान्त्रिक साहित्य (भूमिका) पृ०-२१-२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगसार, यक्षडामर, राजराजेश्वरी, रेवती, वर्णोद्धति, वर्णविलास, वासुदेवरहस्य, शक्तिकागमसर्वस्व, शक्तिसंगम, शारदा, षोढा, षडाम्नाय, स्वरोदय, सरस्वती, सारस, संमोहन, सिद्धितद्धरि (?) हंसमाहेश्वर।

(ख) विष्णुक्रान्ता के अनुसार

उत्तर, काली, कुलार्णव, कुलप्रकाश, क्रियासार, कुब्जिका, कालीविलास, कुलोड्डीश, कुलामृत, कुमारी, कामधेनु, कामाख्य, कुलचूड़ामणि, गणेशविमर्शिनी, गवाक्ष, गन्धर्व, चामुण्डा, ज्ञानार्णव, तन्त्रराज, तन्त्रान्तर, देव्यागम, देवी (?), देवप्रकाश, नवरत्नेश्वर, निबन्ध, नित्या, नील, निरूतर, फेत्कारी, ब्रह्मयामल, बृहत्श्रीक्रम, भावचूडामणि, भूतडामर, भैरव, भैरवी, मत्स्यसूक्त, मुण्डमाला, मालिनी, महाकाल, मालिनीविजय, मायातंत्र, यामल, यंत्रचिन्तामणि, योगिनीहृदय, योगिनीतंत्र, योनि, राधातंत्र, रुद्रयामल, ललितातंत्र, विश्वसार, वाराही, विशुद्धेश्वर, श्रीक्रम, शिवागम, सुकुमुदिनी, सिद्धेश्वर, सिद्धसार, सिद्धसारस्वत, सिद्धियामल, सनत्कुमार, समयाचार, संमोहन, स्वतन्त्र, हंसमहेश्वर।

(ग) अश्वक्रान्ता के अनुसार

उड्डामरेश्वर, क्रियासार, काल, कामिनी, कामुकेश्वर, कामरत्न, कुरञ्ज, गायत्री, गुर्वर्चन, गौप्य, गोपी, गौरी, गुप्त, गुप्तसार, गुप्तदीक्षा, गोपलीलामृत, चूडामणि, चीनरत्न, जयराधामाधवतंत्र, तत्त्वचिन्तामणि, तत्त्वसार, तीक्ष्ण, धूमावती, वृहत्सार, बृहत्चीन, वृहत्तोडल, वृहन्निर्वाण, बृहत्कङ्कालिनी, बृहद्योगिनी, बिन्दुतंत्र, बृहन्मोक्ष, बृहन्मालिनी बिन्दु, ब्रह्माण्ड, भूतलिपि, भूतशुद्धि, भूतेश्वरी, भेरूण्डा, भुवनेश्वरी, महावीर, मन्त्रचिन्तामणि, महानिरूत्तर, मोहन, मोहिनी, म़द्गुली, माया, महामालिनी, मोक्ष, महामाया, महायोगिनी, योगार्णव, यंत्रचूड़ा (?) योगतंत्र, लीलावती, विशुद्धेश्वर, विद्युल्लता, वर्णसार, शिवार्चन, शबर, शूलिनी, शिवतंत्र, सिद्धतंत्र, सारात्सार, समीरण।

सम्मोहनतंत्र में क्षेत्र भेद से प्रचलित तंत्रों की संख्या दी गई है।[१] इसके अनुसार चीन में १०० मूलतंत्र और ३७ उपतंत्र हैं, द्रविड़ में २० मूलतंत्र और २५ उपतंत्र हैं, केरल में ६० मूलतंत्र और ५०० उपतंत्र हैं, कश्मीर में १०० मूलतंत्र और १० उपतंत्र हैं तथा गौड़ में २७ मूलतंत्र और १६ उपतंत्र हैं।

(iv) सम्प्रदायमूलक वर्गीकरण

उपासना के क्रमिक विकास में प्रमुख रूप से शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति आदि देवों की पूजा का प्रचलन हुआ। दन देवों से सम्बद्ध विभिन्न सम्प्रदायों का जन्म हुआ। जैसे-शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य आदि। पुनः इसके कई उपभेद हुए। शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत कश्मीर शिवाद्वैत, वीरशैव, सिद्धान्तशैव, कापालिक, कालानन, कालामुख, पाशुपत, सोमसिद्धान्त, सिद्धकौल, क्रम, त्रिक, स्पनद, मिश्र आदि मतों का विकास हुआ। इसी तरह

१. तान्त्रिक साहित्य (भूमिका) पृ०-२४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत कौल, मिश्र और समय मत को स्वीकारा जाता है।[१] क्षेत्र की दृष्टि से शाक्तमत केरल, कश्मीर, गौड तथा विलास इन चार भागों में विभक्त हैं। वैष्णव तंत्र से सम्बन्धित दो प्रमुख प्राचीन सिद्धान्त वैखानस और पाञ्चरात्र स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। वैखानस सिद्धान्त के विकास सम्भवतः ई०पू० तीसरी शताब्दी में प्रारम्भ हुआ और सातवीं सदी तक भारतीय समाज में प्रचलित रहा।[२] पाञ्चरात्रर सम्प्रदाय को पाँच भागों में बाँटा जाता है–एकान्तिन, भागवत्, नारायणीय, सात्वत् और वैखानस।[३] विभिन्न सम्प्रदायों के अनुसार तान्त्रिक साहित्य का विवरण निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) शैव सम्प्रदाय–शैव सिद्धान्त से सम्बद्ध २८ आगम तथा बहुत से उपागम बताए जाते हैं। शैवागम के विभिन्न वर्गीकरण पर चर्चा विस्तार से इसी अध्याय के प्रारम्भ में की जा चुकी है। यहाँ पर हम सम्मोहन तंत्र[४] के अनुसार विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बद्ध तंत्रों की सूची प्रस्तुत कर रहे हैं। शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित तान्त्रिक साहित्य की संख्या निम्न प्रकार है–३२ तंत्र, ३२५ उपतंत्र, १० संहिता, ५ अर्णव, २ यामल, ३ डामर, २ उड्डाल, ८ कल्प, ८ उपसंख्या, २ चूडामणि, २ विमर्शिनी, ५ अवतारणक, ५ सूक्त, २ चिन्तामणि, ९ पुराण, ३ उपसंज्ञा, २ कक्षपुटि, ३ कलपदुम, २ कामधेुन, ३ सभाव और ५ तत्त्व।

(२) शाक्तसम्प्रदाय–शक्त्युपासना की प्राचीनता वेदों की प्राचीनता के समान समझनी चाहिए।[५] शाक्तमत में शिवतत्त्व को प्राप्त करने के लिए ही शक्ति को प्रधान माना गया है। शक्ति के जागरण तथा शक्ति के अनुग्रह से ही साधक शिव–अनुग्रह को प्राप्त करने में सक्षम हो सकता है। इसीलिए शक्ति तत्त्व को प्रधानता दी गई है।[६] सर्वप्रथम शाक्तमत को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है– कौल, मिश्र और समय। संमोहन तंत्र के अनुसार शाक्त वर्ग में ६४ तंत्र, ३२७ उपतंत्र, ८ यामल, ४ डामर, २ कल्पलता, १०० अर्णव, बहुत सी संहितायें, चूडामणि, पुराण, उपवेद, कक्षपुटि, विमर्शिनी, चिन्तामणि आदि ग्रन्थ आते हैं।[७] शाक्तमत के विभिन्न वर्गों के अनुसार तान्त्रिक वाङ्मय का विवरण इस प्रकार है–

(क) कौल मत–कुल् धातु से निर्मित कौल शब्द का अर्थ है–शक्ति ......कुल–पद्धति का पालन करने वाले या कुल–साधना करने वाले कौल कहे जाते हैं। उन्हें शाक्त भी कहा जाता है। कौलवर्ग के अनुयायी आचार्य अल्लक अथवा भालरत्न को कौलमत का प्रणेता मानते हैं। कहना कठिन है कि इन दोनों में पूर्वापर कौन थे। ....कौल दर्शन का विकास सम्भवतः पाशुपत दर्शन के समय ही हुआ। अल्लक पाशुपत दर्शन के आचार्य विश्वरूप के

---

१. शक्ति एण्ड शाक्त
२. तंत्र दर्शन, पृ०–१३०–१३१
३. वही, पृ०–१३१
४. स्टडीज इन द तंत्राज, भाग–१, पृ०–१००
५. शक्ति मोनिज्मः द कल्ट ऑफ शक्ति, पृ०–३
६. तंत्र दर्शन, पृ०–६७
७. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०–१५१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्य थे। इसलिए कुछ चिन्तकों का विचार है कि अल्लक ने पाशुपत दर्शन को समाज द्वारा मान्यता दिलाने और मातृशक्ति के रूप को आगे लाने के लए कौलमत का प्रचार किया। यही कारण है कि कौलमत और पाशुपत सिद्धान्तों में समानता दिखलाई देती हे।[१] इस तथ्य की पुष्टि इस प्रसङ्ग से होती है कि पाशुपत के प्रमुख आचार्य गोरक्षनाथ कौलाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे।[२]

कौलमत से सम्बन्धित लगभग ५४ तंत्र ग्रन्थ और संहितायें हैं, जिनमें 'कौल निर्णय' 'कौलतंत्र', 'कुलार्णवतंत्र' आदि प्रमुख हैं। इस मत के ग्रन्थ हैं–[३]

कुलार्णव, कुलचूडामणि, रुद्रयामल, भावचूडामणि, देवीयामल, कुलपञ्चामृत, उत्तरतंत्र, कुलतंत्र, कुलामृत, तंत्रचूडामणि, कुलयामल, कुलगह्वर, कुलदीपनी, कुलपञ्चाशिका, कुलप्रकाश, कुलमत, कुलमूलावतार, कुलमन्त्रमातृकासाहस्त्रिक, कुलरत्नमाला, कुलरत्न-मालिकासाहस्त्रिका, कुलप्रदीप, कुलार्णवमहारहस्य, मेरूतंत्र कुलरत्नावली, कुलशासन, कुलसंग्रह, कुलसर्वस्व, कुलसार, कुलागम, कुलानन्दसंहिता , कुलाम्नाय, कुलालिकाम्नायतंत्र, कुलावतार कुलेश्वर, कुलोड्डीश, कुलोत्तम, कौलतंत्र, कौलमार्ग, कौलरहस्य, रजस्वलातत्त्व, कौलिकार्चनदीपिका, कौललवीय, कौलादर्शतंत्र, रहस्यार्णव, श्रीतत्वचिन्तामणि, शांभवीतंत्र, दक्षिणामूर्तिसंहिता, परमानन्दतंत्र, गन्धर्वतंत्र, वामकेश्वर-तंत्रराज, कौलोपनिषत्, त्रिपुरामहोपनिषत्, सुन्दरीतापिनी, गुह्योपनिषत्, आगमसार, परशुरामकल्पसूत्र आदि।

(ख) मिश्र मत–कौल और समय आचार के मिश्रण के फलस्वरूप मिश्र सम्प्रदाय प्रवर्तित हुआ। दोनों के मिश्रण का एक प्रयोजन था। कौलमत वाममार्ग से तथा 'समय' दक्षिणमार्ग से सम्बद्ध माना जाता है। तांत्रिक सम्प्रदायों में एकमात्र समयमार्ग ही ब्रह्मवादी वैदिक सम्प्रदाय था।[४] कौल और समय अथवा वाममार्ग और दक्षिणमार्ग की पूजा-पद्धतियों में सामञ्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता कालान्तर में समझी गई। फलस्वरूप दोनों पद्धतियों से एक मध्यममार्ग का विकास हुआ, जो मिश्रमार्ग कहलाया।

शाक्तविद्याओं को मिश्रमत के अन्तर्गत तीन भागों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें कादि, हादि तथा सादि कहा जाता है। इनके मन्त्र क्रमशः 'क ए इ ल ह्रीं, 'ह ए क ह ल ह्रीं' और 'स क ह ल ह्रीं' हैं, जो बीजमन्त्रों से बने हैं। इन तीन मन्त्रों में पहले क्रमशः क, ह और स हैं, इसलिए इन्हें कादि, हादि और सादि कहा गया है। इन्हीं तीन मन्त्रों से तीन महाविद्याओं का विकास हुआ है। कादि विद्या का सम्बन्ध काली से है, हादि का संबंध त्रिपुरसुन्दरी या श्रीदेवी से है और सादि का संबंध तारा से है। कादि विद्या का बंगाल में, हादि विद्या का कश्मीर में और सादि विद्या का तिब्बत और केरल में अधिक प्रचार हुआ। ....इन तीन

१. तंत्र दर्शन, पृ०-७०
२. शैव कल्ट्स इन नॉदर्न इण्डिया, पृ०-२७-२८
३. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-४५-४६
४. शैव सिद्धान्त, पृ०-१४८-४९ (रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-३६ पर वर्णित)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाविद्याओं की पूजा-पद्धति में विशेष अन्तर नहीं है। पूजा-पद्धति लगभग समान है, अन्तर केवल देवी, देवी के मन्त्र, देवी के यंत्र और देवी के ध्यान में रहता है।[१]

(ग) समय मत—यह प्रम्प्रदाय ब्रह्मवादी आचार से युक्त माना जाता है। समय मत की प्रमुख पाँच संहितायें हैं-वशिष्ठसंहिता, शुकसंहिता, सनकसंहिता सनन्दनसंहिता और सनत्कुमारसंहिता। इनका प्रमुख ग्रन्थ है-'शुभागमपञ्चक'। समयमार्गी आद्यशक्ति भगवती की आराधना करते हैं। यह मत वैदिक आचारों से परिपूर्ण है। इस मत के आधार हैं-भक्ति और उपासना, यम और नियम का पालन; ध्यान जप और तप का अभ्यास। इस मत का दर्शन शिव और शक्ति पर नहीं, बल्कि ब्रह्म और माया पर आधारित है। इसमें ब्रह्म को सनातन सत्ता के रूप में तथा माया को भगवती या आद्याशक्ति के रूप में स्वीकारा गया है। ब्रह्मतत्त्व को भगवती आराधना के माध्यम से प्राप्त करने की विधि बतलाई गई है। इसके अन्तर्गत सात्त्विक साधना आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि शाक्तमत और वैदिक परम्परा को जोड़ने के निमित्त समय मत का प्रतिपादन किया गया था[२]-

वैदिकं तान्त्रिकं चैव तथा वैदिकतान्त्रिकम्।
मंत्रत्रयं क्रमेणोक्तं दीक्षितानां तु मण्डले।।[३]

यह माना जा सकता है कि जिस काल में इसका विकास हआ, उस समय सम्भवत: तंत्र के अन्य दर्शन-शैव, सौर, गाणपत्य आदि पतनोन्मुख थे। अत: शाक्तमत को वेदोक्त करने के लिए समयमत प्रतिपादित किया गया था।[४]

सनत्कुमार संहिता में जिन सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है, उनके नाम इस प्रकार हैं-कौल क्षपणक, कापालिक, दिगम्बर, इतिहासक और वामक। ये सभी श्रीचक्र की पूजा करने वाले हैं।[५]

शक्त्युपासना का प्रभाव और प्रसार इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि शिव की अर्धाङ्गिनी पार्वती के विभिन्न अङ्गों और आभूषणों के स्थान पर शक्तिपीठों की मान्यता है, इन पीठों की संख्या इस समय ५१ बताई जाती है। पीठनिर्णय या महापीठनिरूपण[६] नामक ग्रन्थ में ५१ पीठों का वर्णन किया गया है। इसमें पीठस्थान के साथ देवी के अङ्ग प्रत्यङ्ग; पीठदेवता (देवी) तथा पीठाधीश (भैरव) का भी उल्लेख किया गया है।[७] यहाँ पर उनका विवरण दिया जा रहा है[८]-

१. तंत्र दर्शन, पृ०-७०
२. तंत्र दर्शन, पृ०-७१
३. सनत्कुमार संहिता, ऋषिरात्र, १५/३७
४. तंत्र दर्शन, पृ०-७१
५. तान्त्रिक साहित्य (भूमिका) पृ०-४०-४१
६. द शाक्त पीठाज, पृ०४२-५८ पर संग्रहीत तथा सम्पादित
७. पीठ निर्णय (महापीठ निरूपणम्) श्लोक-१
८. द शाक्त पीठाज, पृ०-३५-३७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्र. सं	पीठ	अङ्ग-प्रत्यङ्ग	देवी	भैरव
१.	हिङ्गुला (हिङ्गुलाट)	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टरी	भीमलोचन
२.	करवीर (शर्करार)	त्रिनेत्र	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
३.	सुगन्धा	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक
४.	काश्मीर	कण्ठ	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर
५.	ज्वालामुखी	जिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्त
६.	जालन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
७.	वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ
८.	नेपाल	जानु	महामाया	कपाली (कपाल)
९.	मानस (मालव)	दक्षिणहस्त	दक्षायनी	हर
१०.	विरजाक्षेत्र (उत्कल में)	नाभि	विमला	जगन्नाथ
११.	गण्डकी (गण्डक)	गण्ड	गण्डकी	चक्रपाणि
१२.	बहुला	वामबाहू	बहुला	भीरूक
१२.	उज्जयिनी	कूर्पर	मङ्गला	कपिलाम्बर
१४.	चट्टल	दक्षिणबाहू	भवानी	चन्द्रशेखर
१५.	त्रिपुरा	दक्षिणपाद	त्रिपुरा	नल
१६.	त्रिस्रोता	वाम पाद	भ्रामरी	ईश्वर
१७.	कामगिरि (कामरूप में)	महामुद्रा (योनि)	कामाख्या	उमानन्द
१८.	युगाद्या (श्रीरग्राम)	दक्षिणपादाङ्गुष्ठ	युगाद्या	क्षीरखण्ड
१९.	कालीपीठ (कलिघट)	दक्षिणपादाङ्गुलि	काली	ककुलेश
२०.	प्रयाग	हस्ताङ्गुलि	ललिता	भव
२१.	जयन्ती	वामजङ्घा	जयन्ती	क्रमदीश्वर
२२.	किरीट	किरीट	भुवनेशी	सिद्धिरूप
२३.	मणिकर्णिका (वाराणसी)	कुण्डल	विशालाक्षी	काल
२४.	कन्याश्रम	पृष्ठ	सर्वाणी	निमिष
२५.	कुरूक्षेत्र	दक्षिणगुल्फ	सावित्री	स्थाणु
२६.	मणिवेद	मणिबन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
२७.	श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	सम्बरानन्द
२८.	काञ्ची	कंकाल	देवगर्भा	रूरू
२९.	कालमाधव	नितम्ब	काली	असिताङ्ग
३०.	नर्मदा (सोण, शैल)	नितम्ब	सोणा	भद्रसेन
३१.	रामगिरि	स्तन	शिवानी	गण्ड
३२.	वृन्दावन	केश	उमा	भूतेश
३३.	शुचि (अनल)	ऊर्ध्वदन्त	नारायणी	संहार
३४.	पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	महारुद्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्र. पीठ	अङ्ग-प्रत्यङ्ग	देवी	भैरव
३५. करतोयातट	वामकर्ण	अपर्णा	वामन
३६. श्रीपर्वत	दक्षिणकर्ण	सुन्दरी	सुन्दरानन्द
३७. विभास	वामगुल्फ	भीमरूपा	कपाली
३८. प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
३९. भैरव पर्वत	ऊर्ध्वओष्ठ	अवन्ती	लम्बकर्ण
४०. जनस्थान	चिबुक	भ्रामरी	विकृत
४१. गोदावरी तीर	(वाम) गण्ड	विश्वेशी	विश्वेश
४२. मिथिला	वाम स्कन्ध	उमा	महोदर
४३. रत्नावली	दक्षिणस्कन्ध	कुमारी	शिव
४४. नलाहाटी	नला	काली	योगीश
४५. कालीघाट	मुण्ड	जयदुर्गा	क्रोधीश
४६. वक्रेश्वर	मनस्	महिषमर्दिनी	वक्रनाथ
४७. यशोर	पाणि	यशोरेश्वरी	चण्ड
४८. अट्टहास	ओष्ठ	फुल्लरा	विश्वेश
४९. नन्दिपुर	हार	नन्दिनी	नन्दिकेश्वर
५०. लङ्का	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षसेश्वर
५१. विराट	पादाङ्गुलि	अम्बिका	अमृत

(३) वैष्णव सम्प्रदाय–'विश्वामित्र-संहिता' में पाञ्चरात्र से सम्बन्धित १०८ तन्त्रों का उल्लेख मिलता है।[१] उनके नाम इस प्रकार हैं –

अमृतसंहिता	अहिर्बुध्न्यतंत्र,	आगस्त्यतंत्र	आग्नेयतंत्र
आत्रेयतंत्र	आनन्दतंत्र	उमामहेश्वरतंत्र	उशनस्तंत्र
ऐन्द्रतंत्र	औपगायनतंत्र	औपेन्द्रतंत्र	कपिञ्जलतंत्र
कल्कितंत्र	कात्यायनतंत्र	कापिलतंत्र	काष्र्ण्यतंत्र
कौमारतंत्र	गौतमतंत्र	चान्द्रमसतंत्र	जयाख्यसंहिता
जाबालतंत्र	जामदग्न्यतंत्र	जैमिनितंत्र	तत्त्वसागरस्तंत्र
तेजोद्रविणतंत्र	त्रैलोक्यमोहन	त्रैलोक्यविजयतंत्र	दक्षसंहिता
धनदीयतंत्र	नन्दतंत्र	नलकूबरतंत्र	नारदीयतंत्र
नारायणतंत्र	नृकेसरितंत्र	पञ्चप्रश्नतंत्र	पद्मोद्भवतंत्र
परपौरूषतंत्र	परमसंहिता	पाद्मतंत्र	पारमेश्वरतंत्र
पारायर्शतंत्र	पार्षसंहिता	पुरूषोत्तमतंत्र	पुष्टितंत्र
पैङ्गलतंत्र	पौलस्त्यतंत्र	पौष्करतंत्र	प्रद्युम्नतंत्र
प्रहलादतंत्र	प्राचेतसतंत्र	बार्हस्पत्य	बोधायन

१. विश्वामित्र-संहिता, द्वितीय अध्याय, श्लोक-१६-३३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मनारदसंहिता	ब्रह्मसिद्धान्त	ब्राह्मतंत्र	भागवत
भार्गव	भारद्वाज	महालक्ष्मीसंहिता	महासनत्कुमारतंत्र
महीप्रशन	मायावैभविक	मारीचतंत्र	मार्कण्डेय
माहेन्द्रसंहिता	मिहिरतंत्र	मूलसंहिता	याज्ञवल्क्यतंत्र
याम्यतंत्र	योगहृदय	राघवतंत्र	रुद्रतंत्र
रुद्रतंत्र (?)	वामनतंत्र	वाराहतंत्र	वारूणतंत्र
वाल्मीकिसंहिता	वासिष्ठतंत्र	विश्वसंहिता	विश्वामित्रीयतंत्र
विष्णुरहस्यतंत्र	विष्वक्सेनतंत्र	विष्णुवैभविक	विष्णुसद्‌भाव
विष्णुसिद्धान्त	विहङ्गेन्द्रसंहिता	वीरमङ्गलिकतंत्र	वैयासतंत्र
शर्वसंहिता	शाम्बरतंत्र	शाकल्यतंत्र	शातातपतंत्र
शुकतंत्र	शौनकीयतंत्र	श्रीकरतंत्र	श्रीकरतंत्र (?)
श्रीप्रश्नतंत्र	संकर्षणतंत्र	सत्यतंत्र	सनकतंत्र
सनत्कुमारतंत्र	सांवर्ततंत्र	सात्वततंत्र	सौम्यतंत्र
सौरतंत्र	स्कन्दसंहिता	हारीततंत्र और	हैरण्यतंत्र।

इनमें आज कितने उपलब्ध हैं, कोई नही जानता। तथापि अनेक चिन्तकों के विचारों एवं सम्मोहन तंत्र जैसे ग्रन्थों के आधार पर उनकी संख्या निर्धारित की गई है-वैष्णवतंत्र ७५, उपतंत्र २०५, कल्प-२० और संहितायें-८। सम्मोहनतंत्र में तथा विश्वामित्र संहिता में भी ८ संहिताओं का उल्लेख मिलता है। अत: संहिताओं की यह संख्या सही मानी जा सकती है। एतदतिरिक्त अनेक अर्णव, कक्षपुटी चूड़ामणि, चिन्तामणि, उड्डीश, डामरतंत्र, यामलतंत्र तत्त्वबोध, तर्पण, विमर्शिणी और पुराण इत्यादि भी हैं।[1]

(४) सौर सम्प्रदाय–सौरतंत्र का सम्बन्ध सूर्य उपासना से है। कुछ विचारकों के अनुसार यह शनि और यम से भी सम्बन्धित है। एकमत के अन्तर्गत सौर्य तंत्र के सन्दर्भ में सूर्य शक्ति का वर्णन किया जाता है। शनि, यम और सौर्य-शक्ति सूर्य के वंशज हैं। शनि ओर यम सूर्य-पूत्र हैं, सौर्य-शक्ति सूर्य की अभिन्न शक्ति है। सूर्य को चराचर जगत् का स्रष्टा कहा गया है।[2] सूर्य की तीन अवस्थाएं होती है। प्रथम, अग्निपुंज के रूप में वे चराचर जगत् को प्रकाश प्रदान करते हैं। द्वितीय प्राणशक्ति के रूप में वे समस्त प्राणियों को जीवन-शक्ति से परिपूर्ण करते है और तृतीय, ज्ञानशक्ति के रूप में वे समस्त प्राणियों को जीवन-शक्ति से परिपूर्ण करते हैं और तृतीय, ज्ञानशक्ति के रूप में वे तमस् को दूर करते हैं।[3]

सम्मोहनतंत्र (पटल ६) के अनुसार सौर सम्प्रदाय के अन्तर्गत ३० तंत्र, ९६ तत्त्व, २. उपसंहिता, ५ पुराण, १० कलप, २ कक्षपुटी, ३ विमर्शिनी, ५ चूड़ामणि, २ डामर, २ यामल, ५ उड्डाल, २ अवतार, २ उडडीश, ३ अमृत, ३ दर्पण, आदि ग्रन्थों का समावेश किया गया है।[4]

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-१३३-१३४

२. वही, पृ०-१३५

३. वही, पृ०-१३६

४. स्टडीज इन द तन्त्राज, भाग-१, पृ०-१००

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) गाणपत्य सम्प्रदाय

गाणपत्य तंत्र का सम्बन्ध शंकरपुत्र गणपति से है। ऋग्वेद (१०/११२/९) में गणपति को गणों का ईश्वर या प्राणियों का स्वामी माना गया है।[१] तंत्र शास्त्र के अनुसार ८४ लाख योनि-रूप, जिनसे जीव गुजरता है, गण कहलाते हैं। ..... गणेश को शंकर और भवानी का पुत्र माना गया है। इस कारण शैव और शाक्त तंत्रों से इस सम्प्रदाय का गहरा सम्बन्ध रहा है। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार समस्त उपासनाओं में सर्वप्रथम गणेश की उपासना होती है। जिन लोंगो ने गणपति को विशेष रूप से सभी गणों का इष्ट माना है, वे गाणपत्य कहलायें हैं। गणेश आराधना का क्रम वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक दिखलाई देता है।[२]

सम्मोहन तंत्र (पटल ६) के अनुसार इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत ५० तंत्र, २५ उपतंत्र, २ पुराण, २ अमृत, ३ सागर, ३ दर्पण, ९ कल्पका, ३ कक्षपुटी, २ विमर्शिनी, २ तत्त्व, २ उड्डीश, ३ चूड़ामणि, ३ चिन्तामणि, १ डामर और चन्द्रयामल तथा पाञ्चरात्र आदि ग्रन्थों की परिगणना की गई है।[३]

(v) आस्तिकता-नास्तिकता मूलक वर्गीकरण

सामान्यतया जिसे हम हिन्दू तंत्र कहते हैं, वे आस्तिकतंत्र है। वे मनुष्य के ऊपर की सत्ता को, पति को स्वीकार करते हैं, भले ही उसका नाम ब्रह्म न होकर शिव हो। मनुष्य या जीवात्मा के रूप में पशु को भी स्वीकार किया जाता है, जो उस परम सत्ता के नियंत्रण में है। जब भी चाहे वह 'पाश' के द्वारा जीव को नियंत्रित कर सकता है।[४] इस अर्थ में शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य आदि तंत्र आस्तिक तंत्र कहे जायेंगे।

नास्तिक तंत्रों की श्रेणी में बौद्ध तथा जैनतंत्र आते हैं। बौद्ध तंत्र में भी अलग-अलग विचारधाराएं है, जिन्हें सहजयान, महायान और वज्रयान के नाम से जानते हैं। वे किसी इष्ट, पुरूष या शक्ति पर अपने विचारों को व्यक्त नहीं करते, केवल इतना कहते हैं कि कोई विशेष साधना करने पर साधक का कल्याण हो सकता है। जैन तंत्रों में भी इसी प्रकार की चर्चा है कि केवल साधना करो, इससे ही कल्याण होगा।[५]

(६) बौद्धतंत्र–बौद्धतंत्र और आगम में स्वभावत: सैद्धान्तिक अन्तर है।[६] बौद्ध तंत्र का परम लक्ष्य 'निर्वाण' शब्द से तथा आगम का परम लक्ष्य मोक्ष' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। आगम का मूल परमशिव आदि तथा बौद्धतंत्र का मूल बुद्ध के उपदेश हैं। बौद्ध तन्त्रों की भाषा विकृत और व्याकरण-भ्रष्ट संस्कृत है। बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय मुख्यतया तंत्र-मूलक है, जबकि हीनयान तंत्र मुक्त है।[७]

---

१. तंत्र महाविज्ञान (प्रथम खण्ड, पृ०-७० पर उद्धृत
२. तंत्र दर्शन, पृ०-१४४
३. स्टडीज इन द तन्त्राज, भाग-१, पृ०-१००
४. तंत्र दर्शन, पृ०-७
५. वही, पृ०-७
६. योग दशर्न डॉ० सम्पूर्णनन्द, पृ०-१-३
७. वही, पृ०-४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिब्बत और चीन की मान्यता के अनुसार आचार्य असंग ने तुषित स्वर्ग से तंत्र का अवतरण किया था। असंग ने भी तंत्र विद्या का अधिकार मैत्रेयनाथ से प्राप्त किया था, जो सम्भवतः भावी बुद्ध ही थे। उनका वास-स्थान भी पर्वत या धान्यकटक था, जो तान्त्रिक साधना का प्रधान केन्द्र था।[1] इतिहासकारों का मत है कि बौद्ध साहित्य में गुह्यसमाज में सबसे पहले शक्ति उपासना का प्रारम्भ हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि असंग से पूर्व भी शक्ति-साधना की धारा पुष्ट थी। मातृरूप में कुमारी-शक्ति की उपासना प्रचलित थी।[2] कुषाणकाल में शक्तिपूजा के साथ-साथ तंत्र-मन्त्रों का प्रयोग वृद्धि को प्राप्त हुआ। इसका सबल प्रमाण बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान के अन्तर्गत संगृहीत शार्दूल-कर्णावदान में उल्लिखित षडक्षरी विद्या तथा विशेष तंत्र परक यंत्र विधान है। इस अवदान में तान्त्रिक आचारों का सन्दर्भ इस प्रकार है[3]-श्रमण आनन्द एक बार जब भिक्षार्थ श्रावस्ती के निकट भ्रमण कर रहे थे तो उन पर प्रकृति नाम की मातंग दारिका अर्थात चाण्डाल-कन्या आसक्त हो गयी। उन्हें प्राप्त करना जब प्रकृति को कठिन जान पड़ा तो उसने अपनी महाविद्याधरी (महामांत्रिक) या गुप्त विद्याओं का ज्ञान रखने वाली माँ से अपनी इच्छा व्यक्त की। उसकी मां ने घर के आंगन को लीप-पोत उसमें वेदी बनाकर अग्नि प्रज्वलित कर ८०० आक के पुष्पों से प्रत्येक में एक बार मन्त्र पढ़ कर आन्द के वश्यार्थ आहुतियां दी। मन्त्र या विद्या इस प्रकार है-

'अमले विमले कुङ्कुमे सुमने। येन वद्धासि।
इच्छा देवो वर्षति विद्योतति गर्जति।
विस्मयं महाराजस्य सममिवर्धयितुं देवेभ्यो, मनुष्योभ्यो गन्धर्वेभ्यः
शिखिग्रहा देवा विशिग्रहा देवा आनन्दस्यागमनाय संगमनाय
क्रमणाय ग्रहणाय जुहोमि स्वाहा'।।

शायद यह एक प्रकार का शाबर मन्त्र है जो मूलतः सम्भवतः श्मशानवासी चाण्डालों और शबरों के अपने मन्त्रक्रम का अंग था। इस मन्त्र से आनन्द का चित्त विभ्रमित हुआ। उन्होंने बुद्धमन्त्रों का उच्चारण किया। आनन्द की मनः स्थिति को देखते हुए शार्दूलकर्णावदान के अनुसार उनके चित्त को पूर्णतः शान्त करने के लिए 'भगवान्-बुद्ध' ने उन्हें इन शब्दों में षडक्षरी विद्या (मन्त्र) बतायी-'अण्डरे पाण्डरे कारण्डे केयूरेऽर्चि हस्ते खरग्रीवे बन्धुमति वीरमति धरविध चिलमिले विलोडय विषाणि लोके। विष चल चल। गोलमति गण्डविले चिलमिले सातिनिम्ने यथा संविभक्ते गोलमति गण्डविलायै स्वाहा।।'

बुद्ध ने तत्पश्चात् आनन्द को इस विद्या को अपनी रक्षा के लिए गण्डे के रूप में बाँह में बाँधने का महत्व भी बताया।

साहित्य-तिब्बत और चीन में बौद्धतंत्र का विपुल साहित्य है। यद्यपि उनका प्रकाशन

१. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, पृ०-२८०
२. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-४९
३. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-३३-३४ पर सन्दर्भित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कार्य कम ही हुआ है। बौद्धतंत्र साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'गुह्यसमाज तंत्र' है। इसी प्रसङ्ग में हेवज्र तंत्र और मञ्जुश्रीमूलतंत्र का नाम उल्लेखनीय है। एतदतिरिक्त अन्य तान्त्रिक ग्रन्थ इस प्रकार हैं[१]–

कालचक्रतंत्र और उसकी टीका विमल प्रभा, श्रीसम्पुट (योगिनी तंत्र), समाजोत्तर तंत्र, मूलतंत्र, नामसंगीत, पञ्चक्रम, सेकोद्देश (तिलोपाकृत), सेकोद्दश-टीका (नारोपाकृत) और गुह्यसिद्धि। इसके अतिरिक्त ज्ञानसिद्धि, सहजसिद्धि तथा डाकार्णव आदि बौद्ध तंत्रों का पता चलता है।

बौद्ध सम्प्रदाय को मुख्य रूप से हीनयान, महायान, वज्रयान ओर सहजयान में बाँटा जा सकता है।

(क) हीनयान और महायान साहित्य

महायानी तान्त्रिकों की दृष्टि में बोधिसत्व के चक्रयान की दो श्रेणियाँ थीं-प्रज्ञापारमिता तथा मण्डल में दीक्षा और मन्त्र का अभ्यास। इससे सम्बद्ध साहित्य में पहले अतान्त्रिक पृष्ठभूमि का विवेचन करके बाद में तंत्र की प्रधानता की चर्चा की गई है।[२] हीनयान और महायान को साहित्य की दृष्टि से नहीं विभाजित किया जा सकता।[३] हीनयान भी महायान के सिद्धांतो से प्रभावित हुये जान पड़ते हैं। दोंनो सम्प्रदायों से सम्बद्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं[४]–

(i) महावस्तु या महावस्तु का अवदान (द्वितीय सदी)
(ii) ललित-विस्तर (९ वीं सदी के पूर्व)
(iii) कल्पना-मंडीतिका (४०५ ई०)
(iv) चतुःशतक स्तोत्र (द्वितीय सदी)
(v) मैत्रेय व्याकरण (द्वितीय सदी)
(vi) जातकमाला (४ थी सदी)
(vii) अवदानशतक (द्वितीय सदी)
(viii) कर्मशतक
(ix) दिव्यावदान (प्रथम से चतुर्थ शताब्दी)
(x) अवदान-कल्पलता (१०५२ ई०)

(ख) वज्रयान साहित्य–वज्रयान सम्प्रदाय में तंत्रों की कई कोटियाँ हैं- क्रियातंत्र.

---

१. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, पृ०-२८३
२. द बुद्धिस्ट तंत्राज, पृ०-४
३. तान्त्रिक बौद्ध साधना ओर साहित्य, पृ०-३४
४. वही, पृ०-३४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चर्यातंत्र, योगतंत्र, अनुत्तर योगतंत्र, साधना-समुच्चय, साधनमाला इत्यादि।[१] इससे सम्बद्ध तान्त्रिक ग्रन्थों के नाम हैं-चण्डमहारोषण तंत्र, श्री चक्र-संभार तंत्र, तथागतगुह्यक या गुह्यसमाजतंत्र, ज्ञानसिद्धि, प्रज्ञोपाय-विनिश्चय-सिद्धि , अद्वयवज्रसंग्रह, आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प आदि।[२]

(ग) सहजयानसाहित्य–सहजता ही जहाँ परमतत्त्व का साधन बन जाय, वही सहजयान है। नाम-स्मरण, नाम-जम, नाम-गायन ही सहजमार्ग है। इस मत के ग्रन्थ हैं-म०म० हर प्रसाद शास्त्री द्वारा सम्मादित 'बौद्ध गान वो दोहा' तथा सरोरूहपाद का 'दोहाकोष'। इस दोहाकोष का नाम 'सहजाम्नाय पंजिका' है। एतदतिरक्त 'डाकार्णव' भी इसी मत में सम्मिलित किया जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने 'दोहा कोश' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है, जिसमें सरहपाद के दोहों को सम्पादित किया है।[३]

(घ) कालचक्रयान-कालचक्रयान वज्रयान का ही विकास है।[४] एस. बी. दासगुप्ता के अनुसार इस शाखा का केवल एक ही ग्रथ 'श्री कालचक्रतंत्र' सम्प्रति उपलब्ध है, जो कैम्ब्रिज विश्वद्यिालय के पुस्तकालय में (केम्ब्रिज एम. एस. Add no. 1364) संरक्षित है।[५] इसकी टीका है विमलप्रभा।

वस्तुतः तान्त्रिक वाङ्मय असंख्य रूप में दिखाई पड़ता है। किन्तु सभी तंत्र शास्त्र विशेष साधना से सम्बद्ध हैं। तंत्र वस्तुतः क गुह्य प्रायोगिक विज्ञान है।

• • •

१. वही, पृ०-१११
२. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-५०
३. तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, पृ०-१६६-६७
४. तंत्राः इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-३९
५. वही, पृ०-३९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय अध्याय

तान्त्रिक वाङ्मय में रुद्रयामल

यामलशास्त्र और रुद्रयामल

रुद्रयामल कौलमत का प्रधान ग्रन्थ है। यह विशुद्ध रूप से अद्वैत भूमि प्रधान है।[1] यद्यपि महाशक्ति कुण्डलिनी के साथ-साथ षट्चक्रों की अधिष्ठातृ देवियाँ-डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी और हाकिनी तथा भेदिनी, छेदिनी, कन्दवासिनी, रुद्राणी आदि अनेक शक्तियों के स्वरूप, स्तव, सहस्रनाम, ध्यान आदि के विषय में पर्याप्त चर्चा की गई है, जिससे इसे शाक्त मत का स्वीकार करने का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है, किन्तु कौलाचार ग्रन्थ का प्राण है।

तंत्रशास्त्र के अनुसार कुल ही देवी या शक्ति है और अकुल शिव है। अकुल में चेतना कुल संगम से ही हो पाती है, यह सामरस्य है। शक्ति कुल से अकुल और अकुल से कुल की ओर विभिन्न पद्मों से जाती रहती है। तंत्र परांपरा में इस क्रिया को बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है-

अकुलकुलमयन्ती चक्रमध्ये स्फुरन्ती
मधुर मधु पिबन्ती साधकान् तोषयन्ति।
दुरितमपहरन्ती कंटकान् चर्वयन्ती
जयति जय ब्रुवन्ती सुन्दरी क्रीडयन्ती।।[2]

अर्थात् 'अकुल से कुल के बीच आवागमन करती हुई, चक्रों को स्पन्दित करती हुई, सुधामय रस का आस्वादन करती हुई, पाप का क्षय तथा विघ्नों का निवारण करती हुई कुण्डलिनी रूपी सुन्दरी जय-जय बोलती हुई (साधक के अंग में) खेलती रहती है।'

यही कुण्डली समस्त विश्व में व्याप्त शक्ति है, इसी की इच्छा से, इसी की सहायता से, शिव इस विश्व-प्रपञ्च की उत्पत्ति, पालन और विलय में समर्थ होते हैं।[3] यहाँ कुण्डली या

---

१. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-९०
२. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-४४ पर उद्धृत।
३. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-११५,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति को 'चिच्छीला' और चिद्रूपिणी माना गया है।[१] यह चिच्छक्ति अनन्तरूपा और अनन्तशक्ति-स्वरूपा है। जगत् इसी शक्ति का परिणाम है और यही शक्ति जगत्‌रूप में परिणत होती है। इसी की सहायता से परम शिव सृष्टि-व्यापर के संभालने में समर्थ होते हैं।[२] इसलिए वामकेश्वर तंत्र में स्वयं भगवान् शंकर ने कहा है कि-'हे परमेश्वरि इस शक्ति से रहित होने पर शिव कुछ भी करने में असमर्थ हैं, इसके युक्त होकर ही वे कुछ करने में समर्थ होते हैं।[३]

विवेच्य ग्रन्थ में पराशक्ति के रूप में कुण्डलिनी महाशक्ति की चर्चा की गई है,[४] जो मूलाधार-चक्र में निवास करती है तथा षट्चक्र-भेदन होने पर सहस्रार में जाकर शिव का सायुज्य और सामरस्य प्राप्त करती है।

कौलमत दो प्रकार का है-पूर्व और उत्तर। पूर्व कौलमत में भगवती आनन्दभैरवी हैं। यह भगवान शिव या आनन्दभैरव की देहस्वरूप है। सूर्य और चन्द्र-ये दो इनके स्तन हैं और इनकी आत्मा है-नवात्मक शम्भु। शम्भु या आनन्दभैरव नवव्यूहात्मक हैं। शिव और शक्ति में शेष-शेषि भाव सम्बन्ध है। दोनों में पराशक्ति और परमानन्द का सामरस्य है।[५] भगवती ही मन, आकाश, वायु अग्नि, पृथ्वी है। इसके परिणाम से भिन्न कुछ नहीं है। भगवती ने ही अपने को परिणत करने के लिए चिदानन्दाकार को विराट देह रूप में व्यक्त किया है।[६] पूर्वोक्त नवव्यूह इस प्रकार हैं[७]-

(१) कालव्यूह-निमेषादि कलान्त अवच्छिन्न काल की धारा को कालव्यूह कहते हैं। सूर्य और चन्द्र काल-अवचछेदक हैं, इसलिए इसी के अन्तर्गत हैं।

(२) कुलव्यूह- यह नीलादि रूप है।

(३) नामव्यूह-यह संज्ञास्कन्ध का ही नामान्तर है।

(४) ज्ञानव्यूह-इसे विज्ञान स्कन्ध भी कहते हैं। इनका दूसरा नाम है- भागव्यूह। 'सभाग' शब्द का अर्थ है 'विकल्प' और 'विभाग' शब्द का अर्थ है 'निर्विकल्प'।

(५) चित्तव्यूह-अहंकार, चित्त, बुद्धि महत् और मन, इसी अहंकार पञ्चस्कन्ध को चित्त कहते हैं।

(६) नादव्यूह-राग, इच्छा, कृति और प्रयत्न, जो मातृका के चार रूप हैं, नादव्यूह के

---

१. चिच्छीला कुण्डलिन्यत: सि०सि०सं०-१/६
२. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-११६
३. वामकेश्वरीमतम्-४/६ परो हि शक्तिरहित: शक्त:कर्त्तुं न किञ्चन्।
शक्तस्तु परमेशानि शकत्या युक्तो यदा भवेत्।।
४. रुद्रयामल उ०त०, पटल संख्या,६, ३६, ६०
५. सौन्दर्यलहरी, श्लोक-३४
६. वही, श्लोक-३५
७. तंत्र और आगम शास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-४८-४९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्गत हैं। उनमें से परावाक् उसी को कहते है, जिसका रूप अन्तःकरण में ऊह या तर्क के साथ स्फुरित होता है। कामकला विद्या में इसी को परामाहेश्वरी कहा गहा है। यह परावाक् जब अपेक्षाकृत स्पष्ट रूप से प्रतिभासमान होता है, तो उसका नाम पश्यन्ती होता है। वैसे में यह त्रिमातृकात्मक होकर चक्र-रूप धारण करता है। परा और पश्यन्ती-इन दो से मध्यमा वाक् का उदय होता है। इसके दो भेद हैं-सूक्ष्म और स्थूल। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका-इन चार शक्तियों की जो समष्टि अवस्था है, वही सूक्ष्मा मध्यमा है; इनकी जो व्यष्टि अवस्था है, वही स्थूला मध्यमा है। इस नवव्यूहात्मक शक्ति-वर्ग के कारण भगवती को नवात्मक कहते हैं।

(७) बिन्दुव्यूह-यह षट्चक्र संघ का ही नामान्तर है।

(८) कलाव्यूह-यह वर्णात्मक पचास कलाओं का समूह है।

(९) जीवव्यूह-यह भोक्तृवृन्द का नामान्तर है।

भोक्ता, भोग और भोग्य रूप में ये नौ व्यूह तीन प्रकार के हैं। भोक्ता है-आत्मव्यूह, भोग- ज्ञानव्यूह और भोग्य-कालव्यूह आदि सब। सारे ही व्यूह जीवव्यूह के सर्वत्र अन्वययुक्त हैं। इसलिए सर्वत्र ऐक्य है। इस प्रकार परमेश्वर नवव्यूहात्मक हैं। अतः भैरव और भैरवी में नौ प्रकार का ऐक्य अंगीकृत होता है। यही कौलमत है। कौलमत है। कौलगण कहते हैं-

नवव्यूहात्मको देवः परानन्दपरात्मकः।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।।
परानन्द पराशक्तिश्चिद्रूपानन्द भैरवी।
तयोर्यदा सामरस्यं सृष्टिरूत्पद्यते तदा।।[1]

पूर्व कौलमत के अनुसार सृष्टि की दशा में महाभैरवी रूप प्रकृति की प्रधानता रहती है, इसलिए वह शेषिरूप है और आनन्दभैरव शेषरूप। संहार के समय आनन्दभैरवी स्वात्मा में अंतर्भूत होती है और प्रकृति तन्मात्रा में। इस समय आनन्दभैरव शेषिरूप और आनन्द भैरवी शेषरूप रहते हैं।

उत्तर कौल इस 'शेष-शेषि' भाव को नहीं मानते। उनके मत में प्रधान ही जगत्-कर्त्री है। शिव तो सृष्टि-दशा में पञ्चतत्त्व रूप में परिणत हो गया रहता है। सम्पूर्ण तत्त्ववर्ग शक्ति का स्वरूप-परिणाम है। यही शक्ति प्रलयदशा में जब सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपने में आरोपित कर कारण रूप में अवस्थित होती है, उस समय उनकी संज्ञा होती है-'आधार कुण्डलिनी'। इस दृष्टि से रुद्रयामल उत्तर-कौल मत का प्रधान ग्रन्थ है, जिसमें महाशक्ति कुण्डलिनी का अति विस्तृत विवेचन किया गया है।

कौलमत का ग्रन्थ होते हुए भी रुद्रयामल को वैदिक तंत्र भी कहा जा सकता है, क्योंकि वेदों के प्रति इसका दृष्टिकोण उदार एवं सम्मानजनक है-

वेदेन लभ्यते सर्वं वेदाधीनमिदं जगत्।

---

१. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-४९ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदमन्त्रविहोनो यः शक्तिविद्यां समभ्यसेत्।।
स भवेद्धि कथं योगी कौलमार्ग-परायणः?।।[१]

अर्थात् 'वेद से ही सब कुछ प्राप्त होता है, यह जगत् वेद के ही अधीन है, वेदमन्त्र के बिना जो शक्ति विद्या की उपासना करता है, वह योगी कैसे कौलमार्ग-परायण हो सकता है?'

अथर्ववेद की प्रशंसा में कहा गया है कि यह (अथर्ववेद) सभी वर्णों का सार तथा शक्त्याचार से समन्वित है। अथर्ववेद से तमोगुण रूप सामवेद तथा सामवेद से सत्त्वमय यजुर्वेद की उत्पत्ति होती है, यजुर्वेद से रजोगुणमय ऋग्वेद की अवस्थिति जाननी चाहिए।[२]

यह उत्पत्तिक्रम विलोम रूप है। पररूप से पूर्वरूप के ज्ञान की शृंखला में इस प्रकार का क्रम हो सकता है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अथर्ववेद सामवेद के अस्तित्व को सिद्ध करने का हेतु, इसी प्रकार सामवेद यजुर्वेद का तथा यजुर्वेद ऋग्वेद के अस्तित्व को सिद्ध करने का हेतु है।[३]

पुनः कहा गया है कि अथर्ववेद में सभी देव, जलचर, खेचर, भूचर-सभी जीव, कामविद्या, महाविद्या तथा ऋषिगण निवास करते हैं-

अथर्वे सर्वदेवाश्च जलखेचरभूचराः।
निवसन्ति कामविद्या महाविद्या महर्षयः।।[४]

स्पष्ट है कि रुद्रयामल वैदिक तंत्र भी है।

यामलशास्त्र और रुद्रयामल

यमल+अण्-यामल। 'यमल' शब्द का भाववाचक है- यामल। यमल का अर्थ है- 'मिथुन'। यामल का अर्थ हुआ- 'मिथुनीकृत'। इस प्रकार यामलशास्त्र से ऐसे शास्त्र का बोध होता है, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा के, पशु और शिव के मिथुनीकरण का उपाय वर्णित हो। 'यामल' शब्द की सार्थकता इससे भी है कि इन ग्रन्थों में दो दिव्य प्रेमी-प्रेमिकाओं यथा- भैरवी-भैरव, उमा-महेश्वर, पार्वती-महेश्वर आदि देवी-देवताओं के कथोपकथन द्वारा विषय-वस्तु का प्रवर्तन किया गया है।

शैव, शाक्त और यामल के भेद से तंत्र का त्रिधा विभाजन किया जाता है। शैवतंत्र में शिव का, शाक्ततंत्र में शिवा का तथा यामल तंत्र में दोनों के अभेद का निरूपण किया गया है। वहाँ शिव अर्थरूप हैं तथा शक्ति शब्द रूप। यामल तंत्र में दोनों के भेद कल्पना, पार्थक्य की अवधारणा सह्य नहीं है। जो शब्द है, वही अर्थ है; जो अर्थ है, वही शब्द है। इसी प्रकार जो शक्ति है, वही शिव है; जो शिव है, वही शक्ति है-यही सिद्धान्त यामल तंत्र की स्थापना है। जहाँ सामान्य और विशेष की सामरस्यता की स्थापना हो, जहाँ सूर्य-सोमादि द्वन्द्वान्मक पदार्थों

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १५/३.
२. वही, १७/१-३.
३. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-३७१,
४. रुद्रयामल उ०त०, १७/४,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का अविनाभाव से प्रतिष्ठा हो, वहीं तत्त्वविदों के द्वारा यामलतत्त्व का स्वरूप परिलक्षित होता है।[१] शिव और शक्ति के उपासक उत्तम पशु कहलाते हैं–

दुर्गापूजां शिवपूजां यः करोति पशूत्तमः।
अवश्यं हि यः करोति स पशुरूत्तमः स्मृतः।।[२]
चिच्चन्द्रः कुण्डलीशक्तिः सामरस्यमहोदयः।
व्योमपङ्कजनिःष्यन्दसुधापानरतो नरः।।[३]

विज्ञानभैरव के प्रथम श्लोक में प्रयुक्त 'यामल' शब्द का अर्थ टीकाकार के अनुसार 'रुद्र और उसकी शक्ति का सामरस्य' है।[४]

सर्वोल्लासतंत्र के अनुसार परमशक्ति सूक्ष्म रूप में निर्मल तथा रथूलरूप में 'यामल' रूप (मिथुन रूप) है। उस देवी का विग्रहरूप ही 'यामल' है। सभी शास्त्रों का ज्ञानरूप 'यामल' है–

सूक्ष्मेऽपि निर्मला या च स्थूले सा यामलः शिवे।
यामलोक्तं स्थूलरूपं सर्वशास्त्रस्य बोधनम्।।[५]

तान्त्रिक मत में चारों वेदों की उत्पत्ति चार यामलों से बतायी जाती है। 'ब्रह्मयामल' से सामवेद, रुद्रयामल से ऋग्वेद, विष्णुयामल से यजुर्वेद और शक्तियामल से अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई है–

ब्रह्मयामलसम्भूतं सामवेदमतं शिवे।
रुद्रयामलसंजातम् ऋग्वेदं परमं महत्।।
विष्णुयामलसम्भूतं यजुर्वेदं कुलेश्वरि।
शक्तियामलसम्भूतमथर्व्वं परमं महत्।।[६]

इसका अभिप्राय यही है कि यामल ग्रन्थ वेद जितने ही प्रामाणिक एवं मोक्षदायक हैं।

आगम, यामल या तंत्र कहने से एक विशेष शास्त्र का बोध होता है। वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि से तीनों शास्त्र 'तंत्र' के अर्थ को ही द्योतित करते हैं। यह तो रचनापरम्परा की धर्मिता है, उस शास्त्र को आगम, यामल या तंत्र कहा गया। तीनों शास्त्रों की अभिन्नता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि कहीं-कहीं 'यामल' ग्रन्थ के साथ 'तंत्र' शब्द भी जुड़ा देखा गया है। जैसे 'रुद्रयामल उत्तरतंत्र'। आगम, यामल और तंत्र साहित्य में रचना शैली की दृष्टि से पौर्वापर्य हो सकता है, किन्तु स्वरूप की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। आगम, यामल और तंत्र

---

१. रुद्रयामल उ०त०, प्रस्तावना, पृ०-३ (संपूर्णानन्द संस्करण) प्रथम भाग।
२. रुद्रयामल उ०त०, ६/५,
३. वही, २६/१३६,
४. विज्ञान भैरव, पृ०-१,
५. सर्वोल्लास तंत्र, १/१९,
६. नारायणी तंत्र (सर्वोल्लास तंत्र, १/२९-३०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परस्पर पर्याय के समान हैं। इसकी भी पुष्टि 'रुद्रयामल' से की जा सकती है। यह ग्रन्थ शिव के योगिनीवक्त्र से आविर्भूत ६४ भैरवागमों के अन्तर्गत है। रुद्रयामल' आगम, यामल और तंत्र-तीनों विद्या का समष्टि रूप है। ६४ भैरवागमों में -भैरवाष्टक, यामलाष्टक, मताख्याष्टक, मंगलाष्टक, चक्राष्टक, शिखाष्टक, बहुरूपाष्टक और वागीशाष्टक की गणना की जाती है।[१]

यामलतंत्र की उपासना का समय एवं फल

गीता का कथन है कि सभी प्राणियों के लिए जब रात होती है तो उसमें संयमी जागता रहता है-'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'। रात में जागना और कठिन साधना का अतिशय महत्त्व है। इसलिए जिस तंत्र में यामिनीविहित कर्म हो, उसका नाम यामल तंत्र है। इसी तरह तान्त्रिक साधना गोपनीय है। शिव का गुप्त रहस्य शक्ति जानती हैं और शक्ति का गुप्त रहस्य शिव जानते हैं। इन दोनों के गुप्त रहस्य को जो जानता है, वह साधक यामलीय कहलाता है।

जो साधक कलियुग के पावन ग्रन्थ यामल को जानता है, उसके हाथ में सकल ब्रह्माण्ड है। जिसके रुद्र ज्ञानी तथा विभिन्न तंत्रों के रहस्यद्रष्टा हुए हैं, वह यामिनीविहित कर्म कौलतंत्र का साधन है।[२] यदि यामल तंत्र का पाठ-साधना न करे तो कैसे कोई साध सिद्धि प्राप्त कर सकता है।[३]

यामल प्रकार

यद्यपि यामलतंत्र ग्रन्थों का संख्या-निर्धारण दुःसाध्य है, तथापि वाराही तंत्र में अष्टलक्षणात्मक यामल तंत्रों के छः भेदों का निर्देश किया गया है[४]-आदियामल, ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, गणेशयामल और आदित्ययामल। संस्कृत विश्वविद्यालय, सरस्वती भवन में सम्प्रति कृष्णयामल नामक ग्रन्थ की भी प्राप्ति हुई है। ६४ भैरवागमों के अन्तर्गत यामलाष्टक का वर्णन है। श्रीकण्ठी संहिता में ७ यामलों का उल्लेख है-ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, स्वच्छन्दयामल, रुरूयामल, अथर्वण, रुद्र और वेताल।[५] लक्ष्मीधर सम्मत वामकेश्वर तंत्र के अनुसार भी यामलाष्टक की चर्चा है। भास्करसम्मत यामलाष्टक हैं[६]-ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, और जयद्रथयामल। विद्यापीठ के अनुसार रुद्रयामल, स्कन्दयामल, ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, यमयामल, वायुयामल, कुबेरयामल एवं इन्द्रयामल-इन आठ यामलों का उल्लेख है।[७] जयद्रथयामल में यामलों का उल्लेख इस प्रकार है[८]-ब्रह्म, विष्णु, स्कन्द, गौतमीय, रुद्र, हरि आदि। ब्रह्मयामल की एक

१. रुद्रयामल उ०त०:धर्म और दर्शन, पृ०-६४-६५
२. रुद्रयामल उ०त०, १/९१,९३.
३. वही, १/१०५
४. रुद्रयामल उ०त०, प्रस्ताविकम्, पृ०-१ (संपूर्णानन्द सं०)
५. तान्त्रिक साहित्य भूमिका, पृ०-१९.
६. वही, भूमिका, पृ०-२०
७. वही, भूमिका, पृ०-२०
८. वही, भूमिका, पृ०-२४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाण्डुलिपि नेपाल दरबार लाइब्ररी में उपलब्ध है। इसके अनुसार ८ यामल है–स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु, यम, वायु, कुबेर और इन्द्र। इनके वक्ता क्रमश हैं- स्वच्छन्द, क्रोध उन्मत्त, उग्र, काली, झंकार, शेखर और विजय।[१]

श्रीयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल और ब्रह्मयामल के बाद रुद्रयामल पाँचवाँ यामल ग्रन्थ है।[२] अन्य यामल सम्भवतः इसके परवर्त्ती रहे हों।

म०म० गोपीनाथ कविराज ने 'तान्त्रिक साहित्य' में अनेक यामल ग्रन्थों का संकेत किया है, जिसका वर्णन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है।

रूदयामल की पाण्डुलिपियाँ[३]

उपलब्ध पाण्डुलिपियों में 'रुद्रयामल' की हस्तलिखित प्रतियाँ जो प्राप्त है, उनकी संख्या 'तान्त्रिक साहित्य' ग्रन्थ के आधार पर मुख्यतः १३है। सम्भवतः कुछ और भी प्रतियाँ होंगी; किन्तु उनका पूरा परिचय नहीं प्राप्त होता। इन प्रतियों में कुछ तो विषयानुसारी हैं और कुछ स्वतन्त्र संकलन की हुई हैं। भण्डारों के नाम तथा वहाँ की क्रमसंख्या भी इसके साथ यहाँ दिखलाई गई है और उपलब्ध परिचय भी दिया गया है–

(i) बृहद्रुद्रयामल

इसके दो प्रकार लिखित रूप में उपलब्ध हैं। एक प्रति एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल के सूचीपत्र में और दूसरी नोटिसेज ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स–हर प्रसाद शास्त्री, में प्राप्त है। प्रथम प्रति में चार खण्ड हैं, जो श्रीकृष्ण–नारद संवाद रूप में है। इसके द्वितीय खण्ड में ३० और चतुर्थ में ५ अध्याय हैं। द्वितीय प्रति भी इसी प्रकार की है, जिसमें पञ्चानन–जन्म, ब्राह्मण–दण्ड, ब्राह्मण का शोकोपशमन, पूजा–प्रकाश मालिकोपाख्यान, मृतपुत्रदान, द्विजागमन, वर–प्रार्थना, नरध्वज की पुत्रोत्पत्ति, नरध्वज का परम आनन्द, यात्रा का आरम्भ, दूत–वध, वीरसेन–वध आदि वर्णित हैं।

(ii) रुद्रयामल या रुद्रयामल तंत्र

(१) इस ग्रन्थ की एक लिखित प्रति एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल के सूचीपत्र ५८६२, ५८६३ में उपलब्ध है। भैरव–भैरवी संवादरूप यह अनुत्तर एवं उत्तर भेद से दो भागों में विभक्त है। दोनों में कुल मिलाकर ५४ पटल हैं।

(२) नेपाल दरबार लाइब्रेरी में दो स्वरूपों में यह ग्रन्थ उपलब्ध है। दोनों भैरव–भैरवी संवादरूप हैं। प्रथम में ९३ पटल हैं। इसमें भैरव प्रश्नकर्त्ता और भैरवी उत्तर देनेवाली है। श्रीयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल और ब्रह्मयामल इन सब यामलों का उत्तरकाण्ड रूप यह रुद्रयामल है। ठीक यही स्थिति प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के आधारभूत ग्रन्थ

---

१. तंत्र कल्पतरू, पृ०–६६ (रुद्रयामल उ० त०: धर्म और दर्शन, पृ०–७१ पर वर्णित)

२. रुद्रयामल उ०त०, १/१–३

३. तान्त्रिक साहित्य, पृ०–५६१–६२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'रुद्रयामल उत्तरतंत्र' (संपादक डॉ० राम कुमार राय, प्रकाशन-कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण-१९८६) की है। -ने० द० २/२४६(छ)

दूसरे ग्रन्थ में कुल ३२ पटल हैं -ने०द० २/२४६ (ई)

(३) म०म० हर प्रसाद शास्त्री के 'नोटिसेज ऑफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स'-१/३२३ में एक रुद्रयामल का संकेत है। यह ६४ पटलों में पूर्ण है। इसमें आनन्दभैरव प्रश्नकर्त्ता और आनन्दभैरवी उत्तर देनेवाली हैं। इसमें यामल शब्द की व्युत्पत्ति, तंत्र का माहात्म्य निरूपण, भाव शब्द का निर्वचन, सुरापान-विधि; दिव्य, वीर और पशुभाव के भेद से भावत्रय का वर्णन है।

(४) इस ग्रन्थ की एक प्रति त्रिवेन्द्रम पुस्तकालय के सूचीपत्र-१००७ (ख) में है। महादेव-पार्वती संवाद रूप इस ग्रन्थ में कुल श्लोक संख्या-१३५ है। इसमें गायत्री महाचक्र का प्रतिपादन है।

(५) राजेन्द्र लाल मित्र के नोटिसेज ऑफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स-२९२ में ऐसी एक प्रति वर्णित है। यहय भैरव-भैरवी संवाद रूप है। ६७ पटलीय इस ग्रन्थ में कुल श्लोकों की संख्या ९००० है। इसमें प्रतिपादित विषयों में कतिपय मुख्य विषय हैं- सिद्धमन्त्र-प्रकरण, महागुरूप्रकरण, भावनिर्णय-प्रकरण, चक्रानुष्ठान-प्रकरण, कुमारीउपचर्या विन्यास-प्रकरण, कुमारी-पूजनादिनिरूपण, कुमारी-कवच, कुमारी के अष्टोत्तर शत एवं सहस्रनाम, पशुभाव-विचार, आज्ञाचक्र-संगतिसिद्ध-मन्त्र-प्रकरण, आज्ञाचक्रसार-संकेतकथन, भरणी आदि २७ नक्षत्रों के फलागम का कथन, वेद-प्रकरण, वेदभाषा-परिच्छेद, अथर्ववेद-प्रकरण, चतुर्वेदोल्लास आदि।

इस ग्रन्थ की विषयवस्तु शोध प्रबन्ध के आधार रूप रुद्रयामल उत्तरतंत्र (संपादक-डॉ० राम कुमार राय, प्रकाशन-कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, १९८६-प्रथम संस्करण) के लगभग समान है। दोनों में अन्तर यह है कि प्रस्तुत आधार ग्रन्थ में कुल ९३ पटल हैं, जबकि इस ग्रन्थ में कुल ६७ पटल हैं। श्लोकों की दृष्टि से प्रस्तुत आधार ग्रन्थ में ७८५४ श्लोक हैं, जबकि इस ग्रन्थ में कुल ९००० श्लोक हैं। सम्भवतः लगभग १२०० अतिरिक्त श्लोक या तो किसी विषय का विस्तार से वर्णन करते हों या कतिपय नवीन विषयों पर प्रकाश डाल रहे हों।

(६) इसकी एक प्रति बीकानेर पुस्तकालय के सूचीपत्र-१३०९ में उल्लिखित है। यह मौलिक तंत्र है। इसमें प्रायः सम्पूर्ण शाक्त-सिद्धान्त, ज्ञान, धार्मिक और सामाजिक रीति-रश्म, विधियाँ, जातियाँ, तीर्थ, व्रत, उत्सव आदि वर्णित हैं।

(७) इस ग्रन्थ की एक प्रति जम्मू-कश्मीर के महाराजा के निजी पुस्तकालय के सूचीपत्र में -१०७५ में उपलब्ध है। यह भैरव प्रोक्त है तथा 'उत्तरकाण्ड' रूप में सम्पूर्ण है।

(८) इसकी एक प्रति रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, जम्मू के सूचीपत्र-४९५० में उपलब्ध है। यह पूर्ण है तथा इसमें कुल श्लोक हैं-६३२७।

(९) संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तकालय, वाराणसी के सूचीपत्र-२३८४८, २५५३६ एवं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२६००८ के अनुसार इसकी तीन प्रतियाँ हैं। इनमें श्लोकों की संख्या क्रमशः १०००, ७५० एवं १४० है। प्रथम रसार्णवकल्पकथनपर्यन्त पूर्ण है तथा शेष दो अपूर्ण हैं।

(१०) 'रूदयामल तंत्र' नाम से एक लघु पुस्तिका खेमराज श्री कृष्णदास के द्वारा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित उपलब्ध होती है। चार पटलीय इस पुस्तिका में कुल २८२ श्लोक हैं। विषय वस्तु हैं -वशीकरण, स्तम्भन, उच्चाटन, निर्लज्जकरण, पंढकरण, भगबन्धन, अदृष्टकरण, पादुकासाधन, बह्वाहारकथन आदि।[१]

एतदितिरिक्कत सौन्दर्यलहरी टीका (लक्ष्मीधर), कुलप्रदीप, तारारहस्यवृत्ति, ताराभक्तिसुधार्णव, आगमतत्त्वविलास, सर्वोल्लास, कालिकासपर्याविधि, तत्त्वबोधिनी (आनन्दलहरी की टीका) तथा तंत्रसार में भी रुद्रयामल का वर्णन आया है।

(iii) रुद्रयामल (उत्तरषट्क)

(१) मद्रास राजकीय पुस्तकालय के सूचीपत्र-५७१०-११ में इसकी एक प्रति उपलब्ध है। उमा-महादेव संवादरूप यह रुद्रयामल अनुत्तर एवं उत्तर दो षट्कों में विभक्त है। उसका यह उत्तरषट्क छह पटलों में पूर्ण है। उनके विषय हैं- षट्चक्रध्यान, त्रिपुरा के मन्त्रों का निर्णय, कामतत्त्वसाधन, त्रिपुरा का ध्यान, सिद्धियाँ और विद्याकोष। ऐसी किंवदन्ती है कि मूल रुद्रयामल में कुल श्लोक सवा लाख हैं।

(२) तंजौर राजमहल पुस्तकालय के सूचीपत्र-६५५ में रुद्रयामल तंत्र की एक प्रति वर्णित है। यह धातुकल्प का प्रतिपादक तंत्र है। इसके अंत में सुवर्ण-प्रशंसा की गई है। यह पूर्वोक्त रुद्रयामल से भिन्न प्रतीत होता है।

(iv) रुद्रयामल महोत्सव तंत्र

एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल के सूचीपत्र-५८५८ में इसकी एक प्रति उपलब्ध है। यह उमा-महेश्वर संवाद रूप है।

तान्त्रिक वाङ्मय में अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिन्हें मूल रूप से रुद्रयामल तंत्र से सम्बद्ध बताया गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि उन ग्रन्थों में से किसी का भी सम्बन्ध प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के आधारभूत 'रुद्रयामल उत्तरतंत्र' से नहीं है। सम्भवतः उन सबका किसी अन्य 'रुद्रयामल तंत्र से सम्बन्ध हो। वैसे उन ग्रन्थों की सूची परिशिष्ट में प्रस्तुत की जा रही है।

रुद्रयामल उत्तरतंत्र=रुद्रयामल

'यामल' शब्द की व्युत्पत्ति पर चर्चा करते हुए बताया जा चुका है कि जो शास्त्र दो पात्रों के कथोपकथन के द्वारा विषय वस्तु का प्रवर्तन करता है, उसे यामल शास्त्र कहा जा सकता है। विवेच्य ग्रन्थ में जिज्ञासु भैरव हैं और जिज्ञासा का समाधान भैरवी करती हैं। भैरव को आनन्दभैरव तथा भैरवी को श्री भैरवी, आनन्दभैरवी तथा महाभैरवी भी कहा गया है। प्रकृत

---

१. रुद्रयामल तंत्र, खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थ में रुद्राणी स्तोत्र (४७ वाँ पटल), रुद्राणी और रुद्र का पूजा-प्रकरण रुद्र के ५१ नाम तथा रुद्राणी के नाम (४८ वाँ पटल) आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। हो सकता है, इसी आधार पर प्रस्तुत् ग्रन्थ का नामकरण 'रुद्रयामल' के रूप में हुआ हो।

जहाँ तक 'रुद्रयामल' के साथ 'उतरतंत्र' का सम्बन्ध है, उसके लिये दो बातें कही जा सकती हैं। प्रथमतः ग्रथ के प्रारम्भ में ही भैरव भैरवी से कहते हैं कि पराश्री परमेशानी रूप तुम्हारे मुखकमल से श्रीयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल और ब्रह्मयामल निःसृत हुआ और अब श्री रुद्रयामल उत्तरकाण्ड के विषय में कहो-

पराश्रीपरमेशानी वदनाम्भोजनिःसृतम्।
श्रीयामलं महातन्त्रं स्वतन्त्रं विष्णुयामलमं।।
शक्तियामलमाख्यातं ब्रह्मणः स्तुतिहेतुना।
ब्रह्मयामल-वेदाङ्गं सर्वञ्च कथितं प्रिये।।
इदानीमुत्तरकाण्डं वद श्रीरुद्रयामलम्।[1]

सम्भव है, श्रीयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल और ब्रह्मयामल सम्मिलित रूप में तान्त्रिक-साधना का पूर्वकाण्ड (पूर्वभाग) हो तथा रुद्रयामल तान्त्रिक साधना का उत्तरकाण्ड या उत्तरभाग हो। इसलिए रुद्रयामल को उत्तरकाण्ड (उत्तरतंत्र) कह दिया गया हो।

द्वितीयतः यदि हम कतिपय संकेतों के आधार पर यह मान लें कि सम्भवतः रुद्रयामल का कोई पूर्वभाग रहा हो। जैसे 'रुद्रयामल' की पाण्डुलिपियों के प्रसङ्ग में कहा गया था कि मद्रास राजकीय लाइब्रेरी के सूचीपत्र में जैसे रुद्रयामल अनुत्तर तथा उत्तर षट्कों में उपलब्ध होता है, उसी प्रकार 'रुद्रयामल उत्तररतंत्र' का भी कोई 'पूर्वभाग' हो सकता है; या फिर सर जॉन उड्रफ ने 'इन्ट्रोडक्सन टु तन्त्रशास्त्र' नामक पुस्तक में गुरू-शिष्य के लक्षणों का विवेचन करते हुए शिष्य की आयोग्यता पर चर्चा करते समय एक सन्दर्भ दिया है, जिसमें उन्होंने 'महारुद्रयामल प्रथम खण्ड तथा द्वितीय खण्ड' को उद्धृत किया है।[2] उस द्वितीय खण्ड का सन्दर्भ शोध-प्रबन्ध के आधारभूत रुद्रयामल उत्तरतंत्र से मिल जाता है, जिसमें उन्होंने निर्देश किया है कि शिष्य यदि कामुक है, परदारातुर है, पाप क्रियायुक्त है, अज्ञानी है, वेदक्रियाविहिन है; तो उसको दीक्षा के लिए नहीं स्वीकारना चाहिए।[3] इससे यह स्पष्ट होता है कि यह महारुद्रयामल द्वितीय खण्ड, रुद्रयामल उत्तरतंत्र ही है। हो सकता है इस ग्रन्थ के पूर्वभाग के रूप में महारुद्रयामल प्रथमखण्ड हो और सम्भव है उसी से अंशभूत वे ग्रन्थ संबद्ध हों, जिनकी सूची परिशिष्ट में दी गयी है। तथापि भैरव-भैरवी संवाद रूप में कोई पाण्डुलिपि रुद्रयामल पूर्वभाग या पूर्वकाण्ड के रूप में नहीं मिलती। न ही अब तक ऐसी कोई रचना प्रकाशित हुई है। इसलिए सारतः हमें यह स्वीकार करना होगा कि सम्प्रति उपलब्ध रुद्रयामल उत्तरतंत्र ही वस्तुतः रुद्रयामल तंत्र है। हम इसे केवल 'रुद्रयामल' कह सकते हैं।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १/१-३.
२. इन्ट्रोडक्सन टु तंत्रशास्त्र, पृ०-६७
३. रुद्रयामल उ०त, २/७८-८२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रयामल का काल-निर्धारण

रूदयामल में कहीं भी इसके रचना-काल का उल्लेख नहीं है। कतिपय बाह्य साक्ष्यों एवं भाषागत विशेष्ता के कारण इसका काल-निर्धारण किया जा सकता है। यामलों का प्रचार शायद दसवीं-ग्यारहवीं सदी या इससे पूर्व ही दक्षिण भारत में हो चुका था।[१] तमिलनाडु के उपलब्ध १२वीं शती ई० के कुछ ग्रन्थों से यह जान पड़ता है कि यामल द्वारा प्रस्तावित विधान वहाँ के कुछ शक्ति-मन्दिरों में प्रचलित हो चुका था और पूजा में पंचकों अर्थात् पंचमकारों अर्थात् मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा तथा मैथुन का उपयोग होने लगा था।[२]

जयद्रथयामल प्रथम षट्क की हस्तलिखित प्रति का समय ८४३ ई० के आस पास तथा चतुर्थषट्क की हस्तलिखित प्रति का समय १२ वीं सदी का उत्तरार्द्ध माना जाता है।[३] 'रुद्रयामल' का उल्लेख जयद्रथयामल में किया गया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि 'रुद्रयामल' का समय ८वीं सदी से पूर्व रहा होगा। इसकी भाषा आदि को देखकर कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ ईसा की प्रथम सदी के आस-पास प्रणीत किया गया होगा।[४] इसकी हस्तलिखित प्रति की दृष्टि से भी इसका काल ८ वीं सदी के पूर्व ठहरता है। देवी पुराण यामलों का उल्लेख करता है, जिससे यह पता चलता है कि आठवीं सदी ई० तक प्रमुख यामल रुद्र, विष्णु आदि लिखे जा चुके थे।[५]

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि लगभग ७वीं-८ वीं सदी के बीच किसी समय रुद्रयामल (उत्तरतंत्र) का प्रणयन हो गया होगा। ८ वीं सदी तक यह इतना प्रसिद्ध हो गया कि जयद्रथयामल में इसका उल्लेख करना अपरिहार्य हो गया।

रुद्रयामल की दिव्यता एवं स्वरूप-दर्शन

दिव्यता

'रुद्रयामल' केवल यामल-ग्रन्थों का ही नहीं, अपितु समग्र आगम-तंत्र ग्रन्थों का चूड़ामणि ग्रंथ है। किसी भी तंत्र में किसी न किसी रूप मं रुद्रयामल की साक्षी अवश्य मिलती है। इसलिए तो रुद्रयामल को एक पुस्तक मात्र मानने वालों को अत्यंत नराधम की संज्ञा देते हुए भगवान् शिव ने स्वयं कहा है कि-

दुर्गेयं मृण्मयी ज्ञानं रुद्रयामल-पुस्तकम्।
मन्त्रमक्षरं संज्ञानं करोत्यतिनराधमः।।[६]

---

१. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-५५
२. वही, पृ०-४९.
३. स्टडीज इन दॅ तंत्राज्, भाग-१ पृ०-११०
४. तंत्राजः स्टडीज आनॅ देयर रिलिजन एण्ड लिटरेचर, पृ०-१९.
५. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-४९.
६. चंडी विधान (रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३२ पर उद्धृत)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् दुर्गा की मूर्ति को मिट्टी की समझने, रुद्रयामल को पुस्तक मात्र समझने तथा मन्त्र को अक्षर मात्र समझने की जा धृष्टता करता है, वह अति नराधम है।

रुद्रयामल को प्रायः अनेक रूपों में पूर्वापर ग्रन्थकारों ने उद्धृत किया है। वे 'विश्वसार तंत्र, विश्वसारोद्धार तंत्र, रुद्रयामल-षट्तंत्र' आदि नामों से इसे संबोधित करते हैं।[१] इन नामों से यह समस्त तन्त्रागम ग्रन्थों का सार अथवा 'सारोद्धार' है, यह स्पष्ट प्रमाणित होता है। साथ ही इसके नाम से मिलने वाले पृथक-पृथक् प्रयोगों, स्रोतों और प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक सर्वमान्य आगम ग्रन्थ था, जो कि तन्त्र-सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करनेवाला एक 'तान्त्रिक विश्वकोश' था।

स्वरूप

आशुतोष भगवान् शिव के द्वारा कहे गए तंत्रों की संख्या ६४ कही गई है और उनमें भी 'राधाख्यं मालिनी-तन्त्रं रुद्रयामलमुत्तमम्' कहकर रुद्रयामल-तंत्र को उत्तम बतलाया गया है। इस प्रकार यामल को तंत्र की संज्ञा दी गई है।

यह ग्रन्थ तंत्र के व्यापक अर्थ में आनेवाली सभी विधाओं को भी अपने में समाहित किए हुए है। यथा, इसमें ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या से सम्बन्धित विषयों पर परिपूर्ण विवेचना की गई है। ज्ञान की मीमांसा में यहाँ आध्यात्मिक दर्शन का विस्तृत विचार प्राप्त होता है। दर्शन का प्रमुख लक्ष्य 'मोक्ष' ही तान्त्रिक साधना का चरम लक्ष्य बताते हुए साधना-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है। योग पर इसमें पर्याप्त विवेचन हुआ है। तंत्र-साधना का मूल आधार ही 'योग' सिद्ध किया गया है और 'मन्त्र-योग' की भूमिका पर कर्त्तव्य कर्मों का निर्देश किया गया है। क्रिया-ज्ञान को क्रिया रूप में विकसित करने के लिए विभिन्न क्रिया-अनुष्ठानों की पूर्ण जरूरत होती है। 'क्रियादक्षो दक्षः', 'क्रिया केवलमुत्तरम्' आदि सूक्तियाँ क्रिया की महिमा बतलाती हैं। इस प्रकार यहाँ अनेक प्रकार की प्रयोग-रूप क्रियाएँ दिखलाई गई हैं। चर्या-ज्ञान, योग और क्रिया में निरन्तरता लाना और स्वयं आचरण द्वारा उसे अनुभव में उतारना भी आवश्यक कहा गया है। इसी में पर्व, उत्सव, व्रत, याग और सामाजिक अनुष्ठान भी समाविष्ट होते हैं, जो कि रुद्रयामल में शास्त्रीय प्रमाणानुसार वर्णित हैं।

'रुद्रयामल' यामल-ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसकी सर्वशास्त्र बोधकता ही इसके श्रेष्ठत्व को उजागर करने में सर्वसिद्ध प्रमाण है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थागारों में तंत्र के नाम से प्राप्त होनेवाली पाण्डुलिपियों में रुद्रयामल से उद्धृत अंशरूप कृतियों की संख्या हजारों की संख्या में प्राप्त है। उनका इस प्रकार का संकलन सम्भवतः इसलिए किया जाता रहा कि व्यक्तिगत उपयोग में पूरे ग्रन्थ को साथ रखना सम्भव नहीं था। जो जिस इष्ट देवता की उपसना करता था, वह उतने ही अंश को अपने लिए लिख लेता था। यही कारण है कि कहीं केवल मन्त्र विधान है तो कहीं कवच, सहस्रनाम आदि। कहीं केवल स्तवराज है तो अन्यत्र

---

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यंत्र-विधान। इन सबका समन्वित रूप-क्रमिक रूप में मिलना अथवा मिल पाना भी आज तो एक कठिन श्रम-साध्य कार्य बन गया है।[१]

वाराही-तंत्र के अनुसार रुद्रयामल षड्यामलों में चौथा यामल ग्रन्थ है।[२] इसी को आदि, विष्णु और ब्रह्म यामलों के पश्चात् उपदिष्ट होने के कारण 'उत्तरतंत्र' भी कहा गया है। इसकी श्लोक संख्या का वहीं निर्देश है कि-

कालसंख्यासहस्त्राणि वेदसंख्याशतानि च।
पंचषष्टिस्तथा श्लोकाः कनिष्ठे रुद्रयामले।।[३]

इसके अनुसार ३४६५ श्लोक रुद्रयामल में बतलाए गए हैं। किन्तु यह स्थूल निर्देश मात्र है, क्योंकि 'महासिद्ध-सारस्वत तंत्र' में स्पष्ट कहा गया है कि[४] -

'न शक्यं विस्तराद् वक्तुमपि वर्षशतैरपि'।

अतः निश्चय ही 'रुद्रयामल' अत्यन्त विस्तृत ग्रन्थ रहा होगा। इसकी साहित्य-सम्पदा से भी यही प्रमाणित होता है।

इस ग्रन्थ के प्रत्येक पटल के अन्त में दी गई पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है कि-यह महातन्त्रोद्दीपन, महायन्त्रोद्दीपन तथा महामन्त्रोद्दीपन, सर्वचक्रानुष्ठान और षट्चक्रप्रकाश जैसे विभिन्न विषयों की परिधि में मुख्यतः योगशास्त्रीय साधना-विधानों से परिपूर्ण है। दक्षिण और वाम आचारों को निःशंक भाव से व्यक्त करते हुए भी यौगिक साधना पर विशेष बल दिया है और 'मन्त्रयोग' की प्रक्रिया को महत्व देते हुए कवच, स्तोत्र एवं सहस्रनाम आदि के पाठों को भी अत्यावश्यक सिद्ध किया है।

योग-साधना में सफलता प्राप्त करने में शारीरिक नैरोग्य अत्यावश्यक है। इस दृष्टिकोण से यहाँ अनेक स्थानों पर औषध-प्रयोग भी प्रदर्शित किए गए हैं और उनमें कार्य-कर्तृत्व शक्ति का आधान करने के लिए मन्त्र-जपादि के द्वारा अभिमन्त्रण का भी आदेश किया है।

इस प्रकार रुद्रयामल का स्वरूप विराट-स्वरूपात्मक है, यही कहना उचित है, पर्याप्त है और वास्तविक भी है।

रुद्रयामल का वर्ण्य-विषय

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के आधारग्रन्थ 'रुद्रयामलम्' (उत्तरतन्त्रम्); संपादक-डॉ० रामकुमार राय, प्रकाशन-कृष्णदास अकादमी, वाराणसी प्रथम संस्करण-१९८६ में कुल ९३ पटल (अध्याय) हैं, जिनमें वर्णित विषयों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

प्रथम पटल में सभी सम्भव साधनाओं, गुरू-माहात्म्य एवं दिव्यादिभाव-प्रशंसा विषय

---

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३६,
२. रुद्रयामल उ०त०, प्रथम भाग, (संपूर्णानंद संस्करण) प्रस्तावना, पृ०-१.
३. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३० पर उद्धृत
४. वही, पृ०-३७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की विवेचना की गई है। साधनाओं में रति क्रीडासाधन, सुन्दरीसाधन, महामालासाधन, महामायादिसाधन की चर्चा हुई है। गुरू की प्रशंसा में कहा गया है–

गुरूमूलं जगत्सर्वं गुरूमूलं परन्तपः।
गुरोः प्रसादमात्रेण मोक्षमाप्नोति सद्वशी।।[१]

इसी तरह वीर, दिव्य आदि भावों का वर्णन किया गया है।

द्वितीय पटल में कुलाचारविधि, पशुभाव, गुरूलक्षण, शिष्यलक्षण, दीक्षाविधि, ताराचक्र, आदि पर प्रकाश डाला गया है। गुरू-लक्षण के क्रम में कहा गया है–

'शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान्।
शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान्।।[२]

तृतीय पटल में दीक्षाचक्र-विचार, शिवचक्र एवं विष्णुचक्र का वर्णन किया गया है। राजत्व-फल की प्राप्ति के लए शिव-चक्र की साधना की जाती है।

चतुर्थ पटल में ब्रह्मचक्र, ऋणिधनिचक्र, मन्त्रदोषादि-निर्णय, रामचक्र और सूक्ष्म चक्र की चर्चा की गई है। ऋणिधनिचक्र के द्वारा शीघ्र सिद्ध होनेवाले मन्त्र की पहचान की जाती है।

पञ्चम पटल में मन्त्रसंस्कार की विवेचना की गई है। कहा जाता है कि भगवान् शिव के डमरू से सात करोड़ मन्त्रों की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में धीरे-धीरे वे अनेक प्रकार के दोषों से युक्त हो गये। मन्त्र संस्कार के द्वारा इन दोषों को दूर किया जाता है। संस्कारित मन्त्र ही अभीष्ट की सिद्धि करने में समर्थ होते हैं।

छठे पटल में पशुभाव-पूजक, सुषुम्णासाधन, कुण्डलिनी-स्तव, पशुभाव प्रशंसा, भावविद्याविधि तथा कुमारीलक्षण का वर्णन किया गया है। भावत्रय का क्रम बताते हुए कहा गया है–

आदौ भावं पशोः कृत्वा पश्चात् कुर्य्यादवश्यकम्।।
वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम्।
तत्पश्चादतिसौन्दर्य्यदिवयभावं महाफलम्।।[३]

सप्तम पटल में कुमारी पूजा के अतिशय महत्व को बताया गया है। कहा है[४]–'कुमारीपूजनं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्'। इस पूजन में जातिभेद करना स्वीकार्य नहीं है। देवबुद्धि से कुमारी की पूजा करनी चाहिए।

अष्टम पटल में कुमारी पूजा के अङ्गभूत कुमारीजप-होम, कुमारीस्तव और कुमारीतर्पण का वर्णन किया गया है।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १/२२५.
२. वही, २/५०
३. रुद्रयामल उ०त०, ६/५०-५१
४. वही, ७/२१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नवम पटल में कुमारी-कवच का स्वरूप वर्णित है। इसे भोजपत्र पर लिखकर चतुर्दशी या पूर्णिमा को हृदय स्थान में धारण करना चाहिए।[१]

दशम पटल में कुमारी के १००८ नामों की चर्चा की गई है। जो साधक इसका नित्य पाठ करते हैं, उनकी चिन्ता विनष्ट हो जाती है तथा मोक्षप्राप्ति होती है। यह परम आनन्द प्रदान करता है।[२]

एकादश पटल में भावार्थनिर्णय और दिव्य-वीर-पशुभावों का स्वरूप विवेचित हुआ है। भाव का महत्व इस प्रकार बताया गया है-

भावेन लभ्यते सर्वं भावाधीनमिदं जगत्।।
भावं विना महाकाल! न सिद्धिर्जायते क्वचित्।[३]

अंत में आज्ञाचक्र, कामचक्र, फलचक्र आदि विभिन्न चक्रों के नाम बताए गए हैं।

द्वादश पटल में कामचक्र, राशिचक्र और आज्ञाचक्रफल का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तेरहवें पटल में आज्ञाचक्रसारसंकेत का वर्णन हुआ है।

चतुर्दश पटल में नाक्षत्रिकचक्रफल की विवेचना की गई है।

पन्द्रहवें पटल में वेदप्रकरण और याज्ञिक का लक्षण वर्णित किया गया है। वेद की प्रशंसा में कहा गया है-

'वेदेन लभ्यते सर्वं वेदाधीनमिदं जगत्'।[४]

सोलहवें पटल में आज्ञाचक्रसाधना का विवेचन हुआ है।

सत्रहवें पटल में अथर्ववेद की प्रशंसा, प्राणायाम प्रणाली, वशिष्ठ ऋषि का तपस्या प्रसङ्ग, उनका महाचीन मगन तथा महाचीनाचार का विशद विवेचन किया गया है। महाचीनाचार की प्रशंसा में कहा गया है-

एतदाचारसारं हि सर्वेषामप्यगोचरम्।
एतन्मार्गं कौलमार्गं कौलमार्गात् परं न हि।[५]

अठारहवें पटल में कमचक्ररचना पर प्रकाश डाला गया है।

उन्नीसवें पटल में षट्चक्र-भेद का वर्णन किया गया है।

बीसवें पटल में आज्ञा चक्र के अनतर्गत विभिन्न सूक्ष्म चक्रों की चर्चा की गई है।

इक्कीसवें पटल में वीरभाव का माहात्म्य वर्णित है।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ९/३८
२. वही, १०/१८०,
३. वही, ११/ ४३-४४
४. वही, १५/३.
५. वही, १७/१५५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाइसवें पटल में सर्वप्रथम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों का स्वरूप वर्णित है। तत्पश्चात् योगभ्रंशकारण, योगग्रहणकाल, वीरसाधना के विधि-निषेध एवं हंस मन्त्र का वर्णन किया गया है।

तेइसवें पटल में योगियों के भोजननियम एवं अधोमुण्डासन, सर्वासन, शुभासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन आदि अनेक आसनों का स्वरूप वर्णित किया गया है।

चौबीसवें पटल में पुनः आसन का वर्णन हुआ है। तदनन्तर नरासन, शव साधना एवं जापक के विधि-निषेध का विवेचन किया गया है। कहा गया है कि शवसाधना-काल में साधक जो-जो कर्म करता है, उन्हीं कर्मों की साधना से वह अमर हो जाता है।[१]

पच्चीसवें पटल में सूक्ष्मसृष्टि-स्थितिसंहार, ब्रह्मसाधन, योगियों के सूक्ष्म तीर्थ, योगियों के जपनियम एवं अध्यात्म-ज्ञान की परिचर्चा की गई है।

छब्बीसवें पटल में सर्वप्रथम षट्चक्रभेद पर प्रकाश डाला गया है। कहा है- 'कुण्डलीध्यानमात्रेण षट्चक्रभेदको भवेत'।[२] तत्पश्चात् देवी का वीर-ध्येयरूप, योगियों के सूक्ष्मस्नान, कौलसंध्या, कौलतर्पण, मानसपूजा, मानसहोम एवं पञ्चमकारपूजा का विवेचन किया गया है।

सत्ताइसवें पटल में प्राणायामलक्ष्ण, प्रत्याहार, भावमाहात्म्य, धारणा, ध्यान, सामाधि, गणमतकथन एवं ध्यानलक्ष्य के विवरण पर प्रकाश डाला गया है।

अट्ठाइसवें पटल में मन्त्रसिद्धिलक्षण, भैरवीचक्र, भैरवीपूजा एवं कन्दवासिनी स्तोत्र का वर्णन किया गया है।

उन्नतीसवें पटल में षट्चक्रभेद-नियम, षट्चक्र-योग एवं मनोमहाप्रलय की विवेचना की गई है।

तीसवें पटल में मूलपद्मभेदन, डाकिनीसाधन एवं डाकिनीस्तोत्र की परिचर्चा की गई है। मूलाधार चक्र की अधिष्ठातृ देवी डाकिनी है। मूलाधार पद्मभेदन में डाकिनी-साधना एवं डाकिनी-स्तोत्र का पाठ सहायक है।

इकत्तीसवें पटल में भेदिनीसाधन, भेदिनीस्तोत्र, छेदिनीसाधन एवं योगिनी-स्तोत्र का वर्णन किया गया है। षट्चक्र भेदन में इनका महत्व है।

बत्तीसवें पटल में कन्दवासिनी-ध्यान एवं कन्दवासिनी स्तव की विवेचना की गई है। कुण्डलिनी-साधना में इनका विशेष महत्व है।

तेत्तीसवें पटल में कन्दवासिनी कवच का वर्णन किया गया है। ध्यानयोग में इसके पाठ से योगमार्ग व्यवस्थित होता है तथा साधक मुक्तिपद को प्राप्त करता है।[३]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, २४/९२.
२. वही, २६/२०.
३. वही, ३३/५७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीसवें पटल में पञ्चस्वरादियोग, विजयासेवनमन्त्र, नेतीयोग एवं दन्तीयोग का वर्णन किया गया है।

पैंत्तीसवें पटल में धौतीयोग एवं नेउलीयोग पर प्रकाश डाला गया है।

छत्तीसवें पटल में कुण्डलिनी के १००८ नामों का वर्णन किया गया है।

सैंत्तीसवें पटल में स्वाधिष्ठान चक्र में श्रीकृष्णसाधना का वर्णन किया गया है।

अड़तीसवें पटल में श्रीकृष्णमन्त्र, नरसिंहमन्त्र, श्रीकृष्ण का मन्त्रान्तर, श्रीकृष्ण ध्यान और श्रीकृष्णपूजा की चर्चा की गई है।

उनचालीसवें पटल में श्रीकृष्णस्तोत्र का वर्णन किया गया है। इस स्तोत्र का एक माह पाठ करनेवाला साधक स्वाधिष्ठान-चक्र में स्थिर हो जाता है।[१]

चालीसवें पटल में योग के दृढतासम्पादन पर प्रकाश डाला गया है।

इकतालीसवें पटल में राकिणीस्तोत्र का वर्णन किया गया है। राकिणी स्वाधिष्ठान-चक्र की अधिष्ठातृ देवी है। अतः षटचक्र-भेदन में इनका भी महत्व है।

बयालीसवें पटल में राकिणीसाधन, राकिणीमन्त्र और श्री कृष्ण-राकिणी के सहस्रनाम का वर्णन किया गया है।

तेतालीसवें पटल में योगरहस्य का उद्घाटन किया गया है। चौवालीसवें पटल में षट्चक्ररहस्य पर प्रकाश डाला गया है।

पैंतालीसवें पटल में मणिपुरचक्र-भेदन एवं लाकिनीशक्ति-स्तोत्र का विवेचन किया गया है। मणिपुर चक्र की अधिष्ठातृ देवी लाकिनी है। षट्चक्र-भेदन में इनका भी महत्व है।

छियालीसवें पटल में क्रियाकालादिकथन एवं मणिपुरचक्र-साधन का वर्णन किया गया है।

सैंतालीसवें पटल में रुद्राणीस्तोत्र की महिमा वर्णित है।

अड़तालीसवें पटल में रुद्राणी और रुद्र के मन्त्रोद्धार, रुद्र-रुद्राणी के पूजा-प्रकरण, रुद्र के ५१ नाम, रुद्राणी के नाम, ऋष्यादिन्यास, श्रीकण्ठन्यास, पञ्चमूर्तिन्यास, कलान्यास, पञ्चमन्त्रन्यास, मृत्युञ्जयविधि, पीठन्यास, मृत्युञ्जयऋष्यादिन्यास, कराङ्गन्यास, मृत्युञ्जयध्यान और मृत्युञ्जयपूजा का वर्णन किया गया है।

उनचासवें पटल में मृत्युञ्जयस्तोत्र की चर्चा की गई है। इस स्तोत्र के पाठ से साधक मणिपुर-साधना में सफल होता है तथा जीवन्मुक्त होता है। देहान्त पर वह परम निर्वाण को प्राप्त करता है।[२]

पचासवें पटल में लाकिनी-स्तोत्र का गुणगान किया गया है।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ३९/३१

२. वही, ४९/३२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इक्यावनवें पटल में विविध सिद्धि-लाभ प्रसङ्ग, योगाङ्ग-शुद्धि में पञ्चासवविधान, पञ्चासवशोधन और विजयाशोधन का वर्णन किया गया है।

बावनवें पटल में लाकिनी-महामृत्युञ्जय स्तोत्र, आसवशुद्धि का परिमाणान्तर, मन्त्रान्तर एवं स्तोत्र का विवेचन किया गया है।

तिरपनवें पटल में मणिपुर में मन्त्रचैतन्य तथा मणिपुर-मन्त्र-देवता का ध्यान वर्णित है।

चौवनवें पटल में अमरापञ्चकसाधन, नेती क्रिया धौतीक्रिया, नेउलीक्रिया, दन्तीक्रिया, नाडीक्षालनक्रिया, स्नानक्रिया तथा संध्यावंदनादिक्रिया का वर्णन किया गया है।

पचपनवें पटल का वर्ण्य विषय है-पञ्चासव-शोधनक्रिया और अमराशोधन।

छप्पनवें पटल में कायवश्य का वर्णन किया गया है।

सत्तावनवें पटल में हृत्पद्मादि का प्रकारप्रश्न हृतपद्मध्यान और अनाहतपद्मविन्यास वर्णन किया गया है।

अठावनवें पटल में काकिनी-पूजा का विवेचन किया गया है। काकिनी अनाहत चक्र की अधिष्ठातृ दवी है। अतः षट्-भेदन में इनका अतिशय महत्त्व है।

उनसठवें पटल में काकिनी मन्त्रोद्धार तथा काकिनीध्यान का वर्णन किया गया है।

साठवें पटल में काकिनीस्तोत्र, कुण्डलीगमनविज्ञान, कण्ठपद्मादिभेदन विज्ञान कण्ठपद्मादि-वर्णध्यान एवं बिन्दुस्थिरीकरण की विवेचना की गई है। वीर्यपात् का निषेध करते हुए कहा गया है-

यावद् बिन्दु स्थिरो देहे तावन्मृत्यु भयं कुतः?।।
बिन्दुपाताद् भवेन्नाशस्ततो हि बिन्दुरक्षणम्।[१]

इकसठवें पटल में शाकिनी दवी का ध्यान एवं मन्त्रोद्धार वर्णित है। शाकिनी विशुद्ध चक्र की अधिष्ठातृ देवी है। अतः षट्चक्रभेदन में शाकिनी देवी का महत्त्व है।

बासठवें पटल में शाकिनीपूजा, शाकिनीध्यानान्तर, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, पूजाप्रारम्भ और प्रणाम-प्रदक्षिणा का वर्णन किया गया है।

तिरसठवें पटल में साधनरहस्य कं अन्तर्गत ईश्वर स्तोत्र का विवेचन किया गया है।

चौसठवें पटल में काकिनीश्वरसहस्रनामस्तोत्र का विवेचन किया गया है।

पैंसठवें पटल में काकिनी-गुरूदेव का मन्त्रोद्धार वर्णित है।

छियासठवें पटल में ईश्वरसम्मोहनकवच की विवेचना की गई है।

सड़सठवें पटल में सर्वेन्द्रियनिग्रहोपाय, कण्ठसञ्चार-विधि, राक्षसी-क्रिया, राक्षसीचीन-साधना एवं कुलदेवीपूजाप्रकार का वर्णन किया गया है। कहा गया है कि चीनाचार राक्षसियों की साधना से ही सिद्ध होता है। अठारह प्रकार के चीनाचार का यहाँ वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[२]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६०/८३-८४.
२. वही, ६७/५६-५७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अड़सठवें पटल में शाकिनी-सदाशिव की अर्चना का वर्णन किया गया है।

उनहत्तरवें पटल में शाकिनी-पूजन का विधान वर्णित है।

सत्तरवें पटल मं शाकिनी स्तात्र का महिमा-मंडन है।

इकहत्तरवें पटल में स्वर-वर्णों का ध्यान वर्णित है।

बहत्तरवें पटल में श्रीभुवनमङ्गलमहास्तोत्र तथा उनके १००८ नाम व माहात्म्य वर्णित हैं।

तिहत्तरवें पटल में श्रीशाकिनीमहाशिवकामनामहाकवच का वर्णन किया गया है। इसके पाठ से साधक के हाथ में भोग और मोक्ष दोनों उपलब्ध हो जाते हैं।[१]

चौहत्तरवें पटल में सदाशिव का ध्यान एवं वटुक की अर्चना का विवेचन किया गया है।

पचहत्तरवें पटल में काली की स्तुति की गई है-

कपाला मुण्डमालाढ्या शववाहनवाहना।
ललज्जिह्वा सरोजाक्षी चन्द्रकोटिसमोदया।।[२]

छिहत्तरवें पटल मं वाणीगीत का वर्णन किया गया है।

सतहत्तरवें पटल में प्रासादमन्त्रकवच और उसके माहात्म्य की विवेचना की गई है।

अठहत्तरवें पटल में सिद्धसभा-स्वरूप का वर्णन किया गया है।

उन्नासीवें पटल में काकिनीकवच और शाकिनीकवच का उल्लेख किया गया है।

अस्सीवें पटल में सदाशिवकुलचक्रक्रम का वर्णन किया गया है।

इक्यासीवें पटल में सिद्धकुलचक्रक्रम वर्णित है।

बयासीवें पटल में कामनासिद्धिमङ्गल पर प्रकाश डाला गया है।

तिरासीवें पटल में हाकिनी कूटमन्त्र, हाकिनी देवी के मन्त्रोद्धार एवं उनकी पूजा-साधना का विवरण प्रस्तुत किया गया है। हाकिनी आज्ञाचक्र की अधिष्ठातृ देवी है। अतः षट्चक्रभेदन में इनका अतिशय महत्त्व है।

चौरासीवें पटल में हाकिनी-परशिव की पूजा में भ्रूपद्मसप्तग्रंथि-भेद का वर्णन किया गया है।

पचासीवें पटल में हाकिनी-परशिव का पूजन वर्णित है।

छियासीवें पटल में हाकिनीस्तोत्र का वर्णन किया गया है। इस स्तोत्र के पाठ से साधक अनायास ही आज्ञाचक्र में स्थिर हो जाता है।[३]

सत्तासीवें पटल में हाकिनीशक्तिकवच की विवेचना की गई है।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ७३/७७.
२. वही, ७५/५.
३. वही, ८६/२७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अट्ठासीवें पटल में परनाथकवच का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसका १०८ बार जाप करने से साधक को पुरश्चर्याफल प्राप्त होता है।[1]

नवासीवें पटल में हाकिनी के अष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्र का वर्णन किया गया है।

नब्बेवें पटल में परनाथ के १००८ नामों का निर्देश किया गया है।

एकानवे पटल में पराशक्तिनिर्मूलस्थाननिर्णय का विवेचन हुआ है।

बयानवे पटल में वाराणसी-पीठनाथान्तयजन पर प्रकाश डाला गया है।

पटल संख्या तिरानवे में वाराणसीपञ्चपीठपद्धति के बारे में सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

• • •

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ८८/४०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीय अध्याय

रुद्रयामल और तान्त्रिक विलक्षणता

संवाद-शैली का रहस्य

तंत्र की कतिपय विलक्षणताएँ हैं, जो प्रायः सभी तंत्र ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे प्रायः सभी हिन्दू तंत्र ग्रन्थ, विशेषतः शैव, शाक्त एवं कौल शाखा के ग्रन्थ, संवाद रूप में मिलते हैं; जिनमें भैरव-भैरवी, शिव-देवी के संवाद रूप में विषय का प्रवर्तन होता है। इसी प्रकार गुरू की चर्चा, दीक्षा-विवेचन, समानता एवं सहजता तथा पञ्चमकार-ऐसे विषय या आयाम हैं, जो प्रायः हर तंत्र शास्त्र में परिलक्षित होते हैं। इसलिए इन तत्त्वों को तंत्र की विलक्षणता माना जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

संवाद-शैली का रहस्य

पारम्परिक रूप से तंत्र संवाद के रूप में मिलते हैं, जिसमें शिव स्वयं गुरू हैं।[१] अधिकांश यामलग्रन्थ भैरव-भैरवी, शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी के कथोपकथन से युक्त हैं। युगल देवशक्तियाँ परस्पर प्रश्नोत्तर के द्वारा विषय प्रवर्तन करती हैं।[२] रुद्रयामल (उत्तरतंत्र) में भैरव जिज्ञासु हैं और भैरवी उनकी जिज्ञासा का समाधान करती हैं। यह संवाद शुष्क नहीं सरस है, यह दो प्रेमियों की भाषा है, यह उनका युगल गीत है। उनके संबोधन निराले हैं। भैरव बड़े प्रेम से सम्बोधित करते हैं-'अथ भावं वद श्रीदे'![३] 'वद कान्ते'![४] आदि। भैरवी का भी ढंग अनूठा है। कहती हैं-

'पशुनाथ! वीरनाथ! दिव्यनाथ! कृपानिधे।
प्रकाशहृदयोल्लास! चन्द्रशेखर! तत् श्रृणु'।।[५]
श्रृणु नाथ![६] आदि

प्रायः सभी तंत्रग्रन्थ ऐसे ही प्रारम्भ होते हैं। यह ढंग क्यों? यह बहुत अर्थपूर्ण है। यह

---

१. गोपीनाथ कविराज, पृ०-६७.

२. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-९५.

३. रुद्रयामल उ०त०, ६/१.

४. वही, १०/१

५. वही, ६/३.

६. वही, ८/४०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवाद एक गुरू और शिष्य के बीच नहीं होता है, यह संवाद घटित होता है दो प्रेमियों के बीच। तंत्र इसके द्वारा एक बहुत अर्थपूर्ण बात का संकेत करता है कि गहराई की शिक्षा तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक दोनों के, शिष्य और गुरू के बीच प्रेम का सम्बन्ध न हो। शिष्य और गुरू को गहरे प्रेमी होना पड़ेगा। तब और तभी ऊँचाई को, पार को अभिव्यक्त किया जा सकता है, प्रगट किया जा सकता है।[१] इसलिए यह प्रेम की भाषा है। शिष्य के लिए प्रेम के भाव में होना जरूरी है, लेकिन इतना काफी नही है। दो मित्र भी प्रेम में हो सकते हैं। तंत्र कहता है कि शिष्य में प्रेम के अतिरिक्त ग्राहकता होनी जरूरी है। शिष्य होने के लिए स्त्री होना जरूरी नहीं है, लेकिन उसके लिए स्त्रैण-ग्राहकता का भाव अनिवार्य है।[२] स्त्रैण ग्राहकता का अर्थ है- गहरे में गर्भ जैसी ग्राहकता। .....स्त्री कोई चीज़ ग्रहण ही नहीं करती है; जिस क्षण ग्रहण करती है, उसी क्षण वह चीज़ उसके शरीर का भाग बन जाती है। .....स्त्री गर्भ धारण करती है और गर्भाधान के साथ बच्चा स्त्री के शरीर का अंश बन जाता है। वह विजातीय नहीं रहा. ....आत्मसात कर लिया गया। ....बच्चा ग्रहीत ही नहीं होता, स्त्रैण शरीर सृजनात्मक हो जाता है और बच्चा बढ़ने भी लगता है।[३] शिष्य को गर्भ जैसी ग्राहकता की जरूरत है। जो कुछ भी ग्रहण किया जाए, उसे मृत ज्ञान की तरह इकट्टा नहीं करना है, उसे ग्राहक के भीतर बढ़ना चाहिए, उसे उसका रक्त, हड्डी, मांस-मज्जा ही बन जाना चाहिए और यही वृद्धि ग्राहक को रूपान्तरित करेगी।

आधुनिक मनोविज्ञान, विशेषकर गंभीर मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य पुरूष और स्त्री दोनों है। प्रत्येक उभयलिङ्गी है, उसमें दोनों यौन मौजूद हैं। मश्चिम में यह खोज हाल की घटना है, लेकिन तंत्र के लिए हजारों साल से उसकी एक बुनियादी धारणा रही है।[४] शिव का अर्धनारीश्वर-चित्र इसका प्रमाण है। इसलिए देवी प्रिया ही नहीं है, शिव की अर्धाङ्गनी है। भैरवी भैरव की अर्धाङ्गनी है। और जब तक शिष्य गुरू का दूसरा अर्धांग नहीं बन जाता, ऊँचाई की शिक्षा, गुह्य-विधियों की शिक्षा नहीं दी जा सकती।[५] ऐसी स्थिति में संदेह बचता ही नहीं। तब गुरू की शिक्षा शिष्य में वृद्धि पाती है।

यही कारण है कि तंत्र प्रेम की भाषा में लिखा गया।....भाषा दो प्रकार की है: तर्क की भाषा और प्रेम की भाषा। दोनों में बुनियादी भेद है। तर्क की भाषा आक्रामक, विवादी और हिंसक होती है।[६] इस भाषा के द्वारा दूसरे से अपनी बात मनवाने की, उसे अपने पक्ष में लाने की, उसे खिलौना बनाने की कोशिश की जाती है। तर्क की भाषा अहंकेन्द्रित होती है। इसमें तर्क करने वाला हमेशा अपना पक्ष सही और दूसरे का पक्ष गलत सिद्ध करने में लगा होता है।

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-७-८
२. वही, पृ०-८
३. वही,
४. वही,
५. वही,
६. वही, पृ०-९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वस्तुतः दूसरे से कोई मतलब नहीं होता, मतलब केवल अपने अहंकार से रहता है और तर्क करने वाला मानकर ही चलता है कि उसका अहंकार हमेशा सही होता है। प्रेम की भाषा सर्वथा भिन्न होती है; वहाँ व्यक्ति को अपनी नहीं, प्रेमी की चिन्ता है। वहाँ व्यक्ति को कुछ सिद्ध करने की नहीं पड़ी है, अपने अहंकार को मजबूत नहीं बनाना है, वहाँ प्रेमी की सहायता करना ही अभीष्ट है। यह करूणा है जो प्रेमी को बढ़ने में, बदलने में, उसके पुनर्जन्म में सहयोगी होना चाहती है।

दूसरी बात, तर्क सदा बौद्धिक होता है। उसमें तर्क और सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं, दलीलें अर्थपूर्ण हैं। प्रेम की भाषा में क्या कहा जाये, यह महत्त्व का नहीं है, कैसे कहा जाय, महत्त्व का है। शब्द महत्वपूर्ण नहीं है; महत्वपूर्ण है उसका अर्थ, उसका सन्देश। यह हृदय से हृदय की गुफ़्तगू है, मन से मन का वाद-विवाद नहीं। यह विवाद नहीं संवाद है, सहभागिता है।[१] इसलिए यह दुर्लभ घटना है कि पार्वती शिव की गोद में बैठकर पूछती है और शिव उत्तर देते हैं या प्रेमालिङ्गन में भैरव भैरवी से पूछते हैं और भैरवी उत्तर देती हैं। यह प्रेम संवाद है, प्रेमालाप है। इसमें कहीं कोई द्वन्द्व नहीं है शिव या भैरवी मानों स्वयं से बोल रहें हों।

प्रेम की भाषा पर यहाँ जोर इसलिए है कि अगर शिष्य अपने गुरू को प्रेम करता है तो समूचा दर्शन, समूचा परिदृश्य ही दूसरा हो जाता है। तब शिष्य गुरू के शब्द नहीं सुनता, तब वह गुरू को पीता है। तब शब्द अप्रासंगिक हो जाते हैं, तब शब्दों के बीच का मौन महिमावान् हो उठता है। गुरू जो कुछ कहता है, वह अर्थपूर्ण हो सकता है, नहीं भी हो सकता है, उसमें असली चीज़ उसकी दृष्टि है, मुद्रा है, असली चीज़ उसकी करूणा है, प्रेम है।[२] और जब कोई गहरे प्रेम में होता है, तब उसका मन विसर्जित हो जाता है। तब कोई अतीत नहीं रहता है, न ही कोई भविष्य; वर्तमान का क्षण ही सब कुछ हो जाता है। प्रेम में वर्तमान ही मात्र समय होता है।

इसलिए तंत्र की एक निश्चित अवस्था है, ढंग है।...दलील के लिए उसमें जगह नहीं है; शब्दों का वहाँ अपव्यय नहीं है। उसमें तथ्यों के सीधे-सादे वक्तव्य हैं, जो तारनुमा भाषा में संक्षिप्त रूप में कहे गए हैं। उसमें किसी से मनवाने का आग्रह नहीं है, मात्र बताने की बात है।[३]

इस प्रकार तंत्र की संवाद-शैली का अतिमहत्त्व है।

गुरू-गरिमा

तंत्र में गुरू की अतिशय महिमा है। मद्य से लेकर मैथुन तक तंत्र में सब कुछ स्वीकृत है। इसलिए गुरू की महत्ता और बढ़ जाती है। गुरू के निर्देशन में ही इनका उपयोग किया जा सकता है। इसी तरह दीक्षा, कुण्डलिनी-साधना आदि गुरू के बिना सम्भव नहीं है।

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-९.
२. वही,
३. वही,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार और 'रू' शब्द का तात्पर्य है उसके दूर करने वाले से। अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने के कारण 'गुरू' नाम पड़ा। गकार सिद्धि-दायक, रेफ पाप-दाहक कहा गया है। उकार को विष्णु कहा है। इस प्रकार 'गुरू' तीन शक्तियों से युक्त परम आत्मा है। गकार ज्ञान-सम्पत्ति का बोधक है, रेफ उसे प्रकट करता है और उकार शिव से तादात्म्य कराता है:-गुप्त आगम के अर्थ तत्त्व का संधान करने से और उसका उद्‌बोधन करने से तथा रुद्रादि देव-स्वरूप होने से गुरू कहा गया है।[१] गुरू सेतु है साधक और शिव के बीच। विश्वसारतंत्र में कहा है-

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।[२]

धर्म जीते जी मरने की और पुनरूज्जीवित होने की कला है। इसलिए गुरू को हमने तीनों नाम दिए- ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्मा का अर्थ है जो बनाए, विष्णु का अर्थ है जो सँभाले, महेश का अर्थ है जो मिटाए, सद्‌गुरू वही है जो तीनों कलाओं को जानता है।[३] बिना मिटाए इस जीवन में कुछ निर्मित नहीं होता। एक बहुत प्राचीन सूत्र है- 'आचार्यो मृत्युः'। वो जो आचार्य है, वो जो गुरू है, वो मृत्यु है। पृथ्वी के किसी और कोने में किसी ने भी गुरू को मृत्यु नहीं कहा है। हमने गुरू को मृत्यु कहा, मृत्यु को गुरू कहा। मृत्यु को जिसने पहचान लिया, उसने अमृत को पहचान लिया। सद्‌गुरू के पास मृत्यु को जानना, मृत्यु को जीना, मृत्यु में गुजरना, यही साधना है।[४] जो आत्म-स्वरूप के ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित कर व्यक्ति के अनेक जन्मों से प्राप्त कर्म-फल रूपी ईंधन को भस्मसात् कर देते हैं, उन श्री गुरू को नमस्कार है।[५] इसलिए सद्‌गुरू के पास तो हिम्मतवर लोग ही जा सकते हैं; जिनको मरने की तैयारी हो, जो मिटने को राजी हों। सांत्वना के लिए जो जाते हैं सद्‌गुरू के पास, उनको पंडित-पुरोहितों के पास जाना चाहिए, वो उनका धंधा है। ....सद्‌गुरू के पास तो मरना भी सीखना होता है और जीना भी सीखना होता है; और जीते जी मर जाना यही ध्यान है, यही सन्यास है।[६] ये तीन घटनाएं सद्‌गुरू के पास घट जाएं तो चौथी घटना साधक के भीतर घटती है। इसलिए उस चौथे को भी हमने सद्‌गुरू के लिए स्मरण में कहा है- 'गुरू साक्षात् पर ब्रह्म'। तब साधक को पता चलता है कि जिसके पास बैठे थे, वो कोई व्यक्ति नहीं था; वह तो था ही नहीं, उसके भीतर परमात्मा ही था।[७] और जिस दिन साधक गुरू के भीतर परमात्मा को देख लेता है, उस दिन अपने भीतर भी परमात्मा को देख लेता है; क्योंकि गुरू तो दर्पण है। उसमें साधक को अपनी ही झलक दिखाई पड़ती है। तीन चरण हैं; चौथी मंज़िल है और सदगुरू के पास चारों

---

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, १७वॉ उल्लास, पृ०-८८.
२. विश्वसार तंत्र, (श्री गुरू तंत्र, पृ०-३५ पर उद्‌धृत)
३. जो बोलैं तो हरि कथा, ७वॉ अध्याय
४. वही
५. श्री गुरू तंत्र, पृ०-३७
६. जो बोलैं तो हरि कथा, ७ वॉ अध्याय
७. वही,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कदम पूरे हो जाते हैं- तस्मै श्री गुरवे नमः। इसलिए गुरू को नमस्कार, इसलिए गुरू को नमन, इसलिए झुकते हैं उसके लिए।[१] उस करूणानिधि को जो श्वेतपद्मनिवासी है, जिसका हृदय कमल के समान निर्मल है या जो कमल की तरह जगत् में रहते हुए भी जगत् से अछूता है, जिसने सारे भय को दूर किया है, जो ब्रह्म-भाव की उपलब्धि में हेतु बना, उत्प्रेरक बना, उस गुरू को नमस्कार, उसके लिए सिर झुका है।[२] जो साक्षात् ब्रह्मरूपी परमेश्वर है, निराकार आत्मा है, जो महाविद्या-महामन्त्र का दाता है, जिसने सभी सिद्धियाँ प्रदान की हैं, उस गुरूदेव के चरण में प्रणाम-

आत्मानं सनिराकारं साकारं ब्रह्मरूपिणम्।
महाविद्यामहामन्त्रदातारं परमेश्वरम्।
सर्वसिद्धिप्रदातारं गुरूदेवं नमाम्यहम्।।[३]

सद्गुरू अपनी अनन्त करूणा द्वारा प्रेरित होकर पूर्ण ज्ञानशक्ति और पूर्ण क्रिया-शक्ति के प्रभाव से अनादिकाल के बँधे जीव को जगा देते हैं और उसकी आँखों का परदा हटाकर उसे शिवपद पर स्थापित करते हैं।[४] यह अखण्डपद है। यह अखंडपद मायिक जगत्, मायातीत विशुद्ध ज्योतिर्मय जगत् एवं अनन्त शक्तिमय महामाया जगत् और उसके भी परे शक्ति जगत् समन्वित अखण्ड मण्डलाकार प्रकाश है।...विशुद्ध ज्ञानचक्षु के उन्मीलन से अखण्ड रूप में यह अद्वैत सत्ता स्रष्टा के साथ अनित्य भाव से खुल जाती है। जिन्होंने अपनी महिमा और अपार करूणा से दस अखण्ड सत्ता से अभेद की उपलब्धि का द्वार खोला है, वही गुरू है, वही नमस्य है-[५]

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम।
तत्-पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।[६]

अर्थात जो अखण्डमण्डलाकार चराचर विश्व में व्याप्त है, उस परम पद ब्रह्म का ज्ञान करवा दे वही गुरू है और जो अज्ञानतिमिर से अन्धी हुई शिष्य की आखों को ज्ञानरूप अञ्जनशलाका से खोल दे, वही गुरू है।

'गुरू' शब्द बड़ा अर्थवान है। शिक्षक में वह अर्थवत्ता नहीं। शिक्षक वह है जिसने एक चीज़ पर विद्वता हासिल कर ली है। वह एक लंबे प्रशिक्षण से गुजरा है, अनुशासित हुआ है- तब एक शिक्षक हुआ। गुरू पूर्णतया इससे भिन्न है। 'गुरू' का अर्थ है-भारी, बहुत भारी-ऊर्जा से भारी, दिव्यता से भारी, एक गर्भवती स्त्री के समान भारी।[७]

१. जो बोलैं तो हरि कथा, ७ वॉ अध्याय
२. रुद्रयामल उ०त०, २/२४-२५.
३. वही, २/३३.
४. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, पृ०-४५.
५. वही, पृ०-४६.
६. रुद्रयामल उ०त०, २/२२-२३.
७. तंत्रा : द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिग, पृ०-१४५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरू में ईश्वर अन्तर्निहित है। यही कारण है कि भारत में हम गुरू को साक्षात् भगवान् (पर ब्रह्म) कहते हैं। पाश्चात्य देश इसे नहीं समझ सकता, क्योंकि उनके ईश्वर से तात्पर्य विश्व का स्रष्टा होता है। हमें स्रष्टा की बहुत चिन्ता नहीं होती। हम गुरू को ही भगवान् कहते हैं; क्योंकि वह दिव्यता से भारी है। वह उड़ेलने को तैयार है, केवल साधक की प्यास एक प्यासी धरती की आवशकता है। गुरू दिव्य ऊर्जा से भारी है। अब वह अनन्त ऊर्जा हो गया है; वह असंख्य शिष्यों को ऊर्जा दे सकता है। वह अकेले हजारों शिष्यों के साथ प्रयोग कर सकता है और वह कभी खाली, कभी रिक्त नहीं हो सकता; क्योंकि वह अब पूर्ण से जुड़ गया है, उसने पूर्ण का स्रोत पा लिया है।[१] ईश्वर के प्रति समर्पण करना मुश्किल है, क्योंकि साधक नहीं जानता कि ईश्वर कहाँ हैं। उसने कभी अपना पता भी किसी को नहीं बताया है। लेकिन गुरू को खोजा जा सकता है।... गुरू ईश्वर का पता है।[२]

गुरू साधक को मोक्ष नहीं दे सकता, किन्तु यह उसे इसके बहुत किनारे तक ला सकता है। मोक्ष तो साधक को ही प्राप्त करना है। वह केवल आशीर्वाद दे सकता है। किन्तु उनका आशीर्वाद एक महत्वपूर्ण घटना बन जाती है।.....उनके द्वारा साधक भविष्य देख सकता है। उनके द्वारा वह अपने अदृष्ट के प्रति जागरूक हो सकता है। गुरू के द्वारा शिष्य जन्म लेना प्रारम्भ करता है, जैसे एक बीज आकाश की तरफ अंकुरित होना प्रारम्भ करता है।[३] जब एक शिष्य पूरी श्रद्धा से गुरू के चरणों में झुकता है, तो कुछ घटता है जो आँख के लिए अदृश्य है। एक ऊर्जा गुरू से प्रवाहित होती है और शिष्य में प्रविष्ट होती है।[४] योगवाशिष्ठ के निर्वाण-प्रकरण में कहा है कि-'जो दरस, परस और शब्द के द्वारा शिष्य की देह में शिवभाव के आवेश को जगा सकते हैं, वही देशिक या गुरू है।[५] गुरू की अनुकम्पा मात्र से सिद्धि प्राप्त होती है।[६] गुरू की कृपा से महान शक्तितोष की प्राप्ति होती है। साधक को शक्तितोष मात्र से ही मोक्ष की उपलब्धि होती है। सम्पूणर्प जगत् का मूल गुरू ही है, सभी तपस्याओं का मूल गुरू है, गुरूकृपा मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए गुरू की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, न ही उनसे प्रतिवाद करना चाहिए। गुरू की आज्ञा का पालन सर्वदा सेवक की भाँति करना चाहिए। गुरूक्त कार्यों को कभी भी उपेक्षित नहीं करना चाहिए।[७] गुरू को अपनी क्षमता के अनुसार भोज्य-वस्तु प्रदान की जाय तो क्षुद्र वस्तु भी महान् हो जाती है, किन्तु यदि गुरू के प्रति श्रद्धा नहीं है तो सर्वस्व दान भी नारकीय है। गुरू-भक्ति से परे कुछ भी नहीं है। गुरू-पूजा के बिना करोड़ों पुण्य बेकार ही हैं-

---

१. तंत्रा : द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिग, पृ०-१४६.
२. वही,
३. वही, पृ०-१४४
४. वही, पृ०-१४६.
५. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, पृ०-५६ पर सन्दर्भित।
६. रुद्रयामल उ०त०, १/१९१.
७. वही, १/२२४-२२७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वल्पैरपि महत्तुल्यं भुवनाद्यं दरिद्रताम्।
सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरूभक्तिविवर्जितः।।
नरकान्तमवाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम्।
गुरूभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः।
गुरूपूजां विना नाथ। कोटिपुण्यं वृथा भवेत्।।[१]

जन्म के कारण माता-पिता पूजनीय हैं, किन्तु धर्म और अधर्म में अन्तर दिखाने के कारण गुरू विशेष रूप से पूजनीय हैं। गुरू ही माता है, पिता, देवता, गति है; शिव के रूष्ट होने पर गुरू रक्षा करते हैं, किन्तु गुरू के रूष्ट होने पर कोई उपाय नहीं है।[२] इसलिए मनसा, वाचा, कर्मणा गुरू के हित के प्रति जागरूक रहना चाहिए। गुरू ही माता-पिता, स्वामी, बांधव, सुहद और शिवरूप है। ऐसा ध्यान करके सर्वात्मन् गुरू का नित्य भजन कीर्तन करना चाहिए। सभी भावों में गुरू भी एक भाव है। गुरू कथनों में कोई शंका नही होनी चाहिए। संदेह रहने पर गुरू का वाक्य फलदायी नहीं होता। संदेहविहीन सर्वत्यागी व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है और वह महीने भर में ही खेचरत्व की अवस्था तक उठ जाता है।[३]

सद्गुरू और असद्गुरू

गुरू तो तटस्थ शब्द है।....... गुरू मिथ्या भी हो सकता है, सच्चा भी हो सकता है। सद्गुरू का अर्थ है, सच्चा गुरू। मिथ्या गुरू वह है जो बातें सुन्दर कर रहा है, लेकिन बातें सब उधार हैं- अपनी नहीं, निज की नहीं, स्वानुभव की नहीं।.... मिथ्या गुरू वह है जो किसी परम्परा को पीट रहा है। सद्गुरू वह है जो अपने अन्तःकरण से बोल रहा है, जिसकी अन्तश्चेतना आविर्भूत हुई है, फूली है; जिसके अन्तरतम में वसंत आया है; जो किसी वेद का या किसी धम्मपद का या किसी कुरान का उद्धरण नहीं दे रहा है; जो स्वयं अपनी बातों का प्रमाण है, गवाह हैं।......जिसने अपनी आँखों से स्वयं का साक्षात्कार किया है; जो उतरा है अपने अन्तरतम की सीढ़ियों पर; जिसने अपने भीतर छिपे हुए जीवन का स्वाद लिया है- वह सद्गुरू है। जिसके भीतर का दीया जला है।[४]

असद्गुरू वह है जो हाथ में एक जले हुए दीये की तस्वीर लिये है और सद्गुरू वह है जिसके हाथ में जला हुआ दीया है।[५] फिर दीया चाहे मिट्टी का ही क्यों न हो और तस्वीर चाहे सोने की ही क्यों न हो, तो भी मिट्टी के दीये से रोशनी मिलेगी, तस्वीर से नहीं।[६]

सद्गुरू का मतलब साक्षात् परमेश्वर अथवा अनुग्रह-प्राप्त उन्हीं के साधर्म्यापन्न

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १/२४३-२४५
२. वही, २/६४-६५.
३. वही, २/६६, २/७२-७६.
४. मन ही पूजा मन ही धूप, पृ०-१११.
५. वही, पृ०-१११.
६. वही, पृ०-११२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवनन्मुक्त अधिकारी पुरूष समझना होगा। यह अधिकारी देवता, सिद्ध और मनुष्य तीनों ही हो सकते हैं।[१] सिद्ध योगी होने के नाते जो योगी और ज्ञानी दोनों ही होते हैं, वही सद्‌गुरू हैं। वह विज्ञान दान करते हैं, इसलिए शिष्य के भोग और मोक्ष दोनों का ही विधान कर सकते हैं। पूर्णत्व उन्हीं की कृपा से पाया जा सकता है।[२] जो गुरू अखण्ड पद पर प्रतिष्ठत नहीं कर सकते, वह गुरू के रूप में परिचित होते हुए भी सद्‌गुरू नहीं है।[३]

सद्‌गुरू से सम्बन्ध जोड़ने के लिए बड़ा साहस चाहिए, बड़ी हिम्मत चाहिए; क्योंकि हो सकता है वह जो बात कहे, वह परम्परा के विपरीत जाय। जायेंगी ही, क्योंकि वह परम्परा का सहारा लेकर किसी का शोषण नहीं करना चाहता। उसकी बातें औपचारिक नही हैं। उसकी बातें तात्त्विक हैं। वह सत्य का उद्‌घाटन करना चाहता है। वह केवल शिष्टाचार नहीं निभाना चाहता।......तथाकथित पंडित-पुरोहित असद्‌गुरू हैं- शिष्टाचार निभा रहे हैं। मन्दिर में घंटी भी बजा आते हैं, पूजा का थाल भी उतार लेते हैं। न हृदय में कोई पूजा है न प्राणों में कोई भाव है। ....सद्‌गुरू का अर्थ होता है-सत्य को अनुभूत, प्रबुद्ध, जाग्रत; जो जिन हो गया, जिसने अपने को जीता; जो बुद्व हो गया, जिसने अपने को पहचाना। असद्‌गुरू का अर्थ होता है-शास्त्रीय, पाखण्डी, औपचारिक। उसके पास कोई संपदा नहीं है।[४]

असदगुरू ने स्वयं अनुभव नहीं किया है, लेकिन एक बात उसकी समझ में आ गयी है कि सत्य की लोगों में प्यास है और सत्य का व्यवसाय किया जा सकता है। और असद्‌गुरू सस्ते में सत्य देने को राजी हो जाता है।......लोग सस्ते की तरफ जाते हैं। सस्ते में एक आकर्षण है।...लेकिन सद्‌गुरू के पास जीवन ही दांव पर लगाना होता है। जुआरियों के लिए है सदगुरू, व्यवसायियों के लिए नहीं।[५]

प्रस्तुत ग्रन्थ में गुरू के गुण-दोषों की चर्चा सद्‌गुरू एवं असद्‌गुरू का ही संकेत है। अग्रलिखित गुण जिस गुरू में हो, वही गुरूपद का अधिकारी है, वही वन्दनीय है, सद्‌गुरू वही है। शान्तचित्त, इन्द्रजित्, कुलीन, विनीत, शुद्धवेषधारी, निर्मल आचरणवाला, यशस्वी शुचिदक्ष, नीरक्षीरविवेक सम्पन्न, आश्रमी अर्थात ममत्व-परत्व से दूर सामूहिक सार्वजनिक जीवन जीनेवाला, ध्यानपूर्ण, मंत्र-तंत्र का रहस्यद्रष्या, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ, वशी, मन्त्रों के मर्म को जानने वाला, निरोगी, निरभिमान, सर्वविकाररहित, ज्ञानी, वाकपटु, श्रीमान् अर्थात् अमृत धन का स्वामी, सदा चेतना की अग्नि में ज्ञान की लौ को जलाए रखने वाला, नित्य पुरश्चरण करने वाला, हित-अहित से दूर, सिद्ध महात्माओं के सभी लक्षणों से युक्त, सिद्ध पुरूषों की दृष्टि में समादृत, प्राणायाम आदि क्रियाओं में दक्ष, ज्ञानी, मौनी, विरागी, तपस्वी, सत्यवादी, सदाध्यान-परायण, आगम के अर्थों का विशेषज्ञ, अपने धर्म के पालन में

---

१. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, पृ० ५४.
२. वही, पृ०-५५.
३. वही, पृ०-४६.
४. मन ही पूजा मन ही धूप, पृ०-११३.
५. वही, पृ०-११४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पटु, लक्ष्मीवान् एवं धैर्यवान ही गुरू पद से अभिहित होने का अधिकारी है। शिष्य को ऐसे ही गुरू के शरण में जाना चाहिए।[१] सदगुरू यही है।

इसके विपरीत कुछ दोष ऐसे हैं, जिनके होने पर शिष्य को चाहिए को ऐसे व्यक्ति से दूर रहें, वे सद्गुरू नहीं अपितु असद्गुरू हैं। यथा, रूपवर्जित अर्थात ऐसे-ऐसे रूप धारण करे जो सत्य से दूर ले जाये, पर तत्त्व (शिवतत्त्व) के आनन्द से अनभिज्ञ, कुष्ठ रोग से ग्रसित, क्रूरकर्मा, लोगों द्वारा तिरस्कृत, रोगी, हिंसक, आठ प्रकार के कुष्ठ रोगों से ग्रसित, स्वर्ण-विक्रेता अर्थात् धन के मोह में आसक्त, चोर, मूढ़, सुख-सुविधा में आसक्त, कौलाचारविहीन, अशान्त, कलङ्कयुक्त, स्वस्थ दृष्टि से रहित, दूसरे की स्त्री में रस लेने वाला, असंस्कारी वक्ता, अधिक अङ्गवाला, कपटी, हिंसक, अत्यधिक बोलनेवाला, कृपण, मिथ्याभाषी, बहुत खाने वाला, भाव-भावनाओं से रहित, पञ्चाचार विवर्जित, अनेक दोषों से ग्रसित अङ्गवाला गुरूपद का अधिकारी नहीं है।[२] ऐसा गुरू पूजनीय नहीं है। असद्गुरू ऐसा ही है।

जो श्रीगुरू के चरणकमल का सदा ध्यान करता है, वह भोग एवं मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी है। गुरू और शिष्य के एक ही गाँव में निवास करने पर शिष्य को तीनों प्रहर गुरू को नमस्कार करना चाहिए। यदि गुरू और शिष्य एक ही स्थान में ठहरें तो शिष्य को सदा गुरू के शरण में रहना चाहिए। सात योजन दूर रहने पर शिष्य महीने में कम से कम एक बार गुरू को नमस्कार करे। गुरू के निवास-स्थल से अतिदूर रहने वाला शिष्य नित्य मन, बुद्धि और शरीर से उस दिशा में नमस्कार करे, जिस दिशा में गुरू के चरण कमल हों।[३]

दीक्षा रहस्य

दीक्षा शब्द 'दा' और 'क्षि' धातुओं से बना है; दा का अर्थ है देना और क्षि का तात्पर्य है परिवर्तन, संहार, क्षय या समाप्त करना। इस सन्दर्भ में दीक्षा शब्द का अर्थ होता है, गुरू शिष्य को ज्ञान का अन्तःचक्षु प्रदान कर उसके मनोविकारों का संहार करते हैं। कुछ लोगों का मत है कि दीक्षा शब्द 'दृश्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है-देखना। तदनुसार, जब मनुष्य माया के परदे को हटाकर आत्मा और सनातन अवस्था के वास्तविक स्वरूप को देखने में सक्षम होता है, तो वह दीक्षा का एक रूप होता है।[४]

दीक्षा का मूल धातु है दीक्ष, जिसका अर्थ होता है समर्पण। जब व्यक्ति अपने आपको समर्पित कर एक निर्दिष्ट पथ पर चलने लगे, एक स्पष्ट लक्ष्य को, एक स्पष्ट भावना को, एक स्पष्ट विचार को अपनाये, तब वह दीक्षा है। गुरू इन्हीं चीज़ों के लिये दीक्षा देते हैं।[५] दीक्षा गुरू और शिष्य के बीच गहन संवाद है, यह गुरू से शिष्य को ऊर्जा का गहन हस्तान्तरण है।. ...गुरू वह है जिसने पा लिया है, जिसने (मोक्ष) जाना है, जो (शिव) हो गया है, वह ऊर्जा

१. रुद्रयामल उ०त०, २/५०-५६
२. वही, २/५७-६२,
३. वही, १/२३५-२३८
४. तंत्र दर्शन, पृ०-१६७.
५. वही, पृ०-४३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का उच्चतम शिखर है। यह ऊर्जा नीचे खड़े उस व्यक्ति की तरफ बह सकती है, जो ग्राहक है, जो झुका हुआ है, जो समर्पित है।.....शिष्य होने के लिए, दीक्षित होने के लिए समग्र समर्पण की जरूरत है।[१] गुरू की कृपा एवं शिष्य की श्रद्धा इन दो पवित्र भावनाओं का संयम दीक्षा है। गुरू का आत्मदान एवं शिष्य का आत्मसमर्पण, एक की कृपा एवं दूसरे की श्रद्धा के अतिरेक से ही हो सकता है। दीक्षा एक दृष्टि से गुरू की ओर से आत्मदान, ज्ञानसंचार या शक्तिपात है, तो दूसरी दृष्टि से शिष्य की प्रसुप्त शक्तियों का उद्बोधन है। दीक्षा से शरीर की समस्त अशुद्धियों, मन की समस्त भ्रांतियों और सिद्धि का मार्ग खुल जाता है।[२]

दीक्षा आन्तरिक ऊर्जा का, वास्तविक ऊर्जा का हस्तान्तरण है। गुरू तभी शिष्य को रूपान्तरित कर सकता है, जब शिष्य तैयार हो, ग्राहक हो। प्रेम में जितनी श्रद्धा की जरूरत है, उससे भी ज़्यादा जरूरत दीक्षा में है। कारण, शिष्य को नहीं पता कि क्या होने जा रहा है। वह बिल्कुल अंधेरे में है। केवल गुरू को पता है कि क्या होने वाला है और वह क्या कर रहा है।[३]

अनेक चीज़ें हैं, जिन्हें गुरू शिष्य को नहीं बता सकता, क्योंकि मनुष्य के मन की बहुत सी उलझने हैं। एक उलझन यह है कि अगर कोई चीज़ घटित होने के पहले प्रकट कर दी जाए तो वह घटना को बदल देगी। गुरू उन्हें शिष्य से घटित करा सकता है, लेकिन बता नहीं सकता। वह घटित कराना ही दीक्षा है।[४]

जीवन संघर्ष है–जीवित रहने के लिए संघर्ष। इस संघर्ष के कारण व्यक्ति बन्द हो जाता है। वह खुल रहने से भयभीत है; उसे डर है कि कोई उसमें प्रवेश न कर जाए, कोई उसके साथ कुछ कर न दे। इस भय से व्यक्ति सिकुड़ गया है और अपना बचाव कर रहा है। दीक्षा में शिष्य को यह सुरक्षा गिरा देनी होती है। तब शिष्य खुलता है, तब गुरू उसमें प्रवेश करता है। यह गहरे प्रेम के कृत्य जैसा है। स्त्री की इच्छा के विरूद्ध भी बलात्कार किया जा सकता है, क्योंकि यह शारीरिक कृत्य है। शरीर पदार्थ है, और पदार्थ के साथ जबरदस्ती की जा सकती है। किन्तु शिष्य के साथ बलात्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह शारीरिक बात नहीं है। यह बात आत्मा की है और आत्मा में बलात् प्रवेश नहीं किया जा सकता।......जब शिष्य तैयार होता है, खुला होता है, जब वह प्रेमलीन स्त्री की भांति निमन्त्रणपूर्ण और ग्राहक होता है, जब वह निरस्त्र होकर समर्पित करता है, तभी गुरू उसमें प्रवेश कर सकता है, काम कर सकता है और सदियों का काम क्षणों में किया जा सकता है।[५] दीक्षा शब्द का अर्थ है समर्पण और दीक्षा का परिणाम भी होता है समर्पण।[६]

योग में कहा जाता है कि दीक्षा ग्रहण करने से साधक का नया जन्म होता है। दीक्षा शब्द

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पॉकेट बुक संस्करण)पृ०-११८.
२. मन्त्र-महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-३९.
३. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पॉ०बु०सं०) पृ०-१२०.
४. वही. पृ०-१२०.
५. वही. पृ०-१२१-१२२.
६. तंत्र-दर्शन, पृ०-४३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का प्रयोग योग में उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार सनातन परम्परा में द्विज शब्द का प्रयोग होता है।[१] दीक्षा का अर्थ भी पुनर्जन्म ही होता है। एक जन्म शरीर का होता है जिसके माध्यम माता-पिता होते हैं, दूसरा जन्म आन्तरिक जागृति या आत्मजागृति का होता है जिसके माध्यम गुरू होते हैं।[२] दीक्षा शिष्य के पुनर्जन्म की बात है। स्वयं उसका पुनर्जन्म होने वाला है। एक अर्थ में उसकी मृत्यु होगी और किसी दूसरे अर्थ में उसका पुनर्जन्म होगा।[३] गुरू का मुख्य कार्य है-शिष्य की आत्मा के साथ अभिन्न होकर शिष्य-रूप चैतन्य की भोग-भूमि को सम्पूर्ण रूप से एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा शुद्ध करना। यह गुरू का अभावात्मक कार्य है। इसके बाद उनका भावात्मक कार्य होता है-ज्ञान-दीक्षा द्वारा चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों का शिष्य में उद्भावन। दीक्षा के दो मुख्य अंग हैं-एक है पाशों का नाश और दूसरा है शिव तत्त्व के साथ शिष्य का योग।[४] अर्थात् शिष्य में जो मलिनता है, उसका प्रक्षालन कर उसे शिवस्वरूप में युक्त कर देना।[५] पशु-आत्मा मल, कर्म और मायाख्य पाश से आबद्ध है।[६] दीक्षा से तीनों प्रकार के मलों का विनाश होता है-

दीयते ज्ञानसद्भावः क्षीयते पशुवासना।
दानक्षपणसंयुक्ता दीक्षा तेनेह कीर्तिता।।[७]

अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान दिया जाता है और पशुवासना का क्षय होता है, ऐसी दान और क्षपण युक्त क्रिया दीक्षा कहलाती है।

दिव्य भाव देने से, पापों का क्षालन करने से और भव बन्धन से मुक्त करने से 'दीक्षा' कहलाती है।[८] दीक्षा के सब कृत्य योग्य गुरू को ही करने पड़ते हैं। उसमें गुरू की मन्त्र शक्ति ही प्रधान साधन है। गुरू भावना-सिद्ध होते हैं, अतः क्षेत्र विशेष में उन्हें भावना का भी उपयोग करना पड़ता है।[९]

गुरू को दीक्षा देने से पूर्व अपने भावी शिष्य की पूरी परीक्षा कर लेनी चाहिए। सद्गुरू को अपनी शरण में आए हुए शिष्य की एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, तदनन्तर उसके शुभ और अशुभ लक्षणों का विचार करके तथा उसकी गुणग्राहकता एवं गुण-विहीनता का अवगाहन कर उसे मन्त्र देना चाहिए।[१०] प्राण, द्रव्य प्राणायामादि आदेशों द्वारा निम्न कर्मों में

---

१. तंत्र-दर्शन, पृ०-१६७.
२. वही, पृ०-१६८.
३. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पॉ०बु०सु०) पृ०-१२२.
४. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-३१.
५. वही, पृ०-३२
६. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-२९.
७. भारतीय संस्कृति और साधना, भाग-१,पृ०-२६६ पर उद्धृत।
८. कुलार्णव तंत्र, १७/५१, तुलनीय शारदा तिलक, ४/२
९. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-३२.
१०. रुद्रयामल उ०त०, २/७६-७७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तम और उत्तम कर्मों में निम्नक्रियाएं स्वयं कर उन कर्मों के सूचक वाक्यों, मायाओं, क्रूर चेष्टाओं द्वारा पक्षपात और उदासीनता से बार-बार आकृष्ट करे और ताड़ित होकर भी जो दु:खी न हो, अपितु सदा प्रसन्न होकर यही सोचे कि 'गुरू कृपा कर रहे हैं' और श्री गुरू का स्मरण, कीर्तन, दर्शन वन्दन आज्ञापालनादि करने में जिन्हें रोमाञ्च, कम्प, गदगद् स्वर, डबडबाते नेत्रादि के साथ आनन्द अनुभव हो, वे इस दीक्षा-संस्कार कर्म के योग्य हैं।[१]

दीक्षा के समय गुरू को अपने शिष्य के ६ चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) के साथ प्रत्येक में दलों की संख्या, रंग और प्रत्येक के अक्षरों का ज्ञान करा देना चाहिए।[२]

दीक्षा-संस्कार हो जाने पर जाति-सम्बन्धी अन्तर मिट जाता है, जब शूद्र और विप्र दीक्षित हो जाते हैं, तो शूद्रता और विप्रता की समाप्ति हो जाती है।[३] जो द्विज अन्त्यज के बाद दीक्षित होता है, वह कनिष्ठ होता है और अन्त्यज ज्येष्ठ-शास्त्र का यही नियम है। गुरू शक्ति और गुरू पुत्रों में, जो पहले दीक्षा पाये हुए हैं, वे गुरू के समान पूजनीय हैं।[४]

न तो शरीर का संस्कार होता है, न कर्मों का। 'आत्मा की दीक्षा कराएं, जो अनादि कुलकुण्डली है।....जैसे मन्त्र और औषधि द्वारा विष की शक्ति नष्ट की जाती है, वैसे ही दीक्षा द्वारा मन्त्रज्ञ पशु-पाश को क्षण भर में काट देता है। दीक्षा की अग्नि से जिसके कर्म दग्ध हो जाते हैं, वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त कर निर्बीज हो शिव हो जाता है।[५] कुलार्णव तंत्र का कथन है कि बिना दीक्षा के मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता, बिना आचार्य के दीक्षा नहीं प्राप्त हो सकती और मन्त्र तब तक फल नहीं दे सकते, जब तक गुरू उनके विषय में शिक्षा न दे दें।[६] अदीक्षित के द्वारा किया गया जप-पूजा आदि क्रिया, पत्थर पर पड़े बीज के समान निष्फल होता है। दीक्षाविहीन को न तो सिद्धि मिलती है और न सद्गति। अत: व्यक्ति सभी प्रकार के प्रयत्नों से गुरू द्वारा दीक्षित होना चाहिए।[७]

दीक्षा-प्रकार

मनुष्यों की प्रकृति, प्रवृत्ति एवं शक्ति में पर्याप्त भेद होने के कारण साधक के अधिकार एवं साधना-विधि में भेद करना आवश्यक है, तथा साधना के भेद से सिद्धि में भी भेद हो जाता है। जब साधक ही भिन्न-भिन्न प्रकृति, प्रवृत्ति एवं शक्ति वाले हों तो उनके लिए एक ही मन्त्र और एक जैसी साधना-विधि नहीं हो सकती। यह सत्य है कि साधक, मन्त्र एवं देवता

---

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-७४.
२. ज्ञानार्णव तंत्र, २४/४५-५३.
३. कुलार्णव तंत्र, १४/९८-९९.
४. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-७७,
५. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-७६-७७.
६. कुलार्णव तंत्र-१४/३-४.
७. रुद्रयामल उ०त०, ३/१३-१४, तुलनीय कुलार्णव तंत्र, १४/९७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन तीनों में मूलतः एक ही तत्त्व विद्यमान है; फिर भी किस साधक के हृदय में किस देवता एवं किस मन्त्र के आश्रय से वह स्फुरित करना है- यह दीक्षा का मुख्य प्रयोजन है।[१] इसलिए दीक्षा के कई प्रकार तंत्रशास्त्र में वर्णित हैं।

'विश्वसार तंत्र' में चार प्रकार की दीक्षा की चर्चा की गई है[२]–क्रियावती दीक्षा, कलावती दीक्षा, वर्णमयी दीक्षा और वेद्यमयी या वेधमयी दीक्षा। कुलार्णव तंत्र में सात प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन किया गया है[३]। वे हैं-क्रियादीक्षा, वर्णदीक्षा, कलादीक्षा, स्पर्शदीक्षा, वाक्दीक्षा, दिग्दीक्षा और मानस दीक्षा। रुद्रयामल तंत्र में आणवी, शक्ति और मानसदीक्षा की चर्चा की गई है।

प्रमुख दीक्षाएँ

दीक्षा के विभिन्न वर्गीकरण के आधार पर प्रपुख दीक्षाएं है- स्पर्श दीक्षा, दृग्दीक्षा, मानसदीक्षा, अनुष्ठान दीक्षा, वर्णमयी दीक्षा, कलादीक्षा, आणवीदीक्षा, शाम्भवी दीक्षा और अभिषेक दीक्षा।

(i) स्पर्श दीक्षा–में गुरू के स्पर्शमात्र से ही शिष्य को तुरीयावस्था का बोध हो जाता है। श्री गुरूदेव अपने हाथ में शिव का ध्यान कर मूलाङ्गमालिनी का जप कर शिष्य के शरीर को छुयें-यह स्पर्श दीक्षा है।[४] एक पक्षी अपने बच्चों को अपने पंखों के नीचे रखकर शरीर के स्पर्श द्वारा गर्मी प्रदान करता है। इसी प्रकार आध्यात्कि क्षेत्र में स्पर्श के द्वारा शक्ति का रथानान्तरण होता है। स्वामी विवेकानन्द इसके ज्वलन्त उदारण हैं। एक बार उन्होंने रामकृष्ण परमहंस से प्रश्न पूछा- "क्या आपने ईश्वर को देखा है? क्या आप मुझे ईश्वर दिखा सकते हैं?" रामकृष्ण परमंहस ने उनके सिर का स्पर्श किया और स्वामी विवेकानन्द को तत्काल आत्मानुभूति हुई।[५]

(ii) दृग्दीक्षा दीक्षा–में दृष्टि द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का स्थानान्तरण होता है। रमण महर्षि इसके उदाहरण हैं। वे शिष्य की आँखों में दृष्टिपात करते और एक मन्त्र जपने की सलाह देते थे।[६] अपने बच्चों को जैसे मछली केवल देखकर ही पालती है, उसी प्रकार 'दृग्-दीक्षा' है।[७] दोनों आँखें बंद कर पर तत्त्व का ध्यान करते हुए प्रसन्न बुद्धि से गुरूदेव शिष्य को अच्छी तरह देखें। यह दृग् दीक्षा है।[८]

(iii) मानसदीक्षा–का दूसरा नाम है शक्तिपात। इस दीक्षा में शिष्य, गुरू के आग्रह को

---

१. मन्त्र-महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-३९.
२. विश्वसार तंत्र (तंत्र दर्शन, पृ०-१६८ पर वर्णित), तुलनीय शारदापटल।
३. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-७५-७६.
४. वही, पृ०-७५.
५. तंत्र दर्शन, पृ०-१६९
६. वही,
७. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-७४ (चौदहवाँ उल्लास)।
८. वही,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानसिक, भावनात्मक और विचारात्मक रूप से ग्रहण करता है। अनुग्रह-शक्ति शिष्य की चेतना की विभिन्न अवस्थाओं को जागृत कर देती है।[१] जैसे कछुई (कच्छपी) अपने बच्चों का पालन केवल ध्यान द्वारा करती है, उसी प्रकार मानस-वेध-दीक्षा है।[२]

(iv) अनुष्ठान दीक्षा-पशु-प्रवृत्ति वाले शिष्य और साधक के लिये विहित की गई है। इसका दूसरा नाम वैदिकी दीक्षा है। यह तान्त्रिक दीक्षा के पूर्व आवश्यक मानी गई है। इसमें गुरू शिष्य को एक साधना बताते हैं, जिसे वह एक निश्चित अवधि तक नियमित और क्रमबद्ध रूप से करता है। इस दीक्षा में अनुशासन प्रधान है, ताकि पशु-साधक अपनी चंचलता को नियंत्रण में रख सात्त्विक भाव को जागृत कर सके। सात्त्विक भाव की जागृति होने पर तान्त्रिक दीक्षा दी जाती है। अनुष्ठान-दीक्षा अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति को समझने तथा उसके पार जाने के लिए आवश्यक मानी गई है।[३]

(v) वर्णमयी दीक्षा-से पाश के बन्धन नष्ट होते हैं। संस्कृत वर्णमाला के पचास अक्षरों का मन्त्र रूप में जप करने से साधक पाश या माया के बन्धन से मुक्त होता है। इन मन्त्रों से प्राणशक्ति जागृत होती है।[४] वर्ण दीक्षा ४२,५० या ६२ अक्षरों के न्यास के भेद से तीन प्रकार की है। इस दीक्षा में शिष्य के शरीर में वर्णो का न्यास कर प्रतिलोम से उन्हे लयकर शिष्य के चैतन्य को परमात्मा से युक्त कर पुनः उन वर्णों को उससे उत्पन्न कर शिष्य के शरीर में उनका न्यास करें और सृष्टि-क्रम से चैतन्य को प्रयुक्त करें। इस प्रकार शिष्य में देव-भाव उत्पन्न होकर वह परानन्दमय होता है। यह वर्णमयी दीक्षा पाशों को काटने वाली कही गई है।[५]

(vi) कला दीक्षा-के द्वारा निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यातीत अवस्थाओं को जागृत किया जाता है। इस दीक्षा का वास्तविक स्वरूप बिन्दु, नाद और कला स्थितियाँ है। नाद और बिन्दु एक हैं; जहाँ बिन्दु है वहाँ नाद है, जहाँ नाद है वहाँ बिन्दु है। कला सृजन-परिणाम या अभिव्यक्ति है। कलादीक्षा के द्वारा साधक सृष्टि में शिव-तत्त्व का अनुभव करते-करते नाद और बिन्दु तक पहुँचता है।[६]

कला-दीक्षा तीन प्रकार की है, जिसे विधिवत करें। पैरों के तलवे से लेकर घुटनों तक 'निवृत्ति', घुटनों से नाभि तक 'प्रतिष्ठा', नाभि से कण्ठ तक 'विद्या', कण्ठ से ललाट तक 'शान्ति', ललाट से शिर तक शान्त्यतीता'-ये पाँच कलाएं स्थित हैं। यही 'कला-व्याप्ति' के नाम से ज़ाना जाता हैं। संहार-क्रम के योग से एक स्थान से दूसर स्थान में उक्त कलाओं का विधिवत् संयोजन किया जाता है। इससे शिष्य को दिव्य-भाव की प्राप्ति होती है। अथवा ३८ या ५० कलाओं से तत्त्वन्यास के क्रम से सृष्टि-संहार-योग से गुरू-मुख से जानकर शिष्य में

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-१६९.
२. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, चौदहवाँ उल्लास, पृ०-७५
३. तंत्र दर्शन, पृ०-१६९.
४. वही,
५. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, चौदहवाँ उल्लास, पृ०-७५.
६. तंत्र दर्शन, पृ०-१६९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संयोजन कर वेधन करे। इससे देव-भाव उत्पन्न होकर योगिनी-वीर के मिलन का आनन्द मिलता है।[१]

(vii) आणवी दीक्षा-में मन्त्र का प्रयोग होता है। गुरू निर्देश से मन्त्र साधना द्वारा शिष्य पूर्णता प्राप्त करता है।[२]

(viii) शक्तिदीक्षा-के कई रूप होते हैं। यह लेखनी द्वारा, स्वप्न द्वारा, या सहज वार्तालाप के द्वारा भी प्राप्त हो सकती है।[३]

(ix) शाम्भवी दीक्षा-सर्वोच्च दीक्षा है। शाम्भवी दीक्षा से सहज समाधि प्राप्त होती है। गुरू के दर्शन, भाषण, स्पर्शमात्र से जब शिष्य को तुरन्त ज्ञान होता है तो वह 'शाम्भवी-दीक्षा' मानी जाती है।[४]

(x) अभिषेक दीक्षा-अभिषेक का अर्थ स्थापित करने या होने से है। यह दीक्षा वैदिक और तान्त्रिक पद्धतियों का समन्वित रूप है। इस अभिषेक में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वों का प्रयोग किया जाता है। ये तत्त्व साक्षी बनते हैं। मन्त्रों द्वारा तत्त्वों को साक्षी बनाकर साधक को अभिषिक्त किया जाता है।[५]

दीक्षक की अर्हता-दीक्षा ममत्व-परत्व से परे है। ऐसा नहीं है कि जो भी निकट सम्बन्धी व्यक्ति हो, उसे दीक्षित कर दिया जाए। दूसरे, दीक्षित होनेवाला व्यक्ति मजबूरी में या आज्ञा-अल्लंघन होने के भय से दीक्षित न हो। इसलिए कहा है-

न पत्नीं दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम।
न पुत्रञ्च तथा भ्राता भ्रातरं नैव दीक्षयेत्।।[६]

अर्थात् पति पत्नी को, पिता अपने पुत्र एवं पुत्री को तथा भाई अपने भाई को दीक्षित नहीं करे। यह बात अलग है कि पति यदि मन्त्र सिद्ध है तो वह पत्नी को दीक्षा दे सकता है।

तंत्र का कथन है कि दीक्षा स्वप्न में भी हो सकती है। स्वप्नावस्था में गुरू-शिष्य के वैशिष्ट्य का कोई नियम नहीं है। स्वप्न में आगत नारी द्वारा प्रदत्त दीक्षा संस्कार से शुद्ध होती है। परन्तु यदि कोई स्त्री वास्तव में साध्वी, सदाचारिणी, गुरूभक्ता, जितेन्द्रिया, सभी मन्त्रार्थों को जानने वाली, सुशीला, पूजनरता, सभी शुभ लक्षणों से सुशोभित, जप करने वाली, कमलनयना, रत्नालङ्कारों से अलङ्कृत, समस्त लोकों की शोभा, शान्ता, कुलीना, कुलजा, सबकी उन्नति चाहनेवाली, उन्नतगुणों से समन्वित, शिवत्व पद प्राप्त करने वाली, गुरू-स्वरूपा, मुक्तिदायिनी, शिवज्ञान का निरूपण करने वाली, अविधवा हो तो वह गुरू का पद प्राप्त कर

---

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, चौदहवाँ उल्लास, पृ०-७५.
२. तंत्र दर्शन, पृ० -१७०.
३. वही,
४. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, चौदहवाँ उल्लास, पृ०-७५.
५. तंत्र दर्शन, पृ०-१७०
६. रुद्रयामल उ०त०, २/८६.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकती है। स्त्री द्वारा प्रदत्त दीक्षा हितकारिणी तथा आठ गुणों से युक्त होती है। गुरू के रूप में पुत्रवाली तथा विधवा का भी वरण किया जा सकता है। यदि विधवा सिद्धमन्त्र जानती है, तो उससे दीक्षा ग्रहणीय है। यदि कोई सधवा, सती-स्त्री अपने मन से मन्त्र देती है, तो उसे अष्टगुण की प्राप्ति होती है।[१]

जब कोई माँ अपने ही पुत्र को मन्त्र देती है तो वह पुत्र अष्टसिद्धियों की प्राप्ति करता है। माता के द्वारा दिया गया मन्त्र अन्यत्र दुष्प्राप्य होता है। पहले तो भोग, फिर मोक्ष की प्राप्ति करके काल-स्वरूप साधक सहस्रकोटि विद्या का ज्ञान प्राप्त करता है। दीक्षा में चक्र का विचार करके जो व्यक्ति मन्त्र का ग्रहण करता है, वह सैंकड़ों जन्मों तक वैकुण्ठ पद में निवास करता है।[२]

समग्रता, समानता, सहजता और सर्वस्वीकार्यता

समग्रता, समानता, सहजता और सर्वस्वीकार्यता तंत्र की महत्त्वपूर्ण विलक्षणताएँ हैं। तंत्र का सारा सौन्दर्य इन्हीं स्रोतों से उद्‌भूत होता है। इसी अर्थ में तंत्र को सार्वदेशिक सार्वकालिक एवं सार्वजनिक कहा जाता है। समग्रता आदि के रहस्य एवं मनोविज्ञान पर यहाँ किञ्चित् प्रकाश डाला जा रहा है–

(i) समग्रता

तंत्र कहता है कि सत्य को जानने के लिए केवल एक चीज़ की जरूरत होती है–तीव्रता, समग्र तीव्रता की। इस समग्र तीव्रता को उपलब्ध होने के लिए भूत और भविष्य से मुक्त होना जरूरी है। जब आपकी सम्पूर्ण जीवन-ऊर्जा इस छोटे से वर्त्तमान पर केन्द्रित होती है, तो इसे केन्द्रित करने में आप एक आग हो जाते हैं, एक जीवन्त अग्नि। पूरा जीवन आग है। इसे जानने के लिए तीव्रता की जरूरत है, अन्यथा व्यक्ति गुनगुना जी सकता है।[३]

सूर्य की रोशनी जब बिखरी होती है तो वह ज़्यादा शक्तिशाली नहीं होती। किन्तु उसी रोशनी को जब लेन्स के द्वारा संकेन्द्रित किया जाता है, तो कागज़ का टुकड़ा जल उठता है। रोशनी उतनी ही है, किन्तु तीव्रता एवं समग्रता के कारण यह अन्तर उत्पन्न होता है। रोशनी को एक केन्द्र मिल जाता है और वह चारों ओर संघनित हो जाती है। किन्तु हम केन्द्र और परिधि में विभाजित हैं। शरीर परिधि है। हम शरीर को, परिधि को जानते हैं। लेकिन हम यह नहीं जानते कि कहाँ केन्द्र है। श्वास केन्द्र को जाती है और केन्द्र से बाहर जाती है। इसी कारण ताओवादी संत और झेन संत कहते हैं कि सिर केन्द्र नहीं है, नाभि केन्द्र है।[४] श्वास नाभि-केन्द्र को जाती है, फिर वहाँ से लौटती है। लेकिन हम पर्याप्त श्वास नहीं लेते हैं। इस कारण से साधारणतः वह केन्द्र तक नहीं पहुँच पाती है। परिणामतः हरेक व्यक्ति विकेंद्रित अनुभव

१. रुद्रयामल उ०त०, २/१०६-११३.
२. वही, २/११४-१२२.
३. दॅ तत्रां एक्सपीरिएन्स, पृ०-१८५
४. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-५५ पर सन्दर्भित (विशेष राजसंस्करण)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करता है। किन्तु एक सोए हुए बच्चे का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि उसकी श्वास भीतर जाती है तो उसका पेट ऊपर उठता है, उसकी छाती अप्रभावित रहती है। श्वास-प्रश्वास के साथ उसका पेट ऊपर-नीचे होता है और वह अपने केन्द्र में होता है। यही कारण है कि बच्चे इतने सुखी होते हैं, इतने आनन्दमग्न होते हैं, इतनी ऊर्जा से भरे होते हैं कि कभी थकते नहीं। वे सदा वर्त्तमान क्षण में होते हैं, न उनका अतीत है, न भविष्य।

एक बच्चा क्रोध कर सकता है। जब वह क्रोध करता है तो समग्रता से क्रोध करता है। और तब उसका क्रोध भी कितना सुन्दर लगता है। जब कोई समग्रता से क्रोध करता है तो उसके क्रोध का अपना ही सौन्दर्य है, क्योंकि समग्रता सदा सुन्दर होती है।[१] बच्चा क्रोध और हिंसा में भी समग्र होता है। उसका मुखड़ा दीप्त और सुन्दर हो उठता है; वह यहाँ और अभी होता है। उसके क्रोध को न किसी अतीत से कुछ लेना-देना है और न किसी भविष्य से; वह हिसाब नहीं रखता है। वह मात्र क्रुद्ध है। बच्चा अपने केन्द्र पर है।[२] जब भी मनुष्य केन्द्र पर होता है तो सदा समग्र होता है।

समग्रता सुन्दर और प्रभावशाली होती है। जब कोई साधक समग्र रूप से साधना में लीन हो जाता है, तभी सिद्धि मिलती है। जब शक्ति शरीर के किसी भाग से बाहर निःसृत नहीं हो पाती, तभी वह ऊर्ध्वगमन करती है। इसलिए कहा गया है कि बहिर्गमन के सभी स्रोतों को बन्द करने से प्राणशक्ति धीरे-धीरे ऊपर चढती है। तब चींटी चलने के स्पर्श के समय जैसा परम-सुख की प्राप्ति बहुत अधिक होती है-

सर्वस्रोतो निबन्धेन प्राणशक्त्योर्ध्वया शनैः।
पिपीलस्पर्शवेलायां प्रथते परमं सुखम्।।[३]

इसका तात्पर्य यह है कि श्रोत्र, चक्षु, नासिका, मुख, गुह्य, उपस्थ प्रभृति प्राण और अपान आदि वायुओं के निकलन के मार्गों को रोक देने पर वायु की गति ऊपर उठने लगती है। आधार से लेकर द्वादशान्त पर्यन्त क्रमशः धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठ रहीं इस प्राणशक्ति के द्वादशान्त में प्रविष्ट हो जाने पर स्वात्म-स्वरूप का अनुभव होने लगता है। योगशास्त्र की परिभाषा में इसको पिपीलस्पर्शवेला कहा जाता है।

तान्त्रिक कहता है कि यह सत्य को जानने का तरीका है-जब आप खा रहे हों, तो केवल खाना ही हो जाएँ, भूत और भविष्य को छोड़ दें और पूरी ऊर्जा को भोजन पर ही उड़ेल दें। प्रेम और अहोभाव से भोजन के प्रति भर जाएँ। भोजन के प्रत्येक निवाले को इतनी ऊर्जा से चबाएँ........तब आप न केवल भोजन का स्वाद ले सकेंगे, बल्कि अस्तित्त्व का स्वाद भी मिलेगा, क्योंकि भोजन भी अस्तित्त्व का ही भाग है। यह (भोजन) जीवन लाता है; यह जीवन्तता, प्राण लाता है। यह आपको जीवन्त बनाता है, यह केवल भोजन नहीं है।[४] उपनिषदों ने कहा है-'अन्नं वै ब्रह्म'।

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-५५ (वि०रा० सं०)
२. वही, पृ०-५५-५६.
३. विज्ञान भैरव धारणा-४३ (श्लोक-६६)।
४. दँ तत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-१८५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र साधारण भोग नहीं है, यह असाधारण भोग है। यह साधारण भोग नहीं है क्योंकि यह ईश्वर में भोग है। किन्तु तंत्र कहता है कि जीवन की छोटी-छोटी बातों से आपको उसका (ईश्वर का) स्वाद मिल सकता है। जीवन में कोई बड़ी बात नहीं है, प्रत्येक बातें छोटी ही हैं। छोटी बातें ही बड़ी और महान् हो जाती हैं, यदि आप इसमें समग्र रूप से, सम्पूर्ण रूप से प्रवेश करते हैं।[१] इसलिए शिव कहते हैं-"हे देवि! किसी वस्तु को प्रणाढ़ता से देखकर उससे प्राप्त ज्ञान को और उसमें लगे चित्त के साथ दृष्टि को धीरे-धीरे वापस लेने पर शून्य में लय की स्थिति प्राप्त होती है"-

क्वचिद्वस्तुनि विन्यस्य शनैर्दृष्टिं निवर्तयेत्।
तज्ज्ञानं चित्तसहितं देवि शून्यालयो भवेत्।।[२]

(ii) समानता

तंत्र की परिभाषा यदि 'समत्वं तन्त्रमुच्यते' दी जाती तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होती। तंत्र ने कभी किसी आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया। इसने मनुष्य को जाति, लिङ्ग, ऊँच-नीच, भला-बुरा आदि के चश्मे से नही देखा। प्रायः अन्य सभी धर्मों में स्त्रियों एवं दलितों को अनेक महनीय बातों से वंचित रखा गया। तंत्र ने शूद्रों एवं स्त्रियों के लिए अपना द्वार स्वागत-भाव से खोला और कहा कि तुम भी मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी हो।

(क) जातिगत समानता-तान्त्रिक साधना का एक प्रमुख अङ्ग है-चक्र-पूजा। इसमें बराबर संख्या में पुरुष और स्त्री, बिना जाति-भेद के, गुप्त रूप से रात्रि में मिलते हैं और एक वृत्त में बैठते हैं। इसी चक्र-पूजा में जातिगत भेदभाव करनेवालों का मुहँतोड़ जवाब देते हुए कहा गया है- "वर्ण के अभिमान से यदि कोई चक्र में वर्ण-भेद करता है, तो वह चाहे कितना ही वेदान्त का ज्ञाता हो, घोर नरक को जाएगा"-

वर्णाभिमानच्चक्रे तु वर्ण-भेदं करोति यः।
स याति घोर-निरयमपि वेदान्त-पारगः।।[३]

भैरवी-चक्र में प्रविष्ट सभी वर्ण द्विजातिवत् होते हैं, जाति-भेद नही रहता।-स्त्री हो या पुरुष, चाडाण्ल हो या उत्तम द्विज, इस चक्र में कोई भेद नहीं रहता। सभी शिव-समान ही माने जाते हैं। जिस प्रकार झरने आदि के जल गंगा में पहुँचकर समान भाव को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार श्री चक्र में सभी मनुष्य एकत्व को पाते हैं। दूध के साथ जल जिस प्रकार दूध ही होता है, उसी प्रकार श्रीचक्र के मध्य जाति-भेद नहीं रहता।[४] कुण्डली-चक्र या भैरवी-चक्र के प्रवृत्त होने पर सभी वर्ण द्विजाति हो जाते हैं-

"प्रर्वत्ते कुण्डलीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः"।[५]

---

१. दॅं तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-१८६.
२. विज्ञान भैरव, धारणा-९४ (श्लोक-११७)
३. महानिर्वाण तंत्र, अष्टम उल्लास, (वाममार्ग, पृ०-७३ पर उद्धृत)
४. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, आठवां उल्लास, पृ०-४६.
५. रुद्रयामल उ०त०, ६३/१९४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी तरह दीक्षा के प्रसङ्ग में कहा गया है कि दीक्षा-संस्कार से सम्पन्न होने पर शूद्र की शूद्रता और विप्र की विप्रता नहीं रहती, जाति-भेद नहीं रहता।...जिस प्रकार लिङ्गरूप में प्रतिष्ठित होने पर काष्ठ, पत्थर, लौह, मिट्टी, रत्न की जाति नहीं रह जाती, उसी प्रकार सभी वर्ण के मनुष्य दीक्षित होकर शुद्ध ही कहे जाते हैं।[१] समानता की बात करते-करते यहाँ तक क्रांतिकारी वक्तव्य दे दिया गया कि जो द्विज अन्त्यज के बाद दीक्षित होता है, वह कनिष्ठ होता है और अन्त्यज ज्येष्ठ-शास्त्र का यही निर्णय है।[२]

पुनः कहा गया है कि मूर्ख हो, चाहे पण्डित हो; ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शुद्र हो, चाहे चाण्डाल हो, सभी कुलधर्मानुयायी समान हैं। यह धर्म सब अर्थों को प्रदान करने वाला है-

मुर्खो वा पण्डितो वापि ब्राह्मणो वा वरानने।
क्षत्रियो वैश्यजः शूद्रश्चाण्डालो वर-वर्णिनि।।
सर्वे तुल्याः कुलीनाश्च एतत् सर्वार्थ-साधनम्।।[३]

यदि साधक फल की प्राप्ति चाहता है तो उसे कौलाचार में जातिगत भेदभाव नहीं करना चाहिए-'जातिवृत्तं न तत्रैव यदीच्छति फलोदयम्'।[४]

इसी तरह पञ्चमकार एवं अन्य तान्त्रिक पहलुओं में जातिगत विभेद का कोई प्रावधान नहीं है।

(ख) लैङ्गिक समानता-यह केवल तंत्र ही है, जो कभी पुरुष-प्रधान नहीं रहा। वस्तुतः तंत्र की यात्रा में एक बुद्धिमती स्त्री की सहायता की जरूरत होती है, एक बुद्धिमती स्त्री के बिना तंत्र के दुरूह जगत् में प्रवेश करना असम्भव है।[५] तंत्र संसार में सम्भवतः अकेली व्यवस्था है जो पुरूष और स्त्री में भेद नहीं करती।[६]

स्त्री का इससे बड़ा सम्मान और क्या हो सकता है कि विवेच्य ग्रन्थ में भैरवी या आनन्द भैरवी ही समस्त रहस्यों को उद्घाटित करती हैं, भैरव या आनन्द भैरव तो महज जिज्ञासु हैं, प्रश्न पूछते हैं। षट्चक्रों के अधिष्ठातृ देवता भी सभी स्त्री-शक्तियाँ ही हैं-यथा डाकिनी, राकिणी, लाकिनी आदि। रुद्रयामल में कहा गया है कि यह जगत् नारीरूप में ही संस्थित है-'जगतां जगदीशानां नारीरूपेण संस्थितिः।'[७]

नारी माँ का ही प्रतिरूप है, वह सृजनकर्त्री है, पालिका है व पुत्र की चिरन्तन रक्षिका है।

---

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, चौदहवाँ उल्लास, पृ०-७७.
२. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, चौदहवाँ उल्लास, पृ०-७७.
३. मुण्डमाला तंत्र, ५वां पटल (वाममार्ग , पृ०-२३ पर उद्धृत)।
४. रुद्रयामल उ०त०, ६७/१०६.
५. द तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-८.
६. तंत्र-सूत्र भाग-३ (पॉ०बु०सं०)पृ०-१७६.
७. रुद्रयामल उ०त०, २८/५७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः तात्रिक ग्रन्थों में लौकिक नारी को भी उच्चतम पद दिया गया है। दुर्गासप्तशती में स्पष्टतः कहा गया है–

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।[१]

अर्थात्–'हे देवि, सारे शास्त्र तुम्हारे ही प्रतिरूप हैं और समस्त संसार मे जितनी भी नारियाँ हैं, वे सभी तुम्हारी ही प्रतिमूर्तियाँ हैं।'

यही कारण है कि तान्त्रिक कर्मकाण्ड में कुमारी कन्याओं तथा साधारण विवाहिता स्त्रियों की पूजा का विधान अनिवार्य रूप से सम्मिलित है। इसे कुमारी एवं सुहासिनी पूजा कहा जाता है। उस पूजा में बिना किसी भेदभाव के साक्षात् भगवती रूप में कुमारी और प्रौढ़ाओं की पूजा की जाती है। कुमारी पूजा[२] के सन्दर्भ में कहा गया है कि सुहृदवर्ग की कन्या को लाकर आत्म-ध्यान-परायण साधक परमानन्द भाव से उसकी पूजा करे–

सुहृद्वर्गस्य कन्याञ्च समानीय प्रयत्नतः।
पूजयेत् परमारन्दैरात्म-ध्यान-परायणः।।[३]

कुमारी-पूजा से तीनों लोक वश में हो जाता है–

'कुमारीपूजनं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्'।[४]

यही नहीं शक्तिसङ्गम तंत्र में यहाँ तक कहा गया कि कितनी ही दुष्या, कुरूपा या यौवनोन्मत्ता स्त्री क्यों न हो, वह वन्दनीय ही है–

बाला या यौवनोन्मत्ता वृद्धा वा सुन्दरी तथा
कुत्सिता वा महादुष्टा नमस्कृत्य विभावयेत्।[५]

तान्त्रिक उपासना की परम्परा में गुरू की स्थिति उच्चतम है और उसमें भी स्त्री-गुरू को पुरुष-गरू से कहीं श्रेष्ठ बतलाया गया है। कहा गया है कि अनेक जन्मों के संचित पुण्यबल से और बड़े भाग्य से स्त्री-गुरू की प्राप्ति होती है–

बहुजन्मार्ज्जिता-पुण्याद्बहुभागयवशाद्यदि ।
स्त्री गुरूर्लभ्यते नाथ..........................।।[६]

लगभग सभी तान्त्रिक अनुष्ठानों में नारी का योग आवश्यक है। भैरवी-चक्र, पञ्चमकार-साधना आदि सभी अनुष्ठानों में तंत्र ने स्त्री को अपूर्व सम्मान दिया और पुरुष के बराबर एवं पूरक का दर्जा दिया। आज जिस सम्मान के लिए विश्व में नारी-आन्दोलन

१. दुर्गा सप्तशती (ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-६४ पर उद्धृत)
२. रूदयामल उ०त०, ७/१-९३.
३. वही, ७/१७.
४. वही, ७/२१.
५. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-६५ पर उद्धृत)
६. वही, पृ०-६४ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलाया जा रहा है, वह सम्मान तंत्र ने उसे सदियों पूर्व से दे रखा है। शक्तिसङ्गम तंत्र में कहा गया है कि 'नारी तीनों लोकों की माँ है और त्रिलोक को पवित्र करनेवाली है। तीनों भुवनों की आधाररूपा शक्ति ही नारी-देह में स्थित है। नारी साहचर्य के समान सुख, गति, भाग्य, राज्य, तीर्थ और तप, योग,जप तथा मन्त्र-साधन एवं ऐश्वर्य कहीं भी नहीं है। न अतीत में था और न भविष्य में हो सकता है-

नारी त्रैलोक्यजननी नारी त्रैलोक्यपावनी।
नारी त्रिभुवनाधारा नारी देहस्वरूपिणी।।
न च नारी सम सौख्यं न च नारी समा गतिः।
न नारी सदृशं चित्तं न भूतो न भविष्यति।।[१]

(ग) साधनागत समानता–इसी तरह शुत्र-मित्र, मान-अपमान, राग-द्वेष में भी समत्व-साधना का विधान तंत्र करता है। कहा गया है कि -"शत्रु-मित्र में, मान-अपमान में समत्व की भावना बनाये रखकर ब्रह्म ही परिपूर्ण हो रहा है-यह जानकर सुखी होना चाहिए। न तो किसी में द्वेष की भावना करनी चाहिए, न राग की। राग-द्वेष दोनों ही से मुक्त होने पर मध्य की स्थिति में ब्रह्म की भावना का प्रस्तार होता है"-

समः शत्रौ च मित्रे च समो मानावमानयोः।
ब्रह्मणः परिपूर्णत्वादिति ज्ञात्वा सुखी भवेत्।।
न द्वेषं भावयेत् क्वापि न रागं भावयेत् क्वचित्।
रागद्वेषविनिर्मुक्तौ मध्ये ब्रह्म प्रसर्पति।।[२]

(iii) सहजता

सहजता और स्वभाविकता ही तंत्र की भूमि है। तंत्र में सहजता का बहुत मूल्य है। बस केवल स्वाभाविक होना, प्रकृति को घटित होने देना, न कोई बाधा डालना, न रोकना, न विभ्रान्त करना,----प्रकृति के प्रति समर्पित होना, इसके साथ बहना ---- इसी विश्वास का नाम तंत्र है। सहजता ही इसका मन्त्र है, इसका महत्त्वपूर्ण आधार है।[३]

सहजता का अर्थ है-व्यक्ति व्यवधान नहीं डालताः तो कुछ भी घटता है, वह देखता है, वह केवल साक्षी होता है। वह जानता है कि ऐसा हो रहा है, किन्तु वह उसमें कूदता नही, वह उसकी दिशा बदलने की कोशिश नहीं करता।[४] सहजता से तंत्र का अभिप्राय है-जाग्रतपूर्ण सहजता। सहज होने का अर्थ है-पूरी तरह जाग्रत होना। जिस क्षण व्यक्ति जाग्रत होता है, वह न तो मन के जाल में होता है, न शरीर के जाल में। तभी वास्तविक सहजता उसके आत्मा से प्रवाहित होती है।[५]

---

१. वही, पृ०-६६ पर उद्धृत।
२. विज्ञान भैरव, धारणा-९९-१०० (श्लोक १२२-१२३)
३. द तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-७२.
४. वही,
५. वही, पृ०-७६.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नैतिकता में कुछ अच्छा होता है, कुछ बुरा। स्वाभाविक होने में कुछ बुद्धि सम्मत है, कुछ मूर्खतापूर्ण। जो आदमी स्वाभाविक है, वह बुद्धिमान है -अच्छा नहीं। जो स्वाभाविक नहीं है, वह मूर्ख है-बुरा नहीं। यदि व्यक्ति मुर्ख है तो वह स्वयं को एवं दूसरे को हानि पहुँचा सकता है और यदि वह बुद्धिमान है तो वह किसी को हानि नहीं पहुँचा सकता-न स्वयं को, न दूसरे को। पाप और पुण्य जैसा कुछ भी नहीं है। यदि कुछ पुण्य है तो वह बुद्धिमत्ता है और यदि कुछ पाप है तो वह अज्ञानता है। और अज्ञानता को बुद्धिमत्ता में रूपान्तरित किया जा सकता है और केवल यही रूपान्तरण है-इसे कोई जबरदस्ती रूपान्तरित नहीं कर सकता। जब व्यक्ति सहज और स्वाभाविक होता है तो यह घटित होता है।[१]

सहजता के कारण ही तंत्र में प्रेम का बहुत मुल्य है। तंत्र का कथन है कि "अपने शरीर के प्रति प्रेमपूर्ण रहो, उसके प्रति मित्रतापूर्ण रहो---यह ईश्वर की देन है। इसके साथ अच्छा व्यवहार करो और यह महान रहस्य को प्रकट करेगा।[२] दमित जीवन मत व्यतीत करो.... अभिव्यक्तिपूर्ण, सृजनात्मक, आनन्दपूर्ण, सहज जीवन जीओ।[३]

इसीलिए तंत्र ने पञ्चमकार-साधना का विधान किया है। पञ्चमकार के विषय में विस्तार से इसी अध्याय में चर्चा की गई है।

अंतत: स्पष्ट शब्दों में तंत्र का उद्घोष है कि-"जहाँ-जहाँ मन की तुष्टि हो, वहाँ ही मन धारणा में लगाना चाहिए, वहाँ-वहाँ ही परमानन्द-स्वरूप का आविर्भाव होता है"-

यत्र यत्र मनस्तुष्टिर्मनस्तत्रैव धारयेत्।
तत्र तत्र परानन्दस्वरूपं संप्रवर्तते।।[४]

(iv) सर्वस्वीकार्यता

तंत्रशास्त्र सबसे बड़ा 'हाँ' कहनेवाला है। यह सभी वस्तुओं के प्रति हाँ कहता है। 'नही' जैसा शब्द इसके शब्दाकोश में नहीं है। यहाँ कुछ भी निषेध नहीं है।....क्योंकि 'नहीं' से संघर्ष शुरू होता है।--- तंत्र किसी के प्रति कभी भी 'नहीं' नहीं कहता है; क्योंकि प्रत्येक चीज़ पूर्ण का ही हिस्सा है। पूर्ण में प्रत्येक चीज़ का अपना एक स्थान है, महत्त्व है। यदि कुछ छूट जाता है, तो पूर्ण कभी भी अस्तित्त्ववान् नहीं हो सकता।[५] जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है, जिसका सृष्टि में कोई महत्त्व नहीं हो, कोई स्थान या पहचान नहीं हो। अगर मनुष्य में तामसिकता प्रबल है, तो वही उसकी पहचान है, वहीं से उसे आगे बढना है। अगर व्यक्ति भोगी है, तो उसी धरातल से ऊपर उठना है।[६] तंत्र बिना किसी शर्त के 'हाँ' कहता है। आज

---

१. तंत्राः द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-२२.
२. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-१९१.
३. वही, पृ०-२३१.
४. विज्ञान भैरव धारणा-५० (श्लोक-७३)
५. तंत्राः द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-९५.
६. तंत्र दर्शन, पृ०-३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक जीवन का ऐसा कोई दृष्टिकोण नहीं हुआ, जो बिना किसी शर्त के हाँ कहता हो।.... 'नहीं' दीवार खड़ा करता है।.... जब भी आप 'नहीं' कहते है, निरीक्षण करें; अचानक कुछ बन्द, अवरूद्ध हो जाता है। जब भी आप 'हाँ' कहते हैं, आपका अस्तित्त्व खुला होता है।[१]

किन्तु तंत्र की स्वीकृति साधारण स्वीकृति से भिन्न है। सामान्यतया कोई व्यक्ति एक स्थिति को तभी स्वीकार करता है, जब वह असहाय, निराश महसूस करता है। यह स्वीकृति कहीं नहीं ले जाने वाली है। किन्तु तंत्र की स्वीकृति पूर्ण सन्तुष्टि, पूर्ण तृप्ति से आती है, न कि निराशा, असहाय अवस्था से। ... इस स्वीकृति की अपनी सुन्दरता है। यह जबरदस्ती नहीं है।[२] अभ्यासजन्य स्वीकृति झूठी होगी। तब व्यक्ति विभाजित हो जाता है। बाहर-बाहर यह स्वीकृति होगी, और गहरे में निषेध, इन्कार होगा। तंत्र की स्वीकृति पूर्ण है। यह आपको विभाजित नहीं करती। तंत्र को छोड़कर संसार के सारे धर्म व्यक्तित्त्व को बाँटते हैं।--- वे आपमें कुछ अच्छा और कुछ बुरा बनाते हैं। वे कहते हैं कि अच्छे को पा लेना है और बुरे को इन्कार कर देना है। वे आपमें एक संघर्ष उत्पन्न करते हैं। तब आप हमेशा अपराधी अनुभव करेंगे। क्योंकि कैसे आप अपने जैविक अंश को नष्ट कर सकते हैं। कारण, आपने इसे बनाया नहीं है। आप बस इसे अपने अन्दर पाते हैं। क्रोध है, काम है, लोभ है-आपने इन्हें बनाया नहीं। ये जीवन के यथार्थ हैं; जैसे आपकी आँखे, आपके हाथ हैं। अब आप इसे कुरूप कहें या सुन्दर, किन्तु आप उसे नष्ट नहीं कर सकते। अस्तित्त्व का कुछ भी अंश नष्ट नहीं किया जा सकता। तंत्र कहता है कि रूपान्तरण सम्भव है; किन्तु विनाश नहीं। और रूपान्तरण तब आता है, जब आप अपने को पूरा स्वीकार करते हैं।[३]

क्रोध करना बहुत आसान है, लेकिन उसे स्वीकारना बहुत कठिन है। हर आदमी सोचता है कि मैं अच्छा आदमी हूँ और यह क्रोध क्षणिक है; यह आता है और चला जाता है। वह व्यक्ति की आत्म-प्रतिमा को नष्ट नहीं करता है; व्यक्ति अच्छा का अच्छा बना रहता है। यह व्यक्ति के अहंकार को नष्ट नहीं करता है। इसलिए जो लोग चालाक हैं, वे तुरन्त पश्चाताप कर लेते हैं। चालाक इसलिए कि उनका क्रोध उनकी आत्म-प्रतिमा को कंपा देता है। वे बेचैन अनुभव करने लगते हैं, वे समझते हैं कि मैं इतना बुरा हूँ कि क्रोध करता हूँ। इसलिए उसकी अच्छे आदमी होने की प्रतिमा काँपने लगती है, और उसे पुनर्स्थापित करना है। इसलिए वह कहता है कि वह बुरा हुआ, ऐसा फिर मैं नहीं करूँगा; मुझे क्षमा करें। और क्षमा माँगकर उसकी आत्म-प्रतिमा पुनर्स्थापित हो जाती है। यही कारण है कि व्यक्ति जन्मों-जन्मों तक क्रोधी-कामी बना रहता है। लेकिन उन्हें स्वीकार नहीं करता। यही मन की चालाकी है। यह जो भी व्यक्ति करता है, वह परिधि पर है; केन्द्र पर वह भला बना रहता है।[४]

अगर व्यक्ति स्वीकार कर ले कि मैं क्रोधी हूँ तो वह केन्द्र पर बुरा हो जाता है। तब यह

१. तंत्रा: द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-९६.
२. वही, पृ०-९६.
३. वही, पृ०-९९.
४. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१५७ (विशेष राजसंस्करण)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षणिक नहीं रहता, तब क्रोध उसकी संरचना का हिस्सा हो जाता है। तब ऐसा नही है कि कोई उसे क्रोध करने को उत्तेजित करता है; तब वह अकेले भी हो तो क्रोध में होगा।.....क्रोध का प्रवाह सदा मौजूद है, काम-वासना, लोभ का प्रवाह सदा मौजूद है। बाह्य-स्थितियों में व्यक्ति बदलता है, अन्तर-स्थिति में वह वही के वही रहता है। स्वीकार का अर्थ है कि क्रोध कृत्य नहीं है, व्यक्ति ही क्रोध है, कामवासना है, लोभ है। इसे स्वीकारने का अर्थ है-आत्म-प्रतिमा को उठा कर फेंकना। हम सबने सुन्दर आत्म-प्रतिमाएँ बनी रखी हैं।[१]

तंत्र कहता है कि "व्यक्ति जो कुछ भी है, उसे स्वीकारना पहला कदम है और सबसे कठिन कदम है। स्वीकृति अतिक्रमण है। न अपनी निन्दा करो, न दूसरों की। निन्दा निरर्थक है। उससे ऊर्जा का रूपान्तरण नहीं होता। तथ्य के साथ जीओ। यह बहुत विज्ञान सम्मत बात है। क्रोध, लोभ और कामवासना के तथ्य के साथ जीओ और उन्हें उनकी पूरी तथ्यता में जानो। उन्हें बस ऊपर-ऊपर, सतह पर छूकर मत छोड़ दो, बिल्कुल उनकी जड़ों में उतरो। और जब भी कोई किसी चीज़ की जड़ में उतरता है तो वह उसका अतिक्रमण कर जाता है।"[२]

स्वीकृति से अचानक सब कुछ एक रेखा में होता है, तब सभी कुछ अपना स्थान ग्रहण करता है। तब क्रोध भी अवशोषित होता है, लोभ भी। पहले जो अन्दर एक कोलाहल था, अब एक संगीत, एक मधुर राग का जन्म होता है।[३] कोलाहल और संगीत में बस केन्द्र का अन्तर होता है। कोलाहल में कोई केन्द्र नहीं होता। यदि कोलाहल को एक केन्द्र दी जाये, तो यह एक संगीत बन जाता है; तब सब कुछ जीवंत हो उठता है।

पुनः तंत्र जीवन को दो आयामों में बाँटता है। एक आयाम संसार है-यानी जो है और दूसरा आयाम मोक्ष है -यानि जो हो सकता है, जो प्रच्छन्न से प्रकट हो सकता है। लेकिन इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। जो प्रच्छन्न है, वह भी यहाँ है, संसार में ही है; लेकिन वह व्यक्ति के लिए अज्ञात है। वह अनस्तित्त्व नहीं है, वह भी है। परम और आसन्न दो चीजें नहीं, वरन् एक ही अस्तित्त्व के दो आयाम हैं। तंत्र कहता है कि संसार ही परमात्मा है-'भोग-यागात्मकं कौलम'।[४] लेकिन व्यक्ति अन्धा है। इसलिए वह अपने अन्धेपन में जो कुछ जानता है, वह संसार कहाता है और व्यक्ति के अन्धेपन के कारण जो भी छिपा है, वह परमात्मा है।

इस स्पष्ट दृष्टिकोण के कारण तंत्र सब कुछ को स्वीकार करता है। यह प्रगाढ़ स्वीकृति व्यक्ति को बहुत शान्ति से भर देती है। अगर इहलोक और परलोक में विभाजन नहीं है, अगर परमतत्त्व यहीं और अभी है, अगर पदार्थ परमात्मा का ही शरीर है तो कुछ भी अस्वीकृत नहीं रहता, कुछ भी निन्द्य नहीं रहता। इसलिए तंत्र ने शरीर और संसार को भी स्वीकारा और कहा-

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१५७
२. वही, पृ०-१५७.
३. तंत्राः द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-९९.
४. कुलार्णवतंत्र, २/२४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विना देहेन कस्यापि पुरूषार्थो न विद्यते।
तस्माद् देहधनं रक्ष्यं पुण्य-कर्माणि साधयेत्।।[१] एवं-
गार्हस्थं प्रथमं धर्म्यं सर्वेषां मनु-जन्मनाम्।[२]

अर्थात् 'गृहस्थ-धर्म सब मनुष्यों के लिए पहला धर्म है'। इसलिए तंत्र ने घर-संसार छोड़कर भागने वाले भगोड़ों एवं कायरों की निन्दा करते हुए कहा कि माता, पिता, पुत्रों, स्त्रियों, स्वजनों और बान्धवों आदि को छोड़कर जो साधु होकर, घर छोड़कर चला जाता है, वह महापातकी है-

मातृन् पितृन् शिशून् दाराः स्वजनान् बान्धवानपि।
यः प्रव्रजति हित्वैतान् स महापातकी भवेत्।।[३]

इस अर्थ में तंत्र ही एक मात्र स्वस्थ धर्म है और जब भी कोई धर्म स्वस्थ होता है, वह तंत्र हो जाता है, तंत्रमय हो जाता है।

तंत्र कहता है-"न संसार के पक्ष में होओ और न विपक्ष में, बस उसे वैसा ही स्वीकार करो, जैसा वह है। उसे एक समस्या मत बनाओ। अगर तुम उसके साथ रहने को राजी होते हो, वह जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार करते हो, तो तुम्हारी सारी ऊर्जा उससे मुक्त हो जाती है। और तब वह (ऊर्जा) अज्ञात जगत् में, प्रच्छन आयाम में गति कर सकती है। इस जगत् में स्वीकार उसके लिए अतिक्रमण बन जाता है।"[४]

स्वीकार का अर्थ है कि अब व्यक्ति इकट्ठा करने वाले मन को, चाह भरे मन को, किसी के पीछे भागने वाले मन को तिलांजलि देता है। अब वह जीवन को खुल कर बहने देता है।[५]

इस प्रकार स्पष्ट है कि समग्रता, समानता, सहजता और सर्वस्वीकार्यता तंत्र की आधारभित्ति है।

पञ्चमकार-रहस्य

तंत्र और पञ्चमकार में चोली-दामन का सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो पञ्चमकार की चर्चा किए बिना तंत्र की कुछ भी परिचिति नहीं मिलती। चाहे वह दक्षिणाचार हो, कौलाचार हो या वामाचार, पञ्चमकारों का सेवन किसी न किसी अर्थ में अवश्य होता है-

मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि।
स्त्रीभिःसार्द्धं महासाधुरर्चयेद् जगदम्बिकाम्।।[६]

अर्थात् साधु पुरूष स्त्री के साथ जगदम्बिका का अर्चन मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन के द्वारा सदा करें।

१. कुलार्णव, तंत्र, प्रथम उल्लास।
२. महानिर्वाण तंत्र (वाममार्ग, पृ०-३१ पर उद्धृत)
३. वही, (वही, पृ०-३१ पर उद्धृत)
४. तंत्र-सूत्र, भाग-४, पृ०-१४२ (पॉ०बु०सं०)
५. वही, पृ०-१७२.
६. कामाख्या तंत्र, पंचमपटल (वाममार्ग, पृ०-७३ पर उद्धृत).

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चण्डिकां पूजयेद् यस्तु बिना पञ्चमकारकैः।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या-यशो-धनम्
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा-मैथुनमेव च।
मकार-पंचकं देवि! देवता-प्रीति-दायकम्।।[१]

अर्थात् जो लोग बिना पञ्चमकारों के देवी की पूजा करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और धन-चारों का नाश होता है। हे देवि! मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन-ये पञ्चमकार देवता के प्रीतिदायक हैं।

मद्यं मांस तथा मत्स्यं मुद्रा मैथनमेव च।
पुनः पुनः साधयित्वा पूर्णयोगी बभूव सः।।[२]

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन-ये ही पञ्चमकार हैं। साधक इन्हीं के द्वारा पूर्णयोगी होता है। प्रायः सभी निवृत्तिमार्गी धर्म और दर्शन (हिन्दू, बौद्ध, और जैन आदि) मुद्रा को छोड़कर शेष चारों मकारों की निन्दा करते हैं और आध्यात्मिक पतन का कारण मानते हैं। किन्तु तंत्र जहर को भी अमृत बनाने की कला रखता है। तंत्र किसी पदार्थ को हेय और श्रेय में नहीं बाँटता। तंत्र के लिए सब कुछ दिव्य है। मनुष्य सार रूप में या आत्मा के रूप में दिव्य है तथा उसके सभी क्रिया-कलाप दिव्य हैं। वे केवल ईश्वर की शक्ति के अभिव्यक्ति रूप ही नहीं हैं, अपितु वे स्वयं शक्ति हैं। पदार्थ अपने आप में निकृष्ट या बुरा है-ऐसा कहना शक्ति की निन्दा करना है। अपने स्वाभाविक रूप में मन के लिए कुछ भी निकृष्ट या अशुद्ध नहीं है। अज्ञानी मन ही, अशिष्ट मन ही किसी भी स्वाभाविक कर्म को निकृष्ट या अश्लील मानता है।[३]

तान्त्रिक पण्डित जगमोहन तर्कालंकार हरिहरानन्द भारती महानिर्वाणतंत्र के अपने भाष्य में टिप्पणी करते हुए कहतें हैं-"मनुष्य के पतन के मुख्य कारण कौन से हैं? सर्वप्रथम है-मदिरा और स्त्री; तदनन्तर मत्स्य, माँस, मुद्रा और अन्य गौण वस्तुएँ। इन वस्तुओं के कारण मानव ने अपनी मानवता खो दी है। तदनन्तर शिव की आकांक्षा हुई कि इन जहरों का इस रूप में प्रयोग किया जाय कि वे मानव-व्यवस्था में घुले जहर को निकाल फेंके। विष ही विष का प्रतिकाराक है। यही उन व्यक्तियों की सम्यक् चिकित्सा है, जो मद्य और स्त्री के अति व्यसनी हैं।"[४]

मनुष्य का उन्ही वस्तुओं के माध्यम सें ऊर्ध्वगमन हो सकता है, जिनकी वज़ह से वह पतनोन्मुख है। जैसे कोई व्यक्ति जमीन पर गिर पड़ता है, जो स्वयं ही जमीन के सहारे उठना होता है। काँटा को काँटे के ही सहारे निकाला जाता है। प्रश्न केवल विधि के सम्यक् प्रयोग का है। मनुष्य का पतन मद्यपान, भोजन एवं संभोग की स्वाभाविक क्रिया के कारण ही होता

१. कौलावली (वही, पृ०-७३ पर उद्धृत)।
२. रुद्रयामल उ०त०, १७/१६०.
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८१.
४. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-४०२ पर वर्णित।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। किन्तु यदि इनका प्रयोग भाव एवं निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार किया जाय तो ये ही वस्तुएँ साधक के लिए विकास की सीढ़ी बन जाती हैं और एक ऐसी अवस्था आती है, जब ऐसी क्रियाएँ आवश्यक नहीं रह जातीं और व्यर्थ सिद्ध हो जाती हैं।[१] साधक को बहिर्मुखी वृत्तियों को उनकी स्वाभाविक दिशा में बहते रहने देना चाहिए, ताकि बाह्य वृत्तियाँ अपनी सहज तथा स्वाभाविक माँग की पूर्ति से निःसंस्कार होकर समाप्त हो सकें। क्योंकि आत्मज्ञान की उपलब्धि वृत्तियों के संकोच अथवा बाह्यीकरण क्रिया पर निर्भर नहीं है।[२] बाह्य क्रिया-कलापों के प्रति निस्सारता के अनुभव के पश्चात ही साधक ध्यान अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख होता है, और तभी वह उसमें निहित आन्तरिक समस्याओं को भली भाँति पकड़ तथा समझ सकेगा और साधक ठीक ढंग से अन्तर्निहित समस्या पर यथाविधि विचार करेगा, तभी तत्काल उस समस्या का समाधान स्वतः उसको मिल जाएगा।[३]

किन्तु पञ्चमकारों के कारण ही तंत्र को काफी बदनाम कियाा जाता रहा है। वस्तुतः तंत्र वैज्ञानिक सिद्धातों पर आधारित है। ऐन्द्रिक सुख की तीव्र लालसा को पराजित करने का यह एक विधायक तरीका है। भौतिक सुख के प्रति तीव्रासक्त व्यक्ति के लिए तंत्र पंचमकारों का रूढ़ अर्थ में विधान करता है, क्योंकि यह अतृप्त वासनाओं के दमन एवं निग्रह को प्रोत्साहित नहीं करता। सामान्यतः मनुष्य में आहार, निद्रा, भय और मैथुन की पाश्विक वासनाएँ प्रबल रूप में हैं। इन वासनाओं की तीव्रता प्रत्येक मनुष्य में भिन्न-भिन्न है। जव ये वासनाएँ प्रवल होती हैं तो मनुष्य उनकी तृप्ति के लिए संघर्ष करता है। उसके लिए इसका दमन एक कठिन कार्य है। आध्यामिक साधना और उच्च्व आदर्श प्यासे मन को आकर्षित नहीं करता। केवल कुछ सात्त्विक और आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति ही भौतिक सुख से अलग रह सकते हैं और आध्यात्मिक जीवन जी सकते हैं। किन्तु तंत्र भौतिक सुख से घृणा नहीं करता। सहज वृत्तियों का दमन एवं निग्रह ही अनैतिकता की जड़ है। मनुष्य अल्पकाल के लिए अपनी सहजवृत्तियों को दबा तो सकता है, किन्तु अन्ततः एक ज्वालामुखीय विस्फोट तो होना ही है। बौद्धविहारों के पतन का यही कारण था।[४]

चाहे मानें या नहीं मानें, किन्तु सभी वस्तुएँ सुख या आनन्द के ही इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं। आनन्द के दो रूप हैं- मुक्ति के रूप में, जो कि आनन्दस्वरूप असीम और एक है तथा भुक्ति या सीमित सांसारिक सुख के रूप में। तान्त्रिक साधना दोनों प्रदान करती है, क्योंकि दोनों एक के ही दो पहलू हैं।[५] मोक्ष से पहले मनुष्य मदिरा, भोजन (मत्स्य-मांसादि) और मैथुन में ही आनन्द पाता है। तंत्र मनुष्य की वास्तविक स्थिति से, जहाँ वह रहता है वहीं से प्रारम्भ करता है। तंत्र का कथन है-"प्रियतमा का मुख दर्शन कर, मद्य-पान और मांस-भोजनपूर्वक जप करने से परम पद प्राप्त होता है।"[६]

---

१. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-४०३.
२. त्रिपुरारहस्य का तंत्र-विश्लेषण,पृ०-१९.
३. वही, पृ०-३८.
४. तंत्राः इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१४४.
५. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९८.
६. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, दूसरा उल्लास, पृ०-९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सविधि-पञ्चमकार-सेवन

तंत्रशास्त्र के अनुसार पञ्चमकारों का सेवन यथाविधि करना चाहिए। कुलार्णव में कहा गया है-"विधिपूर्वक सेवन करने से हे देवि! तुम शीघ्र प्रसन्न होती हो। अविधिपूर्वक तिनके को भी न तोड़ना चाहिए। विधिपूर्वक बैल या द्विज का भी वध करने से पाप नहीं होता।[1] पितरों और देवताओं की तृप्ति के लिये और ब्रह्मतत्त्व में ध्यान स्थिर करने के लिए मधु-माँस का सेवन करें। यदि कोई तृष्णा के वश में होकर इनका सेवन करता है, तो वह पापी होता है।[2]"

शिव कहते हैं-"पूजा काल को छोड़कर मैंने विशेषकर मद्य, मत्स्य आदि पदार्थ को और किसी अवसर के लिए विहित नहीं ठहराया है।[3] भैरव का पूजन और मन्त्र-तर्पण किये बिना जो पशु-पान की विधिपूर्वक मद्य का पान करता है, वह वीर साधक भी नरकगामी होता है। जो व्यक्ति कौलज्ञान से रहित है और कौलों के लिए निर्दिष्ट पदार्थों के उपभोग की इच्छा करता है, उसे महापापी समझना चाहिए और धार्मिक कर्मों से दूर रखना चाहिए। जो व्यक्ति पूजा करने की इच्छा नहीं करता है, किन्तु मद्य-पान, मांस-भक्षण और स्त्री-भोग में आसक्त है, ऐसा कौल-दीक्षा से रहित व्यक्ति अक्षय नरक को गमन करता है।[4] जो व्यक्ति असंस्कृत मद्य का पान करता है, बलपूर्वक स्त्री-संभोग करता है और अपनी तृप्ति के लिए पशु वध करता है, वह रौरव नामक नरक जाता है।[5]"रुद्रयामल में कहा गया है[6]-

अनिवेद्य तु यः शक्त्ये कुलद्रव्यं निषेवते।
पूजितं निष्फलं तस्य देवता न प्रसीदति।।
मातृ-रूपां परित्यज्य स्त्री-रूपां शक्तिमाचरेत्।
स याति नरकं घोरं जन्म-कोटि-शतनि च।।
मन्त्र-माता च पुत्री च भगिनी च कुलांगना।
न रमेत् कौलिको नित्यमेताः सम्यक् समर्चयेत्।।

अर्थात् जो साधक बिना शक्ति को अर्पित किये हुए कुल-द्रव्यों का उपभोग करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है और उस पर देवता भी नहीं प्रसन्न होते। जो साधक शक्ति को मातृ-रूप में न ग्रहण कर स्त्री रूप में ग्रहण करता है और तदनुसार उसके साथ व्यवहार करता है, वह सौ करोड़ जन्मों तक घोर नरक को प्राप्त होता है। मन्त्र देने वाली माता, पुत्री, बहन,

---

१. वही, दूसरा उल्लास, पृ०-१०.
२. कुलार्णव तंत्र, पाँचवा उल्लास।
३. समयाचार (वाममार्ग, पृ० २९ पर वर्णित)।
४. हिन्दी कुलार्णव तंत्रः पाँचवा उल्लास, पृ०-३०.
५. कुलार्णव तंत्र, ५/९९-असंस्कृतं पिबेद द्रव्यं ब्लात्करेण मैथुनम्।
स्वप्रियेण हतं मासं रौरवं नरकं व्रजेत्।।
६. रुद्रयामल (वाममार्ग, पृ०-३० पर उद्धृत)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और कुलांगना के साथ कौल साधक कभी रमण न करे। इनकी तो उसे नित्य अच्छी तरह पूजा ही करनी चाहिए।

यही नहीं अनधिकार व्यक्ति को पञ्चमकार से विरत करने के लिए यहाँ तक कहा गया है कि–"यदि मद्य-पान से ही सिद्धि मिले, तो सब मद्यप सिद्ध हो जाने चाहिए थे। मांस खाने से यदि पुण्य होता है, तो सब माँसाहारी जीव पुण्यात्मा हैं और यदि स्त्री-संभोग मात्र से मोक्ष मिलता है, तो संसार के जन्तु मात्र को मुक्त समझना चाहिए, क्योंकि सभी स्त्री-संभोग करते हैं।[१]"

इस प्रकार पञ्चमकारों का सेवन विधि-निषेध से निर्देशित है।

पञ्चमकार के विभिन्नार्थ

पञ्चमकार आध्यात्मिक उत्थान के सहज और स्वाभाविक सोपान हैं। तंत्रशास्त्र में प्रयुक्त ये पांच तत्त्व एक साधना-विधि का निर्देश देते हैं। जब वह साधना-विधि समझ में आ जाती है, तब उसका शाब्दिक अर्थ कुछ भी हो, अन्तर नहीं पड़ता। दक्षिणाचार, कौलाचार और वामाचार मार्गों में पञ्चमकार का प्रयोग होता है। वेदाचार, सिद्धान्ताचार और योगाचार मार्गों में पञ्चमकार का प्रयोग नहीं होता है। अनेक चिंतकों का मत है कि वामाचार में इनका सामान्य शाब्दिक अर्थ होता है तथा मांस, मत्स्य, मद्य, मुद्रा और मैथुन का यथार्थतः प्रयोग होता है। कुछ लोगों का मत है कि दक्षिणाचार में इन्हें प्रतीकात्मक अर्थ में अपनाया जाता है। कुछ अन्य लोगों के मतानुसार कौलाचार में केवल दिव्य साधक ही इसका पालनं कर सकते हैं। सामान्यतः तान्त्रिक सिद्धांतों या तंत्र-व्याख्या में मांस, मत्स्य, मद्य, मुद्रा और मैथुन को सीमित अर्थ में ही लिया गया है।[२]

पुनः साधक के वर्गीकरण की दृष्टि से भी पञ्चमकार के भिन्न अर्थ हैं। साधक को तीन वर्गों में बाँटा गया है–पशु, वीर और दिव्य। प्रत्येक के लिए शास्त्र उसके अनुकूल क्रमशः तामसिक, राजसिक एवं सात्त्विक साधना का विधान करता है। पञ्चतत्त्व पूर्ण एवं साहित्यिक अर्थ में वीर साधकों के लिए है। इसलिए इसे राजसिक साधना कहा जाता है।[३] वीर के कर्मकाण्ड में ही मद्य केवल मद्य है तथा मैथुन यौन सम्मिलन है। पशु के लिए वीरचार का निषेध है; क्योंकि वह इस अवस्था के लिए अयोग्य है और दिव्य के लिए ये कर्मकाण्ड बहुत ओछे हैं वह इन सबसे ऊपर है। सारांश यह है कि पञ्चतत्त्व के तीन अर्थ हैं। मद्य मद्य है-वीर कर्मकाण्ड में, या वह नारियल का पानी है-पशुकर्मकाण्ड में या वह योग के द्वारा परम तत्त्व का मदमस्त ज्ञान है-दिव्य कर्मकाण्ड में। इस प्रकार पंचतत्त्व तीन प्रकार के हैं-प्रत्यक्ष तत्त्व-जहाँ मद्य का अर्थ मद्य है, अनुकल्प तत्त्व या स्थानापन्न वस्तु-जहाँ मद्य का अर्थ नारियल का पानी या अन्य कोई द्रव्य है तथा दिव्य तत्त्व-जहाँ मद्य योग-ज्ञान के आनन्द को प्रकट करने का एक प्रतीक है।[४]

१. कुलार्णव तंत्र, २/११७-११९.
२. तंत्र-दर्शन, पृ०-१७५.
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८०.
४. वही, पृ०-३८५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(क) मद्य

मद्य को परिभाषित करते हुए कुलार्णव[१] में कहा गया है कि-"माया जाल आदि को शमन करने से, मोक्ष-मार्ग का निरूपण करने से और आठों प्रकार के दु:खों को दूर करने से 'मद्य' कहलाता है। महादान का अर्थरूप होने से, याग-भूमि का एक मात्र साधन होने से और मेरे (शिव के) भाव को उत्पन्न करने से 'मद्य' कहा जाता है। मद्य को मदिरा, मधु, सुरा आदि भी कहा जाता है। कहा गया है कि सुरा-सुन्दर मन द्वारा सेवित होने से, सदा राज्यदायिनी होने से और सुर (देव) रूप को प्रदान करने से 'सुरा' कहलाती है।[२] मदिरा को कारणवारि या तीर्थवारि भी कहा जाता है।[३]

वैदिक काल से ही मद्य-मांस का प्रयोग होता रहा है। वैदिक आर्य मद्य-मांस का अपने यज्ञों और उत्सवों में भरपूर प्रयोग करते थे। इनकी प्रशंसा तथा प्रयोग-विधियों से सारा वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। वैदिक आर्य 'सोमयज्ञ' तथा 'हविर्यज्ञ' किया करते थे जिनमें से एक यज्ञ 'सौत्रामणि' था, जिसमें मद्य से पूजनादिक होता था और मद्यपान होता था। यथार्थत: यह यज्ञ मद्य-पान के लिए ही किया जाता था।[४] 'शतपथ-ब्राह्मण'[५] में यह भी कहा है कि मद्य यजमान को पवित्र करता है और मद्य स्वयं ही पवित्र है। ऋग्वेद के पाँचवे मंडल में ऋषि काक्षिवान् ने मद्य की बहुत प्रशंसा की है।[६] इन्द्र सोमरस के पान में पटु हैं। ऋग्वेद का पूरा का पूरा नवम मण्डल सोमरस के वर्णन से भरा पड़ा है।

श्राद्ध में मद्य का प्रयोग होता था। इस सन्दर्भ में कात्यायन-कल्प-सूत्र (३/६) का गदाधर भाष्य द्रष्टव्य है। यजुर्वेद-सर्हिता (२/३४/१) का मन्त्र 'उजं वहन्तीरमृतं घृतं पय: कीलालं परिस्रुतम् स्वधास्तर्पयन्त मे पितृन' स्पष्ट है। इस मन्त्र से पितरों की तृप्ति के लिए अमृतोपम चार वस्तुएँ प्रदान करने का वर्णन है। यथा घृत, पय, कीलाल और परिस्रुत[७] अर्थात् घी, दूध, जल और सुरा। इसी कल्प-सूत्र (३/७७) के गदाधर-भाष्य में श्राद्ध में ब्राह्मणों के विसर्जन का मन्त्र इस प्रकार है-

वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञा:।
आस मध्व: पिवत मादवध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देव-यानै:।।[८]

उपरोक्त मन्त्रांश 'अस्य मध्व: पिवत मादवध्वम्' का अर्थ है-'इस मधु को पीकर नशे में उन्मत्त हों।'

---

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, १७ वॉ उल्लास पृ०-९२.
२. वही, पृ०-९२
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८५
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ० २३, द्रष्टव्य-शतपथ ब्राह्मण (५,१,१३)
५. वही, पृ०-२३ पर सन्दर्भित।
६. वही, पृ०-२३ पर सन्दर्भित।
७. अमरकोष-'सुरा, हलि-प्रिया, हाला, परिसुद्र-वरूणात्मजा'।
८. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२५ पर उद्धृत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पौराणिक साहित्य में भी इस बात के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं कि मद्य-मांसादिक का उस काल के लोगों में अबाध प्रचार था। 'ब्रह्माण्ड पुराण' के मध्य भाग उपोद्घात-पाद के अध्याय उन्नीस में श्राद्ध-हवि में मांस-मत्स्य का प्रयोग वैसा ही बताया है, जैसा कि मनुस्मृति में।[१] मद्य-पान करने से ऋषि का नाम कश्यप पड़ा-'कश्य मद्यं स्मृतं विप्रैः कश्य-पानत्तु कश्यपः'।[२] भविष्य-पुराण, ब्राह्म-पूर्व, अध्याय-७३ में श्री कृष्ण का अपनी रानियों के साथ, द्वारिकापुरी में मद्य-पानादिक का वर्णन है।[३] मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत दुर्गा-सप्तशती (अध्याय-१२)में स्वयं देवी ने अपने श्रीमुख से कहा है-'पशु, पुष्प, धूप,दीप से मेरी पूजा करनी चाहिए'। महिषासुर-युद्ध (अध्याय-३) में देवी ने मद्य-पान किया और फिर नशे से लड़खड़ाती वाणी में महिषासुर को डाँटा।[४]

'जब श्री बलराम जी गोपियों के साथ ब्रज-वनों में यमुना के तीर रमण कर रहे थे, तब उनके लिए वरूण ने वारूण देवी (सुरा) को वृक्ष कोटर में भेजा। उसकी उन्मत्त करनेवाली गन्ध को, जो वायु में फैल रही थी, सूँघकर ब्रज की स्त्रियों के साथ बलराम जी वृक्ष-कोटर पर पहुँचे और स्त्रियों के साथ (वारूणी) को पिया, जिससे नशे के कारण उनके नेत्र विह्वल हो गए'।[५]

ईसाई, मुसलमान और यहूदियों के भी यही हाल हैं। ईसाईयों और यहूदियों में ईश्वर की पूजा में मांस-मद्य का प्रयोग होता है। मुसलमानों में यद्यपि इहलोक में मद्य-सेवन वर्जित है, परन्तु स्वर्ग (जन्नत) में मुसलमानों को मद्य पीने को मिलती है।[६]

वैष्णव-धर्म ही केवल ऐसा है, जिसके अनुयायी मद्य-मांस को अत्यन्त ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं और इनका सेवन जघन्य पाप समझते हैं, परन्तु उनकी सर्वमान्य पुस्तक श्रीमद्भागवत से ही मद्य-मांस सेवन का प्रतिपादन होता है। भगवान् के अवतार श्री बलराम जी मद्य के नशे में सदा चूर रहते थे और इसी कारण मद्य का नाम 'हलि- प्रिया' अर्थात् 'हलधर-बलराम की प्रिया' पड़ गया।

इसी बात को देखते हुए श्रीमद्भागवत ११-५-११ को यह मत स्थिर करना पड़ा कि-

लोके व्यवायामिव मद्य-सेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थिस्तेषु विवाह-यज्ञ-सुराग्रहैराशु निवृत्तिरिष्टा ।।[७]

अर्थात् 'इस दुनिया में किसी से यह कहना नहीं पड़ता कि तुम संभोग, मांस और मदिरा

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२५ पर वर्णित
२. वही, पृ०-२५ पर वर्णित
३. वही, पृ०-२५ पर वर्णित
४. वही, पृ०-२६ पर सन्दर्भित
५. श्रीमद् भागवत-१० (उत्तरार्ध)-६५, श्लोक-१९-२० (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२६ पर वर्णित)।
६. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ० २६.
७. वही, पृ०-२७ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का सेवन करो; ये बातें मनुष्य को स्वभाव से ही प्रिय हैं। इन तीनों की कुछ व्यवस्था कर देने के लिए अर्थात् इनका उपयोग कुछ मर्यादित करने के लिए (शास्त्रों ने) अनुक्रम से विवाह, सोम-याग और सोत्रामणि-यज्ञ की योजना की है, परन्तु इस पर भी निवृति इष्ट है।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि मद्य-पान की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। तंत्र में मद्य के ग्रहण के कई कारण हैं। मद्य का प्रयोग चेतना को बाह्य-वस्तुओं की तल्लीनता से मुक्त करने के लिए किया जाता है। मन की सतही चेतना जो दु:ख और आसक्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है, वह कुछ देर के लिए स्थगित हो जाती है तथा चेतना का गहरा, विस्तृत औन अवचेतन सतह खुल जाता है। यह साधक को आन्तरिक खाई या गुफा पर नियंत्रण करने के लिए समर्थ बनाता है तथा स्वयं के उदात्तीकरण एवं परिष्कार के लिए कार्य करता है।[१] तंत्र-साधना में मद्य का प्रयोग चित्त-शोधन के लिए किया जाता है।[२]

वस्तुत: मनुष्य हर क्रिया के प्रति प्रतिक्रिया करता है। किन्तु शिष्टाचार, नैतिकता, भय, लज्जा, सम्मान आदि के कारण वह प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त नहीं कर पाता। इससे उसके शरीर में ग्रंथियाँ बनने लगती हैं और वह दमित, कुण्ठित और बन्द हो जाता है। मद्यपान करने से उसे किसी मानदण्ड का ख्याल नहीं होता और निर्भय एवं लज्जाविहीन होकर दमित भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। इस तरह वह अपने भावनाओं के प्रति ईमानदार हो जाता है। साथ ही वह निर्भीक और हल्का अनुभव करता है। आध्यात्मिक साधना के लिए ईमानदारी और हल्के मन का होना अनिवार्य है। विलियम जेम्स[३] का कथन है (वेराइटिज ऑफ रिलिजियस एक्सपीरिएन्स, पृ०-३८७)-"मनुष्य के ऊपर अल्कोहल (मद्य) के प्रभाव का कारण इसकी शक्ति है, जो मानव-स्वभाव की रहस्यमयी आयामों को प्रेरित और उद्दीप्त करती है। यह एक करता है। वास्तव में यह मनुष्य में स्वीकार का उच्चतम उत्तेजक हैं। यह मनुष्य को उसकी उदासी और नैराश्य की परिधि सें कान्तिमय और प्रफुल्लित अभ्यन्तर की ओर ले जाता है। इसके प्रभाव में यह रहस्यात्मक चेतना का एक अंश हो जाता है। जैसा कि प्रसिद्ध है कि मद्य मनुष्य के सच्चे रूप को उघाड़कर रख देता है।"

कोई व्यक्ति केवल उपने स्वाद के लिए यदि मद्यपान करता है तो वह इस पान के द्वारा अपनी प्यास ही बढाएगा। किन्तु यदि वह इस मद्य को दिव्य वस्तु के रूप में ग्रहण करता है, उसमें देवता का अंश देखता है, तो क्रमिक रूप से ऐसे विचार उसकी ऐन्द्रिक आकांक्षाओं पर विजय प्राप्त करेंगे और अन्तत: उसे निर्मूल कर देंगे।[४] इसलिए कहा गया है–

---

१. तंत्रा: इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१४४.
२. कुलार्णव तंत्र, ५/४१- मदिरा ब्रह्मगा: प्रोक्ता चित्तशोधन-साधना:।
तासामेकां समाहृत्य पूजाकर्म समाचरेत्।।
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९१ पर सन्दर्भित।
४. वही, पृ०-३८४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निःशङ्को निर्भयो वीरो, निर्लज्जो निष्कुतूहलः।
निर्णीत-वेद-शास्त्रार्थी, वरदां वारूणीं पिबेत्।।[१]

अर्थात जिसको किसी से शङ्का नहीं है, भय नहीं है, जो वीर है और लज्जा व कुतूहल से रहित है और जिसने वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन कर उनका अर्थ पूर्ण-रीत्या हृदयङ्गम कर लिया है, वही मनुष्य वरदात्री वारूणी के पान करने का अधिकारी है।

पुनः मद्य-पान की सम्यक् मात्रा और विधि के बारे कहा गया है कि बिना मन्त्रों द्वारा संस्कृत की गई सुरा कलह तथा व्याधि उत्पन्न करनेवाली तथा आयु, श्री, कीर्ति, सौभाग्य, धन-धान्य का विनाश करने वाली है। इसलिए विधि-पूर्वक मंत्रों से मद्य संस्कार कर अर्चन करें (तब पीयें), अन्यथा दाता तथा भोक्ता दोनों ही नरक जाते हैं।[२] भोजन के बाद मद्य-पान तथा मद्य-पान के बाद भोजन करना विष है। भोजन के साथ ही साथ मद्य-पान अमृत है और चर्वण के बिना केवल मद्य-ही मद्य पीना विष है। दृष्टि, मन, वाणी तथा शरीर में जब तक विभ्रम नही होता, तभी तक मद्य पीना चाहिए। इससे आगे पीना पशु-पान है। जब तक इन्द्रियाँ विह्वल नहीं हुई, जब तक मुख विकृत नही हुआ, तभी तक मद्य पीना चाहिए। जो इससे अन्यथा आचरण करता है, उसका पतन होता है।[३] गृहस्थ साधकों को केवल पांच पात्र पान करना चाहिए। अधिक पान करने से कौलों की सिद्धि की हानि होती है। जब तक दृष्टि चलायमान न हो, जब तक मन चंचल न हो, तभी तक पान करना चाहिए। इसके परे जाना पशु-पान होगा।[४] जब तक साधक प्रारम्भ में ही शुद्ध एवं भक्तिमय होता है, तो मद्य की संतुलित मात्रा, उसकी भक्तिभावना, समर्पण-भाव को और सघन करती है। किन्तु यदि अति मद्यपान किया जाय तो कोई भक्ति या समर्पण नहीं हो सकता, तब तो केवल अनिष्ट ही होगा।[५]

तंत्र का कथन है कि जिसने उष्णीष या कञ्चुक पहन रखी हो या जो नग्न हो, जो जन समुदाय से घिरा हुआ हो, जो व्यग्र हो, जो क्रोध में हो, जिसकी झगड़ा करने की आदत हो, वह कुलामृत का सेवन न करे–

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो, मुक्त-केशो गणावृतः।
व्यग्रो रूष्टो विवादी च, न सेवेत कुलामृतम्।।[६]

मद्य का तान्त्रिक उद्देश्य हे 'सोऽहं' भाव से पूजा-अर्चना करना। इस 'सोऽहं-भाव' से पूजन के लिए संसार को भूलना आवश्यक है। इसके लिए मन पर दबाब डालना पड़ेगा, परन्तु

---

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२९ पर उद्धृत।
२. कुलार्णव तंत्र, ६/३१-३२
३. वही, ७/९३-९४, ९७-९८.
४. महानिर्वाण तंत्र, पष्ठ उल्लास (वाममार्ग, पृ०-७२ पर सन्दर्भित)
५. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९१.
६. कुलार्णव तंत्र, ११/१८.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन पार्थिव पञ्च-भूतों के वश में होने से कोरे दबाब से नहीं भूलता। अतएव इसमें किसी पार्थिव वस्तु के प्रयोग से परिवर्त्तन करना होगा। विद्वानों ने देखा कि मादक वस्तुओं में वह शक्ति है, जिससे मनुष्य आत्म-विस्मृत हो जाता है। मादक वस्तुओं में सर्वोत्तम 'मद्य' ही पाया गया। कारण, 'मद्य' अन्य मादक वस्तुओं की भाँति मनुष्य में आलस्य नहीं लाता। 'मद्य-पान' से मनुष्य आत्म-विस्मृत तो हो जाता है, किन्तु उसकी क्रिया-शक्ति में बाधा नहीं पड़ती; बल्कि 'मद्य' के प्रभाव से आलसी मनुष्य भी क्रियाशील हो उठता है। इसके साथ-साथ विद्वानों ने अनुभव से यह भी जाना कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति 'मद्य' की ओर है।[१]

साधारण-से-साधारण गली-गली फिरनेवाला मद्यप भी घृणालज्जादिक से मुक्त रहता है। यह अवस्था यदि विवेक और ज्ञान से पूर्ण हो तो, यही मुक्त अवस्था कहलाती है। शाक्त ऋषियों ने इन अवस्थाओं का बारीकी से अध्ययन किया और 'मद्य' को साधना की सामग्री बनाकर मनुष्य-समाज को दोहरा फायदा पहुँचाया[२]–

(१) एक तो 'मद्य-पान' को बहुत ही नियंत्रित कर दिया, जिससे जन-साधारण को हानि न पहुँचे।

(२) दूसरे, उन साधकों को 'अष्ट-पाश' से विमुक्त होने की औषधि बता दी, जो केवल मानसिक बल के ही सहारे इन पाशों से छूटने में असमर्थ थे।

वामाचारी उपासना करने ही के लिए 'मद्य' का प्रयोग करता है; क्योंकि 'मद्य-पान' करने से वह आत्म-विस्मृत, लोकचिन्ता-रहित हो जाता है और जिस किसी विचार अथवा वस्तु पर वह ध्यान जमाता है, उस पर उसका ध्यान केन्द्रित हो जाता है। वीराचारी द्वारा मद्य-पान करने का मन्त्र कितना पवित्र और आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रेरित है–

इदं पवित्रममृतं पिबामि भव-भेषजम्।
पशु-पाश-समुच्छेद-कारणं भैरवोदितम्।।
चित्ते स्वातन्त्र्य-सारत्वात्-तदानन्दमयात्मनः।
तन्मयत्वाच्च भावानां भावश्चान्तर्हिता।।
सुषुम्नानां विकाशाय सुरसस्तेन पीयते।
तस्मादिमां सुरां देवीं पूर्णोऽहं त्वां पिबाम्यहम्।।[३]

पशुभाव साधक के लिए नारियल का पानी मद्य के स्थानापन्न की जगह प्रयुक्त किया जाता है।[४]

दिव्य-भाव साधक के लिए मद्य का सूक्ष्म अर्थ है। रुद्रयामल का कथन है कि आनन्द और ब्रह्म का प्रकाश देह के मध्य ही अवस्थित है, अतः उसके अभिव्यञ्जक द्रव्य के द्वारा ही

१. पञ्चमकार, तथा भावत्रय, पृ०-४२-४३
२. वही, पृ०-४३.
३. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, ७ वाँ उल्लास, पृ०-४०
४. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मादि का तर्पण करना चाहिए। जगत् का आनन्द साररूप में, ब्रह्मरूप में शरीर में ही स्थित है, योगीगण उसके अभिव्यञ्जक द्रव्य के द्वारा उसकी पूजा करते हैं।[1] इसी दृष्टिकोण से मद्य का अर्थ बताते हुए कहा गया है–

मूलाम्भोजो ब्रह्मरन्ध्रं चालयेदाशु चालयेत्।
गत्वा पुनः पुनस्तत्र चिच्चन्द्रः परमोदयः।।
चिच्चन्द्रः कुण्डली शक्तिः सारमस्य महोदयः।
व्योमपङ्कजनिस्यन्द-सुधा-पान-रतो नरः।।
मधुपानमिदं नाथ। बाह्ये चाभ्यन्तरे सताम्।
इतरन्मद्यपानन्तु योगिनां योगघातनम्।।[2]

अर्थात् 'चन्द्रमा के समान प्रकाशवती चैतन्यरूपा कुण्डली शक्ति जब मूलाधार से उठकर बार-बार ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर सहस्रार में परमात्मा से संयुक्त होती है और इस सामरस्य से जो आनन्द उन्पन्न होता है, उसके फलस्वरूप व्योमपङ्कज अर्थात् सहस्रदल कमल से अमृत का निर्झरण होता है; इसको खेचरी मुद्रा के प्रयोग से जो साधक पान करते हैं, वे सुधा (सुरा) पान करते हैं। इनके अतिरिक्त तो मद्य पायी हैं।

आगम सार में कहा गया है–

सोमधारः क्षरेद् यस्तु ब्रह्मरन्ध्रात् वरानने।
पिबन्त्यानन्दमयीं तां य स एव मद्यसाधकः।।[3]

अर्थात वह सोम की धारा ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित होती है और उसे पीने से आनन्द की प्राप्ति होती है। इस सोपधारा को पीनेवाला ही मद्य-साधक कहलाता है।'

मदिरा की यह परिभाषा योग में ब्रह्मरन्ध्र क्षेत्र के बिन्दु-विसर्ग से उत्पन्न होने वाले अमृत से सम्बन्ध रखती है। बिन्दु-विसर्ग के क्षेत्र में एक विशेष प्रकार का स्राव (हार्मोन) उत्पन्न होता है। यदि उसको सही रूप में ग्रहण किया जाय तो वह शरीर को अमरत्व प्रदान करता है। सामान्यतः इस अमृत को मनुष्य ग्रहण नहीं कर पाता है। योगग्रन्थों में बतलाया गया है कि यह अमृतधारा बिन्दु-विसर्ग से मणिपुर में गिरती है। मणिपुर का सूर्य उस अमृत बिन्दु या स्राव को जलाकर भस्म कर देता है। इसी कारण मनुष्य को जरा, व्याधि और मृत्यु की प्राप्ति होती है। खेचरी मुद्रा की सिद्धि के पश्चात् इस अमृतधार को विशुद्ध-चक्र में धारण किया जाता है, तब शरीर अमरत्व को प्राप्त करता है। दक्षिणमार्ग में इसी अमृतपान को मदिरा-पान की संज्ञा दी गई है। इस अमृत पान से सामान्य मदिरा-पान की तुलना में लाखों गुणा अधिक नशा आता है।[4]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, २६/१३२-१३३.
२. वही, २६/ १३५-१३७, तुलनीय कुलार्णव तंत्र, ५/१०६, १०८
३. आगमसार (तंत्राज: देयर फिलॉसफी एण्ड ॲकल्ट सीक्रेटस, पृ०-१३२ पर उद्धृत)।
४. तंत्र दर्शन, पृ०-१७५-१७६.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिव्य-भावापन्न महात्मा के लिए मद्य की परिभाषा ही बदल गई है, उस मद्य में वे कितने मतवाले हो रहे हैं। यथा-

ज्ञान मदमाते जे नैना निस दिन, तिनको कबहुँ न होत खुमारी।
सत के पियाले में धरम भर-भर पियो, रसना सवाद लेत तारन-तारी।।
तन कर माँटी मन कर सायन, पञ्चमहाभूत आनन्दकारी।
'हरिदास' डागुर पिया को रिझाय लेत, टपकत बूँद होत अगियारी।।[१]

हरिदास जी का प्रथमा ज्ञान 'मद्य' है। यही भक्त-शिरोमणि मीराबाई की भी राय है-

'पिये प्याला रस भर-भर, ओछे अमल की स्वाद कहारी'।[२]

प्रेम कहा जाय, भक्ति कहा जाय, जब ऐसे-ऐसे घनघोर नशों में डूब गए तो 'ओछे अमल' हल्के नशे, दुनियावी शराब या भौतिक मद्य में क्या आनन्द?

कुलार्णव तंत्र में ग्यारह प्रकार के मद्य का उल्लेख मिलता है- पानस, द्राक्ष, माधूक, खार्जूर, ताल, ऐक्षव, मधु, उच्छिष्ट, माध्वीक, मैरेय और नारिकेल। ये मद्य भुक्ति व मुक्ति देनेवाले हैं।[३]

पुरातन काल में फूलों के रस से सुरा तैयार की जाती थी तथा उस मदिरा को घड़े मे रखकर जमीन के नीचे भिन्न-भिन्न अवधि-तीन दिन, नौ दिन या ग्यारह दिन के लिए रख दिया जाता था। वह थोड़ा किण्वित (फरमेंटेड) अवश्य हो जाता था और उसके पान से हल्का नशा भी आता था, किन्तु शरीर के लिए हानिकारक नहीं होता था। ऐसे द्रव्यों को औषधि भी कहते हैं। अल्कोहल या शराब के सेवन करने से यकृत खराब होता है, अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं तथा शरीर को क्षति पहुँचती है। फूलों, फलों, औषधियों तथा कन्दमूलों से बनी सुरा शरीर के लिये लाभदायक होती थी।[४] तंत्र में जब 'मद्य' का शाब्दिक अर्थ वाच्य होता है तो उसका अभिप्राय यही है।

(ख) मांस

मङ्गलकारी होने से तथा मद्य का आनन्द प्रदान करने से एवं सब देवताओं को प्रिय होने से इसका 'मांस' नाम हुआ है।[५] 'मद्य' के उत्कट उत्तेजक पदार्थ होने के कारण मांस, मत्स्य, मुद्रा का इसके साथ प्रयोग किया जाता है इसको 'चर्वण' कहते हैं। 'कुलार्णव' में कहा गया है-'चर्वणेन बिना पानं केवलं विष-भक्षणम्'।[६]

यदि बिना पौष्टिक भोजन के 'मद्य' का सेवन किया जाएगा, तो मनुष्य मर जाएगा।

१. पञ्चकार तथा भावत्रय, पृ०-७० पर उद्धृत।
२. वही, पृ० ७० पर उद्धृत।
३. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पाँचवा उल्लास, पृ०-२६.
४. तंत्र दर्शन, पृ०-१७६.
५. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, १७ वॉ उल्लास, पृ०-९२.
६. कुलार्णव तंत्र, ७ वॉ उल्लास।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मत्स्य मांस से मद्य का विष शान्त होता है और यदि उचित मात्रा में 'मद्य' के साथ मांसादि का सेवन किया जाय, तो शक्तिहीन मनुष्य भी वलवान् तथा तेजस्वी हो जाता है। डॉक्टर लोग प्रायः रोग की निर्बलता में और विशेषतया क्षय-रोगियों को नियमित मात्रा में ब्राण्डी (एक प्रकार की 'मद्य') तथा अण्डे और मांस-रस का सेवन कराते हैं।[१]

मांस तीन प्रकार का कहा गया है-खेचर अर्थात पक्षी, जलचर तथा भूचर। मांस के जल में ब्रह्मा, गंध में विष्णु, रस में रुद्र और आनन्द में परमात्मा का वास है।[२] कौलमार्ग के अनुसार मांस का यथार्थ रूप में गहण कर कर्मफल का त्याग करनेवाला मांस-साधक कहलाता है।[३]

पशु-भाव साधक के लिए नमक, अदरक, तिल, माश कलाइ एवं लहसुन आदि मांस के प्रतिस्थानापन्न हैं।[४]

दिव्यभाव साधना एवं दक्षिणमार्ग में मांस के सूक्ष्म अर्थ बताए गये हैं। कहा गया है कि-

पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगिवत्।
परशिवे च यच्चित्तं नियोजयति साधकः।।
मांसाशी स भवेदेव इतरे प्राणघातकाः।[५]

अथार्त् परमज्ञान रूप खड्ग के द्वारा पुण्यापुण्य रूप पशु का वध करके परम शिव में चित्त का नियोजन करने वाला ही असली मांस-भक्षक है, अन्य तो प्राणियों कि हिंसक मात्र हैं।

ज्ञान खड्ग के द्वारा कर्म और अकर्म रूप पशुओं का जो हनन करता है, वह द्वितीय मकार मांस है, अन्य तो केवल मांसाहारी ही हैं-

कर्माकर्मपशून् हत्वा ज्ञानखड्गेन चैव हि।
द्वितीयं विन्दते येन इतरे मांस-भक्षकाः।।[६]

'म' शब्द से जिह्वा का बोध होता है। जगत्-प्रपंच से वाक्निवृत व्यक्ति मांस-साधक कहलाता है। अर्थात् जो वाणी और अभिव्यक्ति को नियंत्रित कर संसार और सांसारिकता से ऊपर उठ सकते हैं, वे मांससाधक हैं-

मशब्दात् रसना ज्ञेया तदंगसं रसना प्रिये।
सदा य भक्षयेत् देवि स एव मांससाधकः।।[७]

यह स्वयं में एक बहुत गुह्य प्रकिया है। मौन का अभ्यास करने से मन बहुत चंचल हो

---

१. पञ्चकार तथा भावत्रय, पृ०-४३-४४,
२. हिन्दी कुलार्णव्-तंत्र, पाँचवा उल्लास, पृ०-२७
३. तंत्र दर्शन, पृ०-१७७,
४. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८७.
५. रुद्रयामल उ०त०, २६/१३९, तुलनीय कुलार्णव तंत्र, ५/१०९.
६. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-८२ पर उद्धृत।
७. आगमसार (तंत्राजः देयर फिलासफी एण्ड अकल्ट सीक्रेट्स, पृ०-१३२ पर उद्धृत)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उठता है और भावना की अभिव्यक्ति अति प्रबल हो जाती है। काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और राग के भाव उग्र रूप में प्रकट होते हैं। वाणी मन:अनुभूति को अभिव्यक्त करने का मुख्य साधन है। जब वाणी पर साधक का नियंत्रण हो जाय तब समझना चाहिये कि बाह्य जगत् में प्रकट होने वाली सभी प्रतिक्रियाओं पर साधक का नियंत्रण हो गया है।[1]

कहा गया है कि 'सुरा' शक्ति है और 'मांस' शिव। उन दोनों का भोक्ता साक्षात् भैरव है। उन दोनों के एक्य से उत्पन्न होनेवाला आनन्द 'मोक्ष' कहलाता है–

सुराशक्तिः शिवो मांसं तदभोक्ता भैरवः स्वयम्।
तयोरैक्यसमुत्पन्म् आनन्दे मोक्षनिर्णयः ।।[2]

(ग) मत्स्य

वामाचार में मत्स्य-भक्षण होता है; किन्तु पेट भरने या आत्मसंतुष्टि के लिए नहीं। एक टुकड़ा मुँह में डालकर स्वाद, रस और भाव को सजगतापूर्वक देखा जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे आन्तरिक विकारों को नष्ट किया जाता है। वाममार्ग में कहा गया है कि मत्स्य साधना से अन्ततः समस्त कष्ट नष्ट हो जाते हैं और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट दिखलाई देने लगता है।[3]

पशुभाव साधक के लिए मछली के बदले उजला बैंगन, लाल मूली, मसूर, लाल तिल एवं पानी फल (जल सिंघाड़ा) प्रयुक्त किया जाता है।[4]

दिव्यभाव साधक एवं दक्षिणमार्ग में मत्स्य का सूक्ष्म अर्थ बतलाते हुए कहा गया है–

मनसा चेन्द्रिय-गणं, संयम्यात्मनि योजयेत्।
मत्स्याशी स भवेद् देवि! शेषाः स्युः प्राणि-हिंसकाः।।[5]

अर्थात् 'अपने मन द्वारा इन्द्रियों को नियंत्रित कर आत्मा में लगाने वाला ही मत्स्य खानेवाला है, शेष तो प्रणियों के हिंसक मात्र हैं।'

मत्स्य-साधना का अभिप्रय प्राणयाम जैसे मनो-शारीरिक अनुशासन के द्वारा श्वास के नियंत्रण से है।[6] इड़ा रूप गंगा तथा पिङ्गला रूप यमुना में श्वास ओर प्रश्वास रूप दो मत्स्यों का निवास माना जाता है। इस श्वास-प्रश्वास अर्थात् पूरक एवं रेचक का नियंत्रण करने वाला मत्स्य-भक्षी कहलाता है–

---

१. तंत्र-दर्शन, पृ०-१७७.
२. रुद्रयामल उ०त०, २६/१३१. तुलनीय कुलार्णव, ५/७९.
३. तंत्र दर्शन, पृ०-१७८.
४. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८७.
५. कुलार्णव, ५/११०, तुलनीय कॉसमिक सोसाइटी; एन एन्थोलॉजी, पृ०-१४२, (तंत्रा: इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक वेसिस, पृ०-१४६ पर वर्णित).
६. तंत्रा : इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक वेसिस, पृ०-१४५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु स भवेत् मत्स्य-साधकः।।[१]

पूरक एवं रेचक पर नियन्त्रण प्राप्त करने का अर्थ है-प्राणयाम को सिद्ध करना।...श्वास नियंत्रण का तात्पर्य श्वास लेने की क्षमता या रूवास की संख्या को धीरे-धीरे कम करने से है तथा प्राणयाम का अर्थ होता है-प्राणों का विस्तार करना या प्राणों को जागृत करना।[२] प्राणायाम के द्वारा वायु का नियंत्रण करके साधक सांसारिक पदार्थों के प्रति इन्द्रियों की आसक्ति को समाप्त कर देता है। इससे साधक पूर्व अननुभूत आनन्द का लाभ करता है।[३]

मन रूपी मत्स्य का शमन करके व्यर्थ के संकल्पों को नष्ट कर स्वरूपाकार वृत्ति का संकल्प करना तृतीय मकार मत्स्य है। यही शुद्ध मीन कहलाता है, अन्य नहीं-

मनोमीनं तृतीयं च हत्त्वा संकलप-कल्पनाः।
स्वरूपाकार वृत्तिश्च शुद्ध-मीन तदुच्यते।।[४]

शरीरस्थ जल-स्थान में निवास करने वाले मछलियों को शरीरस्थ अग्नि में दग्ध करनेवाला मत्स्य-साधक कहलाता है।[५] कहीं -कहीं आसक्ति के मूल को प्रक्षालित करने वाले तत्त्व को मत्स्य कहा गया है। मत्स्य-साधना से सम्पूर्ण कष्ट नष्ट हो जाते हैं तथा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।[६]

(घ) मुद्रा

देवताओं को मुदित (प्रसन्न) करती हैं और मन को द्रवित (भावपूर्ण) करती हें, अतः 'मुद्रा' नाम से प्रसिद्ध है।[७] चावल, गेहूँ, चना आदि के बनाये हुए भोज्य पदार्थों का नाम 'मुद्रा हुआ। मुद्रा-तत्त्व मुक्ति को देने वाला है-

पृथुकास्तण्हुला भ्रष्टा गोधूम-चणकादयः।
तस्या नाम भवेद् देवि! मुद्रा मुक्ति-प्रदायिनी।।[८]

वीरभाव वाले साधक के लिए कहा गया है कि मुद्रा के रूप में वे चावल, गेहूँ, जौ जैसे अन्न का ग्रहण करें। इस प्रकार के अन्न को सजगतापूवक ग्रहण करने से यदि सात्त्विकता का भाव जागृत होता है और शारीरिक शुद्धि की स्थिति प्राप्त होती है तो वह मुद्रा की स्थिति है, एकाचित्त अवस्था है।[९]

---

१. आगमसार (तंत्राजः देयर फिलॉसफी एण्ड अकल्ट सीक्रेट्स, पृ०-१३३ पर उद्धृत)।
२. तंत्र दर्शन, पृ०-१७८.
३. रुद्रयामल उ०त०:धर्म और दर्शन, पृ०-२६८.
४. 'रुद्रयामल तंत्र, पृ०-८२ पर उद्धृत।
५. रुद्रयामल उ०त०, २६/१४१.
६. तंत्राजः देयर फिलॉसफी एण्ड अकल्ट सीक्रेट्स, पृ०-१३४.
७. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, १७ वॉ उल्लास, पृ०-९१.
८. समयाचार, द्वितीय पटल (वाममार्ग, पृ०-७४ पर उद्धृत)।
९. तंत्र दर्शन, पृ०-१७९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वीराचार के समान पश्वाचार में भी मुद्रा का यही अर्थ है। धान, चावल, गेहूँ एवं अन्न सामान्यतया मुद्रा के रूप में तामसिक (पश्वाचार) एवं राजसिक (वीराचार) साधना में प्रयुक्त होता है।[१]

दिव्यभाव साधक के लिए एवं दक्षिण मार्ग में मुद्रा के सूक्ष्म अर्थ बतलाए गए हैं। 'भैरव यामल' में कहा गया है–

आशा-तृष्णा-जुगुप्सा-भय-विशदघृणा-मान-लज्जा-प्रकोपाः,
ब्रह्माग्रवष्ट-मुद्राः पस्सुकृत-जनः पाच्य-मानाः समन्तात्।
नित्यं संभक्षयेत् तानवहित-मनसा दिव्य-भावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्ड-भाण्डे पशु-हित-विमुखो रुद्र-तुल्यो महात्मा।[२]

अर्थात आशा, तृष्णा, जुगुप्सा, भय, घृणा, मान, लज्जा, क्रोध–इन अष्ट मुद्राओं को जो पुण्य-भाक् साधक ब्रह्माग्नि में भली प्रकार पकाकर दिव्य-भावापन्न होकर भक्षण करते हैं, वे रुद्रतुल्य होते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि आशा, तृष्णा आदि दुष्प्रवृत्तियों का नाश ज्ञान के द्वारा करना ही 'मुद्रा' है।

आध्यात्मिक साधना के समय साधक को नाना प्रकार से अंगुलियों को आबद्ध करना पड़ता है, जिसे मुद्रा कहते हैं। एतदतिरिक्त आत्मज्ञान की पद्धति को भी मुद्रा कहा जाता है। सहस्त्रार महापद्म की कर्णिका में पारद के समान आत्म-तत्त्व की अवस्थिति मानी जाती है, जो कोटिसूर्य के समान आभावाला तथा कोटिचन्द्र के समान शीतल है। सहस्र में जिसे आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है, उसे 'मुद्रा-साधक' कहते हैं। यह आत्मतत्त्व अतीव कमनीय तथा कुण्डलिनी से युक्त है–

सहस्त्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्त्वैव देवेशि! केवलं पारदोपमम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटि- सुशीतलम्।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक स उच्यते।।
अतीव कमनीयञ्च महाकुण्डलिनीयुतम्।[३]

वाममार्ग में जिन मुद्राओं का वर्णन किया गया है, वे मुख्यतः योग-मुद्राएँ हैं, जैसे खेचरीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, पाशिनीमुद्रा, वज्रोलीमुद्रा, सहजोलीमुद्रा आदि। इन मुद्राओं के अभ्यास के द्वारा अपने चित्त को शान्त करने का प्रयत्न किया जाता है।[४] तंत्रशास्त्र तथा योगशास्त्र में जितनी भी मुद्राओं का उल्लेख किया गया है, इनका उद्देश्य कुण्डलिनी का जागरण और चेतना का उत्थान ही है।[५]

---

१. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८७.
२. भैरवयामल (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-७३ पर उद्धृत)।
३. आगमसार (तंत्राजः देयर फिलॉसफी एण्ड ऑकल्ट सीक्रेटस, पृ०-१३३ पर उद्धृत)।
४. तंत्र दर्शन, पृ०-१७९.
५. वही,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभिन्न मुद्राओं से वृद्धावस्था, मृत्यु, रोग, अग्निभय, जलभय आदि की समाप्ति होती है। शठ तथा भक्तिहीन व्यक्ति को मुद्रा का उपदेश (अभ्यास) नहीं करना चाहिए। इस भोग-मुक्ति-प्रदात्री मुद्रा का ज्ञान कुलीन, शान्तचित्त तथा गुरूभक्त को ही कराना चाहिए। मुद्राओं के अभ्यास से जठराग्नि की वृद्धि होती है तथा कास, श्वास, प्लीह, कुष्ठ तथा कफ रोग नष्ट हो जाते हैं।[१]

कौलमार्ग में मुद्रा का अर्थ है-आन्तरिक विकारों का त्याग। कौलमार्ग कहता है कि यदि केवल परमात्मा में चित्त को एकाग्र किया जाय तो वह भी मुद्रा है, तथा परमात्मा के अतिरिक्त यदि किसी अन्य केन्द्र में अपने चित्त को लगाया जाय तो वह योग है; मुद्रा नही। कौलमार्ग में आन्तरिक भाव का नाम मुद्रा है, जिसमें साधक अपने चित्त को पूर्णतः परमात्मा में केन्द्रित कर देता है।[२] रुद्रयामल में कहा गया है-"ब्रह्मकिरण में सब कुछ आरोपित करके सुधीजन को तर्पण करना चाहिए। आनन्दस्वरूप परमात्मा में चित्त एकाग्र करना ही मुद्रा है।[३] शेष पदार्थ केवल भोग के लिए हैं।

(ड़) मैथुन

'हुजरा' लफ्ज़ उस गार, गुफा या कोठरी के लिए होता है, जहाँ बैठकर कोई बरसों-बरसों साधना करता रहता है और फिर वह स्थान पूजनीय हो जाता है, लेकिन तंत्र-विज्ञान उससे बहुत आगे है, वह बाहर की किसी गुफा या गार को नहीं, अपने तन को हुजरा बना लेने की ऐसी विधि है, जिससे यह मिट्टी की काया तरंगित होकर ईश्वर का हुजरा बन जाती है।[४]

देहो देवालयो देवि! जीवो देवः सदाशिवः।
त्यजेदज्ञान-निर्माल्यं, सोऽहं-भावेन पूजयेत्।।[५]

अर्थात् 'हे देवि! यह देह देवालय है और सदाशिव परमात्मा इसमें जीव-भाव से विराजमान हैं। अज्ञान-रूप निर्माल्य को दूर कर 'सोऽहं-भाव' से इसकी पूजा करनी चाहिए।'

इसलिए तंत्र में मैथुन का स्वीकार है। स्वीकार ही नही, शिव तो यहाँ तक कहते हैं कि-'हे देवि! सब तत्त्वों में पञ्चम तत्त्व (मैथुन) मुझे प्राणों से भी प्रिय है। हे देवि! पञ्चम तत्त्व के बिना देवी की साधना ही नहीं करनी चाहिए-

पञ्चमं देवि! सर्वेशु मम प्राण-प्रियं भवेत्।
पञ्चमेन विना देवि! चण्डी-मन्त्रं कथं जपेत्।।[६]

अन्तिम मकार होने के कारण मैथुन को 'पञ्चम' तत्त्व भी कहा जाता है।

---

१. घेरण्ड संहिता, ३/९०-९४.
२. तंत्र दर्शन, पृ०-१७९.
३. रुद्रयामल उ०त०, २६/१४२.
४. मन मिर्ज़ा तन साहिबां, पृ० ३५.
५. कुलार्णव तंत्र, ९/४१.
६. वही, पू० खं०, १७ वॉ उल्लास।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किसी भी धर्म ने संभोग को निन्दनीय नहीं कहा है। स्त्री-पुरूष का 'विवाह-संस्कार' इसी के लिए तो होता है। यदि यह बन्द कर दिया जाय, तो सृष्टि ही कैसे चले? सृष्ट्युत्पत्ति प्रकृति और विनाश विकृति है। अपने विपरीत चलने वाले को प्रकृति कैसे सह सकती है? संभोग प्राकृतिक कर्म होने से उत्तम कर्मसिद्ध है। जब यह प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक कर्म है, प्राकृतिक कार्य है तो इसका करना प्रकृति (जगदम्बा) का पूजन ही तो है। पूजन का अर्थ यह नहीं है कि देव-प्रतिमा पर गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ा दिया और बस ---पूजन का अर्थ है-'पूजित का परितोष'।[1]

विवाह संभोग के ही हेतु होता है। सारे संसार के अब तक के प्रचलित धर्म-ग्रन्थों में इतने अधिक आडम्बर तथा उत्सव और पूजोपचार के साथ मनुष्य का कोई संस्कार नहीं होता, जितना विवाह-संस्कार में किया जाता है।-ईसाई, मुसलमान प्रभृति धर्मों में तो विवाह-संस्कार तक ही अलम समझ लिया गया, परन्तु हमारे वेदों और धर्मशास्त्रों ने तो 'गर्भाधान' को भी एक संस्कार माना है और उसके लिए विधि तथा मन्त्र दिए गए हैं। इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है- 'पास्कर-गृह्य-सूत्र ', काण्ड। कण्डिका।।, सूत्र ७-८-

"तामुदुह्य यथर्तु-प्रवेशनम्"-(सूत्र-७)
"यथा कामी वा काम विजनितो:
सम्भवामेति वचनात्"-(सूत्र-८)[2]

'गदाधर-भाष्य' में इन दोनों सूत्रों का अर्थ इस प्रकार बताया है-"स्वभार्याऽभि: गमनमाह तां वधूं पूर्वोक्त-विधिना उदुह्य विवाहयित्वा यथर्तु ऋतावृत्तौ प्रवेशनमभिगमनं कुर्यादित्यर्थ:।।७।। स्त्रिय: काममनतिक्रम्य यथाकामं तदस्यास्तीति यथाकामी वा भवेत्। न नियम ऋतो व्येवति। कुत एतत्? काम-भावि जनितो सम्भवामेति वचनात् कामं स्वेच्छया अविजनितो: आप्रसवात् सम्भवाम भर्त्रा सह सङ्गता भवामेत्यर्थ:।।८।।[3]

अर्थात् पूर्वोक्त विवाह-विधि से विवहिता स्त्री के साथ पति ऋतु-काल में अभिगमन करे। अथवा जब स्त्री की इच्छा हो, तब प्रसूति समय तक संभोग करे। तात्पर्य यह हुआ कि ऋतुमती न होने पर भी यदि उसकी संभोग की इच्छा हो, तो उसे पूरा करें। ऋतु के अतिरिक्त यथाकाम संभोग के विषय में भाष्यकार ने तैत्तिरीय श्रुति का प्रमाण दिया है कि जब इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी, तो उस ब्रह्म-हत्या का तीसरा भाग स्त्रियों को दिया गया और स्त्रियों ने उसके बदले माँगा कि सन्तान प्रसव करने के समय तक हम यथेच्छ संभोग कर सकें। इससे पहले स्त्रियाँ केवल ऋतु-काल पर ही संभोग कर सकती थीं।

आर्य-सिद्धान्त के अनुसार संभोग यज्ञ है। शतपथ-ब्राह्मण' में कहा है- "स्त्री-पुरुष की

---

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-१९.
२. वही, पृ०-१९ पर उद्धृत।
३. वही, पृ०-२० पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रति-क्रिया अग्निहोत्र है।"[१] शतपथ ब्राह्मण' में ही इडा (एक स्त्री) के मुख से कहलाया गया है[२] कि-"यदि तू योग-काल में संसर्ग रखेगा, तो मेरे कारण जो कुछ पुण्य उपलब्ध होगा, वह तुझे मिलेगा।" इस प्रकार श्रुति की उदात्त धारणा के अनुसार पति और पत्नी का सम्मिलन एक सच्चा यज्ञीय कर्मकाण्ड है-होम में एक यज्ञ है, जहाँ वह (पत्नी) कुण्ड और ज्योति दोनों है; और जो इसे होम के रूप में जानता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।[३]

सम्प्रति श्रौत-स्मार्त हिन्दू अग्नि-होत्रियों का जो कर्मकाण्ड प्रचलित है, उसमें भी यज्ञ के समय जब अग्नि-स्थापना किया जाता है, तब अपने देवता के कामोन्मत्त तथा उसकी शक्ति के ऋतुमती होने की कल्पना की जाती है। यज्ञ-वेदी अथवा कुण्ड को देवी की योनि और उसमें जो अग्नि स्थापित की जाती है, उसको देवता का वीर्य माना जाता है और इसे अग्नि का 'गर्भाधान-संस्कार' कहते हैं।[४]

सौर, शैव, शाक्त तथा गाणपत्य-ये चार सम्प्रदाय तो खैर, किसी न किसी हद तक 'पञ्चमकार' के प्रयोग के सम्बन्ध में बदनाम हैं ही, किन्तु आमतौर पर वैष्णव सम्प्रदाय वालों, जिनको 'पञ्चमकार' से दूर ही समझा जाता है, उनके यहाँ भी अग्नि-होत्र कर्म वैसा ही होता है, जैसा अन्य चार सम्प्रदायों में। इस सम्बन्ध में शाक्त-प्रमोद, तान्त्रिक होमविधि, द्रष्टव्य है। नारद-पञ्चरात्रोक्त होमविधि में लिखा है-

ऋतुस्नातां महालक्ष्मीमानयेत् कुश-विष्टरे।
समपूज्य लक्ष्मी-मनुना, पद्माक्षां पद्म-सम्भवाम्।।
क्षीरोदाराभि-सम्भूतां, विष्णोरनप-गामिनीम्।
मातरं सर्व-जगतो, रिरिशु विष्णुमानयेत्।।
संस्थितं ऋतुदानाय, कातांत्रमखिलेश्वरम्।
रेतोरूप-समानीय, वह्नि-चारिणि सम्भवम्।
आत्मनोऽभिमुखं वह्निं, जानुभ्याम् वनी-गतः।
विष्णु-वीर्य-धिया देव्या, योनावेनं विनिक्षिपेत्।।[५]

अर्थात् लक्ष्मी को ऋतुमती कल्पना करें और विष्णु को संभोगोद्यत, और तब अरणी-जन्य अग्नि को विष्णु-वीर्य समझकर तथा यज्ञ-कुण्ड को लक्ष्मी की योनि समझकर जमीन में घुटने टेककर अग्नि-कुण्ड में डालें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कोई भी धर्म संसार में अद्यावधि ऐसा नहीं हुआ, जिसने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इसका समर्थन न किया हो। बौद्ध और जैन मतों में यद्यपि संसार-त्याग

---

१. वही, पृ०-२१ पर सन्दर्भित।
२. वही, पृ०-२१ पर सन्दर्भित।
३. बृहदारण्यकोपनिषद्, होम प्रकरण, १३ वॉ मन्त्र (शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८० पर वर्णित)।
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२१.
५. नारदापञ्चरात्रोक्त होम विधि, ६४-६६, ७१ (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२२ पर उद्धृत)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही धर्म है और गृहस्थ रहना पाप है, परन्तु इन धर्मों के धर्मगुरूओं को भी गृहस्थों को अपना चेला बनाना पड़ा। बौद्धों ने 'वाममार्ग' का इतना अधिक ग्रहण किया है कि शायद ही कोई बौद्ध तंत्र हो, जिसमें 'वीराचार' तथा 'पञ्चमकार' की महिमा न गाई गई हो।[१]

शिव का कथन है-"सहस्रों मद्य घटों और सेंकड़ों मांस-राशियों से भी मैं भग-लिङ्गामृत बिना संतुष्ट नहीं होता। यह संसार न चक्र-चिह्न वाला है, न पद्म-चिह्नवाला और न वज्र-चिह्नवाला है। लिङ्ग-चिह्न और भग-चिह्नवाला ही यह है। अतः यह संसार शक्ति-शिवात्मक है।"[२]

मैथुन क्यों?

स्वभावतः काम का आकर्षण सर्वाधिक है-होगा, क्योंकि हम उत्पन्न काम से होते हैं। और हमारे शरीर का एक-एक कण जीवाणु का कण है। माता-पिता के जिस कामाणु से निर्माण होता है, फिर उसी का विस्तार हमारा पूरा शरीर है। हमारा रोआँ-रोआँ काम से निर्मित है। पूरी सृष्टि काम-सृष्टि है। इसमें होने का मतलब ही है, काम-वासना के भीतर होना।--- काम-ऊर्जा से हमारा शरीर निर्मित है, कण-कण निर्मित है, श्वास से भी गहरा अस्तित्त्व उसमें छिपा हुआ है। उससे भागकर कोई बच नहीं सकता।[३] स्त्री-पुरुष के बीच जो आकर्षण है, वह अगर हम ठीक से समझें तो जीवन का ही आकर्षण है। और गहरे समझें तो स्त्री-पुरूष के बीच का जो आकर्षण है, वह परमात्मा की ही लीला का हिस्सा है, उसका ही आकर्षण है।[४]

तंत्र कहता है कि अगर स्त्री-पुरूष के बीच आकर्षण है, तो इस आकर्षण को दिव्य बनाओ। इससे भागो मत, इसको पवित्र करो। अगर काम-वासना इतनी गहरी है तो इससे तुम भाग सकोगे भी नहीं। इस गहरी काम-वासना को ही क्यों न परमात्मा से जुड़ने का मार्ग बनाओ। और अगर सृष्टि काम से हो रही है, तो परमात्मा को हम काम-वासना से मुक्त नहीं कर सकते, नहीं तो कुछ होने का उपाय नहीं रह जाता। अगर कहीं भी कोई शक्ति है इस जगत् में तो उसका हमें किसी न किसी रूप में काम-वासना से सम्बन्ध जोड़ना ही पड़ेगा। नहीं तो इस सृष्टि के होने का कहीं कोई आधार नहीं रह जाता। इस सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, वह किसी न किसी रूप में परमात्मा से जुड़ा है। और हम आँखें खोलकर चारों तरफ देखें तो सारा

---

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२२,
२. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, ८वॉ उल्लास, पृ०-४७, तुलनीय महाभारत अनु० १४/२३३
न पद्माङ्का न चक्राङ्का न वज्राङ्का यतः प्रजा।
लिङ्गाङ्का च भगाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा।।
(विज्ञान, भैरव, पृ०-७८, पादटिप्पणी में उद्धृत)।
३. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-१०७.
४. वही, पृ०-१०४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काम का फैलाव है।[१] फूल का खिल जाना भी काम की एक घटना है। उसके खिल जाने में कुछ भी नहीं है। वे बिन्दू हैं पराग के, वीर्य के कण हैं, जिन्हें तितलियाँ उड़ाकर दूसरे फूलों पर ले जाएँगी और नया जन्म देंगी। एक मोर नाच रहा है। मोर पुकार रहा है अपनी प्रेयसी को या अपने प्रेमी को। वह नृत्य किसी को रिझाने के लिए है। पपीहा गीत गा रहा है, कोयल बोल रही है। एक आदमी जवान हो गया है, एक युवती सुन्दर होकर विकसित हो गयी है।......यह सब का सब काम की ही अभिव्यक्ति है, काम की ही अभिव्यञ्जना है। सारा जीवन, सारी अभिव्यक्ति, सारी फ्लावारिंग काम की है।[२]

तंत्र कहता है-सबसे गहरी चीज़ काम-वासना है, क्योंकि उससे ही जन्म होता है, उससे ही जीवन फैलता है। और काम-वासना को अगर कोई धारा बना ले, ध्यान बना ले, समाधि बना ले तो दोहरे परिणाम होते हैं। वह जो त्यागवादी ऋषि निरन्तर चाहता है कि-छुटकारा मिल जाय, वह भी हो जाता है। दूसरा परिणाम यह होता है कि यह व्यक्ति काम-वासना से भी छूट जाता है और काम-वासना के कारण अंहकार से भी छूट जाता है। ....भागना क्यों, डरना क्यों, जीवन जैसा है, उसके तथ्यों में जागरूक होना। और जब मेरे मन में किसी चीज़ के प्रति आकर्षण है तो इस आकर्षण को समझने की कोशिश करूँ। क्या है यह आकर्षण? क्यों है यह आकर्षण? और इस आकर्षण को मैं कैसे सृजनात्मक करूँ कि इससे मेरा जीवन खिले और विकसित हो। यह मेरा विध्वंस न बन जाए। और इस आकर्षण का मैं उपयोग कैसे करूँ-यह सवाल है।[३]

इस आकर्षण का गहरा उपयोग ध्यान के लिए हो सकता है और स्त्री-पुरूषों की सन्निधि बड़ी मुक्तिदायी हो सकती है। यही कारण है कि तंत्र शरीर से शुरू करता है। शरीर तथ्य है। सामान्तया व्यक्ति सिर्फ शरीर को जानता है, शरीर के पार का अनुभव उसके लिए अभी बहुत दूर का तारा है। दार्शनिक और धर्मशास्त्री सीधे आत्मा से आरम्भ करते हैं। लेकिन तंत्र सर्वथा वैज्ञानिक है।[४] तंत्र वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। वह मानवीय व्यक्तित्त्व की जैविक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू की उपेक्षा नहीं करता।[५] वह वहाँ से शुरू करता है, जहाँ मनुष्य है। वह वहाँ से शुरू नहीं करता, जहाँ मनुष्य कभी हो सकता है। जहाँ मनुष्य हो सकता है, वहाँ से शुरू करना मूढ़ता है। आरम्भ तो वहीं से हो सकता है, जहाँ मनुष्य है।[६] पाँच हजार वर्षों से तंत्र ही अकेली परम्परा रही है, जिसने काम को समग्रता से स्वीकार किया है। इस अर्थ में पूरे विश्व में तंत्र अकेली परम्परा है।[७]

---

१. वही, पृ०-१०८.
२. वही, पृ०-७.
३. वही, पृ०-१०८-१०९.
४. तंत्र-सूत्र-भाग,३ पृ०-१२० (पॉकेट बुक संस्करण)।
५. तंत्रा-इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१४६.
६. तंत्र-सूत्र, भाग-३, पृ०-१२० (पॉ०बु०सं०)
७. वही, पृ०-१२१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यक्ति अपने काम-केन्द्र पर है, उसकी ऊर्जा काम-केन्द्र पर है और उसी बिन्दु से उसे यात्रा करनी है, उसे आगे जाना है, पार जाना है। अगर कोई केन्द्र को ही इन्कार करता है तो वह सिर्फ अपने को धोखा दे सकता है कि गति कर रहा है: लेकिन गति असम्भव है। तब व्यक्ति उसी बिन्दु को इन्कार कर रहा है, जहाँ से गति सम्भव होती है। इसलिए तंत्र देह को स्वीकारता है, काम को स्वीकारता है, सबको स्वीकारता है।[1]

और तंत्र कहता है कि विवेक सबको स्वीकार कर उसे रूपान्तरित करता है: अज्ञान केवल इन्कारना जानता है। विवेक के हाथों में पड़कर जहर भी औषधि बन जाता है। देह उस चीज़ के लिए साधन बन सकती है, जो देहातीत है। वैसे ही काम-ऊर्जा आध्यात्मिक शक्ति बन सकती है।[2]

शरीर तो बाहर खोल है; गहराई में शरीर सेक्स का, काम का प्रतीक है। वाहन से लड़ना नहीं है, बल्कि उसका सदुपयोग करना है। लड़ने से 'वाहन' नष्ट होगा और यात्रा कठिन हो जाएगी। शरीर सुन्दर वाहन है-बहुत रहस्यपूर्ण, बहुत जटिल। जिस क्षण व्यक्ति इसके विरोध में जाता है, वह स्वयं के विरोध में जाता है। तंत्र कहता है कि शरीर को जानो, उसके रहस्यों को समझो; शरीर की ऊर्जा को जानो और जानो कि यह ऊर्जा कैसे भिन्न-भिन्न आयामों में गति करती है और रूपान्तरित होती है। यथा-काम-ऊर्जा का जैविक उपयोग सिर्फ बच्चे पैदा करना है, लेकिन वह अनेक उपयोगों में से एक है और निम्नतम उपयोग है। निम्नतम में कोई निंदा निहित नहीं है, मगर निम्नतम है। वही ऊर्जा दूसरे सृजनात्मक काम भी कर सकती है।[3]

जब दो व्यक्ति प्रेम में होते हैं, तब ज्यों-ज्यों वे उसकी गहराई में उतरते हैं, त्यों-त्यों दो कम और एक ही ज्यादा रहते हैं और एक बिन्दु आता है, एक शिखर स्पर्श होता है, जहाँ वे देखने में ही दो होते हैं, भीतर एक ही हो जाते हैं। वहाँ द्वैत का अतिक्रमण हो जाता है। इसी अर्थ में जीसस का यह वचन कि 'परमात्मा प्रेम है' अर्थपूर्ण हो जाता है, अन्यथा नहीं। 'परमात्मा प्रेम है'-यह एक तांत्रिक वक्तव्य है। इसका अर्थ है कि हमारे अनुभव में केवल प्रेम वह यथार्थ है जो परमात्मा के, भगवत्ता के निकटतम पड़ता है; क्योंकि प्रेम में एकता का अनुभव होता है। शरीर दो रहते हैं, लेकिन शरीर से परे कुछ है, जो मिलकर एक हो जाता है। यही कारण है कि यौन की भूख इतनी बड़ी है, उसकी दौड़ भारी है। असली दौड़ तो इस एकता के पीछे है। लेकिन वह एकता यौन की, काम की नहीं है। काम में दो शरीरों को एक होने का धोखा हो सकता है, वे एक होते नहीं। यह खोज बुरी नहीं है, लेकिन उस पर रुक जाना खतरनाक है। यह खोज किसी गहरी एकता की खोज की खबर भर है। प्रेम में किसी ऊँचे तल पर कुछ आन्तरिक गति करता है और एक-दूसरे में मिलकर एकता की अनुभूति होती है। उसमें द्वैत मिट जाता है और इस द्वैतहीन प्रेम में हमे उसकी झलक मिल सकती है, जिसे भैरव की अवस्था कहते हैं। हम कह सकते हैं कि भैरवावस्था वह प्रेम है जिसमें से लौटना नहीं होता

१. वही, पृ०-१२१-१२२,
२. वही, पृ०-१२२.
३. वही, पृ०-१२४ (पॉ० बु० सं०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इसलिए शिव प्रेम ही हैं। भैरव का अर्थ है कि वह प्रेम ही हो गया है। यह नहीं कि वह प्रेमपूर्ण है, प्रेम करता है; वह स्वयं प्रेम हो गया है। वह शिखर पर है।[१] इसलिए वीराचारी कहता है–

अलिपिशितपुरन्ध्री-भोग-पूजापरोऽहम्
बहुविधिकुलमार्गारम्भ-सम्भावितोऽहम ।
पशुजनविमुखोऽहम् भैरवीमाश्रितोऽहम्
गुरूचरणरतोऽहम् भैरवोऽहम् शिवोऽहम्।।[२]

मनुष्य को समाधि का, ध्यान का जो पहला अनुभव मिला है कभी भी इतिहास में, तो वह संभोग के क्षण में मिला है और कभी नही। संभोग के क्षण में ही पहली बार यह स्मरण आया है आदमी को कि इतने आनन्द की वर्षा हो सकती है। जिन लोगों ने काम के सम्बन्ध पर और मैथुन पर चिन्तन किया और ध्यान किया, उन्हें यह दिखाई पड़ा कि काम के क्षण मे, मैथुन के क्षण में, संभोग के क्षण में मन विचारों से शून्य हो जाता है। एक क्षण को मन के सारे विचार रूक जाते हैं। और वह विचारों का रूक जाना और वह मन का ठहर जाना ही आनन्द की वर्षा का कारण होता है। तब उन्हें राज मिल गया कि अगर मन को विचारों से मुक्त किया जा सके किसी और विधि से, तो भी इतना ही आनन्द मिल सकता है और तब समाधि और योग की सारी व्यवस्थाएँ विकसित हुई हैं। इन सबके मूल में संभोग का अनुभव है।[३] विश्व की सृष्टि आनन्दपूर्ण अवस्था में आनद के द्वारा हुई है। वही आनन्द स्त्री और पुरूष के सम्मिलन में धुँधले रूप में प्रकाशित होता है।[४] फिर मनुष्य को अनुभव हुआ कि बिना संभोग में जाये भी चित्त शून्य हो सकता है। और जो रस की अनुभूति संभोग में हुई थी, वह बिना संभोग के भी बरस सकती है। फिर संभोग क्षणिक हो सकता है, क्योंकि शक्ति और ऊर्जा का वह निकास और बहाव है। लेकिन ध्यान सतत् हो सकता है। एक युगल संभोग के क्षण में जिस आनन्द को अनुभव करता है, एक योगी चौबीस घंटे उस आनन्द को अनुभव कर लेता है। लेकिन इन दोनों आनन्द में बुनियादी विरोध नहीं है। और इसलिए जिन्होंने कहा कि विषयानन्द और ब्रह्मानन्द भाई-भाई हैं, उन्होंने जरूर सत्य कहा है। वे सहोदर हैं, एक ही उदर से पैदा हुए हैं, एक ही अनुभव से विकसित हुए हैं।[५]

मनुष्य के प्राणो में जो सेक्स का आकर्षण है, वह वस्तुतः सेक्स का आकर्षण नहीं है। मनुष्य के प्राणों में जो काम-वासना है, वह वस्तुतः काम की वासना नहीं है, इसलिए हर आदमी काम के कृत्य के बाद पछताता है, दुःखी होता है, पीड़ित होता है। सोचता है कि इससे मुक्त हो जाऊँ, यह क्या है? लेकिन शायद आकर्षण कोई दूसरा है। और वह आकर्षण बहुत

१. वही, भाग-१ पृ०-१०-११ (विशेष राजसंस्करण)।
२. रुद्रयामल, देवी रहस्य खण्ड (शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८१ पर उद्धृत)।
३. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-१३.
४. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-४००.
५. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-१३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धार्मिक अर्थ रखता है। वह आकर्षण यह है-कि मनुष्य के सामान्य जीवन में सिवाय सेक्स की अनुभूति के वह कभी भी अपने गहरे से गहरे प्राणों में नहीं उतर पाता है। और किसी क्षण में कभी गहरे नहीं उतरता है। दुकान करता है, धन्धा करता है, यश कमाता है, पैसे कमाता है; लेकिन एक अनुभव काम का उसे गहरे से गहरे ले जाता है और उसको गहराई में दो घटनाएँ घटती हैं। एक-संभोग के अनुभव में अहंकार विसर्जित हो जाता है, 'अहंकार-शून्यता' पैदा हो जाती है। एक क्षण के लिए अहंकार नहीं रह जाता, एक क्षण को यह याद भी नहीं रह जाती कि मै हूँ।[१] काम-कृत्य में पहली बार व्यक्ति का अहंकार खो जाता है, वह निरहंकार हो जाता है। प्रेमी-युगल किसी और चीज़ में विलीन हो जाते हैं। एक नया यथार्थ घटित होता है; एक नयी इकाई अस्तित्त्व में आती है, जिसमें पुराने दो खो जाते हैं, पूरी तरह खो जाते हैं। अगर व्यक्ति काम-भोग के बिना भी इस क्षण को प्राप्त कर सके, जिसमें वह नही होता, तो फिर काम-भोग की जरूरत नहीं रहती।[२]

दूसरी घटना घटती है: एक क्षण के लिए समय मिट जाता है, समय-शून्यता (टाइमलेसनेस) पैदा हो जाती है। जीसस ने कहा है समाधि के सम्बन्ध में-'देयर शैल बी टाइम नो लाँगर' (वहाँ समय नहीं होगा)।[३] समाधि का जो अनुभव है, वहाँ समय नहीं रह जाता। वह कालातीत है। समय बिल्कुल विलीन हो जाता है। न कोई अतीत है, न कोई' भविष्य-शुद्ध वर्तमान रह जाता है। संभोग के अनुभव में यह दूसरी घटना घटती है। न कोई अतीत रह जाता है, न कोई भविष्य।[४] प्रकृति एवं ईश्वर द्वारा प्रदत्त संभोग एक ऐसा वरदान है, जिसमें व्यक्ति बार-बार वर्त्तमान क्षण में विद्यमान होता है। सामान्यत: व्यक्ति कभी भी वर्तमान में नहीं होता-केवल प्रेम के क्षणों को छोड़कर, वह भी केवल कुछ सेकेंड के लिए।[५] इसी क्षण में यहाँ और अभी सारा अस्तित्त्व केन्द्रीभूत है। यही क्षण मात्र सच्चा क्षण होता है। अगर व्यक्ति इस क्षण को काम-कृत्य के बिना ही मात्र सच्चा क्षण बना सके तो काम की जरूरत न रहे। वह ध्यान से घटित होता है।[६]

यह धार्मिक अनुभूति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है-अहंकारशून्यता और समयशून्यता। दो तत्त्व हैं, जिसकी वजह से आदमी सेक्स की तरफ आतुर होता है और पागल होता है। वह आतुरता स्त्री के शरीर के लिए नहीं है पुरूष की, न पुरूष के शरीर के लिए स्त्री की है। वह आतुरता शरीर के लिए बिल्कुल भी नहीं है। वह आतुरता है-अहंकार-शून्यता का अनुभव, समय-शून्यता का अनुभव। जैसे ही अहंकार मिटता है, आत्मा की झलक उपलब्ध

१. वही, पृ०-३४.
२. तंत्र-सूत्र भाग-५, पृ०-५० (पॉ०बु०सं०)
३. संभोग से समाधि की ओर, पृ० ३४ पर उद्धृत।
४. वही, पृ०-३४.
५. द तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-५७.
६. तंत्र-सूत्र, भाग-५ पृ०-४९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है। जैसे ही समय मिटता है, परमात्मा की झलक उपलब्ध हीती है। एक क्षणा की होती है यह घटना, लेकिन एक क्षण के लिए मनुष्य कितनी ही ऊर्जा, कितनी ही शक्ति खोने को तैयार है।[१]

तीसरी बात कि काम-कृत्य में व्यक्ति पहली बार स्वाभाविक होता है। जो कुछ झूठा था, ओढ़ा हुआ था, मुखौटा था, सब खो जाता है। समाज, सभ्यता, संस्कृति-सब खो होता है। तब व्यक्ति निसर्ग का अंश मात्र है; जैसे वृक्ष हैं, पशु हैं, चादँ-तारे हैं, वैसे ही व्यक्ति भी प्रकृति का अंश भर है। अब वह किसी विराट के साथ है, ऋतु के साथ है। व्यक्ति उसके साथ बह रहा है। प्रवाह उसे लिए जा रहा है। ये तीन चीज़ें व्यक्ति को आनंद देती हैं, समाधि-सुख प्रदान करती हैं।[२]

इसलिए तंत्र में काम का स्वीकार है। कहा गया है-'तरूणी, सुन्दरी, रमणीय, चञ्चल, काम-लोलुपा, गुरुभक्ता, मन्त्रदीक्षा-युक्त, सभी उत्तम लक्षणों से युक्त स्त्री को लाकर पुष्प-शय्या में साधना करें-

तरूणीं सुन्दरीं रम्यां, चञ्चलां काम-लोलुपाम्।
गुरू-भक्तां मन्त्रयुक्तां, सर्वलक्षण-संयुताम्।।
ईदृग-विधां समानीय, प्रसूनि-तूलिकोपरि-----।[३]

केवल उत्तेजित प्राणवायु से परिपूर्ण होकर काम-क्रीड़ा के आनन्द से जुड़ जाना चाहिए-

'केवलं वायुपूर्णं वा स्मरानन्देन युज्यते।'।[४]

योनि-संसर्ग मात्र से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है, जीवात्मा-परमात्मा के इस योग को जानना चाहिए-

भगसंयोगमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
एतद् योग विजानीयाज्जीवात्मपरमात्मनोः।।[५]

काम-कृत्य एक स्थिति भर है, जिसमें यह (समाधि-सुख) सहजता से घटित होता है। अगर व्यक्ति इन तत्त्वों (अहंकार-शून्यता,समय-शून्यता और स्वाभाविकता) को जान लेता है और इन्हें अनुभव कर लेता है, तो वह काम-कृत्य के बिना भी उन्हें निर्मित कर सकता है। समस्त ध्यान मूलतः काम-भोग के बिना काम-भोग का अनुभव है। लेकिन व्यक्ति को उससे गुजरना ही होगा, उसे व्यक्ति के अनुभव का हिस्सा बन जाना होगा। उसकी मात्र धारणा प्रत्यय या विचार से कुछ भी नहीं होगा। तंत्र काम-भोग के लिए नहीं, काम के अतिक्रमण के लिए है। लेकिन वह अतिक्रमण आदर्श से नहीं, सिर्फ अनुभव से हो सकता है-अस्तित्त्वगत

---

१. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-३५.
२. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५० (पॉ०बु०सं०)
३. शक्ति-सङ्गम, ताराखण्ड १४/११-१२
४. योग से सर्वोत्तम उपाय-विज्ञान भैरव तंत्र, श्लोक-४४,
५. रुद्रयामल उ०त०, १७/१६३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुभव से। ब्रह्मचर्य केवल तंत्र के द्वारा घटित होता है। ज्ञान के द्वारा ही अतिक्रमण घटित होता है। अज्ञान से अतिक्रमण नहीं हो सकता; अज्ञान से सिर्फ पाखण्ड पैदा होता है।[१]

काम और प्रेम में आकर्षण के पीछे एक और बात यह है कि जब आप प्रेम में होते हैं तो अचानक आपकी सभी क्षमताएँ अपनी शिखर पर होती हैं। ठीक एक क्षण पहले आप सुस्त लग रहे थे और तब आप एक स्त्री से मिलते हैं.. और अचानक एक महा उल्लास आपमें फूट पड़ता है, आप प्रदीप्त हो जाते हैं। जब व्यक्ति प्रेम में होता है तो वह अधिकतम निष्पादित करता है और जब प्रेम खत्म हो जाता है या नहीं होता तो वह निम्नतम निष्पादित करता है। अत्यधिक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अत्यधिक कामोन्मत्त व्यक्ति होता है; क्योंकि प्रेम-ऊर्जा वस्तुत: प्रतिभा है, तेज है। यदि आप प्रेम नहीं कर सकते, तो आप कुछ बन्द, जमा हुआ होते हैं, आप प्रवाहित नहीं हो सकते। प्रेम में व्यक्ति प्रवाहित होता है। प्रेम में व्यक्ति इतना विश्वस्त होता है कि वह तारों को भी छू सकता है।[२] जब आप प्रेम में होते हैं तो आप पूरी दुनिया के विरूद्ध लड़ सकते हैं; प्रेम में आप किसी भी बात के लिए अपने को असीम सक्षम पाते हैं। किन्तु जब आप प्रेम में नहीं होते, तो आप छोटी बातों से भी डर जाते हैं, तब आप सुरक्षा, संरक्षा में ज्यादा उत्सुक होते हैं। जब आप प्रेम में होते हैं तो आपकी उत्सुकता साहस और अभियान में ज्यादा होती है।[३] इसीलिए एक स्त्री, एक पुरूष महान प्रेरणा बन जाता है।

जब एक स्त्री प्रेम में होती है, तो वह अचानक, तत्काल अति सुन्दर हो जाती है। ठीक एक क्षण पहले वह एक साधारण स्त्री थी और प्रेम ने उसे नहला दिया, वह एक नयी ऊर्जा में स्नात हुई और एक नयी आभा उसे घेर लेती है। वह लालित्यपूर्ण ढंग से चलती है, उसके चाल में एक नृत्य आ जाता है। उसकी आँखें आश्चर्यजनक ढंग से अब सुन्दर हो जाती हैं, उसका चेहरा खिल उठता है, वह प्रदीप्त हो जाती है। और पुरूष के साथ भी बिल्कुल ऐसा ही होता है।[४]

जब लोग काम के दृष्टिकोण से, प्रेम के दृष्टिकोण से दमित होते हैं, तो वे दूसरे जीवन के बारे में उत्कण्ठित होने लगते हैं; वे स्वर्ग,परलोक के बारे में सोचते हैं, वे यहाँ और अभी स्वर्ग बनाने की नहीं सोचते। जब आप प्रेम में होते हैं तो स्वर्ग यहीं और अभी है। तब आप पुरोहित के यहाँ जाने की चिन्ता नहीं लेते। तब किसे फिक्र होती है कि कोई स्वर्ग हो?--- काम का इतना दमन किया गया है कि आप दूसरे जीवन में उत्सुक हो सकते हैं। और जब लोग दूसरे जीवन में उत्सुक होते हैं, स्वभावत: वे इस जीवन में उत्सुक नहीं होते। और तंत्र कहता है-यही जीवन मात्र जीवन है। दूसरा जीवन इसी जीवन में छिपा है, यह इसके विरूद्ध नहीं है, इससे दूर नहीं है, इसी में है। इसमें जाओ! और आप दूसरा भी पा लेंगे। परमात्मा संसार में छिपा है-तंत्र का यही महान् सन्देश है।[५]

१. तंत्र-सूत्र भाग-५, पृ०-५०-५१ (पॉ० बु० सं०)
२. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-११४.
३. वही, पृ०-११५.
४. वही, पृ०-११४.
५. वही, पृ०-११५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संभोग के तीन तल

तीन तल हैं, सेक्स के अनुभव के, सेक्स के। एक तल तो शरीर का तल है-बिल्कुल फिजियोलॉजिकल, शारीरिक। एक आदमी वेश्या के पास जाता है-उसे जो संभोग का अनुभव होता है, वह शरीर से गहरा नहीं हो सकता। वेश्या शरीर बेच सकती है, मन को नहीं बेचा जा सकता और आत्मा को बेचने का तो कोई उपाय नहीं है। शरीर मिल सकता है। एक आदमी बलात्कार करता हैं, तो बलात्कार में किसी का मन भी नहीं मिल सकता है और किसी की आत्मा भी नहीं। शरीर पर बलात्कार किया जा सकता है। आत्मा पर बलात्कार करने का न कोई उपाय है, न खोजा जा सका है, न खोजा जा सकता है। तो बलात्कार में भी जो अनुभव होगा, वह शरीर का होगा।[1] इसलिए तंत्र ने बलात्कार की घोर निन्दा की है।[2] सेक्स का प्राथमिक अनुभव शरीर से ज्यादा गहरा नहीं होता। लेकिन शरीर के अनुभव पर ही जो रूक जाते है; वे सेक्स के पूरे अनुभव को उपलब्ध नहीं होते। जिन देशों में भी प्रेम के बिना विवाह होता है, उस देश में संभोग शरीर के तल पर ही रुक जाता है और उससे गहरा नहीं जा सकता है। विवाह दो शरीरों का हो सकता है, दो आत्माओं का नहीं। दो आत्माओं का प्रेम हो सकता है। तो अगर प्रेम से विवाह निकलता है, तब तो विवाह एक गहरा अर्थ ले लेता है और अगर विवाह दो पंडितों के और दो ज्योतिषियों के हिसाब-किताब से निकलता हो, और जाति के ---धन के विचार से निकलता हो तो वैसा विवाह कभी भी शरीर से ज्यादा गहरा नहीं जा सकता।[3] जहाँ प्रेम नहीं है वहाँ खरीदना ही है। चाहे एक दिन के लिए खरीदो, चाहे पूरी ज़िंदगी के लिए खरीदो। हालाँकि साथ रहने से रोज-रोज एक तरह का सम्बन्ध पैदा हो जाता है एसोसिएशन से। लोग उसी को प्रेम समझ लेते हैं। वह प्रेम नहीं है। प्रेम और ही बात है।[4]

दूसरा तल है संभोग का-मन का तल साइकोलॉजिकल। वात्स्यायन से लेकर पंडित कोक तक जिन लोगों ने भी इस तरह के शास्त्र लिखे हैं संभोग के बावत, वे शरीर के तल से गहरे नहीं जाते। दूसरा तल है-मानसिक। जो लोग प्रेम करते हैं और फिर विवाह में बँधते हैं उनका संभोग शरीर के तल से थोड़ा गहरा जाता है। वह मन तक जाता हैं। लेकिन वह भी रोज-रोज पुनरूक्त होने से थोड़े दिनों में शरीर के तल पर आ जाता है और यांत्रिक हो जाता है। जो व्यवस्था विकसित की है दो सौ वर्षों में प्रेम-विवाह की, वह मानसिक तल तक संभोग को ले जाती है और इसलिए पश्चिम में समाज अस्त-व्यस्त हो गया है, क्योंकि मन का कोई भरोसा नहीं है, वह आज कहता है कुछ, कल कुछ कहने लगता है। सुबह कुछ कहता है, शाम

---

१. संभोग से समाधि की ओर, पृ०, ८१-८२

२. कुलार्णव तंत्र, ५/९९-असंस्कृतं पिबेद् द्रव्यं बलात्करेण मैथुनम्।
स्वप्रियेण हतं मासं रौरवं नरकं ब्रजेत्।।
तथा हिन्दी कुलार्णव तंत्र, ११ वॉ उल्लास, पृ०-६१, 'बलपूर्वक कभी कुलयोगिनी का सेवन न करें।'

३. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-८२.

४. वही, पृ०-८३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ कहने लगता है, घड़ी भर पहले कुछ कहता है, घड़ी भर बाद कुछ कहने लगता है।[१] मन इतना चंचल है। तो जिन लोगों को समाज को व्यवस्थित रखना था, उन्होंने मन के तल पर संभोग को नही जाने दिया। उन्होंने शरीर के तल पर रोक लिया। विवाह करो, प्रेम नहीं। फिर विवाह से प्रेम आता हो तो आये, न आता हो तो न आये। शरीर के तल पर स्थिरता हो सकती है। मन के तल पर स्थिरता बुहत मुश्किल है। लेकिन मन के तल पर संभोग का अनुभव शरीर से ज्यादा गहरा होता है, पूरब की बजाय पश्चिम का संभोग का अनुभव ज्यादा गहरा है। पश्चिम के जो मनोवैज्ञानिक हैं फ्रायड से जुंग तक, उन सारे लोगों ने जो भी लिखा है, वह संभोग की दूसरी गहराई है, वह मन की गहराई है।[२]

संभोग का तीसरा तल है-आध्यात्मिक। शरीर के तल पर भी एक स्थिरता है, क्योंकि शरीर जड़ है और आत्मा के तल पर भी एक स्थिरता है, क्यांकि आत्मा के तल पर कोई परिवर्तन कभी होता ही नहीं। वहाँ सब शांत है, वहाँ सब सनातन है। ---- उस तल पर जो पति-पत्नी एक बार मिल जाते हैं या दो व्यक्ति एक बार मिल जाते हैं, उन्हें तो ऐसा लगता है कि वे अनंत जन्मों के लिए एक हो गये हैं। वहाँ फिर कोई परिवर्त्तन नहीं है। उस तल पर चाहिए स्थिरता। उस तल पर चाहिए अनुभव।[३] जब तक यौन-सम्बन्ध एक आध्यात्मिक मित्रता में नहीं बदल जाता, यह ऊब पैदा करनेवाला ही साबित होगा। एक यौन-सम्बन्ध अपने आप में ज्यादा टिकाऊ बात नहीं है, क्योंकि जहाँ तक संभोग का सम्बन्ध है, यह एक क्षणिक बात है। एक बार आप यदि किसी स्त्री को प्रेम करें, आपका काम उसके साथ ख़त्म हो जाता है, आप ज्यादा देर उसमें उत्सुक नहीं हो सकते। जब तक यौन-सम्बन्ध से कुछ ज्यादा, कुछ ऊँची बात, कुछ आध्यात्मिक सम्पर्क नहीं बनता, जो कि संभोग के द्वारा हो सकता है, होना ही चाहिए, अन्यथा यौन सम्बन्ध केवल शारीरिक बात ही होगी[४] प्रेम एक मधुर बात है। यदि यह विकसित नहीं होता है, यह कड़वा, विषाक्त हो जाता है।---- प्रेम ऊर्जा है, और ऊर्जा विकास करती है। यदि यह विकसित होती है, तो शीघ्र आप पायेंगे कि यह मात्र प्रेम नहीं रह गई है; बल्कि यह ध्यान, प्रार्थना बन गई है। यही तंत्र का सम्पूर्ण दृष्टिकोण है कि यदि प्रेम ठीक ढंग से विकसित होता है, यदि प्रेम सावधानी पूर्वक अग्रसर होता है, तो यही प्रार्थना बन जाता है। अन्ततः यही परमात्मा का चरम अनुभव हो जाता है।[५]

आदमी काम की यात्रा भी राम की खोज के लिए ही करता है। वह काम का इतना तीव्र आकर्षण, राम की ही खोज है और इसीलिए काम में कभी तृप्ति नहीं मिलती। कभी ऐसा नहीं लगता कि सब पूरा हो गया है। वह जब तक राम न मिल जाय, तब तक लग भी नहीं सकता है। और जो लोग काम के शत्रु होकर राम को खोजते हैं, राम की खोज नहीं है वह। वह सिर्फ

१. वही, पृ०-८३.
२. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-८३.
३. वही, पृ०-८४.
४. दँ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०- २७६-२७७.
५. तान्त्रिक ट्रान्सफॉरमेशन, पृ०-१०४,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राम के नाम में काम से पलायन है। काम से बचना है। इधर प्राण घबराते हैं, डर लगता है तो राम की चदरिया ओढ़कर उसमें छिप जाते हैं और राम राम राम जपते रहते हैं कि काम की याद न आये।[१]

तंत्र ने संभोग को आध्यात्मिक बनाने का दुनिया में सबसे पहला प्रयास किया था। खजुराहो में खड़े मन्दिर, पुरी और कोणार्क के मन्दिर सबूत हैं --नग्न मैथुन की प्रतिमाओं को देखकर कही भी ऐसा नहीं लगेगा कि कुछ कुरूप है, कुछ बुरा है। बल्कि मैथुन की प्रतिमाओं को देखकर एक शांति, एक पवित्रता का अनुभव होगा जो बड़ी हैरानी की बात है। वे प्रतिमाएँ आध्यात्मिक संभोग को जिन लोगों ने अनुभव किया था, उन शिल्पियों से निर्मित करवायी गयी हैं।---खजुराहो की प्रतिमाओं को देखें तो उनके चेहरे को देखकर ऐसा लगता है, जैसे बुद्ध का चेहरा हो, महावीर का चेहरा हो, मैथुन की प्रतिमाओं और मैथुनरत जोड़े के चेहरे पर जो भाव हैं, वे समाधि के भाव हैं, और सारी प्रतिमाओं को देख लें और पीछे एक हल्की-सी शांति की झलक छूट जाएगी और कुछ भी नहीं। ---- खजुराहो के मन्दिर जिन्होंने बनाये थे, उनका ख्याल यह था कि इन प्रतिमाओं को अगर कोई बैठकर घंटे भर देखे कि तो वासना से शून्य हो जाएगा। वे प्रतिमाएँ ध्यान के लिए विषय-वस्तु (ऑब्जेक्ट) का काम करती रही हैं। जो लोग अति कामुक थे, उन्हें खजुराहो के मन्दिर के पास भेजकर उन पर ध्यान करवाने के लिए कहा जाता था कि तुम ध्यान करो-इन प्रतिमाओं को देखो और इनमें लीन हो जाओ। --- अगर मैथुन की प्रतिमा को कोई घंटेभर तक शान्त बैठकर ध्यानमग्न होकर देखे तो उसके भीतर जो मैथुन करने का पागल भाव है, वह विलीन हो जाता है।[२]

तंत्र में प्रेम और काम की स्वीकृति है। तंत्र का अर्थ है-प्रेम का ध्यान में रूपान्तरण, क्योंकि प्रेम वह सरलतम द्वार है, जहाँ से व्यक्ति इस संसार का अतिक्रमण कर सकता है। शिवलिङ्ग यह लैङ्गिक प्रतीक है, शिव के लिङ्ग का प्रतीक। लेकिन वह अकेला नही है, वह देवी की योनि में स्थित है। पुराने दिनों के हिन्दू बड़े साहसी थे।[३]

शिव के लिए प्रेम महाद्वार है उनके लिए कामवासना निंदनीय नहीं है। उनके लिए काम बीज है ओर प्रेम उसका फूल है। अगर कोई बीज की निंदा करता है तो फूल की निंदा आप ही हो जाती है। काम प्रेम बन सकता है। अगर वह कभी प्रेम नहीं बनता है तो वह पंगु हो जाता है। पंगुता की निन्दा ठीक है, काम की नहीं। काम अगर प्रेम नहीं बनता है, तो यह काम का दोष नहीं है। यह यह दोष व्यक्ति का है। काम को काम नहीं रहना है; यही तंत्र की शिक्षा है। उसे प्रेम में रूपान्तरित होना ही चाहिए। और प्रेम को भी प्रेम नहीं रहना है। उसे प्रकाश में, ध्यान के अनुभव में, अन्तिम परम रहस्यवादी शिखर में रूपान्तरित होना चाहिए।[४]

जब व्यक्ति का मन कामुक होता है तो वह दूसरे का शोषण करता है। दूसरा मात्र एक

---

१. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-८७-८८.
२. वही, पृ०-८९-९०
३. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ० १३७ (विशेष राजसंस्करण)
४. वही, पृ०-१३७-१३८.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यंत्र होता है, जिसे इस्तेमाल करके फेंक देना है।[१] सी० एस० लेविस और अब्राहम मैसलो ने इसे क्रमशः 'नीड लव' (अपेक्षित प्रेम-need love) तथा 'डेफिसिएन्सी लव' (अभाव प्रेम-deficiency love) कहा है। लेविस ने प्रेम को दो भागों में बाँटा है- 'नीड लव' (अपेक्षित-प्रेम)और 'गिफ्ट लव' (उपहार प्रेम-Gift Love)। अब्राहम मैसलो का भी वर्गीकरण इसी प्रकार है- 'डेफिसिएन्सी लव' (अभाव प्रेम) और 'बीइंग लव' (स्वभाव प्रेम-being love)।[२]

'नीड लव' या 'डेफिसिएन्सी लव ' दूसरे पर आश्रित है, यह अपरिपक्व, अप्रौढ प्रेम है। वस्तुतः यह प्रेम नहीं, जरूरत है। आप दूसरे को एक साधन की तरह प्रयोग करते हैं, आप शोषण करते है; आप दूसरे पर हावी होते हैं। लेकिन दूसरा काफी न्यून हो जाता है, दूसरा लगभग नष्ट हो जाता है। दूसरे के द्वारा भी लगभग यही किया जाता है। ----दूसरे व्यक्ति का उपयोग करना बड़ा ही अप्रेमपूर्ण है, इसलिए यह केवल प्रेम जैसा लगता है, किन्तु यह एक झूठा सिक्का है।[३] जब आप दूसरे पर निर्भर होते हैं, तो हमेशा दयनीयता की स्थिति होती है। जिस क्षण आप आश्रित होते है, आप दयनीय महसूस करने लगते हैं, क्योंकि निर्भरता गुलामी है। तब आप सूक्ष्म तरीके से बदला लेना प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि जिस पर आप निर्भर होते हैं, वह आप पर शक्तिशाली हो जाता है। कोई व्यक्ति दूसरे को अपने ऊपर शक्तिशाली देखना नहीं चाहता, कोई व्यक्ति निर्भर नहीं होना चाहता, क्योंकि निर्भरता स्वतन्त्रता का हनन करती है। और प्रेम निभरता में विकसित नहीं हो सकता, प्रेम तो स्वतन्त्रता का फूल है, यह परम स्थान माँगता है। दूसरे को इसके साथ छेड़-छाड़ नहीं करना है। यह अति मधुर है।[४] इसलिए तंत्र की चेतावनी है कि काम-साधना कभी भी कामुकता या आसक्ति के भाव से नहीं करना चाहिए[५]–

'कामुको न स्त्रियं गच्छेत्' ।[६]
यथा विधि निषेवेत तृष्णया चेत् स पातकी'।[७]
'संज्ञाहीनैः सदा कार्यं संज्ञेन नरकं व्रजेत्'।[८]

किन्तु जब काम प्रेम बनता है, तब दूसरा यंत्र नहीं होता, दूसरे का शोषण नहीं किया जाता, दूसरा सच में दूसरा नहीं होता। जब व्यक्ति प्रेम करता है तो यह स्वकेन्द्रित नहीं है; उस हालत में तो दूसरा ही महत्त्वपूर्ण है। तब व्यक्ति एक दूसरे का शोषण नहीं करता, तब दोनों

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१३८.
२. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ० ३२ पर वर्णित।
३. वही, पृ०-३२,
४. वही, पृ०-३४,
५. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-६६,
६. कुलार्णव तंत्र, ८/११०.
७. वही, १०/६.
८. निरूत्तर तंत्र, ९/२२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक गहरे अनुभव में सम्मिलित हो जाते हैं, साझीदार बन जाते हैं। तब दोनों शोषक और शोषित न होकर एक दूसरे को प्रेम की और ही दुनिया में यात्रा करने में सहायता करते हैं; काम शोषण है; प्रेम एक भिन्न संसार में यात्रा है।[१] प्रेम केवल स्वयं को ही देता है और स्वयं से ही पाता है। प्रेम किसी पर आधिपत्य नहीं जमाता और न ही किसी के आधिपत्य को स्वीकार करता है। क्योंकि प्रेम के लिए प्रेम ही पर्याप्त है।[२] जिस क्षण व्यक्ति परिपक्व होता है, वह प्रेम करना प्रारम्भ करता है, न कि अपेक्षा। वह बहता है, वह देना प्रारम्भ करता है। प्रथम प्रकार के प्रेम में (काम में) जोर इस बात पर है कि कैसे अधिक से अधिक प्राप्त करें। दूसरे प्रकार के प्रेम में जोर इस बात पर होता है कि कैसे अधिक से अधिक दें और कैसे बेशर्त दें। यही विकास है, परिपक्वता है। केवल परिपक्व व्यक्ति ही दे सकता है, क्योंकि केवल उसी के पास होता है। तब प्रेम निर्भर नहीं रह जाता, तब आप प्रेमपूर्ण हो सकते हैं, चाहे दूसरा हो या नहीं। तब प्रेम एक सम्बन्ध नहीं होता, वह एक अवस्था होता है।[३] जब आप जानते हैं कि प्रेम एक जरूरत नहीं, बल्कि अतिरेक है–'बीइंग लव' या 'गिफ्ट लव' है–तभी आप बेशर्त दे सकते हैं।[४]

एक अपरिपक्व व्यक्ति हमेशा दूसरे अपरिपक्व व्यक्ति के साथ ही प्रेम में पड़ता है, क्योंकि केवल वे ही एक-दूसरे की भाषा समझ सकते हैं। एक परिपक्व व्यक्ति दूसरे परिपक्व व्यक्ति को ही प्रेम करता है। ...प्रेम की मौलिक समस्या यह है कि सर्वप्रथम परिपक्व होना है, तब आप एक परिपक्व साथी को खोजेंगे, तब अपरिपक्व व्यक्ति बिल्कुल आकर्षित नहीं करेगा। ...जब आप मानसिक रूप से, आध्यात्मिक रूप से परिपक्व होते हैं, तो आप किसी बच्ची के प्रेम में नहीं पड़ सकते। ऐसा होता नहीं है, ऐसा हो नहीं सकता। आप देख सकते हैं कि यह अर्थहीन हो रहा है।[५] इसलिए कहा गया है कि–'साधक को साधिका के स्तर का ही होना चाहिए। इसी प्रकार सफलता प्राप्त होती है। अन्यथा तो करोड़ों वर्ष में भी सम्भव नहीं है'–

यादृशः साधकः प्रोक्तः साधिकाऽपि च तादृशी।
ततः सिद्धिम् अवाप्नोति नान्यथा वर्षकोटिभिः।।[६]

यह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए आवश्यक है कि वे विकास के समान स्तर एवं समान धरातल पर हों।[७]

एक परिपक्व व्यक्ति के पास अकेले होने की अखण्डता होती है।...एक परिपक्व व्यक्ति

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१३८ (विशेष पर राजसंस्करण)
२. पैगम्बर, पृ०-३९.
३. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-३३.
४. वही, पृ०-३७.
५. वही, पृ०-३८.
६. महाकाल संहिता, गुह्य-काली खण्ड (शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९५ पर उद्धृत)
७. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बस देता है। जब वह प्रेम देता है, तो वह कृतज्ञ महसूस करता है कि आपने उसका प्रेम स्वीकार किया। वह आशा भी नहीं करता कि आप उसे इसके लिए धन्यवाद दें। नहीं, वह आपके धन्यवाद की जरूरत भी महसूस नहीं करता। वह तो धन्यवाद देता है कि आपने उसके प्रेम को स्वीकार किया।[१]

जब दो परिपक्व व्यक्ति प्रेम में होते हैं, तो ज़िन्दगी का महान विरोधाभास, एक अतिसुन्दर घटना घटती है। वे साथ-साथ होते हैं, फिर भी आश्चर्यजनक रूप से अकेले होते हैं; वे इतने साथ होते हैं कि वे लगभग एक ही होते हैं। किन्तु उनकी एकता उनकी निजता को नष्ट नहीं करती। वस्तुतः यह उसे और बढ़ाता है, वे और अधिक निजता में होते हैं। दो परिपक्व व्यक्ति का प्रेम एक दूसरे को और अधिक स्वतन्त्र करता है। वहाँ कोई राजनीति, कूटनीति या हावी होने का प्रयास नहीं होता। जिसे आप प्रेम करते हैं, कैसे आप उस पर हावी हो सकते हैं? वर्चस्व एक तरह की घृणा, क्रोध, दुश्मनी है।[२]

अपरिपक्व व्यक्ति प्रेम में एक दूसरे की स्वतन्त्रता को नष्ट करते हैं, वे बन्धन, कारागृह का निर्माण करते हैं। परिपक्व व्यक्ति प्रेम में एक दूसरे को मुक्त करने में सहायक होते हैं, वे सभी तरह के बन्धनों को नष्ट करने में एक दूसरे की सहायता करते हैं। और जब प्रेम स्वतन्त्रता के साथ प्रवाहित होता है, तब उसमें सुन्दरता होती है। जब प्रेम निर्भरता के साथ बहता है, तो उसमें कुरूपता होती है। स्वतन्त्रता का मूल्य प्रेम की अपेक्षा अधिक है। इसलिए भारत में चरम-स्थिति को हम 'मोक्ष' कहते हैं। मोक्ष का अर्थ है-स्वतन्त्रता। ....इसलिए यदि प्रेम स्वतन्त्रता का हनन कर रहा हो, तो यह योग्य नहीं है। ऐसे में प्रेम छोड़ा जा सकता है और स्वतन्त्रता को बचा लेना है। ....और बिना स्वतन्त्रता के आप कभी खुश नहीं रह सकते। स्वतन्त्रता, परम स्वतन्त्रता प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री की आन्तरिक इच्छा है। इसलिए कुछ भी, जो स्वतन्त्रता के लिए घातक है, मनुष्य उससे घृणा करने लगता है।...इसलिए प्रेम को यदि सच्चा प्रेम होना है, तो इसे 'बीइंग लव' या 'गिफ्ट लव' होना पड़ेगा। 'बीइंग लव' अर्थात् 'स्वभाव प्रेम' का अर्थ है-प्रेम की अवस्था। जब आप घर पहुँच गए हों, जब आपने जान लिया कि आप कौन हैं, तभी आपके अन्दर एक तरह का प्रेम उत्पन्न होगा। तभी सुगन्ध फैलता है और आप इसे दूसरों को दे सकते हैं।[३] तंत्र में काम का रूपान्तरण ऐसे ही प्रेम में होता है।

तान्त्रिक संभोग

तंत्र में आध्यात्मिक उन्नति के साधन के रूप में संभोग-साधना का निर्देश किया गया है। पञ्चमकारों में मैथुन को आध्यात्मिक अनुभूति के लिए सर्वश्रेष्ठ सहायक के रूप में स्वीकारा गया है। इस प्रकार कहा जाता है कि साधक को अपने आध्यात्मिक-साधना के लिए कुछ स्त्रियों को साथी बनाना चाहिए। स्त्री सुन्दर हो, उसे काम-भोग का स्पष्ट ज्ञान हो तथा पहले

१. तान्त्रिक ट्रांसफॉर्मेशन, पृ०-३९.
२. वही, पृ०-३९.
३. वही, पृ०-४०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से उसे काम-भोग का गहन अनुभव हो।[१] यदि स्त्री स्वयं साधिका हो तो अति उत्तम रहेगा।[२] इस साधना में साधक किसी गुप्त स्थान में, विशेषकर किसी शमशान में, अँधेरी रात में जमा होते हैं, मांस-मद्य का प्रयोग करते हुए स्त्री के साथ साधना करते हैं।[३] साधक से कहा जाता है कि वह अपने स्त्री-मित्र की पूजा करे और फूल, नैवेद्य आदि उसके गुप्त अङ्गों को अर्पित करे। पुनः वह स्त्री का आलिङ्गन करता है तथा उसके सभी गुप्त अङ्गों को छूता है तथा चूमता है। ऐसा करते हुए वह निश्चित संख्या में मन्त्र-जाप करता है[४]-

योनिं चुम्बन् लिहन् पश्यन्, जपं कुर्यादनन्यधीः।
योनौ विन्चियत्य जप्तव्यं ....।।[५]
योनिं सञ्चुम्बनं कृत्वा, सर्वकाले जपं चरेत्।
शक्तेर्भगं नमस्कार्य, सर्वमेतच्चराचरम्।।[६]

अर्थात् योनि का चुम्बन, अवलेहन, दर्शन करता हुआ जगदम्बा के चरणों का अनन्य-भाव से चिन्तन कर इष्टमन्त्र का जप करें। योनि-चुम्बन करके सब काल में जप करें। स्त्री के उपस्थ को 'यही सब चराचर है', ऐसी भावना से नमस्कार करें।'

तंत्र में व्यक्ति नंगी स्त्री के सामने बैठता है और उसे स्त्री को इतनी गहराई से लगातार देखते रहना है कि स्त्री को नंगी देखने की इच्छा समाप्त हो जाती है। तब व्यक्ति रूप-आकार से मुक्त हो जाता है।.....यह एक रहस्यपूर्ण विज्ञान है। महीनों तक लगातार देखते हुए तान्त्रिक स्त्री का भली-भाँति निरीक्षण करता है, उसकी शरीराकृति पर ध्यान मगन हो जाता है, उसकी सुन्दरता पर ध्यानपूर्ण होता है; वह जो भी देखना चाहता है, उसे वह देखता है। स्तन का यदि आकर्षण है तो वह देखेगा और उस पर ध्यानस्थ होगा। उसे आकार से मुक्त होना है और आकार से मुक्त होने का एक मात्र उपाय यह है कि इसे इतनी गहराई से जान लेना कि इसमें कोई आकर्षण ही न रह पाय।[७] यही एक मार्ग है कामुकता से मुक्त होने का। अन्य कोई मार्ग अब तक मनुष्य के लिए सहायक नहीं सिद्ध हुआ है। अन्य सभी मार्गों ने मनुष्य को और अधिक कामुक बनाया है।[८]

सामान्य जन और तान्त्रिक ऊपर से एक समान ही दिखते हैं। किन्तु दोनों में भेद बहुत गहरा है। सामान्य व्यक्ति अपने से बचना चाहता है। वह अपने को भूलने के लिए स्त्री में खो

---

१. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-६५.
२. दीक्षिताम् यौवनान्विताम्-गुप्मसाधना तंत्र, ४.३. सी. एफ नील तंत्र, १३-२८, योनि तंत्र, अध्याय-३ और ४, कुमारी तंत्र, अ०-५ और ८, गुप्तसाधाना तंत्र, अध्याय-४ और ५,
३. यथेच्छं तत्त्वम् आद्या समस्थाप्य पुरतो व्रती-महानिर्वाण तंत्र, ८.१६२, निरूत्तर तंत्र, अध्याय-५.६ और१०, कुलार्णव, अध्याय-६ और ११.
४. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-६६.
५. पुरश्चर्यार्णव (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-६१ पर उद्धृत)।
६. वही, (वही, पृ०-६३ पर उद्धृत)।
७. द तंत्रा एक्सपीरियन्स, पृ०-२९-३०.
८. वही, पृ०-५४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाना चाहता है। उसे अपने आप से प्रेम नहीं है, इसलिए वह स्त्री को प्यार करता है: क्योंकि उसकी वास्तविकता भुलाई जा सके। वह स्त्री को अल्कोहलिक नशा के रूप में प्रयुक्त करता है और वह अपने को भूल जाता है। यह उसे कुछ देर के लिए तनावमुक्त करता है। किन्तु तान्त्रिक स्त्री का हाथ असीम आनन्द के साथ पकड़ता है। ऐसा नहीं है कि वह बचना चाहता है, कहीं बचना नहीं है; कोई ऐसा नहीं है, जिससे बचना है। वह स्त्री का हाथ केवल कुछ ऊँचे मूल्य, मधुर स्वाद की सहभागिता के लिए पकड़ता है। आप हर व्यक्ति के साथ प्रत्येक चीज़ नहीं बाँट सकते। कुछ बातें हैं, जिन्हे केवल प्रेम में ही बाँटा जा सकता है, केवल विश्वास में बाँटा जा सकता है।......तान्त्रिक स्त्री का हाथ पकड़ता है। वह किसी का भी हाथ पकड़ सकता है, किन्तु जो ऊर्जा उसे घटित हुई है, वह उसे संप्रेषित नहीं कर सकता, जो प्रेम करता है, केवन उन लोगों को वह आसानी से इस ऊर्जा को संप्रेषित कर सकता है और ऐसा केवल कुछ निश्चत क्षणों में ही घट सकता है। कुछ निश्चित क्षण होते हैं, जब दो प्रेमी इतने नज़दीक होते हैं कि ऊर्जा एक से दूसरे पर छलांग ले लेती है।..... कभी-कभी आप महसूस करते हैं कि दूसरा इतना नज़दीक आ गया कि आपकी परिधियाँ आपस में मिल रही हैं। यही वह क्षण होता है, जब कुछ संप्रेषित किया जा सकता है।[१]

काम-संभोग में तीन सम्भावनाएँ है। दो प्रेमी आलिङ्गन में बद्ध होकर तीन आकार, ज्यामितिक आकार निर्मित कर सकते हैं। एक आकार चतुर्भुज है, दूसरा त्रिभुज है और तीसरा वर्तुल। आमतौर से जब व्यक्ति संभोग में होता है, तो वहाँ दो नहीं चार व्यक्ति होते हैं। वही आयत है, चतुर्भुज है। उसमें चार कोने हैं, क्योंकि व्यक्ति दो हिस्सों में बटाँ है- एक हिस्सा विचार करनेवाला और दूसरा हिस्सा भावुक है। वैसे ही उसका साथी भी दो हिस्सों में बँटा है। अत: दो नहीं चार व्यक्ति कामालिङ्गन में होते हैं। यह एक भीड़ होती है और इसमें प्रगाढ़ मिलन की सम्भावना नहीं होती। कारण, इसमें व्यक्ति का गहन भाग दबा पड़ा रहता है।.... . केवल दो सिर, दो विचार की प्रक्रियाएँ मिल रही होती हैं, भाव की प्रकियाएँ अनुपस्थित होती हैं, वे दबी-छिपी रहती हैं।[२]

दूसरी कोटि का मिलन त्रिभुज जैसा होगा। दो व्यक्ति हैं, आधार के दो कोने; और किसी क्षण अचानक वे दोनों एक हो जाते हैं, त्रिभुज के तीसरे कोने की तरह। किसी आकस्मिक क्षण में उन दोनों की दुई मिट जाती है और वे एक हो जाते हैं। यह मिलन चतुर्भुज मिलन से बेहतर है, क्योंकि कम से कम एक क्षण के लिए ही सही, एकता सध जाती है। वह एकता दोनों को स्वास्थ्य देती है। वे फिर युवा और जीवन्त अनुभव करते हैं।[३]

लेकिन तीसरा मिलन सर्वश्रेष्ठ है। और यह तंत्रगत मिलन है। इसमें व्यक्ति एक वर्तुल बन जाता है; इसमें कोने नहीं रहते और यह मिलन क्षण-भर के लिए नहीं है; वस्तुतः यह मिलन समयातीत है।....यह मिलन तभी सम्भव है, जब व्यक्ति स्खलन में नहीं खोजता है।

---

१. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-२५६-२५७.
२. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-१४ (पॉ०बु०सं०)
३. वही, पृ०-१४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अगर स्खलन खोजा जाए तो फिर वह त्रिभुजी मिलन हो जाएगा, क्योंकि स्खलन होते ही सम्पर्क का बिन्दु, एकता का बिन्दु खो जाता है।[१] जब दो प्रेमी गहरे संभोग के आवेग में होते हैं, तो वे एक-दूसरे में पिघलते हैं। तब स्त्री, स्त्री नहीं रह जाती, पुरुष पुरुष नहीं रह जाता। वे यिन और यांग के वर्तुल की तरह हो जाते हैं; एक-दूसरे में उतरते हैं। एक दूसरे से गहरे में मिलते हैं, एक दूसरे में पिघलते हैं, उनकी अपनी अलग पहचान खो जाती है। इसलिए प्रेम इतना सुन्दर है।[२]

साधारण संभोग में और तंत्र-सम्मत संभोग में बुनियादी भेद है। साधारण संभोग सिर्फ तनाव से क्षणिक छुटकारा होता है; वह अच्छी छींक आने जैसा है। उसमे ऊर्जा बाहर निकल जाती है और व्यक्ति हल्का हो जाता है।[३] यह ऊर्जा का भौतिक निकास है। आप ऊर्जा से इतने भारी हो जाते हैं कि आपको इसे बाहर निकालना पड़ता है; ताकि आप पुनः इसे भोजन, व्यायाम, सूर्य की रोशनी से ग्रहण कर सकें, जमा कर सकें और पुनः इसे फेंक दें जो कि सामान्य आदमी करता है। वह महान ऊर्जा का सृजन करता है और निरूद्देश्य बिना किसी महत्त्व के उसे फेंक देता है। इसके (ऊर्जा) रहने पर वह इसके तनाव में पीड़ित होता है। इसे बाहर निकाल देने पर, इसकी कमजोरी से पीड़ित होता है। सामान्य आदमी बस पीड़ित ही होता है।[४] ऐसे स्खलन को तंत्र स्थानीय स्खलन कहता है।[५] यह काम-भोग विध्वंसात्मक है, सृजनात्मक नहीं। यह ठीक है कि यह चिकित्सात्मक है। इससे व्यक्ति को आराम मिल जाता है; लेकिन और कुछ नहीं। इसलिए तंत्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है–

शक्ति- संभोग-मात्रेण, यदि मोक्षो भवेत् वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके, मुक्ता स्युः स्त्री-निषेवणात्।।[६]

अर्थात् 'यदि संभोग मात्र से यदि मुक्ति मिलती हो तो सभी जन्तु संसार में स्त्री-निषेवण के कारण मुक्त हो जाते।'

तंत्र सम्मत संभोग बुनियादी रूप से बिल्कुल उल्टा और भिन्न है। वह छुटकारा पाने के लिए नहीं है; वह ऊर्जा को बाहर फेंकने के लिए नहीं है। तंत्र में स्खलन के बिना, ऊर्जा को बाहर फेंके बिना संभोग में रहना है; वह भी उसके आरम्भ के साथ रहना है, अंत के साथ नहीं। इससे काम-भोग की गुणवत्ता बदल जाती है; फिर उसका पूरा गुण धर्म भिन्न हो जाता है।[७] यह काम-लालसा की अहंकारिक संतुष्टि नहीं है, बल्कि यह अतिक्रमण की एक क्रिया है, जहाँ आदर्श रूप में पुरुष का वीर्य स्खलित नहीं होता। यहाँ योग के द्वारा संयम या अपने आप

---

१. वही, पृ०-१४-१५.
२. तंत्राः द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-१३५.
३. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५१(पॉ०बु०सं०)।
४. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-६४.
५. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१६४ (विशेष राजसंस्करण)
६. कुलार्णव तंत्र, २/११९.
७. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५१-५२ (पॉ०बु०सं०)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के नियंत्रण पर जोर होता है, क्षणिक सुख या शुक्र-त्याग पर जोर नहीं होता। स्खलन पर नियंत्रण के द्वारा दो प्रेमी एक उच्चतर आध्यात्मिक आनन्दावस्था में पहुँच जाते हैं।[1]

वाममार्ग में कहा गया है कि जिस समय साधक का संभोग होता है, उस समय प्राप्त आनन्द के अनुभव को ठीक भाव से देखो, समझो। संभोग के समय वीर्य-त्याग या स्खलन नहीं होना चाहिए। बिन्दु को अपने भीतर ही धारण करना है। जब तक साधक बिन्दु को अपने भीतर धारण किये रहता है, तब तक वह सिद्ध कहलाता है। इससे वासना पर नियंत्रण की प्राप्ति होती है। इससे साधक चार मूल प्रवृत्तियों–आहार, निन्द्रा, भय और मैथुन पर विजय प्राप्त करता है। वीर्य-स्खलन नहीं होने से उसके साथ जुड़ी हुई भावना, वासना और आसक्ति समाप्त हो जाती है।[2] कहा गया है कि यदि दीक्षित परनारी के साथ संभोग करें, तो वीर्यपात न होने पाये। यदि साधक ऐसा कर पाता है तो वह सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है–

दीक्षितः परनारीषु यदि मैथुनमाचरेत्।
न बिन्दोः पातनं कार्यं कृते ब्रह्महा भवेत्।।
यदि न प्रपतेद् बिन्दुः परनारीषू पार्वति।
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा विहरेद् भूमिमण्डले।।[3]

जब तक वीर्य देह में रहता है, तब तक मृत्यु का भय कहाँ? वीर्य-पात से विनाश निकट आता है, इसलिए वीर्य की रक्षा करनी चाहिए–

यावद्बिन्दु स्थिरो देहे तावमृत्युभयं कुतः?।।
बिन्दुपाताद् भवेन्नाशस्ततो हि बिन्दुरक्षणम्।[4]

काम-भोग में दो प्रकार के शिखर-अनुभव हैं, दो प्रकार की काम समाधि है, कामानन्द है। एक कामानन्द से सामान्यतया व्यक्ति परिचित है, जिसमें व्यक्ति उत्तेजना के शिखर पर पहुँचकर उसके आगे नहीं जा सकते, अंत आ जाता है। उत्तेजना ऐसे बिन्दु पर पहुँचती है, जहाँ वह स्वैच्छिक नहीं रह जाती, ऊर्जा छलांग लेती है और बाहर निकल जाती है।.... व्यक्ति यहाँ काम-भोग शामक की तरह करता है। यह प्रकृति-प्रदत्त शामक है। अगर व्यक्ति का चित्त धारणाओं से भारी नहीं है, तो ही काम-भोग शामक का काम कर सकता है। अगर अपराध-भाव है तो व्यक्ति की नींद में बाधा पड़ जाएगी। तब वह आत्म-निंदा में संलग्न हो जाएगा। ..... यह काम का शिखर अनुभव है, जिसमें उत्तेजना का शिखर प्राप्त होता है।[5]

तंत्र दूसरे तरह के शिखर-अनुभव की चिन्ता लेता है। इसे संभोग का घाटी-अनुभव कहना उचित होगा। इसमें उत्तेजना के शिखर पर नहीं पहुँचना है, वरन् विश्राम की गहनतम घाटी में उतरना है। लेकिन आरम्भ में दोनों समान हैं, लेकिन उनके अंत समग्रतः भिन्न हैं।.

१. कल्ट ऑफ द गोडेज, पृ०-१५.
२. तंत्र-दर्शन, पृ०-१८०-१८१.
३. कालीविलास तंत्र, १०/२०-२१ (धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड-५) उत्तरार्द्ध, पृ०-४८ पर उद्धृत)।
४. रुद्रयामल उ०त०, ६०/८३-८४, ६७/३०७-३०८.
५. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५२ (पॉ०बु०सु०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

....तान्त्रिक संभोग में एक बार पुरुष के प्रवेश करते ही प्रेमी और प्रेमिका दोनो विश्राम में हो सकते हैं। किसी हलचल की जरूरत नहीं है; दोनों प्रेमालिङ्गन में विश्रामपूण हो सकते हैं। जब पुरुष या स्त्री को ऐसा लगता है कि इन्द्रियों का तनाव समाप्त होने को है, तभी थोड़ी गति और उत्तेजना की जरूरत पड़ती है। लेकिन फिर विश्राम में चला जाना चाहिए। प्रेमी-युगल इस प्रगाढ़ आलिङ्गन को स्खलन के बिना घण्टों लम्बा सकता है और उसके बाद दोनों गहरी नींद में सो जा सकते हैं। यही घाटी-अनुभव है। इसमें दोनों विश्रामपूर्ण है और उनका मिलन भी विश्रामपूर्ण होता है।[१] अगर गइराई और देर तक संभोग स्थिर रह जाय ....स्त्री और पुरुष का एक जोड़ा अगर आधे घण्टे के पार तक संभोग में रह जाये तो दोनों के पास प्रकाश का एक वलय, प्रकाश का एक घेरा निर्मित हो जाता है। दोनों की विद्युत जब पूरी तरह मिलती है तो आस-पास अँधेरे में भी एक रोशनी दिखाई पड़ने लगती है।[२] अगर संभोग एक मिनट तक रुकेगा तो आदमी दूसरे दिन फिर संभोग के लिए लालायित हो जाएगा। और तीन मिनट तक रुक सके तो एक सप्ताह तक उसे संभोग की वह याद भी नहीं आयेगी। और सात मिनट तक रूक सके तो तीन महीने के लिए सेक्स से इस तरह मुक्त हो जायेगा कि उसकी कल्पना में भी विचार प्रविष्ट नहीं होगा। और अगर तीन घंटे तक रूक सके तो जीवन भर के लिए मुक्त हो जाएगा। जीवन में उसको कल्पना भी नही उठेगी।..... इतनी तृप्ति पीछे छोड़ जाता है-इतना अनुभव, इतना बोध छोड़ जाता है कि जीवन भर के लिए पर्याप्त हो जाता है। एक संभोग के बाद व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है।[३]

सामान्य संभोग में प्रेमी-युगल दो उत्तेजित व्यक्तियों की भाँति मिलते हैं-तनावग्रस्त, उत्तेजित, खाली होने को आतुर। साधारण कामानंद पागलपन जैसा मालूम होता है। तंत्रगत काम-समाधि प्रगाढ विश्राम वाला ध्यान है। उसमें यह प्रश्न नहीं उठता है कि कितनी बार संभोग में उतरा जाए। प्रेमी-युगल जितनी बार चाहें, उतर सकते हैं; क्योंकि उसमें ऊर्जा की हानि नहीं, वरन् ऊर्जा की प्राप्ति होती है।[४]

साधारण संभोग एक अर्थहीन सिलसिला है, सारा जीवन फिर-फिर ऊर्जा कमाने और नष्ट करने में व्यतीत हो जाता है। यह एक ग्रस्तता है, रूग्णता है।[५]

दूसरी बात, पशु काम-कृत्य का सुख लेते हुए नहीं मालूम पड़ते हैं। उनका काम-भोग बिल्कुल यांत्रिक मालूम पड़ता है; लगता है कोई प्राकृतिक शक्ति उन्हें इसकें लिए बाध्य कर रही है। साधारण काम-कृत्य पशुओं के काम-कृत्य जैसा ही है। लेकिन मनुष्य सुख ले सकता है। व्यक्ति जितना गहरा सुख लेगा, उतनी ही श्रेष्ठ मनुष्यता का उदय होगा। और अगर व्यक्ति का संभोग ध्यानपूर्ण हो जाए, समाधि-पूर्ण हो जाए तो परम उपलब्ध हो जाय। तंत्रगत संभोग के बाद गिरावट अनुभव नहीं होती। उसमें व्यक्ति और नीचे नहीं गिर सकता, क्योंकि वह

१. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५२-५३ (पां०बु०सं०)
२. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-७२.
३. वही, पृ०-६७,
४. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५३ (पॉ०बु०सं०)।
५. वही, पृ०-५४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घाटी में ही है। वरन् वह ऊपर उठता हुआ अनुभव करेगा। व्यक्ति ऊर्जा से आपूरित होकर ज्यादा शक्तिवान्, ज्यादा जीवंत और तेजोमय हो जाता है। वह आनन्द घण्टों कायम रह सकता है, दिनों कायम रह सकता है। यह इस पर निर्भर है कि प्रेमी-युगल कितनी गहराई में उतरे थे। इस तरह का व्यक्ति कभी दूसरों के लिए खतरा नहीं खड़ा करेगा, विपदा नही पैदा करेगा। हो सकेगा तो वह दूसरों को सुखी बनाने में सहयोग देगा; अन्यथा वह दूसरों को दुख तो कभी नहीं देगा।[१]

इसलिए काम-भोग में ज्ल्दबाजी नही करना चाहिए, अन्त के लिए उतावला नही होना चाहिए, आरम्भ में बने रहना है। आरम्भ का भाग ज्यादा विश्रामपूर्ण है, ज्यादा उष्ण है। ऊर्जा से भरे होने पर उसके छुटकारे की बात न करके, उस ऊर्जा की बाढ़ के साथ रहना है। दो शरीरों के मिलन का सुख, दो आत्माओं के मिलन का सुख लेना है। एक-दूसरे में विलीन हो जाना है। उष्णता और प्रेम वह स्थिति बनाते हैं, जिसमें दो व्यक्ति एक-दूसरे में पिघलकर विलीन हो जाते हैं। यही कारण है कि यदि प्रेम न हो तो संभोग जल्दबाजी का काम हो जाता है। तब व्यक्ति दूसरे का उपयोग कर रहा होता है।[२]

आरम्भ का यह विलीनीकरण अनेक अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है। अगर व्यक्ति संभोग को समाप्त करने की जल्दबाजी नहीं करता है तो काम-कृत्य धीरे-धीरे कामुक कम और आध्यात्मिक ज्यादा हो जाता है। जननेन्द्रियाँ भी एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। तब दो शरीर-ऊर्जाओं के बीच एक गहन मौन मिलन घटित होता है। और व्यक्ति घंटों साथ रह सकते हैं। यह सहवास समझ के साथ-साथ गहराता जाता है और यही समाधि बन जाती है।.....इस स्थिति में संभोग ध्यान बन जाता है और व्यक्ति पूर्ण हो जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति का विभाजित व्यक्तित्त्व अविभाजित हो जाता है। चित्त की सब रूग्णता इस विभाजन से पैदा होती है। और व्यक्ति जब जुड़ता है, अखण्ड होता है तो वह फिर बच्चा हो जाता है, निर्दोष हो जाता है।[३]

तंत्र कहता है कि जब व्यक्ति का सिर्फ काम-केन्द्र काम-कृत्य में संलग्न होता है, तब वह कृत्य स्थानीय है। वह स्थनीय स्खलन है। उसमें उसका समूचा शरीर, समूचे वह सम्मिलित नहीं होता। गैर-स्थानीय, यानि समग्र काम-कृत्य का अर्थ है कि उसमें व्यक्ति के शरीर का एक-एक रेशा, एक-एक कोश, समूचे व्यक्ति सम्मिलित होता है। काम-केन्द्र ही नहीं, व्यक्ति का पूरा अस्तित्त्व कामुक हो उठता है, समूचा अस्तित्त्व काममय हो गया है। लेकिन व्यक्ति भयभीत है, डरा हुआ है; क्योंकि उस हालत में कुछ भी हो सकता है और व्यक्ति को मालूम नहीं है कि क्या होगा; क्योंकि उसने कभी समग्रता को नहीं जाना। तब वह कुछ भी कर सकता है, जिसको वह सोच भी नही सकता। उसमें उसके अचेतन का विस्फोट हो सकता है। मनुष्य एक नहीं, अनेक पशु एक साथ हो जा सकता है, क्योंकि वह अनेक जीवन से गुजर चुका है, अनेक पशु-जीवन से। वह चीखने-चिल्लाने लग सकता है, कुछ भी

१. तंत्र-सूत्र, भाग-५, पृ०-५४-५६.
२. वही, पृ०-१५,
३. वही, पृ०-१५-१७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्भव है। और उससे भय पैदा होता है। इसलिए व्यक्ति नियंत्रण में रहता है और किसी भी कृत्य में अपने को पूरी तरह नहीं खोता। और इसका नतीजा यह होता है कि व्यक्ति कभी कुछ नहीं जानता है, और जाने बिना अतिक्रमण नहीं हो सकता। स्वीकार करना, गहरे उतरना और जड़ों तक जाना-यही तंत्र है। तंत्र गहरे अनुभव की हिमायत करता है। जिसका अनुभव लिया जाता है, उसका अतिक्रमण हो जाता है; जिसका दमन किया जाता है, उसका अतिक्रमण कभी हो जाता है; जिसका दमन किया जाता है, उसका अतिक्रमण नहीं हो सकता।[१]

काम-भोग जैविक समर्पण है; समाधि अस्तित्त्वगत समर्पण है। काम के द्वारा व्यक्ति जीवन का संस्पर्श करता है; समाधि में व्यक्ति जीवन से भी गहरे उतरकर अस्तित्त्व के आधार को ही छू लेता है। काम के द्वारा व्यक्ति स्वयं से दूसरे व्यक्ति में गति करता है; समाधि में व्यक्ति स्वयं से समस्त में, पूरे ब्रह्माण्ड में गति कर जाता है।[२] संभोग करने में दो व्यक्ति जुड़ते हैं। एक व्यक्ति दूसरे से जुड़ता है और एक हो जाता है। समाधि में एक व्यक्ति समष्टि से जुड़ता है और एक हो जाता है। संभोग दो व्यक्तियों के बीच मिलन है। समाधि एक व्यक्ति और अनंत के बीच मिलन है। दो व्यक्तियों का मिलन क्षण-भर का हो सकता है। एक व्यक्ति और अनंत का मिलन अनंत के लिए हो सकता है।[३] संभोग और समाधि के बीच एक सेतु है, एक यात्रा है, एक मार्ग है। समाधि जिसका अंतिम छोर है आकाश में जाकर, संभोग उस सीढ़ी का पहला सोपान है, पहला पाया है। और जो इस पाये के विरोध में जाते हैं, वे आगे नहीं बढ पाते।[४] तंत्र जागतिक संभोग है। यह पूरे जगत् के प्रेम में पड़ना है, यह पूरे जगत् के प्रति समर्पित होना है।[५]

काम-भोग बहुत रहस्यपूर्ण घटना है। व्यक्ति उसे आरम्भ तो करता है; लेकिन एक क्षण आता है, जब वह नहीं होता। काम-भोग का आरंभ तो स्वैच्छिक चीज़ है, लेकिन वही उसकी सीमा है। अगर व्यक्ति उस सीमा के पार जाए तो फिर लौट नहीं सकता।......इसलिए काम-भोग स्वैच्छिक और गैर-स्वैच्छिक दोनों है, एक सीमा तक व्यक्ति में मन की जरूरत पड़ती है। अगर व्यक्ति अपना मन, अपनी बुद्धि-चेतना, अपना धर्म, अपना दर्शन, अपनी जीवन-शैली सब कुछ बचाए रखा, अगर उसने अपना मन विसर्जित नहीं किया, तो फिर सीमा का अतिक्रमण नहीं हो सकेगा, और व्यक्ति स्वैच्छिक क्षेत्र में ही काम-भोग का अनुभव करता रहेगा और तब संभोग के बाद गिरावट महसूस करता है, वह उसके विरोध में हो जाता है।[६]

लेकिन गैर-स्वैच्छिक संभोग काम का सबसे गहरा जैविक आयाम है, जिसे व्यक्ति सामान्यता कभी स्पर्श नहीं कर पाता। व्यक्ति सदा सीमा से ही लौट आता है; क्योंकि सीमा

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१६४ (विशेष राजसंस्करण)।
२. वही, भाग-४, पृ०-१९२ (पॉ०बु०सं०)
३. संभोग से समाधि की ओर, पृ०-७०.
४. वही, पृ०-७१-७२.
५. तंत्र-सूत्र, भाग-४, पृ०-१९२ (पॉ०बु०सं०)
६. वही, पृ०-१९०-९१ (पॉ०बु०सं०)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर भय लगता है। उस सीमा के पार अहंकार नहीं बचता।[१] केवल प्रेम के क्षण में आप कुछ क्षण के लिए अपने मन को भूल जाते हैं। साधारण आदमी के लिए केवल यही अ-मन की दशा है। इसलिए संभोग का तंत्र में महत्त्व है। यह परम सत्य तो उपलब्ध नहीं कराता, किन्तु कम से कम यह मन के पार झाँकने का एक मौका देता है। यह एक छोटा झरोखा खोलता है; क्षणिक ही, ज्यादा देर टिकता भी नहीं। किन्तु व्यक्ति के लिए सत्य से अभिमुख होने के लिए यही एक सम्भावना है।[२] तो उस सीमा के पार व्यक्ति काम-ऊर्जा के बस में हो जाएगा। तीव्र-आवेग एक अवस्था है, जहाँ आपका शरीर केवल पदार्थ नहीं रह जाता, यह ऊर्जा विद्युत की तरह तरंगायित होती है।....अब तो भौतिकविद् भी कहते हैं कि पदार्थ नहीं है, सभी पदार्थ केवल प्रतीत होते हैं; गहरे में जो कुछ भी अस्तित्त्वगत है—वह विद्युत है। तीव्र-आवेग में, गहरी कामोत्तेजना में आप शरीर के इसी गहरे तल पर आ जाते हैं, जहाँ पदार्थ नहीं होता, बस ऊर्जा-तरंगें होती हैं। आप एक नाचती हुई ऊर्जा, एक कंपन हो जाते हैं....बस केवल धड़कन रह जाते हैं। और आपकी प्रेमिका भी एक धड़कन हो जाती है। और धीरे-धीरे अगर वे एक-दूसरे को प्यार करते हैं, और एक दूसरे के प्रति समर्पित करते हैं; इस धड़कन, कंपन और ऊर्जा के प्रति इसी क्षण समर्पण करते हैं तथा वे डरे हुए नहीं होते हैं ......क्योंकि यह मृत्यु के समान है; जब शरीर अपनी दीवार खो देती है, जब शरीर पदार्थगत रूप से वाष्पीभूत हो जाता है और केवल ऊर्जा शेष रह जाती है, तो एक बहुत ही सूक्ष्म लय, राग उत्पन्न होता'है।. ... जब पति और पत्नी या प्रेमी-युगल एक लय में काँपने लगते हैं, तो उनके शरीर और हृदय की धड़कनें मिलकर एक हो जाती हैं; तब यह एक संगीत हो जाता है-तभी तीव्र -आवेग, गहरी कामोत्तेजना, संभोग-समाधि घटती है। तब वे दो नहीं रह जाते। वे यिन और यांग के प्रतीक हैं; यिन यांग में बदलता है; यांग यिन में बदलता है; पुरुष स्त्री में परिवर्तित होता है और स्त्री पुरुष में। तब वे एक वर्तुल हो जाते हैं और एक साथ धड़कते हैं, एक साथ काँपते हैं। उनके हृदय अलग-अलग नहीं रहते, उनकी धड़कनें अलग-अलग नहीं धड़कतीं। वे एक ताल हो जाते हैं, एक संगीत। यह सबसे महान् गहरा सम्भव संगीत है।...यह दो की एक धड़कन ही संभोग-समाधि है, तीव्र-आवेग है। जब यही घटना दूसरे व्यक्ति के साथ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्त्व के साथ घटती है तो यही महामुद्रा है। तब यह महान् संभोग-समाधि है, तीव्रतम आवेग है।[३] इसलिए शिव ने कहा-"जब ऐसे आलिङ्गन में तुम्हारी इन्द्रियाँ पत्तों की तरह कंपने लगे, तो इस कंपन में प्रवेश करो।"[४]

जब तक व्यक्ति इस अनियंत्रित क्षेत्र (काम-भोग) में नहीं प्रवेश करता; तब तक काम-समाधि को नहीं उपलब्ध हो सकता। इस अनियंत्रित जीवन-ऊर्जा को व्यक्ति जानता ही नहीं रहता, वह सागर में लहरवत् हो जाता है और तब चीज़ें आप ही घटित होती हैं।....

१. वही, पृ०-१९१.
२. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-२४३.
३. तंत्रा: द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-१३७.
४. ध्यान योग: प्रथम और अंतिम मुक्ति, पृ०-२१७ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वस्तुतः व्यक्ति सक्रिय नहीं रहता, निष्क्रिय हो जाता है। शुरू में व्यक्ति सक्रिय होता है; फिर एक क्षण आता है, जब वह निष्क्रिय हो जाता है और तभी काम-समाधि घटित होती है। निष्क्रियता जगत् के साथ प्रगाढ़ सम्पर्क में होने का ढंग है।[१]

कुण्डलिनी तत्त्व के दृष्टिकोण से संभोग

कोई योगी जब अपने अन्तर में सोई हुई शक्ति जगाता है, और जब आग की एक लकीर उसकी पीठ की हड्डी में से गुजरती है तो उसकी काया में बिखरे हुए शक्ति के कण, उस आग की कशिश से एक दिशा अख़्तियार करते हैं और उससे योगी के मन-मस्तिष्क में जिस महाशक्ति का संचार होता है, ठीक उस कुण्डलिनी-शक्ति के जागरण का अनुभव संभोग के उस आलम में होता है, जहाँ प्राण और प्राण का मिलन होता है और उस महामिलन में उस महाचेतना का दर्शन होता है, जो काया की सीमा में असीम को ढालते हुए उसे सीमा से मुक्त कर देती है।[२]

तंत्र कहता है कि न कोई पुरुष केवल पुरुष है और न ही कोई स्त्री केवल स्त्री है। प्रत्येक पुरुष स्त्री और पुरुष दोनों है। इसी तरह प्रत्येक स्त्री स्त्री और पुरुष दोनों है।... अब तक ज्ञात यह सबसे गहरी अन्तर्दृष्टियों में से एक है।[३] उभयलिङ्गता मनौवैज्ञानिक और संरचनात्मक तथ्य है।..... उभयलिङ्गी संरचना संभावित रूप में समान पुरुष-स्त्री अनुपात में या स्त्री-पुरुष अनुपात में संयुग्मी प्रजनक जीवद्रव्य में वर्त्तमान होता है। यह निश्चित रूप में कमोवेश असमान पुरुष-स्त्री या स्त्री-पुरुष अनुपात में एक संसेचित (एक के द्वारा निषेचित) युग्मनज के कोशिका-द्रव्य एवं गुणसूत्र में तथा इतरलिङ्गी मेटाजोआ (Metazoa) एवं उनके यौन-ग्रंथि, बीज, कोशिका एवं शरीर-संरचना के अन्य कोशिकाओं में मौजूद रहता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के दो माता-पिता के 'जीन' के द्वारा निर्मित होता है, जो स्त्री के अण्डाणु एवं पुरुष के शुक्राणु के द्वारा निषेचित होकर एकबद्ध होते हैं।[४] इसलिए कोई भी व्यक्ति न मात्र पुरुष है और न मात्र स्त्री है। प्रत्येक उभयलिङ्गी है; उसमें दोनों यौन मौजूद हैं। आधुनिक मनोविज्ञान या पश्चिम में यह खोज हाल की घटना है, लेकिन तंत्र के लिए हजारों साल से यह उसकी एक बुनियादी धारणा रही है। शिव का अर्धनारीश्वर का चित्र इसका प्रमाण है।[५] बौद्धतंत्र में इसका प्रतीक युगनद्ध है।[६] शिव (ईश्वर) पार्वती (देवी) से कहते हैं कि-"शची और इन्द्र, रोहिणी और चन्द्र, स्वाहा और अग्नि, प्रभा और सूर्य, लक्ष्मी और नारायण, सरस्वती और ब्रह्मा,.... प्रकृति और पुरुष ....आदि जितने द्वन्द्व समस्त लोकों में दिखाई या सुनाई देते हैं, वे सब हे कुलेश्वरि! हम दोनों के स्वरूप हैं। पुरुष और स्त्री के समस्त रूप हम दोनों के ही अंश हैं।"[७]

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-४, पृ०-१९१-९२ (पॉ०बु०सं०)।
२. मन मिर्जा तन साहिबां, पृ०-१४-१५.
३. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-७.
४. युगनद्धः द तान्त्रिक व्यू ऑफ लाइफ, पृ०-१०.
५. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-८ (विशेष राजसंस्करण)।
६. युगनद्धः द तान्त्रिक व्यू ऑफ लाइफ, पृ०-८.
७. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, तीसरा उल्लास, पृ०-१५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस धारणा की समझ से व्यक्ति आन्तरिक दिशा में गति कर सकता है। क्यों एक पुरुष एक स्त्री के प्रेम में पड़ता है? क्योंकि वह अपने अन्दर एक स्त्री रखता है, अन्यथा वह प्रेम में नहीं पड़ेगा। और क्यों किसी ख़ास स्त्री के प्रेम में ही आप पड़ते हैं? वैसे तो हजारों स्त्रियाँ हैं पर क्यों अचानक एक ख़ास स्त्री आपके लिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जैसे सभी स्त्रियाँ गायब हो गईं हों और दुनिया में केवल वही स्त्री बची रह गई हो। और क्यों एक खास पुरुष ही आपको आकर्षित करता है? प्रथम दृष्टि में ही कुछ अचानक क्यों 'क्लिक' (click) करता है? तंत्र कहता है–आप एक स्त्री की एक छवि या एक पुरुष की छवि अपने अन्दर ढ़ो रहे हैं। प्रत्येक पुरुष एक स्त्री और प्रत्येक स्त्री एक पुरुष ढ़ो रही है। जब आपकी आन्तरिक प्रतिमा के साथ कोई बाह्य व्यक्ति मेल खाता है, तब आप प्रेम में पड़ते हैं–यही प्रेम का अर्थ है।.. ..किन्तु इसमें एक सूक्ष्म यांत्रिकता है।.....कोई बाहरी स्त्री संतुष्ट नहीं कर सकती, क्योंकि कोई बाहरी स्त्री आपके आन्तरिक स्त्री के साथ पूर्णतया मेल नहीं खाती।....वह कुछ हद तक मेल खा सकती है, उसमें कोई अपील–आर्कषण हो; किन्तु देर–सवेर वह पुरानी, व्यर्थ हो जाती है। शीघ्र आप महसूस करेंगे कि हजार बातें उसमें ऐसी हैं, जिसे आप पसन्द नहीं करते।[१] इसलिए प्रेम सुख और दुःख दोनों देता है।.... और दुःख सुख से बहुत ज़्यादा है।[२]

तंत्र कहता है कि बाहरी के साथ संतुष्ट होने का कोई उपाय नहीं है, आपको अन्दर ही आना पड़ेगा। आपको अपने आन्तरिक स्त्री और पुरुष की खोज करनी पड़ेगी, आपको एक आन्तरिक संभोग से गुजरना ही पड़ेगा। वही महासम्मिलन है। योग–तंत्र दर्शन में सात चक्र कहे गए हैं। पुरुष में मूलाधार पुरुष है और स्वाधिष्ठान स्त्री है। स्त्री में मूलाधार स्त्री है और स्वाधिष्ठान पुरुष है, इसी तरह अन्य चक्र हैं। सात चक्रों में छः चक्र तक द्वैत रहता है, सातवां अद्वैत है। आपके अन्दर तीन जोड़े हैं–मूलाधार और स्वाधिष्ठान में, मणिपुर और अनाहत में तथा विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र में विवाह होना अपेक्षित है।[३]

बाह्य मिलन केवल क्षणिक हो सकता है, किन्तु आन्तरिक मिलन शाश्वत हो सकता है। और जितना ऊँचा आप जाते हैं। यह उतना ही शाश्वत होता जाता है।.... प्रेम के क्षण में आप अपने अधिकतम में होते हैं। जब काम–समाधि घटती है तो आपकी सम्पूर्ण शारीरिक ऊर्जा नृत्य के साथ धड़कती है; प्रत्येक कोशिका, प्रत्येक रेशा एक लय में, एक राग में नृत्य करती है, जिसे आप सामान्यतया नहीं ज़ानते। यही वह क्षण है, उसे अन्दर गति करने का मार्ग बनाया जा सकता है। जब प्रेम कर रहे हों तो ध्यानपूर्ण हो जाएँ, अन्दर देखें। उस क्षण एक द्वार खुलता है–यही तान्त्रिक अनुभव है। तंत्र कहता है कि आप आनन्दित होते हैं क्योंकि द्वार खुलता है और आपके आन्तरिक परमानन्द का कुछ भाग आप में प्रवाहित होता है। यह किसी बाहरी स्त्री या पुरुष से नहीं आता, यह आपके अति आन्तरिक भाग से आता है। बाहरी व्यक्ति केवल एक बहाना है।[४] शक्ति–संगम अर्थात् स्त्री के सहवास से संक्षुब्द हुई, उत्तेजित हुई, आनन्द–शक्ति

१. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०–८
२. वही, पृ०–९.
३. वही, पृ०–९–१०.
४. वही, पृ०–१०–११.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की समावेश-दशा की समाप्ति के समय घनघनाहट की सी अनुभूति होती है। स्त्री के सहवास से अभिव्यक्त इस सुखमय स्थिति को ब्रह्मानन्द सहोदर माना जाता है। उस समय स्त्री और पुरुष का द्वैतभाव छूट जाता है और स्वात्मनिष्ठ परमानन्द केवल बचा रहता है। इस अवस्था में अभिव्यक्त हुआ यह सुख अपना ही है, यह कहीं अन्यत्र से नहीं आता, स्त्री का सहवास केवल उसकी अभिव्यक्ति करता है-

शक्तिसङ्गमसंक्षुब्धशक्त्यावेशावसानिकम् ।
यत्सुखं ब्रह्मतत्त्वस्य तत्सुखं स्वाक्यमुच्यते।।[१]

तंत्र यह नहीं कहता है कि बाहरी व्यक्ति से प्यार करना पाप है, यह केवल यह कहता है कि यह बहुत गहरे जानेवाला नहीं है। यह इसकी निंदा नहीं करता, यह इसकी स्वाभाविकता को स्वीकारता है, किन्तु यह कहता है कि आप प्रेम-तरंग का अपने आन्तरिक केन्द्र तक ले जाने में उपयोग कर सकते हैं। रोमांच के उस क्षण में, वस्तुएँ पृथ्वी पर नहीं होतीं, आप उड़ान भर सकते हैं। इसलिए प्रेम के क्षण में आप ध्यानपूर्ण, शांतचित्त हो जाएँ, आँख बन्द कर लें; बाह्य स्त्री या पुरुष को भूल जाएँ एवं अपने अन्दर देखना शुरू करें, तभी यह घटता है। आपका पुरुष चक्र-मूलाधार आपके स्त्री चक्र-स्वाधिष्ठान की ओर गति करना प्रारम्भ करता है और वहाँ एक सम्मिलन, एक आंतरिक संभोग घटता है।[२]

यही वह आनन्द है, जब आप ध्यान में होते हैं, जब आप प्रार्थना में होते हैं; यही आपके आन्तरिक उत्सव की प्रक्रिया है। और जब मूलाधार और स्वाधिष्ठान मिलते हैं, तो ऊर्जा मुक्त होती है।... और यह ऊर्जा ऊपरी चक्र मणिपुर पर चोट करती है। मणिपुर पुरुष है और अनाहत स्त्री। एक बार जब आपके अन्दर पुरुष और स्त्री का मेल हो जाता है, तो एक दिन अचानक दूसरा मिलन भी हो जाता है। .... और जब दूसरे मिलन से ऊर्जा सर्जित होती है, तो वह तीसरे मिलन की सम्भावना बन जाती है। तीसरा मिलन विशुद्ध और आज्ञा-चक्र के बीच होता है। चौथा मिलन नहीं है, वह एकात्मकता है। सहस्रार अकेला है, वहाँ कोई स्त्री-पुरुष नहीं है.. ..पुरुष स्त्री हो जाता है, स्त्री पुरुष; सभी विभाजन समाप्त हो जाते हैं। यही परम मिलन है। इसे ही हिन्दु सच्चिदानंद कहते हैं। जीसस इसे 'ईश्वर का राज्य' कहते हैं।[३]

इसलिए तंत्र में, विशेषकर दिव्यभाव साधक एवं दक्षिणाचारी के लिए, मैथुन के सूक्ष्म अर्थ बताए गए हैं। कहा गया है कि-"देहस्थित कुण्डलिनी शक्ति जब मूलाधार से चलकर सहस्रार में शिव से मिलती है, तो वही मैथुन कहलाता है।[४] आत्मा तथा परा-शक्ति के मिथुन (जोड़े) के संयोगानन्द का आस्वादन करना ही 'मैथुन' है, अन्य तो स्त्री-निषेवक हैं।[५] सुषुम्णा के रूप में शक्ति के साथ प्राण के रूप में जीव का सम्मिलन ही मैथुन है।"[६]

---

१. विज्ञान-भैरव, श्लोक-६८ (धारणा-४५)।
२. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०-११.
३. वही, पृ०-११-१२.
४. आगमसार, (शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८६ पर वर्णित)।
५. कुलार्णव तंत्र, ५/११२-पर शक्त्यात्म-मिथुन-संयोगानन्द: निर्भरः।
य आस्ते मैथुनं तत् स्यादपरे स्त्री- निषेवकाः।
६. मेरू तंत्र (थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-६८ पर वर्णित)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृत ग्रन्थ में भी मैथुन का उपरोक्त अर्थ ही निर्देशित हुआ है–'पराशक्ति का सहस्रार में सम्मिलन ही मैथुन है।'[१]

सामान्यतः मिथुन शब्द का अर्थ होता है जोड़ा। जब जीव और परमात्मा, शक्ति और शिव या प्रकृति और पुरुष के बीच भेद या द्वैत समाप्त हो जाता है, तब वह अवस्था मैथुन कहलाती है। दोनों का एक-दूसरे से योग होना, या दोनों का एक-दूसरे से मिल जाना मैथुन है। साधक को जब देह-ज्ञान, इन्द्रिय-ज्ञान और अन्तः करण द्वारा प्राप्त ज्ञान का आभास नहीं रहता, तब समाधि, लय, योग या मैथुन की स्थिति प्राप्त होती है।[२]

इसी तरह पशु-भाव साधक के लिए मैथुन के बदले कच्छप मुद्रा में फूलों को अर्पित किया जाता है। इन फूलों में करवीर फूल (लिङ्ग के प्रतीक के रूप में) तथा अपराजिता फूल (भगशिश्न के रूप में) का मिश्रण रहता है। इसी तरह पश्वाचारी का अपने पत्नी के साथ सम्मिलन हो सकता है।[३]

इस तरह मैथुन के सन्दर्भ में हमें दोनों अर्थ स्वीकारना होता है। यदि हम मैथुन के रूढ़ या बाह्य अर्थ छोड़ दें, तो हमें इस सिद्धान्त का पालन सभी बातों में करना पड़ेगा। परिणामतः धर्म के सभी बाह्य कर्मकाण्ड छोड़ देने होंगे, जो कि किसी हालत में स्वीकारने योग्य नहीं है।[४]

तंत्र प्रवृत्ति-मार्ग का अनुसरण करता है। इसके अनुसार यह साधक को मनुष्य की सामान्य प्रवृत्तियों के खिलाफ जाने को नहीं कहता; बल्कि यह कहता है कि सांसारिक वस्तुओं का उपभोग इस भाव से करो कि वे वस्तुएँ दिव्य माता से उत्पन्न होती हैं और उनमें उनका (देवी का) आनन्द सम्मिलित होता है।.....क्योंकि परा देवी ही सभी आनन्दों की स्रोत है।.....तंत्र कहता है कि वस्तुओं का उसी रूप में आनन्द मत लो, बल्कि उनमें स्थित दिव्य-तत्त्वों का आनन्द लो।[५] यह कहा जाता है कि वस्तुओं का आनन्द केवल तभी कलंकित होता है, जब हमारी वासना बुरी रहती है, अन्यथा तो सब पवित्र ही है–

अतएव यदा यस्य वासना कुत्सिता भवेत्।
तदा दोषाय भवति नान्यथा दूषणं क्वचित्।।[६]
'पवित्रं सकलं चैव वासना कुत्सिता भवेत्।'[७]

इसलिए तंत्र कहता है कि संभोग के पास ऐसे जाओ, जैसे कि कोई भगवान् के मन्दिर में जा रहा हो। काम-कृत्य को ऐसे लो, जैसे कि वह प्रार्थना हो, ध्यान हो। उसकी पवित्रता को अनुभव करो।'[८] धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार यह रहस्यमयी संभोग शुद्धि एवं प्रार्थना के साथ

---

१. रुद्रयामल, उ०त०, २६/१४३-१४४.
२. तंत्र-दर्शन, पृ०-१८०
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३८७.
४. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-६९.
५. वही, पृ०-७०-७१.
६. कौलावलिनिर्णय, ८/२२६.
७. वही, १७/१७०.
८. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-३० (विशेष राजसंस्करण)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुष्ठानपूर्वक किया जाना चाहिए। यह विपरीत की एकता का सांकेतिक कृत्य है। स्त्री देवी के रूप में परिवर्तित होती है, शक्ति के रूप में और पुरुष देवता-शिव के रूप में परिवर्तित होता है। इस प्रकार यौन-सम्मिलन आध्यात्मिक रूपान्तरण हो जाता है और दो मनुष्य दिव्य हो जाते हैं।[१] यही कारण है कि खजुराहो, पुरी और कोणार्क के मन्दिरों में मैथुन की मूर्त्तियाँ बनी हैं। मन्दिर में मैथुन इसलिए है कि व्यक्ति के मन में दोनों सम्बन्धित हो जायें, दोनों की संगति बैठ जाये। और तब उपासक अनुभव कर सकता है कि संसार और निर्वाण दो विरोधी तत्त्व नहीं, वरन् एक हैं, वे एक दूसरे के शुत्र नहीं हैं। वे ध्रुवीय विपरीततायें हैं,जो एक-दूसरे की सहायता करती हैं। और इस ध्रुवीयता के कारण ही वे अस्तित्त्व में भी हैं। अगर यह ध्रुवीयता नष्ट हो जाये तो संसार ही नष्ट हो जाएगा। तंत्र के लिए सब कुछ पवित्र है।.....अगर संसार में एक भी कोश, एक भी अणु अपवित्र है तो सारा संसार अपवित्र हो जाता है। क्योंकि पवित्र संसार में वह अकेला अपवित्र अणु कैसे रह सकता है। और अगर अपवित्र तत्त्व पवित्र तत्त्वों से सहारा पाता है, तो दोनों में फर्क क्या रहा? इसलिए संसार या तो समग्ररूपेण और बेशर्त्त पवित्र है, और या वह अपवित्र है। बीच की कोई स्थिति नहीं हो सकती। तंत्र कहता है-सब कुछ पवित्र है।[२]

बाह्य कर्मकाण्ड एवं व्यवहार निम्नस्तरीय साधक के द्वारा सम्पन्न किया जाता है, इसके बिना वह उच्चतर आध्यात्मिक स्तर तक उठने की आशा नहीं कर सकता। किन्तु जो साधक अध्यात्म के उच्च स्तर पर पहुँच चुका है, वह बाह्य कर्मकाण्ड की आवश्कता महसूस नहीं करता। तब उसका ध्यान सीधे आन्तरिक, सूक्ष्म अर्थों की ओर जाता है।[३] पहले पहल तो मैथुन के आधार बिना ही, उसके स्मृति मात्र से आनन्द की प्राप्ति होती है। कहा गया है-

लेहनामन्थनाकोटैः स्त्रीसुखस्य भरात् स्मृतेः।
शक्त्यभावेऽपि देवेशि भवेदानन्द-संप्लवः।।[४]

अर्थात् "हे देवेशि, लेहन अर्थात् परिचुम्बन, प्रधान अंग का विलोडन अथवा आलिङ्गन, पुनः-पुनः मर्दन या नखक्षत, दन्तक्षत आदि नाना प्रकार के इस तरह के हावभावों से उत्पन्न हुए पूर्वानुभूत स्त्रीसुख का प्रयत्नपूर्वक स्मरण करने पर भी व्यक्ति का मन आनन्द से भर उठता है।"

स्त्री प्रभृति आनन्द के कारणों की अनुपस्थिति में भी उनको याद करने मात्र से व्यक्ति उनमें डूब जाता है और थोड़ी देर के लिए सब कुछ भूल बैठता है। स्पष्ट है कि यह अपना ही आनन्द स्त्री के सहवास से प्रकट होता है। इस आनन्द की अभिव्यक्ति में स्त्री को कारण नही माना जा सकता, क्योंकि इसकी अभिव्यक्ति स्त्री के अभाव में भी स्मृति की सहायता से होती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि इस आनन्द की स्थिति अपने स्वरूप में ही है। साधक को

---

१. कल्ट ऑफ दॅ गोडेज, पृ०-१४-१५
२. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-३०-३१ (विशेष राजसंस्करण)।
३. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-६९.
४. विज्ञान भैरव, धारणा-४६ (श्लोक-६९)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए कि वह इसी स्वाभाविक स्वरूपानन्द की भावना करे और इसकी अभिव्यक्ति के बाह्य उपादानों का परित्याग कर दे।[१]

तंत्र कहता है कि जब व्यक्ति अपने आनन्द से पूरित होता है, तो वही आनन्द दूसरों तक पहुँचने लगता है।.....काम-कृत्य, प्रेमकृत्य आनन्द को उपलब्ध होने का सबसे गहन साधन बन सकता है। तंत्र कामुकता नहीं सिखाता है। काम में ही सदा संलग्न नहीं रहना है; लेकिन काम को कूदने का बिन्दु बनाया जा सकता है। अगर व्यक्ति को कामानन्द का अनुभव हो जाए, काम-समाधि का अनुभव हो जाए, तो वह उस बड़ी समाधि को, जागतिक समाधि को समझ सकता है, जिसकी चर्चा संत सदा से करते आ रहे हैं। मीरा के नृत्य और गीत को सामान्यतया समझना कठिन है। वे कामुक गीत हैं, उनके प्रतीक कामुक हैं। ऐसा होगा ही। क्योंकि मनुष्य के जीवन में काम-कृत्य ही एक कृत्य है जिसमें व्यक्ति को अद्वैत का, गहन एकता का अनुभव होता है....। इसलिए संतो ने, रहस्यवादियों ने .... अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए सदा काम-प्रतीकों का उपयोग किया है। काम मात्र आरम्भ है, अंत नहीं। लेकिन अगर व्यक्ति आरम्भ चूक जाए तो अंत भी चूक जाएगा। अन्त को उपलब्ध होने के लिए आरम्भ से नहीं बचा जा सकता।[२]

साधना की उच्चतर अवस्था में मैथुन का अर्थ पूर्णतया आन्तरिक हो जाता है।[३] भोग योग में रूपान्तरित हो जाता है-

'भोगयोगात्मकं कौलम्'०।[४]
'भोगो योगायते०'।[५]
भोगेन लभते योगम्'।[६]

मैथुन-साधना का उच्चतम उद्देश्य है-कुण्डलिनी को जागृत करना तथा संसार को दिव्य बनाना-

'सवै त्यक्त्वा महेशानि स्त्री-संगम यत्नतस्चरेत'।[७]

आध्यात्मिक साधना के पथ में साधक एक ऐसी स्थिति में पहुँचता है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व दिव्य हो जाता है, संसार की सभी वस्तुएँ ईश्वर के प्रकाशन के रूप में प्रकट होती हैं। जो कुछ भी सुन्दर और प्रेमपूर्ण है, वह उसे ऐसा लगता है मानों दिव्य सुन्दरता या दिव्य-प्रेम

---

१. विज्ञान-भैरव, पृ०-७९.
२. तंत्र-सूत्र, भाग-५ (पॉ०बु०सं०), पृ०-४४-४५.
३. सौंदर्य लहरी में कहा है-(पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-८३ पर उद्धृत)।
महीं, मूलाधारे कमपि मणिपुरे हुत-वहम्।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरूतमाकाशमुपरि।।
मनोऽपि भ्रू-मध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथम्।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।
४. कुलार्णव तंत्र, २/२४
५. वही, २/२५.
६. मातृकाभेद-तंत्र, ३/२
७. गुप्तसाधना तंत्र, ५/१५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की अभिव्यक्ति हो। परिणामत: उसे उन सभी वस्तुओं में वही दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। और स्थूल संभोगजन्य आनन्द इस दिव्य आनन्द के सामने फीका पड़ जाता है।[१] जितनी कुण्डलिनी शक्ति ऊपर उठती है, उतना ही दिव्य-भाव बढ़ता जाता है तथा निम्न ऐन्द्रिक भावनाएँ कम होती जाती हैं।[२]

तंत्र-साहित्य में ऐसे अनेक साधक साधना में उस उच्चतम धरातल पर पहुँचते हैं, जहाँ काम-भाव उत्पन्न ही नहीं होता, जहाँ काम पूर्णतया राम में बदल चुका होता है। श्री रामकृष्ण के जीवन में हम ऐसी ही घटना देखते हैं। एक दिन उनके स्त्री-गुरू भैरवी ब्राह्मणी का आदेश हुआ कि वे एक पूर्णयौवना नग्न कन्या के गोद में बैठें। किन्तु ऐसी स्थिति में भी उनमें कोई काम-भाव उत्पन्न नहीं हुआ, उल्टे उन्होंने एक शिशु के समान व्यवहार किया।[३] प्रमोद कुमार चट्टोपाध्याय ने अपने 'तंत्राभिलासिर साधुसंग' में इसी तरह के कुछ तान्त्रिकों का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि कैसे एक पुरुष साधक और एक स्त्री साधिका नग्नावस्था में एक दूसरे को आलिङ्गत कर लिया और वे समाधि में खो गए।[४]

इस प्रकार यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह बिल्कुल सम्भव है साधना की उच्चतम चोटी पर पहुँचकर साधक-संत काम-भाव से मुक्त रहे, यहाँ तक कि विपरीत लिङ्गी व्यक्ति के निकटतम संसर्ग में भी; क्योंकि ऐसी अवस्था में दिव्य-भाव इतना एक समान प्रच्छन्न होता है कि कोई सांसारिक भाव विचलन नहीं पैदा करता।[५]

माहात्म्य

इस प्रकार ऊपर से पञ्चमकार का विधान साधरण लोगों को भले ही भयङ्कर प्रतीत हो, पर तान्त्रिक दृष्टि से इसका उद्देश्य रहस्यपूर्ण है। वास्तव में मद्य, मांस आदि पाँचों वस्तुएँ प्रलोभन की वस्तुएँ हैं। यदि साधक इनके प्रलोभन में नहीं पड़ता तो उसका मार्ग स्पष्ट है, वह परमानन्द को प्राप्त करता है। किसी साधक के लिए यह कोई हँसी-खेल का काम नहीं है कि उसके सम्मुख एक नवयौवना सुन्दरी बैठी हो और उसकी भगवती के रूप में अचल भाव से पूजा करता रहे। भगवती को अर्पण करने के बाद वह मद्य-मान भी करता है, पर मदोन्मत्त होने के लिए नहीं, किन्तु एकाग्रचित्त होकर अपने इष्ट पर ध्यान जमाने के लिए। वह मांस, मत्स्य तथा अन्य सुस्वादु भोजन-साम्रगी (मुद्रा) भी खाता है, पर इसलिए नहीं कि ये स्वादिष्ट पदार्थ हैं, किन्तु धर्म-कार्यार्थ अपना शरीर पुष्ट बनाये रखने के लिए। पञ्चमकारों के संग्रह का वस्तुत: यही उद्देश्य है। तान्त्रिक साधक इन आनन्ददायक पदार्थों के द्वारा ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने का यत्न करता है।[६]

१. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-७३.
२. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-७४.
३. श्री श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग, भाग-द्वितीय, पृ०-२२१ (थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-७५ पर वर्णित)।
४. तंत्राभिलासिर साधुसंग, भाग-१, पी.पी.-२३७-८.
५. थाउट्स ऑन तंत्रा एण्ड वैष्णविज्म, पृ०-७५.
६. वाम-मार्ग, पृ०-१६-१७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चमकार-साधना मानसिक सत्ता को आध्यात्मिक सत्ता में रूपान्तरित करने की मनोवैज्ञानिक-आध्यात्मिक प्रक्रिया है। यह आन्तरिक उत्थान की वैज्ञानिक, विधायक, रहस्यमयी और गुप्त-साधना है। यह मनुष्य को शुद्ध एवं शक्तिशाली बनाता है। यह दृष्टि और शक्ति का दाता है। पञ्चमकार का सम्पूर्ण सिद्धान्त उद्भावना और इरादा पर निर्भर करता है।[१]–

'भावेन चुम्बिता कान्ता, भावेन दुहिताननम्।'[२]

सर्वोल्लासतंत्र के अनुसार यदि कोई पुरुष किसी स्त्री के पास यह सोचकर जाता है कि उसके साथ सहवास करने पर वह नरक जाएगा, तो वह निश्चित ही नरक जाएगा। यदि वह क्रिया वैधानिक भी हो, किन्तु इसे इस विश्वास के साथ संपन्न किया जाय कि यह अवैधानिक है, तो वहाँ निश्चय ही पाप है।....तंत्र की मांग है कि व्यक्ति को सांसारिक आनन्द में भी शिव-शक्ति का सामरस्य करना चाहिए क्योंकि वही आनन्द परमानंद की ओर जाने की सीढ़ी है।[३]

इस प्रकार इन पञ्चमकारों से परनायिका की पूजा करनी चाहिए–

'एतत्पञ्चमकारेण पूजयेत् परनायिकाम्'।।[४]

यह पञ्चमकार-पूजा तान्त्रिक दैनिक-चर्या का एक स्वाभाविक अंग हो जाती है। जिस प्रकार योगी साधक प्रतिदिन आसन, प्राणायाम, जप, प्रार्थना, ध्यान इत्यादि करते हैं, ठीक उसी प्रकार पंचमकार-साधना भी दैनिकचर्या का एक स्वाभाविक अंग बन जाती है। बिना पंचमकार-साधना के कोई भी साधक न तो मन्त्र का जप कर सकता है और न किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।[५]

पञ्चमकार की पूजा पुरश्चरण के गूढ़ प्रयोजन को सिद्ध करनेवाली है। पञ्चमकार-योग की साधना से साधक निद्रा तथा आलस्य से रहित हो जाता है। साधक काल का वारण करनेवाले प्राणवायु को नियंत्रित करने वाला होता है। प्राण को वश में करनेवाला साधक योग-समृद्धि तथा कालसिद्धि की प्राप्ति करता है।[६] पञ्चमकार की सिद्धि से साधक ईश्वरमय और आनन्दमय हो जाता है, जो देशकालातीत अवस्था है।[७]

• • •

१. तंत्राः इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१४७.
२. वही, पृ०-१४७. पाद टिप्पणी में उद्धृत।
३. वही, पृ०-१४७ पर वर्णित।
४. रुद्रयामल उ०त०, २६/१४४.
५. तंत्र-दर्शन, पृ०-१८१.
६. रुद्रयामल उ०त०, २६/१४५-१४६.
७. तंत्र-दर्शन, पृ०-१८१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थ अध्याय
रुद्रयामल और योग-दर्शन

तंत्र एवं योग

योग क्या है?

योग शब्द युज् धातु से निष्पन्न हुआ है। धातु-पाठ में युज् धातु दो हैं, एक 'युजिर् योगे' और दूसरा 'युज् समाधौ'। प्राय: पातञ्जल योग दर्शन में योग पद 'युज् समाधौ' से निष्पन्न माना जाता है। भाष्यकार व्यास की दृष्टि में 'योग' और 'समाधि' परस्पर पर्यायवाची हैं- 'योग: समाधि':।[१]

योग संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात के भेद से दो प्रकार का है। उनमें संप्रज्ञात अंग और असंप्रज्ञात अंगी है। 'युज्यतेऽनेनेति योग:' इस विग्रह में युज् धातु से 'करणाधिकरणयोश्च' इस सूत्र से करण में घञ्प्रत्यय करने से जो योग शब्द निष्पन्न होता है, वह संप्रज्ञात समाधि का वाचक है और 'योजनं योग:' इस विग्रह में 'भावे' सूत्र से भाव अर्थ में धञ्प्रत्यय करने से जो योग शब्द निष्पन्न होता है, वह असंप्रज्ञात समाधि का वाचक है।[२]

वस्तुत: 'योग' जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का नाम है। केवल आसन और नासाग्र दृष्टि से कुछ नहीं होता।[३] इसलिए महर्षि पतञ्जलि ने स्पष्ट ही कह दिया है-

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'।[४]

योँग अ-मन होने की अवस्था है, योग मन का अवसान है, समाप्ति है।[५] मन के अन्तर्गत अहंकार, इच्छाएं, आशाएं, व्यक्ति का तत्त्व-ज्ञान, उसका धर्म, उसके शास्त्र-सभी चले आते हैं। जो कुछ भी व्यक्ति सोचता है, वह मन है। मन की समाप्ति का अर्थ है-जो जाना है, उसकी समाप्ति; जो जानना है उसकी समाप्ति। योग अज्ञेय, ज्ञानातीत में एक छलांग है। वस्तुत: मन कोई भौतिक तत्त्व नहीं, जो पड़ा है सिर में। मन एक वृत्ति है, क्रियाशीलता है। इस 'माइंड को'

---

१. पातञ्जलयोगदर्शनम्, पृ०-२
२. वही, पृ०-५
३. कुलार्णवतंत्र, ९/३०, तुलनीय महानिर्वाण तंत्र, १४/१२३
४. पातञ्जलयोगदर्शनम्, १/२
५. पतञ्जलि योगसूत्र, भाग-एक, पृ०-१६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माइंडिंग' कहना बेहतर होगा-जैसे चलने को 'वॉकिंग' कहते हैं। जब मन सक्रिय न हो, तब व्यक्ति योग में होता है। यदि कोई व्यक्ति बिना कोई आसन लगाए भी अ-मन बने रह सके, तो वह एक सम्पूर्ण योगी होता है। जब मन का होना समाप्त होता है, साक्षी स्वयं में स्थापित हो जाता है।[१] जब साधक देख सके बिना मन के साथ तादात्म्य बनाये, बिना निर्णय किये, बिना प्रशंसा या आलोचना किये, बिना चुनाव किये-बस केवल देखते रहे जबकि मन बह रहा हो, तो ऐसा क्षण आ जाता है, जब स्वयं ही मन रूक जाता है, थम जाता है। जब मन नहीं है, तब व्यक्ति अपने साक्षी में प्रतिष्ठित हो जाता है-केवल द्रष्टा। इस अवस्था के अतिरिक्त बाकी सभी अवस्थाओं में मन की वृत्तियों के साथ तादात्म्य बना ही रहता है; और व्यक्ति को अपने सहज स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है।[२] इसलिए कहा है- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'।

योग कोई धर्म नहीं है। योग तो एक विशुद्ध विज्ञान है-गणित, भौतिकी या रसायन शास्त्र की तरह। भौतिकी न तो ईसाई है, न बौद्ध।.....यह फिर एक संयोगपूर्ण घटना ही है कि हिन्दुओं ने योग खोजा।.....मनुष्यता के इतिहास में धर्म को पहली बार विज्ञान की अवस्था तक लाया गया। पतञ्जलि ने धर्म को मात्र नियमों का विज्ञान बना दिया, जहाँ विश्वास की जरूरत नहीं है।..... योग कहता है-'अनुभव करो'। जैसे विज्ञान कहता है-'प्रयोग करो'। प्रयोग और अनुभव एक ही बात है, उनकी दिशाएँ अलग-अलग हैं।[३] प्रयोग का अर्थ है कि व्यक्ति कुछ बाहर की ओर कर रहा है; अनुभव का अर्थ है कि व्यक्ति कुछ अपने भीतर कर रहा है। अनुभव है एक आन्तरिक प्रयोग।

योग मृत्यु तथा नवजीवन दोनों है।[४] व्यक्ति जैसा है, उसे तो मरना ही होगा; और जब तक पुराना मरेगा नहीं, नये का जन्म नहीं हो सकता।

योग केवल दर्शनशास्त्र नहीं है।[५] यह कोई ऐसी बात नहीं, जिसके बारे में कोई कुछ विचार करे। यह कुछ ऐसा है जैसा कि व्यक्ति को होना होगा। विचार तो व्यक्ति के मस्तिष्क में चलता रहता है, यह उसके अस्तित्त्व की जड़ो में कहीं गहरे नहीं होता। हृदय गहनतम केन्द्र है, सिर तो उसकी शाखामात्र है। योग व्यक्ति के समग्र अस्तित्त्व से, उसकी जड़ों से सम्बन्धित है।

योग चिकित्सा विज्ञान नहीं है। पाश्चात्य देशों में आज बहुत से मनोवैज्ञानिक रोगोपचारों का चलन है और पश्चिम के बहुत से मनोवैज्ञानिक समझते हैं कि योग भी चिकित्सा है। ऐसा नहीं है। योग अनुशासन है, साधना है।[६] अनुशासन का अर्थ है-अपने भीतर एक व्यवस्था निर्मित करना। योग व्यक्ति के भीतर एक क्रिस्टलाइज्ड सेंटर का, एकजुट केन्द्र का निर्माण

---

१. पातञ्जलयोगदर्शनम्, १/३
२. वही, १/४
३. पंतजलि योगसूत्र, भाग-एक, पृ०-६
४. वही, पृ०-७
५. वही,
६. वही, पृ०-१५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करना चाहता है। सामान्यतया व्यक्ति एक अव्यवस्था, एक भीड़ है। योग का मतलब है कि व्यक्ति को लयबद्धता बनना होगा, एक बनना होगा। चिकित्सा की आवश्यकता होती है यदि व्यक्ति बीमार हो, रोगग्रस्त हो। लेकिन अनुशासन की आवश्यकता तो स्वस्थ होने पर भी है। योग स्वास्थ्य की एक अलग और ऊँची दशा के लिए है, एक भिन्न प्रकार की समग्रता और सत्ता के लिए है।

तंत्र और योग

तंत्र और योग बुनियादी रूप से भिन्न हैं। यद्यपि दोनों एक ही लक्ष्य पर ले जाते हैं, तो भी उनके रास्ते भिन्न हैं; भिन्न ही नहीं विपरीत हैं।....तंत्र की तरह ही योग भी क्रिया, उपाय, विधि पर निर्भर है।....लेकिन दोनों के ढंग, दोनों की प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न हैं। योग में लड़ना अनिवार्य है; वह योद्धा का पथ है। तंत्र के मार्ग पर लड़ना बिल्कुल नहीं हैं। उल्टे तंत्र में भोग है, भोगना है; लेकिन बोधपूर्वक। योग होश के साथ दमन है; तंत्र होश के साथ भोग है।[१]

तंत्र स्त्रैण है, योग पौरूषेय है। तंत्र है समर्पण, योग है संकल्प; तंत्र है प्रयासविहीनता, योग है प्रयास-जबरदस्त प्रयास। तंत्र निष्क्रिय है, योग है सक्रिय। तंत्र है धरती की भाँति, योग है आकाश की भाँति। शिखर पर वे मिल जाते हैं, लेकिन आधार तल पर जहाँ यात्रा प्रारम्भ होती है, व्यक्ति को एक मार्ग चुनना पड़ता है।[२]

तंत्र कहता है कि-"तुम जो कुछ हो, परम तत्त्व उसके विपरीत नहीं है। वह वृद्धि है, विकास है; तुम परम तत्त्व की ओर विकसित हो सकते हो।....तुम उसके अंश हो; इसलिए प्रकृति के साथ विरोध की, द्वन्द्व की जरूरत नहीं है। तुम्हें प्रकृति का उपयोग करना है; तुम जो भी हो उसका उपयोग करना है ताकि उसके पार उठ सको।"[३]

योग में ऊपर जाने के लिए साधक को अपने से ही संघर्ष करना है। योग में संसार और मोक्ष-जो व्यक्ति है और जो वह हो सकता है- दो विपरीत चीज़ें हैं। इसलिए दमन अनिवार्य है ताकि व्यक्ति जो है वह मिटे, और वह हो सके जो हो सकता है। योग में व्यक्ति को अपने प्राकृत रूप- शरीर, वृत्ति, इच्छा-सब कुछ को मारना होगा, नष्ट करना होगा। तंत्र गहरी से गहरी स्वीकृति है। वहाँ अपने और सत्य के बीच, संसार और निर्वाण के बीच अन्तराल नहीं बनाना है।

तंत्र में काम-ऊर्जा का उपयोग करना है। तंत्र कहता है-"उससे लड़ो मत, उसे रूपांतरित करो। शत्रुता की भाषा में मत सोचो; उससे मैत्री साधो। वह तुम्हारी ही ऊर्जा है; वह बुरी नहीं है। सब ऊर्जा तटस्थ है।.... तुम उस ऊर्जा को अपना अवरोधक बना सकते हो, और उसी ऊर्जा को अपनी सीढ़ी भी बना सकते हो। उपयोग की बात है। सही उपयोग करो तो वह मित्र है; गलत उपयोग से वही शत्रु हो जाती है। स्वयं में वह कोई भी नहीं है-मित्र न शत्रु।"[४] सारी

१. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-२५
२. पंतजलि योगसूत्र, भाग-एक पृ०-३७६
३. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राज संस्करण), पृ०-२५
४. वही, पृ०-२६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृति कामयुक्त है। फूल हैं क्योंकि वे काम भावमय हैं।...पेड़ एक दूसरे को आकर्षित कर रहे हैं,पक्षी एक-दूसरे को पुकार रहे हैं। हर कहीं काम-क्रीड़ा चल रही है। प्रकृति काम है, और पुरुष-स्त्री के वर्तुल को पाना काम के पार जाना है। लेकिन तंत्र कहता है-"काम का उपयोग सीढ़ी की भाँति करो। उसके साथ संघर्ष मत करो। उसका उपयोग करो और उससे बाहर हो जाओ। उसमें से आगे बढ़ो, उसमें से गुजरो और अनुभव द्वारा रूपान्तरण को उपलब्ध हो जाओ। ध्यानपूर्ण अनुभव रूपान्तरण बन जाता है।"[१]

योग साधारण चित्त के विपरीत दृष्टि अपनाता है। साधारण चित्त अपनी ही वासनाओं से विनष्ट होता है। इसलिए योग कहता है-"वासना छोड़ो और वासनाशून्य बनो।[२] ऊर्जा को व्यर्थ मत गँवाना।... ऊर्जा को सुरक्षित रखो और प्रकृति के धोखे में मत आओ।....संकल्प-शक्ति ही बन जाओ। प्रकृति को अपने रास्ते जाने देने की कोई जरूरत नहीं। तुम इसके मालिक हो जाओ और तुम अपने से चलो-प्रकृति के विरूद्ध।"[३] यह योद्धा का मार्ग है-"निर्दोष योद्धा' जो लगातार लड़ता है और लड़ने द्वारा वह रूपान्तरित होता है। योग में व्यक्ति काम-ऊर्जा से लड़कर ही अपने भीतर एक भिन्न केन्द्र को जन्म देता है। जितना ही व्यक्ति लड़ता है, उतना ही इस दूसरे केन्द्र पर एकत्रित होता है, अखण्ड होता है। तब यौन उसका केन्द्र नहीं रह जाता। काम से लड़कर, मगर बोधपूर्वक, व्यक्ति के भीतर अस्तित्त्व का एक नया केन्द्र, एक नई धुरी, एक नया स्फटिकीकरण पैदा होता है।

योग का आकर्षण है प्रभाव है; क्योंकि योग साधारण चित्त के विपरीत है। इसलिए साधारण चित्त योग की भाषा समझता है।[४] व्यक्ति को पता है कि 'काम' कैसे उसे विनष्ट करता है, कैसे वह उसके गिर्द कठपुतली की तरह नाचता है। अपने अनुभव से व्यक्ति यह जानता है। इसलिए योग जब लड़ने को कहता है, तब तुरन्त मनुष्य उसकी भाषा समझ जाता है। योग का यही आकर्षण है।

तंत्र आसानी से उस आकर्षण को नहीं पा सकता। यह बहुत कठिन लगता है कि कैसे कामना में, उससे पराजित हुए बिना, प्रवेश हो सकता है। चित्त भयभीत होता है। बात ही यह खतरनाक मालूम देती है। ऐसा नहीं है कि यह खतरनाक है।[५] व्यक्ति काम के सम्बन्ध में जो जानता है, उसके चलते उसे यह खतरा नज़र आता है। आदमी कामना में, काम में, सब चीज़ में उतर सकता है और अपने को धोखे में रख सकता है कि पूरे होश के साथ उतर रहा है। यही कारण है कि उसे खतरा मालूम देता है। खतरा तंत्र में नहीं, व्यक्ति में है। और योग का आकर्षण भी व्यक्ति के कारण है, उसके साधारण मन के कारण है, जिसने काम का दमन किया है, जो काम का भूखा है, जो कामान्ध है। साधारण मन काम के सम्बन्ध में स्वस्थ नहीं

१. पंतजलि योगसूत्र, भाग-एक पृ०-३७७
२. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-२६
३. पतंजलि योगसूत्र, भाग-एक, पृ०-३७७
४. तंत्र-सूत्र, भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-२६
५. वही, पृ०-२६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है; इसलिए योग का आकर्षण है। यदि व्यक्ति यौन को उसकी स्वाभाविकता में ग्रहण करे, यदि उसके आस-पास पक्ष या विपक्ष का तत्त्वचिन्तन नहीं खड़ा करे, यदि वह उसे वैसे ही देखे, जैसे अपने हाथ-पाँव को देखता है, एक स्वाभाविक चीज़ की तरह, उसे उसकी समग्रता में स्वीकार करे, तो फिर तंत्र का प्रभाव पैदा होगा। और तभी तंत्र बहुजन हिताय सिद्ध हो सकता है।

योग बहुत ही अंकगणितीय है; प्रत्येक पाप को एक धार्मिक कृत्य के द्वारा संतुलित करना है।.... जब तक संसार का यह खाता पूर्णरूप से बन्द नहीं हो जाता, व्यक्ति मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।[१] तंत्र ठीक इसके विपरीत है। तंत्र बहुत ही काव्यात्मक दृष्टिकोण है, अंकगणितीय नहीं। तंत्र काव्य में विश्वास करता है, गणित में नहीं। यह आकस्मिक मोक्ष में विश्वास करता है।[२]

तंत्र कहता है कि कर्मों पर अपना ध्याना मत केन्द्रित करो, व्यक्ति पर अवधान दो, जिसने कर्म किए हैं। योग कर्मों पर जोर देता है। तंत्र व्यक्ति पर, चेतना पर, आप पर ध्यान देता है। यदि आप अज्ञानी है; तंत्र कहता है कि तब आप पाप करने के लिए मजबूर हैं। यदि आप धर्मपरायण होने की कोशिश करेंगे; आपका धर्म, सदाचार भी एक तरह का पाप ही होगा, क्योंकि कैसे कोई अज्ञानी व्यक्ति, सोया हुआ व्यक्ति...धार्मिक, सदाचारी हो सकता है? ... .आपका सदाचार निश्चित रूप से एक मुखौटा होगा, जिसके पीछे असली चेहरा छुपा होगा, पाप का, बुरे का।[३]

योग क्षैतिज है, तंत्र ऊर्ध्वमुखी है।.... योग धारा से लड़ने का प्रयास है, धारा के विपरीत जाने के लिए। अत: जो भी प्राकृतिक है, स्वाभाविक है; योग उसे रोक देता है, अवरूद्ध कर देता है। और जो कुछ भी अस्वाभाविक है, अप्राकृतिक है; योग उसके लिए प्रयत्न करता है। योग अप्राकृतिक मार्ग है।[४]

तंत्र एक प्राकृतिक मार्ग है-बिल्कुल सहज और प्राकृतिक ही लक्ष्य है। यहाँ आप प्रवाह से लड़ने की जरूरत नहीं महसूस करते, आपको बस प्रवाह के साथ बहना है। नदी समुद्र जा रही है, इसलिए लड़ना किसलिए ? नदी के साथ बहना है। नदी के साथ एक हो जाना है-बस समर्पण है। तंत्र के लिए समर्पण ही मुख्य कुञ्जी है। योग के लिए संकल्प ही मुख्य है। योग संकल्प का मार्ग है, तंत्र समर्पण का मार्ग है। यही कारण है कि तंत्र प्रेम का मार्ग है। प्रेम समर्पण है। तंत्र के अनुसार आसान ही सही है। योग के लिए मुश्किल ही सही है।[५]

बुनियादी तौर से दो प्रकार के लोग होते हैं-पुरुष-चित्त और स्त्री-चित्त। यह विभाजन मनोवैज्ञानिक अर्थों में है, जैविक अर्थों में नहीं। योग उनका मार्ग है, जो लोग बुनियादी रूप

---

१. तंत्रा-द सुप्रिम अण्डरस्टैंडिंग, पृ०-१२४
२. वही, पृ०-१२५
३. वही, पृ०-१२७
४. वही, पृ०-१३१
५. वही, पृ०-१३२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से और मनोवैज्ञानिक अर्थों में पुरुष-चित्त हैं—आक्रमक, हिंसक, बहिर्मुखी। तंत्र उनका मार्ग है, जो बुनियादी रूप से स्त्री चित्त हैं—ग्रहणशील, निष्क्रिय और अहिंसक। तंत्र के लिए माँ काली, तारा, देवी भैरवी महत्त्वपूर्ण हैं। योग में कहीं किसी देवी का नाम नहीं मिलेगा। तंत्र में देवियाँ ही देवियाँ हैं और योग में देव ही देव।[१]

इस प्रकार स्पष्ट है कि तंत्र और योग का लक्ष्य तो एक ही है, किन्तु उनकी साधना-पद्धतियाँ भिन्न हैं।

रुद्रयामल और योग

यद्यपि तंत्र और योग एक ही शिखर पर पहुँचते हैं और उनके मार्ग भी भिन्न हैं, तथापि तान्त्रिक ग्रन्थों में कतिपय योग-तत्त्वों का वर्णन किया गया है। तंत्र में प्रयुक्त योग कमोवेश हठयोग पर आधारित है। यद्यपि वहाँ वह एक नए आयाम के साथ है। हठयोग, जो कि शारीरिक मुद्रा, संकोच एवं दबाव से सम्पन्न होता है, स्पष्टतया मनुष्य के सूक्ष्म शरीर पर कार्य करने की युक्ति है। तान्त्रिक दृष्टिकोण से सूक्ष्म शरीर पर बिना कोई आन्तरिक कार्य किए, हठयोग करना अर्थहीन साधना है।[२]

रुद्रयामल यद्यपि तंत्रशास्त्र का ग्रन्थ है, किन्तु उसमें भी योग के अङ्गों, यथा-आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यानादि का विवेचन किया गया है, जिसका विवरण इसी अध्याय में दिया जा रहा है। एतदतिरिक्त योग के कई आयामों, यथा नेतियोग, दन्तियोग आदि का भी प्रकृत ग्रन्थ में वर्णन हुआ है, जिसकी विवेचना भी इस अध्याय में की जा रही है।

विभिन्न योग

रुद्रयामल का कथन है कि देवताओं के रक्षणार्थ भगवान् शिव ने जो महाविष का पान किया था, उससे वे सभी योग-रहस्य भूल चुके हैं।[३] अतः आनन्दभैरवी उन्हें फिर से स्मरण दिलाते हुए कहती हैं कि साधना की उत्कृष्ट अवस्था में आज्ञा-चक्र में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव स्वरूपा शक्ति के सत्त्व, रजस्, और तमस् रूप का ध्यान करना गूढ़ योग है। शरीर की अवस्थिति केवल एक गुण से सम्भव नहीं। इसलिए वह शक्ति त्रिगुणात्मिका है। धीरे-धीरे रजस् और तमस् के साथ-साथ सत्त्व गुण पर भी विजय प्राप्त करना चाहिए। साधक सबसे पहले रजोगुण को जीते, फिर तमस् को। सत्त्वगुण विशिष्ट व्यक्ति गुणवान्, ज्ञानवान्, वाग्मी, सुखी, धर्मी, जितेन्द्रिय योगीश्वर तथा मुक्त होता है। सात्त्विक पुरुष परम शान्त, निर्मल, द्वैतभावरहित तथा त्यागी है और उसकी रक्षा काल स्वयं करता है। जल, पर्वत, महारण्य, रणस्थल, भूगर्त्त में भी वह सुरक्षित रहता है। महसयोग को जानने वाला कभी भी मृत्यु को नहीं प्राप्त होता।[४]

१. तंत्र-सूत्र भाग-१ (विशेष राजसंस्करण) पृ०-३२-३३
२. तंत्रा: द इण्डियन कल्ट ऑफ एक्सटेशी, पृ०-२३
३. रुद्रयामल उ०त०, ४३/१
४. वही, ४३/७-१८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ पर योग के कतिपय प्रकारों का विवेचन किया जा रहा है।

(i) मन्त्रयोग–जब साधक अपनी मुक्ति हेतु अपने इष्ट देव का नाम जपते-जपते उसके रूप में लीन होकर, अपने आप को भूलकर समाधिस्थ हो जाता है, तो यह स्थिति 'महाभाव' कहलाती है। यही मन्त्रयोग है।[१] इसकी विवेचना अध्याय छः में की गई है।

(ii) हठयोग–जब साधक स्थूल शरीर के माध्यम से कठोर यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करता हुआ प्राणायाम (वायुनिरोध) द्वारा सूक्ष्म शरीर पर अधिकार कर ज्योतिर्मय रूप में समाधि-लाभ करता है, तो इस अवस्था को 'महाबोध' कहा जाता है। यही हठयोग है।[२]

'हठयोग' शब्द में 'हठ' का अर्थ है-ह=सूर्य और ठ=चन्द्र। अर्थात् प्राण और अपान वायु।[३] प्राण और अपान दोनों वायु एक दूसरे को आकृष्ट करते हैं, जैसे रज्जु में आबद्ध श्येन किञ्चित् उडता है, किन्तु पुनः आकृष्ट कर लिया जाता है–

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति।
रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः।।[४]

(iii) राजयोग या अष्टाङ्गयोग–विवेक की पूर्णता के द्वारा मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त पर विजय प्राप्त करके स्वरूप का प्रकाशबोध करना 'राजयोग' है। इसका विस्तार से विवेचन इस अध्याय में किया जा रहा है।

(iv) लययोग–लययाग को 'कुण्डलिनी योग', 'शिव-शक्तियोग' या 'महाराजाधिराज योग' कहते हैं। जब साधक षटचक्र-भेदन की साधना का अभ्यास करता हुआ कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रार में अवस्थित परमात्मा के साथ मिलन कराता है, तो यही 'लययोग' कहा जाता है। इसे 'महायोग' भी कहते हैं। इस योग में स्थूल और क्रमशः सूक्ष्म क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी-जागरण, षट्चक्र-भेद, बिन्दुध्यान सिद्धि, महालय समाधि, सिद्धि तथा आत्म-साक्षात्कार होता है।[५] इसका वर्णन अध्याय छः में किया गया है।

(v) पञ्चस्वरादियोग–कुण्डलिनी-जागरण की साधना के पूर्व शरीर के शोधन के लिये धौति, नेति आदि का अभ्यास अपरिहार्य माना गया है। योग-साधना में काया के अन्दर नाना प्रकार के मल विध्न का कार्य करते हैं। इसलिए शोधन के द्वारा शरीर का अन्तर्जगत् शुद्ध किया जाता है। पञ्चस्वरादि-योग मुख्यतः काया-शोधन में ही उपयोगी है। पञ्चस्वरादियोग के अन्तर्गत नेति, दन्ति, धौति, नेउली (नौलि या लौलिकी) तथा नाड़ी-क्षालन का विवेचन किया जाता है। नेतियोग को महाकफविनाशक, दन्तियोग को हृदय-ग्रंथि-भेदक, धौतियोग को सर्वमलविनाशक, नेउलीयोग को सर्व-उदरचालक तथा क्षालन-योग को समस्त नाड़ियों

---

१. कुण्डलिनी योगतत्त्व, पृ०-२२
२. वही,
३. द सर्पेन्ट पावर, पृ०-१९८
४. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-८ की 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' टीका में उद्धृत
५. कुण्डलिनी योगतत्त्व, पृ०-२३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का शोधक कहा गया है।[१] नेति, धौति आदि पञ्चक्रियाओं की साधन पद्धति को 'अमरापञ्चक-साधन' कहा जाता है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(क) नेतियोग–नेतियोग के द्वारा नासारन्ध्र को साफ किया जाता है। सर्वप्रथम सूक्ष्मवस्त्र से निकाले गए तन्तु-समूह को बटकर अथवा सूक्ष्म वस्त्र को ही बटकर दृढ कर लेना चाहिए। उसे नासिका के स्वरगामी छिद्र में डालकर धीरे-धीरे जिह्वामूल में ले जाना चाहिए और वहाँ से मुख से बाहर की ओर धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिए। यह क्रिया बारह बार करनी चाहिए।[२] इसे सम्पन्न करने हेतु निम्न लिखित मन्त्र का जप करना चाहिए–

'ॐ ह्लीं ह्लीं ह्ली क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं योगिन्यै नमः'[३]

नेतियोग के द्वारा नासारन्ध्र निर्मल होता है तथा प्राणायाम के समय वायुगमन में महासुख की प्राप्ति होती है।[४]

(ख) दन्तियोग–यह योग दन्त-धावन के समय सम्पन्न किया जाता है। किसी तरू से अर्द्ध-हस्त मान पर्यन्त न बहुत स्थूल और न बहुत सूक्ष्म कोमल, नवीन, मृणाल सदृश दन्त-धावन-काष्ठ का ग्रहण करना चाहिए। उस दन्त-काष्ठ का कनिष्ठाङ्गुलि नाप के बराबर भाग को दाँत से चबा लेना चाहिए। तदनन्तर चर्बित भाग को जल से धोकर धीरे-धीरे उसे निगलना चाहिए। धीरे-धीरे प्रतिदिन तब तक उस काष्ठ को अन्दर ले जाते रहना चाहिए, जब तक समूचा नाभिमूल तक न पहुँच जाय अथवा हृदयस्थ जल-चक्र का आलोडन न हो जाय। इस अभ्यास से हृदय स्थित कफ-भाण्ड का विखण्डन हो जाता है और वायु के गमनागमन में सुविधा होती है। इस योग के द्वारा खेचरत्व की सिद्धि होती है।[५]

(ग) नेउली (नौलि या लौलिकी) योग–इस योग में उदरस्थ स्नायु-जाल को एक साथ संगठित कर उसे घुमाया जाता है। यह क्रिया वाम भाग से दक्षिण भाग की ओर और दक्षिण भाग से वाम भाग की ओर की जाती है।[६] यह योग निम्न मन्त्र के द्वारा सम्पन्न करना चाहिए–

"सं सं सं क्रीं क्रीं क्रीं देवि ॐ ॐ गात्र स्थायै नमः स्वाहा।"[७]

इस क्रिया में कुम्भकार के चक्र के समान उदर का मध्य भाग घुमाना चाहिए। कटि तथा नासिका भाग को स्थिर रखना चाहिए। इस योग का अभयासी कुण्डलिनी-जागरण में सफल होता है।[८]

(घ) धौति– इस योग में सूक्ष्म वस्त्र की एक पट्टी को उष्ण जल या दुग्ध-शर्करा मिश्रित जल में भिंगाकर धौति के एक सिरे को मुख द्वार से कण्ठ में प्रविष्ट कराना चाहिए तथा

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ३४/१४-१६
२. वही, ५४/२९-३१
३. वही, ५४/३२
४. वही, ३४/४५
५. वही, ३४/४७-५४
६. वही, ५४/४३
७. वही, ५४/४५-४६
८. वही, ३५/२६-२८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और अन्दर इसे प्रेषित करना चाहिए।[१] अभ्यास के प्रारम्भ में वस्त्र की नाप लम्बाई में आठ अङ्गुल और चौड़ाई में चार अङ्गुल होनी चाहिए। धीरे-धीरे धौति की लम्बाई पाँच हाथ हो सकती है।[२] वृद्ध, युवक, बालक, जड़ सभी इस योग के अभ्यास से दीर्घजीवी, अमर और लोकप्रिय होते हैं।[३] इस योग में निम्न लिखित मन्त्र का जप किया जाता है-

'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं महाधौति
निवासनि! में नाड़ीमलं क्षालय क्षालय'।[४]

(ङ) क्षालन- शरीर के अन्दर स्थित नाड़ियों के मल को नष्ट करने के कारण इसे नाड़ी-क्षालन योग कहते हैं। इस योग में वायु-पान के द्वारा नाड़ी क्षालन किया जाता है। इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों के मार्ग का शोधन इस योग के द्वारा सम्पन्न होता है। पूरक ओर रेचक के साथ तीन दण्ड तक वायु को धारण करने का अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास के पुष्ट होने पर नाड़ी-क्षालन स्वयमेव हो जाता है।[५] इस योग को सम्पन्न करने में निम्नलिखिल मन्त्र का आश्रय लिया जाता है-

'ॐ ॐ २ ह्रीं ह्रीं ठं ठं ठं क्लीं क्लीं क्लीं मं मं मं श्रीं क्लीं श्रीं शीतले मलं क्षालय क्षालय स्वाहा'।[६]

इस यौगिक क्रिया के द्वारा हृदय-ग्रंथि का छेदन होता है। शरीर की वृद्धि होती है। श्लेष्मा आदि दोष समाप्त हो जाते हैं। शरीर में स्थिरता आती है। साधक का चैतन्य निर्मल हो जाता है। वह अज्ञान से मुक्त होकर चिद्रानन्दमय हो जाता है। वह परानन्द रसिक, प्रणयप्रिय, स्थिरचेता, जीवनमुक्त तथा महायोगी हो जाता है। शास्त्र में उसे महाज्ञानी कहा गया है।[७]

योगतत्त्वविमर्श (अष्टाङ्गयोग)

यद्यपि योगाङ्ग की संख्या के विषय में योगचार्यों में परस्पर मत-वैभिन्य रहा है, तथापि महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अङ्ग स्वीकार किए हैं-

'यमनियमासन-प्राणायामप्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि।'[८]

किन्तु तान्त्रिक ग्रन्थों में प्रायः योग के छः अङ्ग ही स्वीकार किये जाते रहे हैं। यथा, गोरक्ष-संहिता और गोरक्षपद्धति के अनुसार योग के छः अङ्ग है-आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्।।[९]

---

१. वही, ३५/६-१०
२. वही, ५४/३५-३७
३. वही, ३५/१४
४. वही, ५४/३५-३७
५. वही, ५४/५७
६. वही, ५४/५३-५४
७. वही, ५४/६०-६३
८. पातञ्जलयोगदर्शनम्, २/२९
९. गोरक्ष-संहिता, १/६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रयामल में भी इन्हीं छः अङ्गों का विवेचन किया गया है और पातञ्जल योग के प्रथम दो अंङ्गों-यम और नियम को छोड़ दिया गया है। यम और नियम की इस उपेक्षा का तंत्र में महत्व है।

यम और नियम मुख्यतः नैतिकता और आदर्श से सम्बन्धित हैं। तंत्र कोई नैतिक धारणा नहीं है। वह न नैतिक है, न अनैतिक; तंत्र अधिनैतिक है। नैतिकता आवश्यक रूप से पाखण्ड पैदा करती है। जब तक दुनिया से नैतिकता नहीं जाती, तब तक पाखण्ड भी नहीं जा सकता है।[१] यही कारण है कि तंत्र में यम और नियम की विशेष चिन्ता नहीं ली गई है। इस सन्दर्भ में प्रथम अध्याय में तंत्र के स्वरूप-वर्णन के क्रम में तंत्र और नैतिकता पर समुचित प्रकाश डाला गया है। तथापि यहाँ यम और नियम के साथ-साथ शेष योगाङ्गों पर समुचित चर्चा की जा रही है।

जब तक विवेकख्याति नहीं हो जाती, तब तक योगांगों के अनुष्ठान से चित्त को विशुद्ध करने का उपदेश शास्त्रकार ने दिया। अष्टाङ्ग योग को दो भागों में विभक्त किया जाता है- बहिरङ्गयोग और आन्तरयोग। बहिरङ्ग योग पाँच हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार। आन्तर योग के अन्तर्गत शेष तीन हैं-धारणा, ध्यान और समाधि। योग के ये आठ अङ्ग योग-साधना के विकास के क्रमिक सोपान हैं। बहिरङ्गयोग आन्तरयोग की पृष्ठभूमि है। सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधियाँ ही अष्टाङ्ग योग की चरम परिणति हैं, जिन्हें अद्वैत वेदान्त में सविकल्पक और निर्विकल्पक समाधि कहा जाता है। अष्टाङ्ग योग का विवरण इस प्रकार है-

(i) यम

'यम' शब्द 'यम उपरमे' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है-'निवृत्त होना।' मनुष्य का समस्त प्राणियों के प्रति व्यवहार ही बहिर्मुखता की चरम सीमा है। अतः सर्वप्रथम व्यावहारिक जीवन को सात्त्विक, दिव्य एवं योगाभिमुख बनाने के लिए यम प्रथम सोपान है। यमों के सम्यक् आचरण से बाह्य-व्यवहार की शुद्धि होती है और स्थूल क्लेश-कर्मों की निवृत्ति होती है।[२]

भागवत पुराण, पाराशरसंहिता, हठयोग-प्रदीपिका आदि में यम के १० भेद गिनाए गए हैं। किन्तु पातञ्जल योग में ५ यम ही स्वीकृत हैं-अहिंसा, सत्य,अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (किसी से कुछ न लेना)।

(क) अहिंसा-समस्त प्राणियों के प्रति सब प्रकार से द्रोहत्याग ही अहिंसा है, अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्राणी को क्लेश न पहुँचाने की वृत्ति ही अहिंसा है। अहिंसा क्यों? हिंसा से साधक अपनी कोमलता एवं सुन्दरता खो देता है। अध्यात्म की यात्रा में कोमलता बड़ी सहायक है। जल जैसा तरल हृदय चाहिए साधना में। ममत्व-परत्व की दीवार जब ढह

१. तंत्र-सूत्र भाग-५ (पाकेट बुक संस्करण) पृ०-३६
२. पातञ्जल योगसूत्र का विवेचनात्मक एवं तुलानात्मक अध्ययन, पृ०-१२४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाती है, और सबके प्रति समान संवेदनशीलता का अभ्युदय होता है, तभी सही अर्थ में अहिंसा का उदय होता है।

अहिंसा, हिंसा को छोड़ना ही हो, तो वह जीवनस्पर्शी नहीं हो सकती है। वह किसी का छोड़ना नहीं, किसी की उपलब्धि होनी चाहिए। वह त्याग नहीं, प्राप्ति हो तभी सार्थक है। अहिंसा शब्द की नकारात्मकता ने बहुत भ्रांति को जन्म दिया है। वह शब्द तो नकारात्मक है, पर अनुभूति नकारात्मक नहीं है। वह अनुभूति शुद्ध प्रेम की है। प्रेम राग हो तो अशुद्ध है। प्रेम राग न हो तो शुद्ध है। रागयुक्त प्रेम किसी के प्रति होता है, रागमुक्त प्रेम सबके प्रति होता है। प्रेम के दो रूप हैं। प्रेम सम्बन्ध हो तो राग होता है। प्रेम स्वभाव हो तो, वीतराग होता है। यह वीतराग-प्रेम ही अहिंसा है।[१]

प्रेम के सम्बन्ध से स्वभाव में परिवर्तन अहिंसा की साधना है। वह हिंसा का त्याग नहीं, प्रेम का स्फुरण है। इस स्फुरण में हिंसा तो अपने आप छूट जाती है, उसे छोड़ने के लिए अलग से कोई आयोजन नहीं करना पड़ता है। जिस साधना में हिंसा को भी छोड़ने की चेष्टा करनी पड़े, वह साधना सत्य नहीं है। प्रकाश के आते ही अंधेरा चला जाता है। ....प्रेम पर्याप्त है; उसका होना ही हिंसा का न होना है। और यह प्रेम आनन्द का परिणाम है।.....उससे दुःख-विस्मरण नहीं होता है, वरन् उसकी अभिव्यक्ति ही दुःख-मुक्ति पर होती है। वह मादकता नहीं, परिपूर्ण जागरण है।....वस्तुतः जो भीतर आनन्द है, वही बाहर प्रेम है।... वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आनन्द स्वयं को अनुभव होता है। प्रेम जो निकट आते हैं, उन्हे अनुभव होता है। आनन्द केन्द्र है, तो प्रेम परिधि है। ऐसा प्रेम सम्बन्ध नहीं, स्वभाव है। जैसे सूरज से प्रकाश निसृत होता है, ऐसे ही वह स्वयं से निःसृत होता है। प्रेम के इस स्वभाव और रूप में कोई बाह्य आकर्षण नहीं, आन्तरिक प्रवाह है। उसका बाहर से न कोई सम्बन्ध है, न कोई अपेक्षा है। वह बाहर से मुक्त और स्वतन्त्र है। यह प्रेम ही अहिंसा है। इसलिए स्मरणीय है कि अहिंसा की नहीं जाती है। वह क्रिया नहीं,सत्ता है। उसका सम्बन्ध कुछ करने से नहीं, कुछ होने से है। वह आचार-परिवर्त्तन नहीं, आत्म-क्रांति है। दुःख से जो प्रवाहित होता है, वह हिंसा है। आनंद से जो प्रवाहित होता है, वह हिंसा-निरोध है। मै क्या करता हूँ, यह सवाल नहीं है। मैं क्या हूँ, यह सवाल है।[२] जो अन्तस् में आनन्द होता है, वही आचरण में अहिंसा होकर दीखता है। अहिंसा सत्यानुभूति का परिणाम है। वह सत्य के दीये का प्रकाश है। समाधि के पौधे में सत्य के फूल लगते हैं और अहिंसा की सुगंध आकाश में परिव्याप्त हो जाती है।[३]

आत्मा को जान लेना अहिंसा है। मैं यदि स्वयं को जानने में समर्थ हो जाऊँ तो साथ ही सबके भीतर जिसका वास है, उसे भी जान लूँगा। इस बोध से प्रेम उत्पन्न होता है; और प्रेम के लिए किसी को भी दुःख देना असम्भव है। किसी को दुःख देने की यह असम्भावना ही अहिंसा है।

---

१. मैं कहता आँखन देखी, पृ०-३३०

२. वही, पृ०-३३०-३३१

३. वही, पृ०-३३२-३३३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्म-अज्ञान का केन्द्रीय लक्षण 'अहं' है। उससे ही समस्त हिंसा उत्पन्न होती है। 'मैं' सब कुछ हूँ और शेष जगत् मेरे लिए है, मैं समस्त सत्ता का केन्द्र और लक्ष्य हूँ– इस 'मैं' भाव से पैदा हुआ शोषण ही हिंसा है। आत्म-ज्ञान का केन्द्रीय लक्षण प्रेम है। जहाँ अहं शून्य होता है, वहीं प्रेम होता है। जगत् में दो ही प्रकार की चेतना-स्थितियाँ हैं–अहं की और प्रेम की। अहं संकीर्ण और अणु-स्थिति है, प्रेम विराट और ब्रह्म। अहं अपने लिए जीता है, प्रेम सबके लिए जीता है। अहं शोषण है, प्रेम सेवा है। प्रेम से सहज प्रवाहित सेवा ही अहिंसा है।[१]

प्रेम सीधा नहीं पाया जाता है। वह तो परिणाम है। प्रज्ञा को उपलब्ध करो, तो प्रेम पारिश्रमिक में मिल जाता है।....प्रज्ञा हो और प्रेम न हो, यह असम्भव है। ज्ञान हो और अहिंसा न हो, यह कैसे हो सकता है? इसलिए ही अहिंसा को सत्य-ज्ञान की परीक्षा माना गया है। वह परम धर्म है, क्योंकि वह आत्यंतिक कसौटी है। उसके निष्कर्ष पर खरा उतरकर ही धर्म खरा साबित होता है[२]–'अहिंसा परमो धर्मः।'

अहिंसा के अतिरिक्त शेष चारों यम अहिंसामूलक ही हैं और उनका अनुष्ठान अहिंसा की निर्मलता के हेतु किया जाता है। अन्य सत्यादि यमों का अनुष्ठान न करने से असत्यादि द्वारा अहिंसा के मलिन होने का भय रहता है।[३]

(ख) सत्य–इन्द्रिय और मन के द्वारा दृष्ट, श्रुत तथा अनुमित अनुभावों को उसी रूप में अभिव्यक्त करना सत्य है। स्वचित्तगत बोध के विपरात बोध कराने वाली वाणी असत्य होती है। सत्य क्यों ? असत्य से दुहरे व्यक्तित्त्व का निर्माण होता है। आदमी अन्दर कुछ होता है और बाहर कुछ और दिखाना चाहता है। इससे व्यक्ति में सतत् एक द्वन्द्व, तनाव चलता रहता है। किन्तु साधना सत्य की भूमि पर ही हो सकती है। वहाँ एक ईमानदार व्यक्ति का ही प्रवेश सम्भव है। दूसरे, सत्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सत्य बोलने वाले को कभी यह याद नही रखना पड़ता कि वह कहाँ, क्या बोला। सत्य व्यक्ति को उसके केन्द्र पर प्रतिष्ठित कर देता है।

(ग) अस्तेय–मनसा, वाचा और कर्मणा किसी भी प्रकार से किसी भी व्यक्ति का कोई भी द्रव्य न लेना ही अस्तेय है। अस्तेय का अर्थ है–अचौर्य। पारम्परिक रूप से अचौर्य का सम्बन्ध केवल पदार्थ से ही रहा है। किन्तु यह तो बड़ी स्थूल बात प्रतीत होती है। सूक्ष्म रूप से अचौय का सम्बन्ध चिन्तन से भी हो सकता है। यथा, यदि किसी व्यक्ति को मोक्ष एवं आत्मा की कोई अनुभूति न हो, किन्तु वह शास्त्र का उद्धरण दे-देकर उसकी अनुभूति का हठ पाले हुए हो, तो ऐसी उधार एवं चुराई गई बातों को सत्य के रूप में प्रस्तुत करना भी चौर्य कहला सकता है।

---

१. मैं कहता आँखन देखी, पृ०-३५५

२. वही, पृ०-३५४

३. व्या०भा०सू०, २/३०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(घ) ब्रह्मचर्य–मन, वाणी और कर्म द्वारा सब अवस्थाओं में सर्वत्र मैथुन का परित्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है। वस्तुतः वीर्य-रक्षा ही ब्रह्मचर्य है। रुद्रयामल में कहा गया है–

'बिन्दुपाताद् भवेन्नाशस्ततो हि बिन्दुरक्षणम्'।[१]

यहाँ वीर्य को ही बिन्दु कहा गया है।

एक भिन्न गुणवाला ब्रह्मचर्य, एक अलग ढंग-ढाँचे का ब्रह्मचर्य तंत्र के साधक को घटित होता है। लेकिन उसकी पूरी प्रक्रिया उल्टी है। तंत्र पहले यह सिखता है कि" –तुम कामवासना में कैसे प्रवेश करो, उसे कैसे जानो, अनुभव करो, उसमें छिपे सार-सौन्दर्य को, उसके मूलभूत सुख और आनन्द को कैसे उपलब्ध होओ। और अगर तुमने उस रहस्य को जान लिया तो तुम उसका अतिक्रमण कर सकते हो। कारण, गहन काम-समाधि में जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द काम से नहीं, किसी और चीज़ से आता है। काम तो सिर्फ एक स्थिति है और उसमें जो सुख, जो आनन्द मिलता है, वह किसी दूसरी जीज़ से, दूसरे स्रोत से मिलता है।"[२] वह स्रोत है साधक के शिव और पराशक्ति का मिलन। जब अपने ही शिव-तत्त्व का अपनी ही पराशक्ति से मिथुन होता है, तो साधक मैथुन से मुक्त हो जाता है अन्यथा वह 'स्त्री-निषेवक' ही रह जाता है।[३]

(ड़) अपरिग्रह–अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए ममतापूर्वक धन, सम्पत्ति और भोग-साम्रगी का संग्रह करना परिग्रह है। इसका अभाव अपरिग्रह कहलाता है। परिग्रह की पूरी प्रक्रिया ही आसक्तिपूर्ण है। सर्वप्रथम धन के संग्रह में ही कुटिल मार्ग को अपनाना पड़ता है। पुनः उसके खोने की चिन्ता लगी रहती है। अतः साधक साधना के लिए अपने को इन कुटिलताओं और चिन्ताओं से मुक्त नहीं कर पाता।

इन यमों (संयमों) की विपरीत क्रियाओं–हिंसा, असत्य, स्तेय, वीर्यक्षय और परिग्रह को वितर्क कहते हैं। इनका फल दुःख और अज्ञान है। वितर्कों के दमन और संयमों की उपलब्धि के लिए शास्त्रकार (पतञ्जलि) ने पाँच प्रकार के नियम बनाए हैं।[४]

(ii) नियम

पातञ्जल योग में पाँच नियम हैं–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान।

(क) शौच–शौच का अर्थ है–पवित्रता, शुद्धि। यह दो प्रकार का होता है–बाह्य और आभ्यन्तर। साधना की परिधि व्यक्ति का शरीर है। जल आदि से शरीर की बाहरी शुद्धि होती है। शरीर की स्थूल की शुद्धि हेतु रुद्रयामल में नेतियोग, दन्तियोग आदि की चर्चा की गई है, जिसका विवेचन इस अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ शरीर की आन्तरिक शुद्धि की चर्चा की जा रही है।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६०/८४
२. तंत्रसूत्र, भाग-५ (पॉकेट बु०सं०) पृ०-४८-४९
३. रुद्रयामल उ०त०, २६/१४३-१४४
४. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-१३३-१३४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शरीर-शुद्धि का पहला तो अर्थ है—शरीर के भीतर, शरीर के यंत्र में कोई भी रूकावट, कोई भी ग्रंथि (काम्पलेक्स) न हो, तब शरीर शुद्ध होता है।[१] सभ्यता ने बहुत दिक्कत पैदा कर दी है। असभ्य आदमी का शरीर हमसे ज्यादा शुद्ध होता है। एक जंगली आदमी का शरीर हमसे बहुत शुद्ध होता है। उसमें ग्रंथियाँ नहीं होतीं; क्योंकि अपने भावावेग को वह सहज प्रगट कर देता है। लेकिन हम अपने भावावेगों को दबा लेते हैं।[२] जैसे यदि हम बहुत क्रुद्ध होंगे और क्रोध को प्रगट न कर पायेगें, तो उस क्रोध की जो ऊष्मा और गर्मी पैदा होगी, वह शरीर के कियी अंग में ग्रंथि पैदा कर देगी। क्रोध में हिस्टीरिया आ सकता है, क्रोध में कोई बीमारी आ सकती है। अभी जो सारे प्रयोग चलते हैं स्वास्थ्य के ऊपर, उनसे ज्ञात होता है कि सौ बीमारियों में कोई पचास बीमारियाँ शरीर में नहीं होतीं, मन में होती हैं। लेकिन मन की बीमारियाँ शरीर में ग्रन्थि पैदा कर देती हैं और शरीर में अगर ग्रथियाँ पैदा हो जायें, तो शरीर का संस्थान जकड़ जाता है और अशुद्ध हो जाता है।[३] ग्रन्थियों से भरा शरीर साधना में सहायक नहीं होता। इसलिए योग का पहला चरण होता है—शरीर-शुद्धि और शरीर का पहला चरण है-शरीर की ग्रंथियों का विसर्जन।[४] अत: उपाय यही है कि शरीर में नयी ग्रंथियाँ न बनें और पुरानी ग्रन्थियों का विसर्जन हो। पुरानी ग्रंथियों को विसर्जित करने का उपाय यह है कि आदमी एकान्त में बिल्कुल जंगली हो जाये और छोड़ दे सारा ख्याल और सारी पर्त्तें, जो उसने जबरदस्ती अपने ऊपर लाद रखा है। फिर होने दे; शरीर क्या करता है, उसे देखे। वह नाचता है, कूदता है। गिरकर पड़ा रह जाता है। घूँसे तानता है, किसी काल्पनिक दुश्मन को मारता है. ... क्या करता है.. उसे देखे और चुपचाप उसे करने दे। एक दो महीने के प्रयोग में आदमी पाता है कि उसके शरीर ने एक अद्‌भुत सरलता, सात्त्विकता और शुद्धि को उपलब्ध किया है। इस तरह पुरानी ग्रंथियों की निर्जरा होती है। नयी ग्रंथियाँ न बने, इसके लिए जब भी क्रोध, घृणा आदि भावों का उदय हो, तो उसका सृजनात्मक रूपान्तरण किया जा सकता है। जैसे क्रोध आने पर अपने दोनो पैरों को जोर से सिकोड़िये, जितना सिकोड़ सकें।....जब आपकी बिल्कुल सामर्थ्य के बाहर हो जाये खींचना, तब उनको एकदम से ढीला छोड़ दीजिए। आप हैरान होंगे कि क्रोध निष्कासित हो गया है।....और आपके पैर की मांसपेशियाँ सुन्दर हो जाएँगी। वह जो क्रोध का वेग उठा था, उसने कुछ विकृत नहीं किया, बल्कि आपके पैर को सुन्दर करके चला गया।[५] इस प्रकार पुरानी ग्रन्थियों की निर्जरा और नये भावावेगों का सृजनात्मक उपयोग शरीर-शुद्धि के लिए प्राथमिक चरण हैं।

इसी प्रकार सम्यक् भोजन और सम्यक् व्यायाम भी शारीरिक शुद्धि के लिए अनिवार्य हैं। भोजन इतना ज्यादा न हो कि शरीर उसके कारण आलस्य से भरता हो। आलस्य अशुद्धि

---

१. ध्यान-सूत्र, पृ०-२३
२. वही, पृ०-२५
३. वही, पृ०-२४
४. वही, पृ०-२६
५. ध्यान-सूत्र, पृ०-२९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। भोजन ऐसा न हो कि शरीर उत्तेजना से भरता हो। उत्तेजना अशुद्धि है, क्योंकि उत्तेजना ग्रन्थियाँ पैदा करेंगी। वह (भोजन) ऐसा न हो कि शरीर क्षीण होता हो, क्योंकि क्षीणता कमजोरी है। शक्ति अगर उत्पन्न न होगी, तो परमात्मा की तरफ विकास भी नहीं हो सकता।. .. तो तीन बातें स्मरणीय हैं।– भोजन सुस्ती न दे, तो वह शुद्ध है। भोजन उत्तेजना न दे, तो वह शुद्ध है और भोजन मादकता न दे, तो वह शुद्ध है।[१] रुद्रयामल में कहा गया है कि दन्तियोग के साधक को षड्रस प्रधान भोजन का परित्याग कर देना चाहिए। एतदतिरिक्त मिष्टान्न, शाक-दधि मिश्रित अन्न और रात्रि में दो बार भोजन का वर्जन कर देना चाहिए। वन-मूंगी एक भाग और दो भाग चावल को अच्छी तरह पकाकर घी और दूध के साथ भक्षण करना चाहिए अथवा कुलरूपा कुण्डलिनी का दुग्ध से तर्पण करना चाहिए। कुण्डलिनी तर्पण को जानने वाला अनायास ही योगी तथा ज्ञानीन्द्र हो जाता है।[२] दूसरी बात, शरीर के लिए थोड़ा- सा व्यायाम अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि शरीर जिन तत्त्वों से मिलकर बना है, वे तत्त्व व्यायाम के समय विस्तार पाते हैं।.... अति विश्राम भी नुकसान करता है, अति व्यायाम भी नुकसान करता है।[३]

विचार की शुद्धि भी अनिवार्य है। विचार भी मनुष्य के चित्त पर अपना प्रभाव शुभ या अशुभ के लिए छोड़ते हैं। सत्य, शिव और सुन्दर–ये तीन ही शुभ विचार के केन्द्र हैं। काम, यश और धन–ये अशुभ विचार के केन्द्र हैं। अशुद्ध विचार बाहर ले जाता है और शुद्ध विचार भीतर लाता है। अशुद्ध विचार की दिशा बहिर्गामी और अधोगामी है। शुभ विचार या शुद्ध विचार की दिशा अन्तर्गामी और ऊर्ध्वगामी है।[४] अतः विचार को सत्योन्मुख, शिवोन्मुख, सौन्दर्योन्मुख होना चाहिए। विचार की शुद्ध के लिए यह जानना जरूरी है कि विचार जो बाहर से हमारे भीतर आ रहे हैं, वह अविवेक पूर्ण रीति से भीतर न आयें। हम सजग हों और जिसको भीतर आने देना चाहते हों, वही हमारे भीतर आये। शेष को हम बाहर फेंक दें।[५] विचार की शुद्धि के तीन रास्ते हैं–साधक अपने को शुभ और सद्विचारों के करीब, शुभ और सद्पुरूषों के करीब और सबसे ज्यादा और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकृति के सान्निध्य में ले जाए।[६]

शरीर और विचार की शुद्धि की बातें तो ठीक है, किन्तु जबतक भाव के जगत् में परिवर्त्तन न हो, केवल विचार के जगत् में सोच-विचार से कोई क्रान्ति जीवन में नहीं होती है। इसलिए साधना में जो सबसे आधारभूत बिन्दु है, वह भावों का है–

भावात् परतरं नास्ति भावाधीनमिदं जगत्।
भावेन लभ्यते योगस्तस्माद् भांव समाश्रयेत्।।[७]

---

१. ध्यान-सूत्र, पृ०-१०-३६-३७
२. रुद्रयामल उ०त०, ३४/५४-५८
३. ध्यान-सूत्र-पृ०-३७
४. वही, पृ०-६५
५. वही, पृ०-७०
६. वही, पृ०-७२
७. रुद्रयामल उ०त०, २७/३०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् भाव से परे कुछ भी नहीं है, यह सम्पूर्ण जगत् भाव के ही अधीन है। भाव से ही योग की प्राप्ति होती है।

मैत्री, करूणा, प्रमुदिता और कृतज्ञता-ये चार भाव हैं, जिनके माध्यम से भाव शुद्ध हो सकते हैं। ये ही चार तत्त्व विपरीत होकर अशुद्ध भावों के जन्मदाता बन जाते हैं। मैत्री आदि चार भावों को अगर कोई व्यक्ति जीवन में साध ले तो भाव शुद्धि उपलब्ध होती है। मैत्री के विपरीत घृणा और वैर, करूणा के विपरीत क्रूरता, हिंसाऔर अदया; प्रमुदिता, प्रफुल्लता के विपरीत उदासी, विषाद, संताप, चिंता तथा कृतज्ञता के विपरीत अकृतज्ञता है। अतः मैत्री आदि के विपरीत जिसका जीवन और भाव-स्थिति हो, वह अशुद्ध भाव में है। इन चारों (मैत्री आदि) में जो प्रतिष्ठित हो, वह शुद्ध भाव में प्रतिष्ठित होता है।[१]

मैत्री अन्तः केन्द्रित होती है और शत्रुता पर-केन्द्रित होती है।..प्रेम के झरने भीतर से बहते हैं, घृणा की प्रतिक्रिया बाहर से पैदा होती है। अशुद्ध भाव बाहर से परिचालित होते हैं,[२] शुद्ध भाव भीतर से बहते हैं। शुद्ध भाव चित्त की अवस्था है। अशुद्धभाव चित्त की विकृति है, अवस्था नहीं। अतः ध्यातव्य है कि भाव अपने हों, वे प्रतिक्रियाएँ न हों, वे चित्त की अवस्थायें हों।

इस प्रकार शरीर, विचार और भाव की शुद्धि ही शौच है।

(ख) सन्तोष-जीवन धारण हेतु प्राप्त आवश्यक भोग-साधन से अधिक संग्रहेच्छा का अभाव संतोष है।[३] सन्तोष 'जो है' उसका उत्सव मनाने में है। असंतोष 'जो नहीं है' उसको पाने की वासना में है, तृष्णा में है।... सन्तोष का अर्थ होता है: जो है, वह मेरी पात्रता से अभी ही ज्यादा है, मेरी योग्यता से अभी ही ज्यादा है। न मेरी योग्यता है, न मेरी पात्रता है, और परमात्मा बरसाता चला गया है-ऐसी जो प्रतीति है, उसका नाम सन्तोष है और जिसके पास सन्तोष है उसे और मिलेगा।[४] सन्तोष के विषय में शास्त्रोक्ति है कि-जैसे क्लेशों से बचने के लिए भूमि को सर्वत्र चर्माच्छादित नही किया जा सकता है, किन्तु जूते पहने जा सकते हैं। वैसे ही सुखप्राप्ति अनन्त काम्य-विषयों के उपार्जन से नहीं हो सकती, अपितु संतोष से ही सुख की प्राप्ति हो सकती है-

सर्वत्र सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैवभु (शान्ति०...)।

जब साधक संतोष में ठहर जाता है, तो उसकी दृष्टि केवल अपने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह सारी प्रकृति की कीड़ाओं को देखकर अभिभूत हो जाता है। वह समझने लगता है कि प्रकृति का सारा आयोजन उसी के लिए है। उसे अब कुछ भी तो नहीं चाहिए। वह अपने चंचल मन को समझाता है-

---

१. ध्यान-सूत्र, पृ०-८०-८१
२. वही, पृ०-८२
३. कूर्म पुराण, २, विष्ण,६
४. मरौ है जोगी मरौ, पृ०-२८६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धरती का बिछौना, नीलाबंर का ओढ़ना
और चाहिए क्या? ओ वैरागी मन!
सूर्य शीश पर सोना-छत्र-सा लगे,
चन्द्रमा पिन्हा जाये चाँदी के हार,
ऊषा ज्योति कलश धरे अगवानी में,
संध्या कर जाये तारों से श्रृंगार
सूर्य चन्द्र का गहना, तारों का कंगना
और चाहिए क्या? ओ बड़भागी मन !

मधु ऋतु कोकिल के स्वर में गुन गाये,
ग्रीष्म की दुपहरी कर जाये अभिसार,
पावस में पपीहा रटे पिया-पिया,
शरद जुन्हैया बरसाये मीठा प्यार।
ऋतुओं का झूलना, समय का हिंडोलना,
और चाहिए क्या ओ अनुरागी मन!

कोंपलें हिलायें रेशम का रूमाल,
कलियाँ भर जायें जीवन में उल्लास,
फलों से रंग झरे उड़े तरल गंध,
मन को लहराये केसर का वातास।
मधुवन का फूलना, दिगंतों का महकना,
और चाहिए क्या? ओ मधुरागी मन!

रंग-बिरंगे पंखों वाली चिड़िया,
कानों में कह जाये भेद-भरी बात,
ताल कटोरे में फूलसुंधी उतरे,
काँप-काँप जायें जलकुंभी के पात,
चिड़िये का उड़ना, जलकुंभी का काँपना,
और चाहिए क्या? ओ रे बागी मन!

धरती का बिछौना, नीलांबर का ओढ़ना
और चाहिए क्या? ओ वैरागी मन![१]

इसलिए सन्तोष को परम सुख कहा जाता है–'संतोषं परं सुखम्।'

(ग) तप–क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, स्थान (खड़ा ही रहना), आसन (बैठा ही रहना) आदि सम्पूर्ण द्वन्द्वों की अवस्था में अविचलित रहना तप है।[२] किन्तु उग्र तप, जिससे चित्त में आनन्द की बजाय कष्ट ही हो, योगमार्ग में वर्जित है–

---

१. मरौ है जोगी मरौ, पृ०-२८७ पर उद्धृत
२. पातञ्जल योगसूत्र का विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन, पृ०-१३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तास्वप्नावबोधस्य योगी भवति दुःखहा।।

–गीता, ६/१७

दुःख के प्रति जागरण ही तप है। दुखानुभव व्यक्ति-चेतना को दो दिशाओं में ले जा सकता है। एक दिशा है उसे भूलने की, एक दिशा है उसे विसर्जित करने की। जो दुःख-विस्मृति की दिशा पकड़ता है, वह जाने-अनजाने किसी न किसी प्रकार मादकता और मूर्च्छा की खोज करता है। दुःख-विस्मरण में आनन्द का आभास ही हो सकता है, क्योंकि जो है उसे बहुत देर तक भूलना असम्भव हो सकता है।....अतः 'मै दुःख हूँ' या 'आनन्द हूँ', यह प्रत्येक को अपने से पूछना है। इस उत्तर पर ही सब कुछ निर्भर करता है। तथाकथित आनन्द के पीछे झाँकना है, भुलावों और आत्मवंचनाओं के आवरणों को उघाड़कर देखना है। आवरणों के हटते ही दुःख की अतल गहराइयाँ अनुभूत होती हैं। घने अंधेरे और सन्ताप का अनुभव होता है। भय लगता है, वापस अपने आवरण को ओढ़ लेने का मन होता है। इस भाँति भयभीत होकर जो अपने दुःख को ढाँक लेते हैं, वे कभी आनन्द को उपलब्ध नहीं होते हैं। दुःख को ढ़ाँकना नहीं, मिटाना है और उसे मिटाने के लिए उसका साक्षात् करना होता है। यह साक्षात्करण ही तप है।[१] दुःख का विस्मरण संसार में ले जाता है, दुःख का साक्षात्करण स्वयं में ले जाता है। जो व्यक्ति दुःख या संताप से घबड़ाकर पलायन नहीं करता, और किन्हीं स्वप्नों में अपने को नहीं खो लेता है, वह अपने भीतर एक अभूतपूर्व चैतन्य को जागृत करता है। वह एक क्रान्ति का साक्षी बनता है। चैतन्य का वह जागरण उसे आमूल परिवर्तित कर देता है। वह अपने भीतर अँधेरे को टूटते हुए देखता है और देखता है कि उसकी चेतना के रंध्र-रंध्र में प्रकाश परिव्याप्त हो रहा है। इस प्रकाश में पहली बार वह स्वयं को जानता है। पहली बार उसे दिखता है कि वह कौन है। दुःख-साक्षात्कार के दबाब में ही आत्म-जागरण होता है। आन्तरिक पीड़ा का आत्यंतिक बोध अपनी चरम स्थिति पर विस्फोट बन जाता है। जो इस सीमा तक पीड़ा से गुजरने को राजी होते हैं, वे पीड़ा के बाहर पहुँच जाते हैं। जो इतना साहस करता है, उसके लिए सत्य अपना द्वार खोल देता है।[२] इस पीड़ा को सहना, इसके लिए इतना साहस करना ही तप है।

(घ) स्वाध्याय–उपनिषद्, गीता आदि मोक्ष प्रतिपादक आध्यात्मिक शास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव, गायत्री आदि का नियमित जप स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय से विषय-चिन्तन कमजोर होता है, परमार्थ में रूचि एवं ज्ञान-वृद्धि होती है। स्वाध्याय से विवेक-अविवेक की पहचान होती है।

(ङ) ईश्वर-प्रणिधान–फलेच्छात्यागपूर्वक समस्त कर्मों का, परम गुरू ईश्वर को समर्पण करना ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। सम्पूर्ण क्रियाएँ ईश्वर को अर्पित करने के लिए हर समय भगवद्-स्मरण करते रहना आवश्यक है। ईश्वर को भूलकर किया हुआ कर्म पूर्णतः

---

१. मैं कहता आँखन देखी, पृ०-३३१-३३२
२. वही, पृ०-३३२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने व्यक्तित्त्व के अहंकारपूर्वक होता है। अकर्तृत्व-भावना और भगवत्स्मरणपूर्वक कर्म करने तथा फल की कामना न करने से कर्माशय निवृत्त होते हैं। जो साधक उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय अपने आत्मस्वरूप में स्थित होकर संशयादि वितर्कों से रहित चित्त से संसार के बीजभूत अविद्यादि के क्षय का चिन्तन करता है, वही अमृतत्त्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार ईश्वर-प्रणिधान से आन्तरिक चैतन्य की उपलब्धि एवं समस्त विघ्नों का विनाश होता है।[१] जैसे पनिहारन सिर पर गागर रखे हुए चलती रहती है और लाख बातचीत में व्यस्त रहती है, किन्तु उसका ध्यान हमेशा घड़े पर ही रहता है, वैसे ही साधक को हर पल ईश्वर का ध्यान बना रहना चाहिए। जैसा कि संत धरमदास ने कहा है-'जस पनिहार धरे सिर सागर'।

(iii) आसन

साधक अपने अनुकूल जिस भी रीति से बिना हिला-डुले स्थिरभाव से सुखपूर्वक सहज ढंग से बिना किसी प्रकार के कष्ट के कुछ समय तक रह सके, वही आसन है-'स्थिर-सुखमासनम्'।[२]

व्यक्ति आत्मस्थ नहीं है। वह एक सतत् कंपित ज्वरग्रस्त हलचल है, कोलाहल है। पतंजलि के बताये आसन किसी शारीरिक प्रशिक्षण से ख़ास सम्बन्धित नहीं हैं, बल्कि वे एक आंतरिक प्रशिक्षण से सम्बन्धित हैं कि बस होना; कि बिना कुछ किये, बिना किसी गति के, बिना हलचल के बस ठहर जाओ। यह ठहरना अन्तस् के केन्द्रीयकरण में सहायक होगा।[३]

यदि साधक एक ही आसन में ठहर जाए तो शरीर गुलाम, सेवक बन जाएगा। फिर शरीर साधक का अनुगमन करता है। शरीर जितना अधिक साधक का अनुगमन करेगा, उतना ही अधिक शक्तिपूर्ण और विराट बनेगा साधक के भीतर का अस्तित्त्व। शरीर और मन कोई अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं। वे एक ही घटना के दो छोर हैं। व्यक्ति शरीर और मन नहीं है। व्यक्ति है शरीरमन-साइकोसोमैटिक। मन शरीर का सबसे सूक्ष्म हिस्सा है या शरीर सबसे स्थूल हिस्सा है मन का। इसलिए जो कुछ शरीर में घटित होता है, वही मन में घटित होता है। और इसके विपरीत जो कुछ मन में घटित होता है, वही शरीर में घटित होता है।.. वास्तव में मन गतिमय बनता है तो शरीर में भी गति लाने की कोशिश करता है, क्योंकि शरीर में गति आयेगी तो फिर मन भी आसानी से गति कर सकता है। गतिहीन शरीर के साथ मन गतिमय नहीं हो सकता।[४] यदि शरीर अगतिमान होता है और मन भी अगतिमान होता है, तब साधक केन्द्र में, अन्तस् में केन्द्रस्थ होता है। स्थिर-आसन केवल शारीरिक प्रशिक्षण नहीं है। यह एक ऐसी स्थिति का निर्माण करना हुआ जिसमें कि केन्द्रस्थता घटित हो सकती है, जिसमें कि साधक अनुशासित हो सकता है। इसलिए कहा गया है-'आसनस्थः सुखं ह्रदे निमज्जति'।[५]

---

१. व्यास भाष्य, योगसूत्र (पंतजलि), २/३२-
'शय्यासनस्थोऽस्थ पथिव्रजन्त्रा स्वस्थः परिक्षीण वितर्कजालः।
संसार बीजक्षयमीक्षमणाः स्यान्नित्य स्यान्नितय मुक्तोऽमृत भोग भागी।

२. पातञ्जलयोगदर्शनम्, २/४६

३. पंतजलि योगसूत्र, भाग-१, पृ०-१२

४. वही, पृ०-१२

५. श्री शिवसूत्र व्याख्या, ३/१७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् आसनस्थ व्यक्ति सहज ही चिदात्म सरोवर में निमज्जित हो जाता है।

शरीर को आसनस्थ कर लेने का अर्थ है कि शरीर का सब उपद्रव शांत हो गया। साधक ऐसे बैठता है, जैसे अशरीरी हो, जैसे शरीर है ही नहीं, शरीर का पता ही नही चलता। तब वह मन के विचार को ऐसे देखता है, जैसे वह तटस्थ हो, जैसे उसका कोइ लेना-देना नहीं है, जैसे वे विचार किसी और के मन में चल रहे हों...जैसे आकाश में बादल चल रहे हों, बस उपेक्षा से वह देखता रहता है। जब शरीर पर सब गति बन्द होती है, तो ऊर्जा बाहर नहीं जा सकती, जब मन की सारी गति बन्द होती है तो ऊर्जा के बाहर जाने के सारे छिद्र बन्द हो गये,.....सब छिद्र बन्द हो गए; बाहर जाने वाला कोई भी न बचा। अब सारी जीवन-ऊर्जा भीतर जाती है और भीतर महासरोवर है।[१] इस भीतर गिरती ऊर्जा का उस महासरोवर से मिलन हो जाता है। इसलिए कहा है--आसनस्थ:सुखं ह्रदे निमज्जति'।

मिथकीय दृष्टिकोण से इस धरती पर विद्यमान ८४ लाख जीव के लिए शिव ने ८४ लाख आसानों की चर्चा की है। किन्तु उनमें ८४ आसन अत्यंत श्रेष्ठ हैं, यथा-सिद्धासन, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रयासन, पर्यङ्कासन, योन्यासन, क्रौञ्च-निषदासन, वज्रासन, कूर्मासन, गरूडासन, मयूरासन, मकरासन, धनुरासन, भुजङ्गासन आदि। इन सब में जिस आसन को लगा कर साधक निश्चलता एवं सुखपूर्वक देर तक रह सके, वही उसके लिए उपयोगी है।

रुद्रयामल के २३ वें और २४ वें पटल में ६४ आसनों की संक्षिप्त चर्चा की गई है। उनमें से कुछ के तो मात्र नाम-निर्देश किये गये हैं। शिव-संहिता में ८४ आसन बताये गये हैं, जिनमें चार को उत्तम माना है। ये हैं-सिद्धासन, उग्रासन, स्वस्तिकासन और पद्मासन। इनमें मुक्त पद्मासन और बद्ध पद्मासन साधारणत: अधिक प्रचलित हैं। अनेक आसन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अवश्य प्रदान करते हैं, क्योंकि उनसे प्राणयाम और कुण्डलिनी-जागरण में सहायता मिलती है।[२]

सर्वप्रथम पाँच प्रमुख आसनों का वर्णन इस प्रकार है-

१. सिद्धासन-भारत में हमने सबसे निष्क्रिय आसन, सबसे शान्त मुद्रा विकसित की है-सिद्धासन। इसका सौंदर्य यह है कि सिद्धासन की मुद्रा में जिसमें बुद्ध बैठे हैं, शरीर गहनतम निष्क्रियता की अवस्था में होता है।[३]

सिद्ध का अर्थ है-'सिद्धिप्राप्त'। सिद्धयोगियों का यह प्रिय आसन है। अत: इसका नाम है-सिद्धासन। सिद्धासन में बाएँ पैर की एड़ी को सीवनी में (गुदा एवं उपस्थेन्द्रिय का मध्य भाग) दृढ़तापूर्वक लगाया जाता है, जिससे कि पैर का तलवा दाहिने पैर की जंघा को स्पर्श करता रहे। इसी तरह दाएँ पैर की एड़ी को उपस्थमूल के ऊपरी भाग में दृढतापूर्वक लगाकर उस तलवे से वाम जंघा को स्पर्श किया जाता है। तत्पश्चात् दोनो पैरों के अंगूठे एवं तर्जनी को

१. शिवसूत्र, पृ०-१५१-५२
२. सहज साधना, पृ०-८५
३. तंत्र-सूत्र, भाग-५ पृ०-२७७-७८ (विशेष राजसंस्करण)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जांघ एवं पिंडली के मध्य में दबाया जाता है। सिद्धासन में समस्त शरीर का भार एड़ी एवं सीवनी के मध्य की नस पर संतुलित रहना चाहिए। सिद्धासन एवं पद्मासन मुख्यतया आध्यात्मिक विकास में विशेष लाभदायक हैं।[१]

सिद्धासन सभी आसनों में श्रेष्ठ है। सिद्धासन इतना शांत क्यों होता है? कई कारण हैं। इस मुद्रा में शरीर की विद्युत-ऊर्जा एक वर्तुल में घूमती है। शरीर का एक विद्युतीय वर्तुल होता है; जब वर्तुल पूरा हो जाता है तो ऊर्जा शरीर में चक्राकार घूमने लगती है, बाहर नहीं निकलती।.. जब शरीर ऊर्जा को बाहर फेंकता है तो उसे लगातर ऊर्जा पैदा करनी पड़ती है, वह सक्रिय रहती है।.... सिद्धासन में शरीर न्यूनतम ऊर्जा बाहर फेंकता है; ऊर्जा संरक्षित रहती है। जब ऊर्जा संरक्षित होती है तो आंतरिक यंत्रों को कार्य नहीं करना पड़ता, किसी क्रिया की कोई जरूरत ही नहीं रहती। इसलिए शरीर अक्रिय होता है। इस अक्रियता में साधक, सक्रिय अवस्था से अधिक रिक्त हो सकता है। सिद्धासन में रीढ़ की हड्डी और पूरा शरीर सीधा होता है। ऐसे में साधक पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से न्यूनतम प्रभावित होता है।.... सिद्धासन में गुरूत्वाकर्षण-शक्ति न्यूनतम होती है। शरीर निष्क्रिय और क्रियारहित होता है, भीतर से बन्द होता है। स्वयं में एक संसार बन जाता है। न कुछ बाहर जाता है, न कुछ भीतर आता है। आंखें बन्द हैं, हाथ जुड़े हुए हैं, पाँव जुड़े हुए हैं-ऊर्जा वर्तुल में गति करती है। और जब भी ऊर्जा वर्तुल मे गति करती है। और जब भी ऊर्जा वर्तुल में गति करती है, वह एक आंतरिक लय, एक आंतरिक संगीत निर्मित करती है।[२] साधक जितना उस संगीत को सुनता है, उतना ही वह विश्रांत अनुभव करता है।

२. पद्मासन–प्राणवायु की सिद्धि के लिए यह आसन करना चाहिए।[३] पद्मासन की विधि[४] इस प्रकार है–वाम चरण को दक्षिण जंघामूल में और दक्षिण चरण को वाम जंघामूल में ऐसे लगावें कि नाभि के नीचे पेडू के मध्य में दोनों एड़ियाँ आ जुड़ें और दोनों पाद-तल कमलपत्रवत् दोनों जांघो पर ठहर जाएँ। अब मेरूदण्ड, ग्रीवा, सिर को सीधा रखकर दक्षिण हाथ को दक्षिण एड़ी पर और वाम हस्त को वाम एड़ी पर 'ज्ञान-मुद्रा' या ब्रह्माञ्जलि बनाकर रखें, जिससे दोनों जानु समरूप से भूमि से मिले रहें, दृष्टि को नासाग्र पर स्थिर करके शान्त बैठ जाएँ।

३. बद्ध पद्मासन–घेरण्डसंहिता में इसे भी पद्मासन ही कहा गया है।[५] सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर, दोनों हाथों को पीठ की ओर से फिराकर दाएँ हाथ से दायें पैर का अँगूठा एवं बाएँ हाथ से बाएँ पैर का अंगूठा दृढ़ता से पकड़ लें। दोनों स्कन्ध सीधा रहे एवं पूरक करके नासाग्र दृष्टि रखें। यह आसन सभी प्राणियों की सिद्धि का कारण है।[६]

---

१. पातञ्जल योगसूत्र का विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन, पृ०-१४१
२. तंत्र-सूत्र, भाग-५ पृ०-२७८-७९ (विशेष राजसंस्करण)
३. रुद्रयामल उ०त०, २३/२६
४. बहिरङ्गयोग, पृ०-७८ (रुद्रयामल उ०त० धर्म और दर्शन, पृ०-११६ पर संदर्भित)
५. घेरण्ड संहिता, २/८
६. रुद्रयामल उ०त०, २३/२७-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. **वीरासन**—इसे अर्ध पद्मासन भी कहते हैं। इसमे एक पाँव एक उरू के ऊपर रहता है तथा दूसरा दूसरी उरू के नीचे पृथ्वी पर स्थित रहता है।[१] समकाय होकर दोनों भुजाओं को आधा फैलाकर, हाथों को 'ज्ञानमुद्रा' में बाँधकर दोनों घुटनों पर स्थापित कर दें।[२] वीरासन में वीर साधक यौगिक-प्रक्रिया द्वारा वायु की धारण करते हैं। जो इस प्रक्रिया को जानता है, वह महावीर योगी की अवस्था को प्राप्त होता है।[३]

५. **स्वस्तिकासन**—यह आसन सभी के स्वभाव-सिद्धि का साधन है। बाएँ पाद तल के ऊपर दाएँ पैर रखकर इस आसन का आरम्भ करना चाहिए। यह आसन नारी-रमण के सदृश सुखदायक है।[४] इसकी विधि इस प्रकार है–

उभे कृत्वा पादतले जानूवौर्रन्तरेण हि।
समासीत्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम्।।[५]

अर्थात्-वाम पाद को मोड़कर दक्षिण जंघा एवं उरू के मध्य स्थापित करके तथा दक्षिण पैर को वाम जंघा एवं उरू के मध्य में स्थापित करके सीधे बैठने से स्वस्तिकासन सिद्ध होता है।

रुद्रयामल उत्तरतंत्र में वर्णित अन्य आसनों[६] के नाम हैं–

उत्तमाङ्गासन,	अधोमुण्डासन,	आनन्दमंदिरासन,	अपानासन,	अर्धोदयासन,
कार्मुकासन,	कुक्कुटासन,	कोकिलासन,	कुञ्जरासन,	कुम्भीरासन,
कूर्मासन,	कुल्यासन,	खगासन	खेचरासन,	खञ्जासन,
गदासन,	गरूड़ासन,	ग्रन्थिभेदासन,	चन्द्रासन,	जात्यासन,
दिव्यासन,	पवनासन,	पर्वतासन,	पाशवासन,	प्राणासन,
भेकासन,	भल्लूकासन,	मुण्डासन,	मत्स्यासन,	मयूरासन,
मालासन,	योगासन,	योन्यासन,	बन्धयोन्यासन,	लोलासन,
लक्ष्यासन,	वर्तुलासन,	सर्पासन,	समानासन,	सर्वाङ्गासन,
सिंहासन,	स्कन्धासन,	हंसासन,	क्षेमासन,	ब्राह्मणासन,
क्षत्रियासन,	वैश्यासन,	शूद्रासन,	ज्ञानासन आदि।	

(iv) प्राणायाम

कुण्डलिनी-योग की साधना में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका प्राणयाम की है। शरीर में तीन ऐसी चीज़ें हैं, जो परम शक्तिशाली हैं, पर चंचल होने के कारण वे मनुष्यों के काम नहीं आ

१. पातञ्जल योगसूत्र का विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन, पृ०-१४०
२. रुद्रयामल उ०त०:धर्म और दर्शन, पृ०-११८
३. रुद्रयामल उ०त०, २३/७४
४. वही, २३/३२-३३
५. योगसारसंग्रह आसन-प्रकरण
६. रुद्रयामल उ०त०, २३वाँ एवं २४ वाँ पटल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहीं। पहली और प्रधान वस्तु है–बिन्दु अर्थात–शुक्र। इसको यदि ऊपर की ओर उठाया जा सके तो बाँकी दो भी स्थिर होते हैं। बाँकी दो हैं–वायु और मन। हठयोगी का सिद्धान्त है कि इनमें से किसी एक को भी यदि वश में कर लिया जाए जो दूसरे दो स्वयमेव वश में हो जाते हैं।[१]

श्वास–क्रिया एक सतत् प्रवाह है, उसमें अन्तराल सम्भव नहीं है। यही कारण है कि श्वास लेने का जिम्मा व्यक्ति का नहीं है, नहीं तो मुश्किल हो जाए। तो श्वास व्यक्तितत्त्व का एक अचल तत्त्व है। दूसरी बात, वह जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक और आधारभूत है। इसलिए भारत में इसे प्राण कहते हैं। श्वास और जीवन दोनों के लिए हमने यह शब्द प्राण रखा है। प्राण का अर्थ है–जीवन–शक्ति, जीवन्तता। व्यक्ति का जीवन उसका श्वास है। तीसरी बात, श्वास व्यक्ति और उसके शरीर के बीच सेतु है। श्वास के दो बिन्दु हैं, दो छोर हैं। एक छोर है जहाँ पर वह शरीर और विश्व को छूती है, और दूसरा छोर है जहाँ व्यक्ति और विश्वातीत को छूती है, और हम श्वास के एक ही हिस्से से परिचित हैं। जब वह विश्व में, शरीर में गति करती है, तभी हम उसे जानते हैं, लेकिन वह सदा ही से अशरीर में और अशरीर से शरीर में संक्रामण कर रही है। इस दूसरे बिन्दु को हम नहीं जानते हैं।[२] 'अगर साधक इस दूसरे बिन्दु को जान जाए तो वह एकाएक रूपांतरित होकर एक दूसरे ही आयाम में प्रवेश कर जाए।

प्राणायाम के द्वारा लघुता या लाघव प्राप्त होता है। हमलोग जो साँस लेते हैं, वह स्थूल वायु है, वह प्राणवायु का बाहरी रूप है। स्थूल वायु के नियमन से सूक्ष्म प्राणवायु का भी नियमन होता है। इसी प्रक्रिया को प्राणायाम कहते हैं।[३] प्राणायाम शब्द में आयाम शब्द का अर्थ है– दैर्ध्य, परिणाट्ट और विशालता, अर्थात् इसका उद्देश्य प्राणवायु को लम्बा, फैला हुआ और विशाल बनाना है। स्थूल प्राणवायु इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों से चलता रहता है और सूक्ष्म प्राणवायु सुषुम्ना मार्ग से चालित होता है। यह सूक्ष्म प्राणशक्ति कुण्डलिनी के द्वारा षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में लय हो जाती है। जब प्राण सुषुम्ना–मार्ग में संचालित होता है, तब मन स्थिर हो जाता है और जब चित्त सुषुम्ना में जाग्रत होता है, तब प्राण गतिहीन हो जाता है। ओंकार–साधना और अजपा–जाप दोनों ही प्राणायाम से ही सधित होते हैं।[४] शरीर में प्राणवायु की उपस्थिति ही जीवन और उसका निष्क्रमण मृत्यु है। जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के शोधन से नाड़ियों का मल समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा सुषुम्ना–स्थित मल की शुद्धि होती है।[५]

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार आसन–स्थैर्य के बाद श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध को प्राणायाम कहते हैं– 'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'[६]

---

१. नाथ सम्प्रदाय, पृ०–१३९
२. तंत्र–सूत्र, भाग–१, पृ०–४८ (विशेष राज संस्करण)
३. सहज–साधना, पृ०–८९
४. गोरखनाथ, पृ०–६५
५. हठयोग प्रदीपिका, २/६
६. पातञ्जलयोगदर्शनम्, २/४९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राणयाम के तीन भेद हैं-रेचक, पूरक और कुम्भक। इसे क्रमशः बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति, और स्तम्भवृत्ति भी कहा जाता है। जब प्रश्वासपूर्वक गति का अभाव किया जाता है, तब उसे रेचक प्राणायाम कहते हैं। जब श्वासपूर्वक गतिरोध किया जाता है, तो वह पूरक प्राणायम कहलाता है। कुम्भक प्राणायाम में एक ही बार के विधारक प्रयत्न द्वारा, प्राण की बाह्य एवं आभ्यन्तर उभयवृत्तियों का रोध किया जाता है। अपने शरीर में भरे हुए वायु का निग्रह करके पूर्ण कुम्भवत् स्थिर रहने के कारण, इसे कुम्भक कहते हैं। उपर्युक्त तीनों प्राणयाम पुनः देश-परिदृष्ट, काल-परिदृष्ट एवं संख्या-परिदृष्ट के भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं।[१] उपरोक्त तीनों प्राणायाम 'सहित प्राणायाम' कहलाते हैं। अर्थात इस प्रकार पूरक के पश्चात-कुंभक, फिर रेचक या रेच्रक के बाद पूरक, तत्पश्चात् कुंभक किया जाता है।[२] इस प्रकार तीनों प्राणायामों का अभ्यास सम्मिलित रूप से किया जाता है।

रुद्रयामल में प्राणायाम के सम्बन्ध में कहा गया है कि पूरक को अधिक काल तक और कुम्भक को स्वल्प काल तक नहीं सम्पन्न करना चाहिए। प्रणायाम धीरे-धीरे करना चाहिए और किसी तरह के संघात से बचना चाहिए। शुक्ल पक्ष में पूरक का आरम्भ इड़ा (बाँई नासिका) नाड़ी से और कृष्ण पक्ष में पिङ्गला (दक्षिण नासिका) से करना चाहिए। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया एवं तृतीया तिथियों में दक्षिण नासिका में वायु की स्थिति समझनी चाहिए। चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी तिथियों मे वायु की स्थिति वाम नासारन्ध्र में जाननी चाहिए। पुनः सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी में वाम; दशमी, एकादशी एवं द्वादशी में दक्षिण तथा त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णमासी में वाम नासिका में वायु की स्थिति समझनी चाहिए। इसी तरह कृष्ण-पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, में दाँई; चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी में बाँई, सप्तमी, अष्टमी, नवमी में दाँई, दशमी, एकादशी, द्वादशी में बाँई तथा त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णमासी में दाँई नासिका छिद्र में वायु की अवस्थिति होनी चाहिए।[३] शरीर और मन की स्थिरता तक प्राणायाम करना चाहिए। जिसमें पसीने का उद्‌गम हो, वह अधम, कम्पनवाले को मध्यम तथा जिसमें भूमि छोड़ने का अभ्यास हो, वह 'पर' प्राणायाम कहलाता है। छःमाह के अभ्यास से साधक सुदूर तक का श्रवण करने वाला तथा भूतदर्शी होता है। एक साल के अभ्यास से योग-विद्या का प्रकाशन होता है।[४]

भौतिक विज्ञान का विद्युत-तत्त्व महत्त्वपूर्ण है, जिसे सब केवल एक गति के रूप में जानते हैं। समस्त परमाणुओं की अनवरत एक दिशा में गतिशील अवस्था ही वैद्युत गति है। यदि किसी स्थान में स्थिर समस्त वायु-परमाणु अविच्छिन्न एक ही ओर प्रवर्तित किये जाएँ तो वह स्थान महान् विद्युदाधार यंत्र (बैटरी) वत् बन जाएगा। प्राणायाम में भी श्वास-प्रश्वास को नियन्त्रित करके समस्त शरीर-परमाणुओं में एकाभिमुखी गति उत्पन्न की जाती है। जब

१. वही, २/५०
२. योगसारसंग्रह, पृ०-६७
३. रुद्रयामल उ०त०, २७/४-१६
४. वही, २७/२०-२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब ओर भागने वाला मन एकाग्र होकर सबल संकल्प-शक्ति में परिवर्तित होता है, तब स्नायु-प्रवाह में भी विद्युतवत् गति उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास केन्द्र को अधिकृत करके उसकी सहायता से शेष केन्द्रों को भी नियंत्रित किया जाता है। योगोक्त प्राणायाम-साधना का उद्देश्य मूलाधारस्थ कुण्डलिनी को जागृत करना है। मूलाधार समस्त शक्तियों का आगार है। इस शक्ति को कुण्डलिनी जागृत करके सहस्रार में पहुँचाना ही योग से साध्य है। जब कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर श्रेणीभूत षट्चक्रों को एक-एक कर भेदन करती हुई ऊर्ध्वगमन करती है, तो उत्तरोत्तर दिव्य-ज्ञान का उद्घाटन और अनुभूत शक्तियों का स्फुरण होता है। अन्त में षट्चक्र-भेदन के पश्चात् कुण्डलिनी सहस्रार में प्रविष्ट हो जाती है, तब योगी उपने नित्य मुक्त स्वभाव की उपलब्धि करके आनन्द-विभोर हो जाता है।[१] इसलिए विज्ञान भैरव में कहा है[२]–"कुम्भक, रेचक, पूरक अर्थात् श्वास रोकने, निकालने और भरने के क्रम का अन्त होने पर और इनके नाम मात्र की स्थिति तक शान्त हो जाने पर एक शान्त शक्ति का उदय होता है। मूलाधार से निकलकर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई अपनी किरणों के अभ्यास का सहस्रार में चिन्तन करने से शमन करने वाला भैरवभाव उदित होता है। ऊपर उठती हुई बिजली के समान (यह सूक्ष्म भैरव-शक्ति) प्रत्येक चक्र को क्रम से पार करती हुई ऊपर (हृदय चक्र से ऊपर) बारह अंगुल तक जाती है। उसके बाद महाशक्ति उदित होती है।"

(v) प्रत्याहार

इन्द्रियों का अपने-अपने विषय से असम्बद्ध रहने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण जैसा करना प्रत्याहार कहलाता है–

'स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः'।[३]

प्रत्याहार=प्रति+आहार, प्रति=प्रतिलोम, विपरीत भाव। प्रत्याहार-साधना में स्वभावतः बहिर्मुखी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से विमुख करके अन्तर्मुखी बनाई जाती हैं, अतः उसे प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार का वर्णन भगवत् गीता में इस प्रकार है–

---

१. पातञ्जल योगसूत्र का विवेचनात्मक ओर तुलनात्मक अध्ययन, पृ०-१५७-५८

२. विज्ञान भैरव, धारणा-२७-२९

कुम्भिता रेचिता वापि पूरति वा यदा भवेत्।
तदन्ते शान्तनामासौ शक्त्या शान्तः प्रकाशते।।
आमूलात् किरणाभासां सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरात्मिकाम्।
चिन्तयेत् तां द्विषट्कान्ते शाम्यन्तीं भैरवोदयः।।
उद्गच्छन्तीं तड़िद्रूपा प्रतिचक्रं क्रमात्क्रमम्।
ऊर्ध्व मुष्टित्रयं यावत् तावदन्ते महोदयः।।

३. पातञ्जल योगदर्शनम्, २/५४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। (२/५८)

प्रत्याहार के लिए प्रयास की जरूरत नहीं पड़ती। इन्द्रिय-व्यापार चित्त की गति के अधीन है। वस्तुतः यम, नियम आदि के अनुष्ठान से चित्त बाह्य विषयों से विरत हो चुकता है। अतः इन्द्रियाँ भी स्वतः विषयों से प्रत्याहृत हो जाती हैं। विषयों की इस असम्पृकतावस्था में चित्त का जैसा स्वरूप होता है, उसका इन्द्रियाँ अनुकरण-सा करती हैं, वास्तव में अनुकरण नहीं करतीं। कारण, चित्त बाह्यविषयों से विमुख होकर आत्मतत्त्वाभिमुखी होता है, किन्तु इन्द्रियाँ केवल बाह्य विषयों से विमुख होती हैं, चित्त के समान अन्तराभिमुख नहीं होतीं। अतः प्रत्याहार इन्द्रियों का धर्म है, चित्त का नहीं। प्रत्याहार से इन्द्रियों को वश में करना सम्भव होता है।[1]

विवेच्य ग्रन्थ में भी प्रतयाहार की कमोवेश यही परिभाषा है। कहा गया है कि (विविध) विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों का प्रवाह त्याग कर बलात् उन्हें विषयों से विमुख कर देना प्रत्याहार कहलाता है।

इन्द्रियाणां विचरतां विधाय किल वर्द्धनम्।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते।।[2]

अन्य किसी कर्म में, धर्म में या शास्त्र-धर्म में भी योगी का ध्यान न हो। विषयों में व्यस्त चित्त को आकृष्ट कर इष्ट के चरण-कमल में ध्यान लगाना चाहिए, क्योंकि चित्त का विषयों से पृथक्करण और विषयों में इसकी गति को निरूद्ध करना अत्यन्त ही दुष्कर है। अतः बलात् उसका आहरण करना चाहिए। यही प्रत्याहार है।[3]

यहाँ यह स्मर्तव्य है कि सवेच्छा पूर्वक इन्द्रिय-निग्रह करना ही उक्त प्रत्याहार है। इन्द्रियों के स्वविषयग्रहणत्यागमात्र को प्रत्याहार नहीं कहा जा सकता है। यों तो उनमादी, मृगी-रोगी को भी एक प्रकार का प्रत्याहार होता है। सम्मोहित व्यक्ति (हिपनोटाइज्ड) को तो अच्छी तरह प्रत्याहार होता है, उन्हें लवणयुक्त पदार्थ को मधुर कहकर दिया जाय, तो वे मीठे का ही स्वाद पाते हैं। किन्तु उक्त अवस्थाएँ विवश अवस्थाएँ हैं। योगाङ्गीभूत प्रत्याहार पूर्णस्ववश अवस्था है। इन्द्रियों को निगृहीत करके उन्हें स्वेच्छानुवर्तिनी बना लेना ही प्रत्याहार-साधना है।[4]

(vi) धारणा

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहारादि से जब चित्त-चाञ्चल्य सम्यक्रूपण निवृत्त हो जाय, तब उसे किसी देश-विशेष में बाँधना अर्थात् स्थिर करना धारणा कहलाता है-

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'।[5]

---

१. सहज साधना, पृ०-८१
२. रुद्रयामल उ०त०, २७/२६
३. वही, २७/२७-२८
४. पातञ्जलयोग सूत्र का विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन, पृ०-१६१
५. पातञ्जलयोगदर्शनम्, ३/१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देश से अभिप्राय यहाँ बाह्य-आभ्यन्तर आध्यात्मिक देशों से है। ये देश मूलाधार आदि षट्-चक्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, भ्रू-मध्य तथा चन्द्र, सूर्य, ध्रुव आदि हैं। इन देशों में चित्तवृत्ति को स्थिर करने को नाम धारणा है। नाना विषयों में विक्षिप्त चित्त को बलपूर्वक किसी एक ही वस्तु पर बाँधने को धारणा कहते हैं।[१] जहाँ-जहाँ मन की तुष्टि हो, वहाँ ही मन धारणा में लगाना चाहिए, वहाँ-वहाँ ही परमानन्द-स्वरूप का आविर्भाव होता है।[२]

प्रकृत ग्रन्थ के अनुसार अंगूठा, टखना, घुटना और जंघा की सीमाओं पर, लिङ्ग एवं नाभि में, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, जिह्वा, नाक, भ्रू-मध्य, सिर आदि पर विधिपूर्वक प्राणवायु को धारण करना धारणा कहलाता है। सभी नाड़ियों के ग्रंथि-देशों पर, षट्चक्रों पर, देवस्थानों पर ब्रह्ममार्ग पर चित्त को स्थिर करना धारणा है। मूलाधार चक्र पर, नासिकाग्र पर चित्त को स्थिर करना तथा प्राणवायु का प्रशमन धारणा कहलाता है। वहाँ इष्ट देवता के मङ्गलचरण पर, उनके चारू तेज पर चित्त को भावपूर्वक स्थापित करने से धारणा-शक्ति की प्राप्ति होती है।[३]

योगसारसंग्रहकार ने धारणा का काल द्वादश आयाम बतलाया है-'धारणा द्वादशायामा'। अर्थात् जितनी देर से द्वादश आयाम (प्राणायाम) होते हैं, उतनी देर तक पूर्वोक्त देशों में जब चित्त स्थिर रहे, तब उसे धारणा कहते हैं।

(vii) ध्यान

ध्यान का अर्थ है-अभी और यहाँ, भूत और भविष्य का अलगाव; वह अवस्था जब अ-मन की दशा हो, हम इसे एक विश्राम, शान्ति, विराटता, वर्तमान क्षण के रूप में जानते हैं।[४] ध्यान है पर्दा हटाने की कला और यह पर्दा बाहर नहीं है, यह पर्दा व्यक्ति के भीतर पड़ा है। पर्दा बुना है विचारों से। अच्छे विचार, बुरे विचार के ताने-बानों से पर्दा बुना है। निर्विचार दशा का नाम है ध्यान।[५]

ध्यान है बीज....बीजावधानम्।[६]

बीज तो एक साधन है। बीज तो वृक्ष होने की सम्भावना है। बीज कोई स्थिति नहीं, बीज तो यात्रा है। जैसे बीज वृक्ष तक पहुँचकर सफल हो जाता है; क्योंकि फिर फल लग आते हैं, फूल लग आते हैं-वही सफलता है; ऐसे ही ध्यान का बीज जब वृक्ष बन जाता है और फल-फूल लग जाते हैं-वही परमात्मा है।[७]

---

१. सहज साधना, पृ०-८१
२. विज्ञान भैरव, धारणा-७३, यत्र यत्र मनस्तुष्टिर्मनस्तत्रैव धारयेत्।
तत्र तत्र परानन्दस्वरुपं संप्रवर्तते।।
३. रुद्रयामल उ०त०, २७/३२-३६
४. ओशो दर्शन, vol-4, No-2, अक्टूबर-दिसम्बर, १९९२
५. वही, vol-4, No.4 अप्रैल-जून-१९९३
६. श्री शिवसूत्र व्याख्या-३/१६
७. शिवसूत्र, पृ०-१४३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान भीतर का स्नान है। जैसे शरीर ताजा हो जाता है स्नान के बाद, धूल, कूड़ा-करकट शरीर से बह जाता है, स्वच्छता आ जाती है-ऐसा ही ध्यान भीतर का, अन्तरात्मा का स्नान है; और भीतर जब सब ताजा हो जाता है, तब कैसी अशांति, तब कैसा दु:ख, कैसी चिन्ता।[१] तब साधक प्रफुल्लित होता है। ध्यान का अर्थ है-जहाँ मन न के बराबर रह जाए। समाधि का अर्थ है-जहाँ मन बिल्कुल शून्य हो जाए।[२] ध्यान का अर्थ है-अपने पर ध्यान है, दूसरे पर नहीं। मन का अर्थ है-दूसरे पर ध्यान।[३] ध्यान महाप्रलय है। उसमें 'मैं' खो जाता है। हमारे भीतर का सब शून्य हो जाता है।[४]

ध्यान अभियान है-सबसे बड़ा अभियान जिस पर मनुष्य का मन निकल सकता है। ध्यान है बस होना-कुछ भी न करते हुए-कोई क्रिया नही, कोई विचार नहीं, कोई भाव नहीं।. ....और यह एक खालिस आनन्द है।[५] ध्यान का अर्थ है-होश। साधक जो कुछ भी होशपूर्वक करता है, वह ध्यान है। कर्म क्या है, यह प्रश्न नहीं, किन्तु गुणवत्ता जो वह कर्म में ले आता है, उसकी बात है। चलना ध्यान हो सकता है....सुनना ध्यान हो सकता है, यदि साधक जाग्रत और साक्षी रह सके। आप कोई भी काम करते हुए ध्यान कर सकते हैं, जैसे-आप बस में बैठे हों या गाड़ी चला रहे हों।[६] यदि आपके पास यह (ध्यान) अद्‌भुत चीज़ है, जो आपके जीवन में निरन्तर कार्यरत है, तो यह सब कुछ है; तब आप ही गुरू हैं, शिष्य हैं, पड़ोसी हैं, बादलों का सौन्दर्य है-आप यह सब कुछ हैं, और यही प्रेम है।[७]

ध्यान एक ऐसा रहस्य है, जिसे बिना किसी विरोधाभास के एक विज्ञान, एक कला, एक गुर कहा जा सकता है। एक ओर से यह एक विज्ञान है क्योंकि एक सुस्पष्ट विधि को करना होता है। उसमें कोई अपवाद नहीं होते, यह लगभग एक वैज्ञानिक नियम की भांति हैं। परन्तु एक भिन्न दृष्टिकोण से इसे एक कला भी कहा जा सकता है। विज्ञान मन का एक विस्तार है-वह गणित है, तर्कयुक्त है, तर्कसंगत है। ध्यान का सम्बन्ध हृदय से है, मन से नहीं-वह तर्क नहीं करता, वह तो प्रेम के अधिक करीब है। वह अन्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसा नही, बल्कि संगीत, काव्य, चित्रकारी, नृत्य जैसा है,, अत: उसे एक कला कहा जा सकता है। लेकिन ध्यान इतना बड़ा रहस्य है कि उसे 'विज्ञान' और 'कला' कहने से उसका समापन नहीं होता। वह तो एक गुर है-या तो साधक उसे पा लेता है या नहीं पाता। गुर कोई विज्ञान नहीं है, वह सिखाया नहीं जा सकता। गुर कोई कला भी नहीं है। गुर मानवीय समझ की एक सर्वाधिक रहस्यपूर्ण घटना है।[८]

---

१. शिवसूत्र, पृ०-१४४
२. वही, पृ०-१४५
३. वही, पृ०-१४७
४. ओशो टाइम्स, १-३१ जनवरी, १९९५, पृ०-१२
५. ध्यानयोग: प्रथम और अंतिम मुक्ति, पृ०-२
६. हिंसा से परे, पृ०-८०
७. वही, पृ०-८१
८. ध्यानयोग: प्रथम और अंतिम मुक्ति, पृ०-३०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पातञ्जल योग के अनुसार 'धारणा' से जब चित्त कुछ स्थिर हो जाता है, तब उसे ध्येयाकार चित्तवृत्ति का निरन्तर एक-रस प्रवाह ध्यान कहलाता है—'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'।[१] जिस वृत्तिमात्र से चित्त धारणाकाल में ध्येय से सम्बद्ध होता है, वह वृत्ति जब अविच्छिन्न गति से भासित होने लगे, तब वही ध्यान कहलाती है। धारणा में इस वृत्ति का धारा-प्रवाह प्रत्ययान्तरों (अन्य वृत्तियों) की उत्पत्ति होने से खंडित भी होता रहता है। ध्यानावस्था में यह धाराप्रवाह अविरल गति से प्रवाहित होता है। चैतन्य से भिन्न पदार्थों में विचरण करने वाले मन को समाहित करके अपनी आत्मा में इष्ट देवता का ध्यान करना 'ध्यान' कहलाता है।[२]

निरपेक्ष रूप से ध्यान को समझने के लिए साधारण विचारणा, मनन, एकाग्रता और ध्यान के अन्तर को समझना जरूरी है। साधारण विचारणा दिशारहित है, अस्पष्ट है, कहीं जाता हुआ नहीं है। फ्राइडवादियों की भाषा में उसे 'एसोसिएशन' कहा जाता है। एसोसिएशन के कारण एक विचार अपने आप ही दूसरे विचार पर चला जाता है। और व्यक्ति उसके साथ बह रहा है। विचार तब मनन बनता है, जब वह एसोसिएशन के कारण नहीं, बल्कि निर्देशन से चलता है। अगरि वयक्ति विशेष समस्या पर काम कर रहा है तो वह सब एसोसिएसन की श्रृंखला को अलग कर देता है और उसी समस्या के साथ गति करता है। विज्ञान मनन पर आधारित है। कोई भी तार्किक विचारणा मनन है। उसमें विचार निर्देशित है, दिशाबद्ध है। सामान्य विचारणा तो व्यर्थ है। मनन तर्कपूर्ण है, बुद्धिपूर्ण है।

एकाग्रता एक बिन्दु पर ठहर जाना है।..... सामान्य विचारणा में मन पागल की तरह गति करता है। मनन में पागल मन निर्देशित हो जाता है, उसे जहाँ-तहाँ जाने की छूट नहीं है। एकाग्रता में मन को गति की ही छूट नहीं रहती। ....सारी ऊर्जा, सारी गति एक बिन्दु पर स्थिर हो जाती है। योग का सम्बन्ध एकाग्रता से है।.....योगी का चित्त अपने चिन्तन को एक बिन्दु पर केन्द्रित रखता है, वह उसे गति नहीं करने देता। और फिर है ध्यान। ध्यान अ-मन की दशा है। उसमें एकाग्रता के लिए भी गुंजाइश नहीं है, मन के होने की ही गुंजाइश नहीं है। यही कारण है कि ध्यान को मन से नहीं समझा जा सकता। एकाग्रता तक मन की पहुँच है। .... एकाग्रता में मन को एक बिन्दु पर रहने दिया जाता है, ध्यान में वह बिन्दु भी हटा लिया जाता है।....साधारण विचारणा मन की साधारण दशा है, ध्यान उसकी उच्चतम सम्भावना है।[३] मन का अर्थ है विचारना और अ-मन का अर्थ है निर्विचार, और मन सहयोगी हो सकता है। अगर विचार की प्रक्रिया गहरी होती जाए तो व्यक्ति मन से अधिक मन की ओर बढ़ेगा और अगर विचार करने की प्रक्रिया क्षीण हो जाए, विरल होती जाए, तो व्यक्ति अ-मन की ओर बढ़ने में अपनी मदद करेगा। इसलिए साधारण विचार से मनन पर जाना अच्छा है, वह क्रमिक विधि है। मनन से एकाग्रता पर जाना अच्छा है, वह क्रमिक विधि है और एकाग्रता से ध्यान

१. पातञ्जलयोगदर्शनम्, ३/२
२. रुद्रयामल उ०त०, २७/३८
३. तंत्र-सूत्र, भाग-१, पृ०-१९५-९६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर छलांग लगाना अच्छा है।....इसलिए सामान्य विचार, मनन, एकाग्रता और ध्यान ये चार चरण हैं, चार कदम हैं।[१] सामान्य व्यक्ति साधारण विचारणा की स्थिति में है। पातञ्जल योगोक्त धारणा और ध्यान क्रमशः मनन ओर एकाग्रता ही हैं।

अस्तु! ध्यान स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार का कहा गया है। साकार ध्यान स्थूल और निराकार ध्यान सूक्ष्म कहा जाता है।[२] योगतत्त्व उपनिषद् के अनुसार सगुण (साकार) रूप का ध्यान करने पर अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और निर्गुण के ध्यान से समाधि की प्राप्ति होती है। निर्गुण ध्यान ही मोक्ष की प्राप्ति का साधन है।[३] ध्यानयोग से मोक्षत्व उपलब्ध होता है।[४] घेरण्ड-संहिता के अनुसार ध्यान तीन प्रकार का होता है–स्थूल, ज्यार्तिमय और सूक्ष्म। स्थूल ध्यान में चित्त में इष्ट देवता का ध्यान किया जाता है। ज्योतिर्ध्यान के अन्तर्गत मूलाधारस्थ कुण्डलिनी से सम्बद्ध दीपक की ज्योति के समान तेजोमय जीवात्मा का ध्यान किया जाता है और सूक्ष्म ध्यान में सहस्रार स्थित ब्रह्मकुण्डलिनी के महाबिन्दु का ध्यान किया जाता है।[५] इन ध्यानों में सबसे श्रेष्ठ सूक्ष्म ध्यान है।[६] धाम (मुख्य नाड़ी) के अन्त में ध्यान के आघात से उत्पन्न तिल की आकृति के सूक्ष्म तेजबिन्दु में ध्यान को केन्द्रित करते हुए शिखा-स्थल के अन्त में स्थित सहस्रार-चक्र में ध्यान करने से लय की स्थिति प्राप्त होती है।[७] ध्यान के अभ्यास से साधक सर्वत्र गमन करने में समर्थ होता है। कुलागम के अनुसार ध्यानयोग से मोक्षत्व की प्राप्ति होती है। नखरूपी पराग में चित्रित देवी के युगल चरण-कमलों में मन को स्थिर करके महनीय इष्ट गुणों वाले उस पद्म का ध्यान करना चाहिए।[८]

(viii) समाधि

विषयों की दृष्टि से चित्त जब शून्य होता है और विषयी की दृष्टि से पूर्ण जाग्रत, तब समाधि उपलब्ध होती है। समाधि सत्य के लिए चक्षु है।[९] बेमौसम का फूल है समाधि, क्योंकि इस पृथ्वी पर मौसम ही कहाँ है समाधि के खिलने के लिए। इस पृथ्वी पर समाधि न खिले, यह तो बिल्कुल सामानय बात है; समाधि खिले, यही असामान्य है। यह पृथ्वी तो रेगिस्तान है, यहाँ हरियाली कहाँ, रसधार कहाँ? जब कभी उतर आती है तो बेमौसम का फूल है। नहीं होना था और हुआ, चमत्कार है। समाधि चमत्कार है।[१०]

---

१. वही, १९८-९९
२. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-४७
३. गोरक्ष-संहिता, पृ०-१२१ पर उद्धृत
४. रुद्रयामल उ०त०, २७/३७
५. घेरण्ड संहिता, ६/१/१६
६. वही, ६/२९
७. विज्ञान भैरव धारणा, ३७
८. रुद्रयामल उ०त०, २७/३७,३९
९. मैं कहता आँखन देखी, पृ०-३२४
१०. मरौ है जोगी मरौ, पृ०-४७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान जब निरन्तर अभ्यास के कारण स्वरूप-शून्य-सा होकर ध्येय के स्वरूपमात्र का प्रकाशक बनता है, तब समाधि कहलाता है-'तदेवार्थ मात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'[१]

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार समाधि दो प्रकार की है-सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। पातञ्जल योगसूत्र के प्रथम पाद में वर्णित सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि साध्य है, फल है, जबकि यहाँ यह साधन है, उपाय है। जहाँ तक संप्रज्ञात समाधि का सम्बन्ध है, वहीं तक योगांगों में से पाँच बहिरङ्ग और तीन अन्तरंग हैं। असम्प्रज्ञात समाधि के लिए तो आठों बहिरंग हैं। संप्रज्ञात समाधि की अवस्था में यद्यपि चित्तवृत्तियाँ निरूद्ध रहती हैं, तथापि संस्कार रहते हैं। असंप्रज्ञात समाधिं में संस्कार भी नहीं रहता। उस स्थिति में साधक धर्ममेघ नामक समाधि को प्राप्त होता है। जब विवेक-ख्याति रूप सात्त्विक वृत्ति निरूद्ध हो जाती है, तब वृत्तिरहित 'प्रसंख्यान' (=प्रकृति और पुरुष का विवेक साक्षात्कार) के प्रति भी जब आदरभाव नहीं होता तब उसे वह 'धर्ममेघ' समाधि प्राप्त होती है, जो विवेकख्याति का फल है।[२] उस समय केवल निरवच्छिन्न तत्त्व साक्षात्कार रूपी धर्ममेघ की धारासार वर्षा होती रहती है और योगी समस्त कलेशों और कर्मों से निवृत्त हो गया रहता है। पुरुष के लिए प्रकृति के कर्त्तव्य-भुक्ति और मुक्ति-समाप्त हो जाते हैं और पुरुष विशुद्ध (केवल भाव) स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। पुरुष के प्रति दोनों प्रकार के करणीय कर्म सिद्ध हो जाने से प्रकृति भी कृतकृत्य हो जाती है और अनादि काल का लिङ्गशरीर चूँकि प्रकृति का परिणाम होता है, इसलिए वह भी विरत हो जाता है और सारा सूक्ष्म शरीर (लिङ्गशरीर) तत्तद् उपादानों में लीन हो जाता है। यही योग का परम प्रतिपाद्य है।[३]

जैसा कि कहा जा चुका है कि तंत्रों मेंवर्णित योग कमोवेश हठयोग पर आधारित है, अतः हठयोग के अनुसार समाधि का वर्णन अपेक्षित है। समाधि-योग के साधक के लिए विद्या-प्रतीति, गुरू-प्रतीति, आत्म-प्रतीति और मन की प्रबुद्धता आवश्यक है। शरीर से मन को अलग करके परमात्मा के साथ एकाकार करना ही समाधि है।[४] समाधि में सभी तत्त्वों की सम अवस्था रहती है, निरूद्यमत्व और अनायास की स्थिति रहती है। इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिसमें शुभ-अशुभ कर्मों का त्याग हो जाता है, विश्वतोन्मुख अनन्त परम ज्योति का साक्षात्कार होता है। जब प्राण सम्यक् प्रकार से क्षीण हो जाय, मानस भी लय को प्राप्त हो जाय और जब समत्व की प्राप्ति हो जाय, तब कहा जाता है कि समाधि की प्राप्ति हो गई। इस समय अपना-पराया कुछ भी नहीं रहता। 'हठयोग-प्रदीपिका' में इस स्थिति के विभिन्न नाम राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या आदि बताये गये हैं।[५] यही मुक्तावस्था

---

१. पातञ्जलयोगदर्शनम्, ३/३
२. वही, ४/२९
३. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-१३६
४. घेरण्ड संहिता, ७/१
५. गोरखनाथ, पृ०-६६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इस समय 'मै ब्रह्म हूँ, अन्य नहीं', 'मैं ब्रह्म ही हूँ, शोक का भाजन नहीं हूँ,' 'सच्चिदानन्द रूप हूँ', 'परमात्मा रूप वाला नित्य मुक्त हूँ'–यह अनुभूति होती है–

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि बह्मौवाहं न शोक भाक।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान्।।[१]

समाधि के द्वारा ही मनुष्य पूर्ण योगी होता है। जीवात्मा और परमात्मा में समत्व की भावना आती है। अष्टांग लक्षणों वाली समाधि के द्वारा जीव और ब्रह्म का संयोग होने से साधक महाज्ञानी हो जाता है। समाधिस्थ योगी सहस्रार-स्थित चन्द्र में मन की भावना करता है। अष्टांग योग के अभ्यास के द्वारा मनुष्य योग के योग्य होता है और इस योग्यता से मोक्षत्व और अखंडित मन्त्रसिद्धि की भी प्राप्ति होती है। योगाभ्यासी 'भैरव' कहलाता है।[२]

घेरण्ड-संहिता में छः प्रकार के समाधि-योग की चर्चा की गई है।[३]–(क) शाम्भवी मुद्रा से सिद्ध होने वाला ध्यान-योग (ख) खेचरी मुद्रा द्वारा सिद्ध होने वाला नाद-योग (ग) कुम्भक प्राणायाम के द्वारा सिद्ध होने वाला रसानन्द योग (घ) योनि-मुद्रा द्वारा सिद्ध होने वाला लय-सिद्ध योग-समाधि (ङ) भक्तियोग-समाधि (च) राजयोग।

यहा कतिपय प्रमुख प्रकारों की चर्चा की जा रही है–

नादयोग-इसमें जिह्वा को ऊर्ध्वगत तालुमूल में (इतनी लम्बी पीछे की ओर करें जिससे वह भ्रूमध्य तक अन्दर ही अन्दर चली जाय) करके नाद की साधना की जाती है।[४] यह नाद अनाहत-चक्र से उत्थित होता है। यहीं से शब्द-ब्रह्म द्वारा अभिव्यक्त होता है और बुद्धि से युक्त होता है। यह अभिव्यक्ति-नाद फिर विशेष स्पन्द की ओर उन्मुख होता है, जो मध्यमा वाक् के रूप में प्रकट होता है। जब तक वह नाद वैखरी वाणी के रूप में नही प्रकट होता, तब तक स्थूल इन्द्रियों द्वारा सुनायी नही देता; किन्तु योगी जब अनेक बंधों और मुद्राओं से प्राण और अपान का संगम करा लेता है, तब वहीं इन ध्वनियों को सुनने लगता है। यही प्राण और नाद आगे बढ़कर बिन्दु के साथ मिल जाते हैं।[५] सर्वप्रथम योगी मुक्तासनस्थ होकर शाम्भवी मुद्रा के द्वारा दक्षिणकर्ण में ध्वनि का श्रवण करता है। इसके बाद सन्मुखी मुद्रा के द्वारा इन्द्रिय-द्वारों को बन्द करके तथा प्राणायाम की सहायता से उस ध्वनि को बन्द करके सुषुम्ना-मार्ग से उस ध्वनि को सुनने लगता है।[६] अनुभवी लोगों ने बताया है (हठ०-४-८३-८५) कि पहले तो शरीर के भीतर समुद्रगर्जन, मेघगर्जन, और भेरी-झर्झर आदि का-सा शब्द सुनाई देता है, फिर मर्दल, शंख, घंटा और काहल की-सी आवाज सुनाई देती है और अन्त में किंकिणी, वंशी और वीणा की झंकार सुनाई देने लगती है। परन्तु ज्यों-ज्यों साधक का चित्त स्थिर होता जाता है, त्यों-त्यों इन शब्दों का सुनाई देना बंद हो जाता है, क्योंकि उस समय आत्मा अपने स्वरूप में क्रमशः स्थिर होती जाती है और फिर तो बाह्य विषयों से उसकर सरोकार नहीं रह जाता।[७]

१. घेरण्ड संहिता, ७/४
२. रुद्रयामल उ०त०, २७/४०-४५
३. घेरण्ड-संहिता, ७/५-६
४. वही, ७/९
५. सहज साधना, पृ०-९२
६. द सर्पेन्ट पावर, पृ०-२२०-२२२
७. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-१४१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रसानन्दयोग[१]–इसका नियमित अभ्यास करने से अनाहत ध्वनि सुनायी देती है और मन में एक प्रकार की अखण्डज्योति का साक्षात्कार होता है, जो अन्त में परम विष्णु के रूप में परिणत हो जाती है।

लयसिद्धयोग[२]–इसमें साधक अपने को शक्ति और परमात्मा को शिवरूप में देखता है और शिव के साथ मिलन में लोकोत्तर शृंगार-सुख का अनुभाव करता है। वैष्णव साधकों के मधुर भाव की साधना से यह मिलता-जुलता है

भक्तियोग-समाधि[३]–इसमें इष्ट देवता का ध्यान तब तक किया जाता है, जब तक साधक के अंग-अंग से आनन्द गद्गद्, सात्त्विक भाव प्रकट नहीं होने लगता। उसके नेत्रों में अश्रु,शरीर में स्वेद, उत्कम्प और रोमांच होने लगते हैं।

राजयोग[४]–इसमें कुम्भक प्राणायाम के द्वारा साधक मन को मूर्च्छित करता है, इस अवस्था का नाम मनोमूर्च्छा है। सांसारिक विषयों से विरत करके वह अपने चित्त को भ्रू-मध्य स्थित आज्ञा-चक्र में निबद्ध करता है और इस प्रकार आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करता है।

शिव और शक्ति का सामरस्य ही कैवल्य अवस्था वाली सहज समाधि है। कुण्डलिनी मूलाधार में सुषुम्ना के प्रवेश मार्ग में, जिसे ब्रह्म-द्वार कहते हैं, अपना मुँह बन्द करके स्थिर रहती है। यह पायु और उपस्थ के मध्यवर्त्ती चतुरंगुल प्रमाण योनिकंद में सो रही है।[५] शक्ति कुण्डलिनी रूप में देह में स्थित है और शिव भी सहस्रार में विराजमान हैं। जन्म-जन्मान्तर के संचित मलों के भार से कुण्डलिनी दबी हुई है।[६] इसी कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए आसनों, कुम्भकों, बन्धों और मुद्राओं का भी अभ्यास किया जाता है, ताकि प्राणवायु सुषुमना मार्ग में प्रवेश करके ब्रह्म-रन्ध्र की ओर ऊपर उठे।[७] इसलिए कहा है कि सर्वप्रथम मूलाधार में मन को नियोजित करना चाहिए और गुदा तथा मेढ्र के बीच में स्थित शक्ति (कुण्डलिनी) को खींचकर जाग्रत करना चाहिए। सहस्रार स्थित शिव और इस शक्ति के एकीभाव का चिन्तन करना चाहिए। वहाँ से उद्भूत अमृतरस लाक्षरस के समान है। और यह सब षट्चक्रभेद के अनन्तर ही होता है। तब फिर शक्ति को मूलाधार तक लौटा लेना चाहिए। इसी प्रकार दिन-प्रतिदिन साधना का अभ्यास करने से एक दिन साधक समस्त जरामरण आदि दुःखों से मुक्त हो जाता है और भवबन्धन उसके लिए अवशेष नहीं रहता।[८]

वस्तुतः यह सृष्टि ही कुण्डली है। वह दो प्रकार की है-स्थूल और सूक्ष्म। साधारणतः स्थूलरूपा कुण्डलिनी को ही लोग जान पाते हैं, अज्ञान के बोझ से दबे रहने के कारण उसके सूक्ष्म रूप को नहीं जान पाते। सिद्धियाँ स्थूला कुण्डलिनी के ज्ञान से भी मिल जाती हैं, परन्तु

१-४ सहज-साधना, पृ०-९१
५. सहज साधना, पृ०-९३
६. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-१४५
७. सहज साधना, पृ०-९३
८. रुद्रयामल उ०त०, २७/७८-७२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वोत्तम ज्ञानरूपिणी-परासंवित् जो साक्षात् महेश्वरी शक्ति है, उसको पहचाने बिना परम पद नहीं मिलता। शक्ति जब उद्‌बुद्ध होकर शिव के साथ समरस हो जाती है-इसी को पिण्ड-ब्रह्माण्डैक्य भी कहते हैं-तो योगियों की कैवल्य अवस्थावाली सहज समाधि प्राप्त होती है, जिससे बढ़कर आनन्द और नहीं है। यह सब गुरू की कृपा से होता है, वेदपाठ से नहीं, ज्ञान से भी नहीं, वैराग्य से भी नहीं।[१]

जब शिव और शक्ति का सामरस्य होता है, तभी समाधि घटती है। यह अवस्था परम आनन्द की अवस्था है। इसलिए कहा है-अस्तित्त्व का आनन्द भोगना समाधि-सुख है-

लोकानन्दः समाधि-सुखम्।[२]

यद्यपि समाधि के अनुभव के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि जिसे अनुभूत होता है, वही जानता है, वह दूसरों को इसका अनुभव बता नहीं सकता। उसकी स्थिति गुड़-चखे गूँगे के समान हो जाती है। फिर भी उसे तरफ कुछ-कुछ इशारे किये जा सकते हैं। समाधि का पहला अनुभव ऐसा होता है, जैसे अंधेरे में अचानक दीया जल जाये, या जैसे बीमार मरता हो और अचानक कोई दवा लग जाये.....और जीवन की लहर, जीवन की पुलक फिर फैल जाये।[३] जैसे पतझड़ था और अचानक बसंत आ जाये। और जहाँ रूखे-सूखे वृक्ष थे, हरे हो जाएँ, लद जायें पत्तों से, फूल खिल जायें-ऐसा अनुभव है समाधि का प्रथम।

पन्थ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की संकरी गली,
बढ़ गए पग, किन्तु सहसा
और मन भी बढ़ गया
लोक-लीकों के सभी भ्रम, एक पल में ढह गए!

और जिसके भीतर प्रेम जगा या जिसके भीतर प्रकाश जगा, या जिसे नाद सुनाई पड़ा, फिर उसके पैर सहसा बढ़ जाते हैं। फिर भय नहीं पकड़ता। अब तक की सारी धारणाएँ, अब तक के सारे पक्षपात, अब तक सारे सिद्धांत, शास्त्र, ऐसे बह जायेंगें, जैसे वर्षा का पहला पूर आया नदी में और सब कूड़ा-करकट किनारों को ले गया-सब बह गया।

वह मधुर वेला प्रतीक्षा की मधुर अनुहार थी,
मैं चक्ति साभार थी,
कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी,

साधक चकित रह जाता है, विचार बन्द हो जाते हैं। सोचने का अवसर नहीं है। सोचने के पार कुछ घट रहा है। कहना कठिन है-कौन जीता, कौन हारा? क्योंकि वहाँ दो नहीं है। एक

---

१. सिद्धसिद्धान्त संग्रह, ४/३०-३२
२. श्री शिवसूत्र व्याख्या, १/१९
३. मरौ हे जोगी मरौ, पृ०-४३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ में हार है, क्योंकि मिट गये; दूसरे अर्थ में जीत है, क्योंकि परमात्मा हो गये। एक अर्थ में हार है बूँद की कि बूँद मिट गई, दूसरे अर्थ में जीत है कि बूँद सागर हो गई।

कल्पना जिसको सँजोई समाने ही पा गई

जितनी कल्पनाएँ सँजोई जाती हैं, सब छोटी पड़ जाती हैं सत्य के समक्ष।

वही घड़ी भी आ गई

छवि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई,

भरोसा नहीं आता कि मेरी ऐसी पात्रता!

कर सकी मनुहार भी कब

कहते कुछ न बना। स्वागत के दो शब्द न बोले जा सके.....।

मै स्वयं में खो गई,

और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे से रह गए

समाधि का पहला अनुभव, जैसे बिल्कुल ठगे गए, जैसे बिल्कुल लुट गये....। हारे कि जीते, पता नहीं, इतना भर पक्का है कि सीमाएँ टूट गईं, संकीर्णताएँ टूट गईं–उतरा पूरा आकाश। कबीर ने कहा है: बूंद में समुंद समाना.....। बूँद में समुद्र समा गया। सीमा में असीम आ गया, दृश्य में अदृश्य....। जो गोचर था उसके भीतर अगोचर खड़ा हो गया।

समाधि का पहला अनुभव इस जगत् का सर्वाधिक बहुमूल्य अनुभव है। और फिर अनुभव पर अनुभव हैं, कमल पर कमल खिलते चले जाते हैं। फिर कोई अंत नहीं है, फिर ऐसा कभी होता ही नहीं कि समाधि के अनुभव कम पड़ते हैं, बढ़ते ही चले जाते हैं। इसलिए परमात्मा को अनंत कहा है, कि उसका अनुभव कभी चुकता नहीं है।[1]

• • •

---

१. मरौ है जोगी मरौ, पृ०-४५-४६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चम अध्याय
रुद्रयामल और तत्त्वमीमांसा

परम तत्त्व–परमशिव (परशिव) या पराशक्ति

तंत्र को शिव का प्रकाशन कहा जाता है। इस अर्थ में तंत्र भी मूलत: 'प्रकाशित ज्ञान' कहा जा सकता है। किन्तु तंत्र की विशेषता यह है कि यहाँ सत्य को अनुभूत किये जाने पर आग्रह है तथा अनुभव द्वारा इसके सत्यापन की सम्भावना को भी माना गया है। भारतीय परम्परा में अनुभव के दो प्रकारों–सामान्य अनुभव (इन्द्रियानुभव) तथा उच्चतर अनुभव (अनुभूति) को माना गया है। तान्त्रिक परम्परा में दोनों प्रकार के अनुभवों में सामंजस्य स्थापित किया गया है।[१] वस्तुत: तान्त्रिक ज्ञान–मीमांसा में अज्ञान और ज्ञान में अधंकार और प्रकाश जैसा विरोध नहीं माना गया है। तंत्र के अनुसार तथाकथित अज्ञान अपूर्ण है। चितिशक्ति पर पड़े आध्यात्मिक मल (बन्धन) के कारण ज्ञान पूर्ण से प्रकाशित नहीं हो पाता। जैसे–जैसे यह मल क्षीण होता है, ज्ञान पूर्णता की अवस्था प्राप्त करता जाता है। तत्त्व का ज्ञान इसी अवस्था में होता है। ज्ञान के इस उच्चतर साधन को तंत्र की प्रतीकात्मा भाषा में तृतीय नेत्र कहा जाता है, जिसके विषय में मान्यता है कि यह मलावरोध की अवस्था में प्राय: बन्द रहता है और मल हटने पर खुल जाता है।

तान्त्रिक दर्शन की तत्त्वमीमांसीय विशेषता यह है कि शिव या चैतन्य (जो परम तत्त्व है) निष्क्रिय या केवल ज्ञानरूप नहीं है, वरन् क्रिया रूप भी है। तंत्र दर्शन में चेतना को शक्ति का रूप माना गया है, जो स्वभावत: स्पन्दित होती रहती है। यह स्पन्दात्मक क्रिया स्वत: स्फूर्त होती है, जो आनन्द में स्वाभाविक रूप से उत्थित होती है। इसलिए सृष्टि–क्रिया शिव का लीला–विलास या आनन्द–नर्त्तन है, जो नटराज के प्रतीक से ध्वनित होता है। चूँकि तंत्र दर्शन में चैतन्य केवल निष्क्रिय ज्ञान रूप नहीं है, वरन् क्रिया रूप भी है; अत: यहाँ परमतत्त्व को केवल शिव, ज्ञान या प्रकाश न मानकर शिव–शक्ति, ज्ञान–क्रिया, प्रकाश–विमर्श माना गया है। इसी सत्य को तंत्र में प्रतीकात्मक भाषा में 'अर्द्धनारीश्वर' के रूप में व्यक्त किया गया है, जो एक ही व्यक्ति मे एक साथ शिव–पार्वती दोनों हैं।[२]

१. भारतीय दर्शन, पृ०–६४१–४२.
२. वही, पृ०–६४२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र की जीवन-मूल्य या पुरूषार्थविषयक विशेषता है-'प्रेय' तथा 'श्रेय' में समन्वय स्थापित करना।[१] भारतीय परम्परा में स्वीकृत चार पुरुषार्थों में अर्थ और काम को प्रेय के अन्तर्गत रखा जाता है तथा धर्म और मोक्ष को श्रेय के अन्तर्गत। सामान्यत: श्रेय और प्रेय को परस्पर विरोधी माना जाता है तथा प्रेय को नीची दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु तंत्र के अनुसार जगत् और जागतिक भोग परमतत्त्व (शिव) की ही अभिव्यक्ति (सृष्टि) है, अत: ये त्याज्य या हेय नहीं हैं।[२] तंत्र किसी के प्रति कभी भी 'नहीं' नहीं कहता है; क्योंकि प्रत्येक चीज़ पूर्ण का ही हिस्सा है। पूर्ण में प्रत्येक चीज़ का अपना एक स्थान है, महत्त्व है। यदि कुछ भी छूट जाता है, तो पूर्ण कभी भी अस्तित्त्ववान् नहीं हो सकता।[३] इसलिए तान्त्रिक दर्शन में मोक्ष को केवल श्रेय नहीं माना गया है, वरन् श्रेय और प्रेय-दोनों का समन्वय माना गया है। भोग भी मोक्ष का ही स्वतन्त्र प्रकटीकरण तथा प्रसार है। तान्त्रिक साधना में भोग भी योग बन जाता है, बन्धनकारी संसार मुक्ति का साधन बन जाता है।[४] भैरवी के उपासक को भोग ओर मोक्ष एक ही साथ प्राप्त होते हैं, क्योंकि जहाँ भोग है, वहीं मोक्ष भी हो सकता है।[५]

परमतत्त्व-परमशिव (परशिव) या पराशक्ति

यद्यपि तंत्रों का दार्शनिक दृष्टिकोण त्रिविध है-द्वैत, अद्वैत, और द्वैताद्वैत, तथापि सबसे विशद तान्त्रिक दर्शन अद्वैतवादी है। अद्वैतवादी परम्परा में शैव तथा शाक्त तंत्र प्रधान हैं। ये दोनों प्राय: समान हैं। विषयवस्तु तथा दर्शन की दृष्टि से इनमें कोई भेद नहीं है। भेदमात्र परमतत्त्व को शिव या शक्ति कहने का है। शैव तंत्र परमतत्त्व को शिव कहते हैं तथा शाक्ततंत्र शक्ति को परमतत्त्व मानते हैं। वस्तुत: दोनों ही यह मानते हैं कि परमतत्त्च (चैतन्य) शिव-शक्ति दोनों ही है। शैव और शाक्त में भेद केवल आग्रह का है। शैव परमतत्त्व को प्रधान रूप से शिव तथा शाक्त उसे प्रधान रूप से शक्ति मानते हैं। यह भेद वस्तुत: एक ही वस्तु को दो दृष्टियों से देखने का भेद है, जैसे-एक ही वस्तु-बहते हुए पानी को-कोई पानी-रूप में देखे ओर कोई धारा रूप में देखे।[६]

रुद्रयामल में पराशक्ति के रूप में कुण्डलिनी महाशक्ति की चर्चा की गई है, जो मूलाधार-चक्र में निवास करती है तथा षट्चक्र भेदन होने पर सहस्रार में जाकर शिव का सायुज्य और सामरस्य प्राप्त करती है। इस महाशक्ति की डाकिनी, राकिणी, लाकिनी,

---

१. भारतीय दर्शन, पृ०-६४२
२. वही, पृ०-६४३.
३. तंत्रा: दॅ सुप्रिम अन्डरस्टैंडिंग, पृ०-९५
४. कुलार्णव तंत्र, २/२४ भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसार: कुलधर्मे कुलेश्वरि।।
५. रुद्रयामल उ०त०, १/१६७, यत्र भोगस्तत्र मोक्षो द्वयं कुत्र न सिध्यति।
मम श्रीपादुकाम्भोज-सेवको मोक्षभोगी स:।।
६. भारतीय दर्शन, पृ०-६४४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, भेदिनी, छेदिनी आदि शक्तियाँ भी हैं। शाक्त प्रधान ग्रन्थ होने के कारण शक्ति के रूप में कुमारी-चर्या आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।[१]

कार्य-कारणवाद के दृष्टिकोण से तान्त्रिक दृष्टि सत्कार्यवादी है। जो वस्तु कभी थी ही नहीं, वह कभी हो नहीं सकती। कार्य की अव्यक्तावस्था का नाम ही कारण है और कारण की व्यक्तावस्था का नाम ही कार्य है। प्रलयकाल में समसत जगत्प्रपंच को अपने आप में विलीन करके और समस्त प्राणियों के कर्मफल को सूक्ष्मरूप से अपने में स्थापन करके एकमात्र अद्वितीय परशिव विराजमान् रहते हैं। सृष्टि का चक्र जब फिर शुरू होता है तो शिव में अव्यक्त भाव से स्थित शक्ति फिर से 'सिसृक्षा' के रूप में व्यक्त होती है।[२] समस्त जीव-जगत् परमशिव की ही अभिव्यक्ति है। परमशिव ही स्वयं को आत्माओं (पशु) तथा जगत् के रूप में आभासित करता है।[३]

परमतत्त्व स्वरूपतः अनिर्वचनीय है। इसे सामान्य ज्ञान या तर्कबुद्धि द्वारा नहीं जाना जा सकता। परमशिव का ज्ञान आगम-प्रमाण द्वारा ही हो सकता है, जो कि उच्चतर ज्ञान की अभिव्यक्ति है।

परमतत्त्व के स्वरूप के विषय में तान्त्रिक परम्परा की सबसे महत्त्वपूर्ण अवधारणा यह है कि यहाँ परमतत्त्व को शक्ति रूप या क्रियाशील माना गया है। यहाँ परमचैतन्य निष्क्रिय नहीं है, वरन् स्पन्दनशील है। स्पन्दनशीलता को ही शक्ति कहा गया है। चैतन्य तत्त्व या शिव वस्तुतः शिव एवं शक्ति, ज्ञान एवं क्रिया, प्रकाश और विमर्श दोनों है। तंत्र दर्शन भी यह मानता है कि कर्म अपूर्णता का द्योतक है, किन्तु उसके अनुसार स्पन्द या क्रिया का कर्म से मौलिक भेद है। स्पन्द अपूर्णता का द्योतक नहीं है, अपितु पूर्णता अथवा आनन्द का स्वाभाविक स्फुरण है।[४] जैसे फुहारे से जल-कण निरन्तर छलककर निकलते हैं, वैसे ही इस आनन्द रूप स्रोत से निरन्तर आनन्द के कण छलककर बाहर की ओर दौड़ रहे हैं।[५]

आगमशास्त्रों में साधारण दृष्टि से परमशिव की अवस्था ही पूर्णता की परिचायक चरम अवस्था मानी गई है। इसी अवस्था में शिव और शक्ति का सामरस्य या साम्य प्रकट होता है।[६] शाक्त दृष्टि में 'स्थिति' का यही अर्थ है। यह अद्वैत अवस्था की स्थिति है, अर्थात् वह शिव रूप में निष्क्रिय है, उदासीन है तथा निरपेक्ष द्रष्ट्यामात्र है; एवं शक्तिरूप में वही भावी विश्व का उपादान एवं पूर्ण स्वातंत्र्य रूप है। शिव तथा शक्ति अभिन्न होने पर भी शिव तटस्थ है तथा शक्ति संकोचप्रसरणशीला है।[७] शिव सृष्टि-रचना करके भी सृष्टि से अछूता रहता है अर्थात् उसके स्वातंत्र्य में कोई कमी नही आती।[८] वह निर्विकार है, उसमें न ह्रास है और न वृद्धि तथा वह अनादि, अनन्त, स्वप्रकाश एवं चिदानन्दस्वरूप है।[९] सृष्टि करने के लिए शिव पर कोई बाध्यता नहीं है।

१. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-९५.
२. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७१.
३. भारतीय दर्शन, पृ०-६६१.
४. वही, पृ०-६६१.
५. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-६२.
६. वही, पृ०-६०
७. वही, पृ०-१५३,
८. भारतीय दर्शन, पृ०-६६२.
९. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि-पृ०-१५३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमतत्त्व के स्वरूप के संबंध में तंत्र दर्शन की दूसरी महत्त्वपूर्ण अवधारणा है-शिव को विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय दोनों ही मानना। शिव अपने क्रिया-स्वातंत्र्य से जगत् की अभिव्यक्ति करता है। वह एक ही साथ 'पर' और 'अन्तर्यामी' दोनों ही है। यदि शिव को केवल 'पर' माना जाएगा, तो वह विश्व से वस्तुतः असम्बद्ध हो जाएगा तथा यदि उसे केवल अन्तर्यामी' माना जाएगा तो उसके स्वातंत्र्य एवं निरपेक्षता में बाधा उपस्थित होगी।[१] उपनिषदों में भी शिव के इन दोनों रूपों 'पर' और 'अन्तर्यामी' को स्वीकार किया गया है, किन्तु वहाँ आग्रह ब्रह्म के 'पर' रूप पर ही देखा जाता है। वहाँ 'नेति नेति' को अधिक महत्त्व दिया जाता है ओर 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' पर कम आग्रह है। किन्तु तंत्र शिव की विश्वमयता की तात्त्विक रूप से व्याख्या करता है। इसके अनुसार जगत् तत्त्वतः शिव ही है। शिव जगत् का उपादान कारण है। इस प्रकार शिव विश्वमय है, क्योंकि शिव और विश्व में तात्त्विक दृष्टि से अभेद है। साथ ही शिव विश्वोत्तीर्ण भी है, क्योंकि शिव जगत् में खप नहीं जाता। दूसरे शब्दों में शिव पूर्ण शिव बना रहता है और साथ ही जगत् भी बन जाता है। तात्पर्य यह कि जगत् शिव का आभास है तथा शिव को इसका ज्ञान भी रहता है। जगत् में अन्तर्भूत रहते हुए भी शिव को अपनी 'पररूपता' का ज्ञान रहता है।[२]

शिव में अहंविमर्श अथवा आत्मचेतना का होना तंत्र दर्शन की अन्य विशेषता है। शिव-चेतना में जो स्वाभाविक उच्छलनता या स्पन्द है, वही उसके अहंविमर्श का कारण बनता है, जो अनात्म के न रहने पर भी सम्भव है। इसलिए 'अहं' को चेतना का प्रथम विमर्श कहा गया है; जिसका अर्थ है कि अहंविमर्श चेतना की स्वाभाविक क्रिया है, जो विश्वविमर्श न रहने पर भी अपने आप में रहती है। शिव को सच्चिदानंद कहा गया है।.....आनन्द परमशिव का मूल स्वरूप है, जहाँ आनन्द का अनुभव भी है। अद्वैत वेदान्त में परमतत्त्व आनन्दस्वरूप है, किन्तु इसमें आनन्द की कोई चेतना नहीं होती, क्योंकि उसमें विषय-विषयी का कोई सम्बन्ध नहीं होता, जो अद्वैत वेदान्त के अनुसार किसी भी प्रकार के बोध के लिए आवश्यक है।[३]

परमतत्त्व के स्वरूप के विषय में तंत्र दर्शन की एक अति महत्त्वपूर्ण अवधारणा है-परमशिव को शिव-शक्ति का सामरस्य मानना। शिव और शक्ति में तादात्म्य सम्बन्ध है। शक्ति शिव का स्वरूप ही है। शक्ति किसी भी प्रकार शिव से पृथक् नहीं है। शिव तथा शक्ति मूलतः एक ही हैं। जो परमशिव है, वही पराशक्ति है, दोनों ही चिद्रूप होने के कारण स्वरूपतः अभिन्न हैं।[४] तंत्र के अनुसार चैतन्य केवल वस्तु या सत्ता ही नहीं वरन् शक्ति भी है। शक्ति को 'चिति', 'संवित्', 'देवी', 'भगवती', 'परमेश्वरी', 'परा', आदि भी कहा जाता है। शिव-शक्ति सम्बन्ध को बताने के लिए 'शंकर-पार्वती', 'पति-पत्नी' या 'अर्द्धनारीश्वर' के

---

१. भारतीय दर्शन, पृ०-६६२.
२. वही, पृ०-६६३.
३. वही, पृ०-६६४.
४. वही, पृ०-६६५,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीक प्रयोग किए जाते हैं। किन्तु ये प्रतीक शिव-शक्ति सम्बन्ध को पूर्णरूपेण व्यक्त नही कर पाते। पति-पत्नी के प्रतीक से यही बोध उभरता है कि दोनों दो हैं और एक साथ रहते हैं। अर्द्धनारीश्वर के प्रतीक से यह ज्ञात होता है कि शिव का आधा भाग शिव का तथा आधा शक्ति का है। किन्तु शिव-शक्ति को इस प्रकार नहीं समझा जा सकता क्योंकि शिव (सम्पूर्ण) ही शक्ति है और शक्ति (सम्पूर्ण) ही शिव है।

तंत्र दर्शन में शक्ति के लिए अनेक नाम प्रचलित हैं। उसे स्वातंत्र्य, शक्ति, अहंता, स्फुरता, विमर्श तथा स्पन्द कहा जाता है। शाक्त मत में परमेश्वर को स्त्री रूप में माना गया है। और उसी को शक्ति या पराशक्ति कहा गया है। उस पराशक्ति के लिए आनन्दभैरवी, महाभैरवी, त्रिपुरसुन्दरी, ललिता आदि नाम प्रयुक्त किये गये हैं। रुद्रयामल में आनन्दभैरवी प्रमुख देवी है, जो आनन्दभैरव के प्रश्नों का उत्तर देती है एवं इसी क्रम में विषय-वस्तु का प्रवर्त्तन होता है। साधना के क्षेत्र में महाशक्ति की कल्पना भवानी, काली, दुर्गा आदि रूपों में की गई है। वह परमेश्वर की ही शक्ति है जो भोग में भवानी, योग में कुण्डलिनी, कोप में काली और समर में दुर्गा है।

शक्ति को वाक्शक्ति भी कहा जाता है, जिसके परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा बैखरी-ये चार स्तर हैं। इन स्तरों से ही वाक्-सृष्टि की व्याख्या की जाती है। ये स्तर शक्ति की अभिव्यक्ति के स्तर हैं। परा अवस्था चित् आनन्द की अवस्था है, पश्यन्ती इच्छा-अवस्था है, मध्यमा ज्ञान की अवस्था है तथा बैखरी क्रिया की अवस्था है। ये अवस्थाएँ शिवतत्त्वों (शुद्ध अध्वा) में स्थित शक्ति की अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ हैं। परा शिव-शक्ति की अवस्था है, पश्यन्ती सदाशिव की अवस्था है, मध्यमा ईश्वर की तथा बैखरी सद्विद्या की अवस्था है। परा अवस्था शुद्ध एकता अथवा अभेद की अवस्था है। यहाँ शुद्ध तादाम्य है क्योंकि सृष्टि नहीं है। यहाँ केवल 'अहम्' विमर्श है। पश्यन्ती भेदाभेद अवस्था है, जिसमें 'अहमिदम्' विमर्श है। मध्यमा भी भेदाभेद अवस्था है, किन्तु यहाँ 'इदमहम्' विमर्श है, यहाँ पश्यन्ती की तुलना में भेद अधिक प्रकट है। बैखरी में एकता और भेद दोनों है, जिसमे 'अहं च इदं च' विमर्श है। इसमें भेद पूर्णतया प्रकाशित है, बैखरी अवस्था में शिव का स्पन्द क्रियारूप में स्पष्टत: प्रकाशित हो जाता है।[1]

रुद्रयामल में शाकिनी-स्तोत्र के प्रसङ्ग में कहा गया है कि शाकिनी ही बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा रूप में अभिव्यक्त होती है-

पश्यन्ती मध्यमाद्या नयनवचनगा बैखरी वाक्स्वरूपा
कण्ठे हृत्पद्ममूले कथयति कविता स्तम्भ्तिास्त्वां प्रयामि।
परासापर्वासारहितमतहासा प्रविश मे
घनश्यामे वामं द्विकमलललाटेऽतिशिखया।[2]

१. भारतीय दर्शन, पृ०-६६६.
२. रुद्रयामल उ०त०, ७०/१३-१४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य व्यक्ति मातृका के किसी वर्ण को सुनता है तो उसको केवल बैखरी वाणी का ही बोध होता है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाणी से इसकी क्रमशः कैसे अभिव्यक्ति हुई, इस बात को वह समझ नहीं पाता।[१]

शक्ति को कुण्डलिनी भी कहा जाता है, जो शरीर के मूलाधार में रहती है।[२] तंत्र का कथन है कि जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है। परम शिव अपनी महाशक्ति से संयुक्त होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूप पिण्ड में निवास करता है।[३] महाशक्ति कुण्डलिनी उस परमेश्वर की ही चेतना-शक्ति है। जिस प्रकार पर्वतों और वनों से युक्त इस पृथ्वी को अहिनायक धारण करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण योग-तंत्रों का आधार कुण्डलिनी है।[४] कुण्डलिनी को कुटिलाङ्गी, भुजङ्गी, ईश्वरी, अरून्धती आदि भी कहा जाता है। विवेच्य ग्रन्थ में कुण्डलिनी के १००८ नाम बताकर, उसका स्तवन किया गया है।[५]

कुण्डलिनी महाशक्ति मृणालतन्तु सदृश है और जगत्-मोहिनी के रूप में ब्रह्मद्वार के मुख (सुषुम्णा-द्वार) का अपने ही मुखकमल से संछादन करती हुई अमृतरस का पान करती रहती है। इसे कुण्डलिनी की संज्ञा यह दर्शाने के लिए दी गई है कि यह परमचेतना की वह अवस्था है जिसमें वह अपनी अनंत सम्भावनाओं से युक्त होकर मानों कुण्डली रूप में स्थित रहती है।[६] कहा गया है कि–'कुण्डलिनी-शक्ति कन्द के ऊपर के भाग में योगियों के मोक्ष तथा मूर्खों के बन्धन के लिए सो रही है–उसे जानने वाला योगी कहा जाता है। यह सर्पिणी के समान कुटिल आकार वाली है। कुण्डलिनी को गतिशील करने वाला निःसंदिग्ध रूप से मुक्त हो जाता है।'[७]

रुद्रयामल के ३२ वें पटल में आनन्दभैरवी ने स्वयं कन्दवासिनी के स्तव, ध्यान आदि को कुण्डलिनी-शक्ति से सम्बद्ध माना है। उन्होंने भैरव से कहा है कि सर्वभेदनी, कलिकल्मषघ्न्त्री तथा जगद्मोक्षदायिनी मेरी शक्ति कुण्डलिनी ही है। इस शक्ति के स्तोत्र, ध्यान, न्यास, मन्त्र आदि के ज्ञान से मूलाधार में मन की एकाग्रता होती है और कुण्डलिनी के सम्पर्क से साधक चैतन्यानन्द में लीन हो जाता है।[८] जागृत कुण्डलिनी आकाशगामिनीसिद्धि प्रदान करती है।

---

१. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९६.
२. भारतीय दर्शन, पृ०-६६६.
३. विरुपाक्षपञ्चाशिका, १/२
४. हठयोग प्रदीपिका, ३/१.
५. रुद्रयामल उ०त०, ३६/६-१९२.
६. गोपीनाथ कविराज, पृ०-७४-७५.
७. हठयोग प्रदीपिका, ३/१०७-१०८,

कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनीम्।
बन्धनाय च मूर्खाणां यस्तां वेत्ति स योगिवत्।।
कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत्परिकीर्तिता।
स शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः।।

८. रुद्रयामल उ०त०, ३२/१-३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनन्दभैरवी स्वयं अपने अमृत और आनन्द रूपों से प्राणियों का पालन करती हैं। त्रिमुणात्मक शरीर श्वासोच्छ्वास कलाओं के द्वारा महाशक्ति को जागृत करके नाना प्रकार शक्तियों से युक्त हो जाता है।[१]

सृष्टि-प्रक्रिया

तंत्र-दर्शन में जगत् को परमतत्त्व की ही अभिव्यक्ति माना गया है। सृष्टि उसी का आत्म-प्रसार है। उससे ही सभी पदार्थ आविर्भूत होते हैं तथा फिर उसी में विलीन हो जाते हैं। सृष्टि शिव का उन्मीलन मात्र है, जो उसकी इच्छा-शक्ति का ही प्रकटीकरण है। अपनी व्यक्तावस्था में भी जगत् शिव से भिन्न नहीं होता, इसकी प्रतीति मात्र भिन्न होती है। जगत् सदैव शिवमय बना रहता है।[२] सृष्टि करने में उसका कोई प्रयोजन निहित नहीं है। यह उसका स्वभाव है। अपनी लीला के लिए परमशिव सृष्टि करता है और स्वयं को बन्धन में डालता है। पर वास्तव में वह बन्धन या सीमित दशा में भी असीम ओर परमतत्त्व ही रहता है। उसके स्वरूप में कोई भी वास्तविक परिवर्त्तन नही होता। सारे परिवर्त्तन प्रतीति मात्र होते हैं। सारी सृष्टि परमशिव की लीला ही है। जैसे अपरिमित ऐश्वर्य के चमत्कार (बोध) से परितृप्त कोई सार्वभौम राजा सब प्रकार के वाहन आदि साधनों के स्वाधीन होने पर भी अपने तृप्त स्वभाव की स्वतन्त्र लीलावश पैदल चलता है अथवा पैदल चलने की क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार परमेश्वर स्वात्मपूर्णता के स्वातंत्र्य के कारण अपने आपके आनन्द में ही स्पन्दित-सा रहता है और अपने अन्दर अपनी स्वतन्त्र इच्छामात्र से ही उनमीलित शिव-तत्त्व से लेकर पृथ्वीतत्त्व पर्यन्त अपने स्वरूपभूत प्रमातृ-प्रमेय, विषयी-विषय आदि भिन्न रूपों से क्रीड़ा करता रहता है।[३] विभिन्न भूमिकाओं में स्वेच्छावश लीला-अभिनय करने के कारण ही उसे नर्त्तक कहा गया है।[४] जगत् का अपने अन्दर यह आभास और फिर उस आभासिक जगत् का अपने अन्दर विलय ही उसका स्वातंत्र्य रूप कर्तृत्व है। इसी कर्तृत्व स्वभाव से वह सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह (तिरोधान) तथा अनुग्रह रूपी पंचकृत्यों को करता है।[५]

शिव और जगत् में अभेद संबंध है। जिस प्रकार दर्पण में परस्पर पृथक् रूप से प्रतिबिम्बित ग्राम, नगर, नदी, वृक्ष आदि दर्पण से अभिन्न होते हुए भी भिन्नवत् अवभासित होते हैं, उसी प्रकार परमशिव अपने स्वातंत्र्य माहात्म्य से अपने अन्तर्गत अभिन्न भाव से अवस्थित विश्व-वैचित्र्य को भिन्नवत् अवभासित करता है।[६]

तंत्र दर्शन में परमशिव ही जगत् का मूल कारण है। वह जगत् का उपादानकारण और

१. रुद्रयामल उ०त०, ३२/४-५,
२. शिवसूत्रविमर्शिनी, पृ०-३५-'शुद्धे तत्त्वं परमशिवाख्यं तत्र यदा विश्वमनुसन्धते तन्मयमेवतत्।'
३. शिवदृष्टि-१/३७/३८-यथानृपः सार्वभौमः प्रभावामोद भावतिः।
   क्रीडान्करोति पादात धर्तास्तद्धर्म धर्मतः।।
   तथा प्रभुः प्रमोदात्मा क्रीडत्येव तथा तथा।।
४. भारतीय दर्शन, पृ०-६६९.
५. बोधपंचदशिका, ६; तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-३०,
६. तंत्रालोक, २/३/४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निमित्त कारण दोनों है। सृष्टि शिव की इच्छा-शक्ति की अभिव्यक्ति है, जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया के तीन स्तरों पर होती है।[१] इसे कुम्भकार के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। घड़े का निर्माण होने के पूर्व सर्वप्रथम कुम्भकार के मन में घड़े बनाने की इच्छा उत्पन्न होती है, उसके बाद उसके मन में घड़े का चित्र उभरता है; यह ज्ञानावस्था है। जब मन में चित्रित घड़ा कुम्भकार द्वारा बाहर निर्मित कर दिया जाता है तो यह घड़े की क्रिया-अवस्था है। इसी प्रकार सर्वप्रथम शिव में अव्यक्त भाव से स्थित शक्ति 'सिसृक्षा' के रूप में व्यक्त होती है। 'सिसृक्षा' शब्द का अर्थ है सृष्टि की इच्छा।[२] फिर यह इच्छा जगत् के स्वरूप में परिणत हो जाती है जो ज्ञानावस्था है; जगत् बाहर आभासिक होने लगता है तो यह क्रिया-अवस्था है। यह संसार चैतन्य के अन्दर ही स्थित है, परन्तु बाह्य प्रतीत होता है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब। वह संसार को अपने से भिन्न प्रतीत कराता है, जबकि वास्तव में वह जगत् से अभिन्न है। दर्पण में पदार्थ अवस्थित न रहते हुए भी दिखाई देते हैं। दर्पण उन पदार्थों से अछूता रहता है। शिव भी अपने सृष्टि के प्रदार्थों से इसी प्रकार अछूता रहता है।[३]

यह तो तंत्रसम्मत सामान्य सृष्टि-प्रक्रिया थी। अब तंत्र दर्शन के तीन प्रमुख दृष्टिकोण-शैव, शाक्त और कौल-के अनुसार सृष्टि-प्रक्रिया का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) शैवागम सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया

इस मत से एक दृष्टि से मूल सत्ता तीन कही जा सकती है। ये हैं-शिव, शक्ति और बिन्दु। इनमें से शिव अधिष्ठाता और शक्तिमान् हैं। शक्ति और बिन्दु, दोनों ही शिव के द्वारा अधिष्ठित और शिव में आश्रित हैं। शक्ति चित्शक्ति और बिन्दु परिग्रहशक्ति का नामान्तर है। शक्ति समवायिनी है और शिव-स्वरूप में समवेत रहती है। शिव और शक्ति दोनों चित्स्वरूप हैं- दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है। किन्तु बिन्दु शिवस्वरूप में समवेत नहीं रहता, तथापि आश्रित रहता है। शिव परमेश्वर हैं, किन्तु शक्तिहीन शिव शवमात्र हैं। वस्तुतः शिव कभी शक्तिहीन नहीं होते। शिव से शक्ति का सम्बन्ध साक्षात् रूप से और बिन्दु का सम्बन्ध आश्रय-आश्रित दृष्टि से साक्षात् रूप से होते हुए भी क्रिया की ओर से शक्ति की मध्यस्थता से होता है। यह शक्ति ही अवस्था भेद से इच्छा, ज्ञान या क्रिया रूप में आत्म प्रकाश करती है। अतः क्रिया की ओर से यह एक ही शक्ति अवस्था-भेद से निष्क्रिय या सक्रिय रूप में व्यपदिष्ट होती है। शक्ति जब सक्रिय होती है तब बिन्दु क्षुब्ध होता है और शक्ति के निष्क्रिय रहने पर बिन्दु भी अक्षुब्ध रहता है। बिन्दु सृष्टि का उपादानस्वरूप और शक्ति (क्रियारूपा शक्ति) निमित्तस्वरूप है।[४] इच्छारूप स्वातंत्र्यमयी शक्ति ही शक्ति के क्रियात्मक होने का मूल कारण है। अतएव मूलत: सृष्टि का आदि हेतु इच्छा की बहिर्मुखता है। बिन्दुरूपी आत्मा या ब्रह्म से शक्ति जाग्रत होकर बहिर्मुख और अन्तर्मुख खेल करती है। बहिर्मुख खेल के द्वारा

---

१. भारतीय दर्शन, पृ०-६७१.

२. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७१-७२.

३. भारतीय दर्शन, पृ०-६७१.

४. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-३-४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाह्यजगत् (जड़ जगत्) और आभ्यन्तर खेल के द्वारा अन्तर्जगत् की उत्पत्ति होती है। दोनों जगत् जब साम्य भाव को प्राप्त होते हैं, तब अखण्डमण्डलाकारत्व को प्राप्त होकर अनन्त विश्व का रूप धारण करते हैं।[१]

शैवागमों में शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो प्रकार की सृष्टि मानी गई है।[२] बिन्दु से जिस सृष्टि का विकास होता है, उसका नाम शुद्ध सृष्टि (शुद्ध अध्वा) है। बिन्दु का ही नाम महामाया, कुण्डलिनी आदि है। शुद्ध सृष्टि महामाया से उदभूत होती है। परमेश्वर की से चित्शक्ति सक्रिय होकर जब महामाया को क्षुब्ध करती है, तो महामाया से सृष्टि का निर्गम होता है। यह सृष्टि शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या रूप में पञ्चधा विभक्त होती है। यही शुद्ध पञ्चतत्त्व हैं।

अशुद्धि सृष्टि महामाया के क्षोभ से नहीं, माया के क्षोभ से होती है। महामाया के क्षोभ का मूल है शिव की दृष्टि, लेकिन निर्मल और निर्विकल्पक होने के नाते यह दृष्टि माया को स्पर्श नही करती। निर्विकल्पक ज्ञान के बदले सविकल्पक ज्ञान का उदय हुए बिना माया-क्षोम की संभावना नहीं। नित्य सिद्ध आत्मा या शिव विकल्पशून्य हैं।[३] अशुद्ध सृष्टि के कर्त्ता अनन्त हैं और इसमें समवायी कारण माया है।[४] अनन्त को ही साधारणतया ईश्वर कहा जाता है। अनन्त माया के अधिष्ठाता हैं। अनन्त की शक्ति से क्षुब्ध होकर माया कला से पृथ्वी तक उन तत्त्वों का प्रसव करती है, जिनसे सम्पूर्ण मायिक जगत् का आविर्भाव होता है। माया चूँकि अशुद्ध है, इसलिए क्षोभक रूप में सविकल्पक ज्ञानात्मक शक्ति आवश्यक होती है। ईश्वर का ज्ञान सविकल्प है, निर्विकल्पक नहीं।.... शुद्ध निर्विकल्पक ज्ञान बिन्दु के क्षोभजन्य शब्द से अनुविद्ध होकर सविकल्पक रूप में परिणत होता है।[५]

शैवागमों में षडध्व प्रक्रिया के आधार पर ही सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। महार्थमंजरीकार ने लिखा है–

यदध्वनां चषड्कं तत्र प्रकाशार्थलक्षणमर्धम्।
विमर्शशब्दस्वभावमर्धमिति शिवस्य यामलोल्लासः।।[६]

अर्थात् 'षडध्व प्रक्रिया में अर्थस्वरूप तीन अध्वा प्रकाशमय शिव का अर्धभाग है और शब्दस्वरूप तीन अध्वा विमर्शमय शक्ति का अर्धभाग है। इस प्रकार शब्द और अर्थमय यह सारा जगत् शिव के यामल स्वरूप से, अर्धानारीश्वर स्वरूप से उल्लसित होता है।'

प्रकाशमय शिव से कला, तत्त्व और भुवन की तथा विमर्शमय शक्ति से वर्ण, पद और मन्त्र की सृष्टि होती है। ये ही शास्त्र में षडध्व के नाम से पारिभाषित हैं। कला के पाँच भेद

---

१. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-६९.
२. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९०.
३. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-४-५.
४. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९०
५. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-७.
६. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९१ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है–शान्त्यतीत, शान्ति विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति। तत्त्व ३६ हैं। (इसका विस्तृत वर्णन इसी अध्याय में किया गया है) भुवनों की संख्या २२४ है। वर्णों की संख्या ५०, पदों की ८१ और मन्त्रों की संख्या ११ है। शाक्त आगमों में वर्णों की संख्या ५१ है।[१]

षडध्व-प्रक्रिया के अन्तर्गत ही यह सारा जगत् है।

(२) शाक्तागम सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया

शाक्तमत के अनुसार श्रीचक्र का आविर्भाव, विश्व-सृष्टि तथा व्यक्तिगत देह की सृष्टि के मूल में एक ही व्यापार है समग्र जगत् के मूल में जो अखण्ड सत्ता है, यह विश्व का उपपादान स्वरूप है तथा निमित्तस्वरूप भी है। शाक्त दृष्टि में स्थिति का नाम है–शिवशक्ति-सामरस्य। यह अद्वैत अवस्था की स्थिति है, अर्थात् वह शिवरूप में निष्क्रिय तथा निरपेक्ष द्रष्यमात्र है; एवं शक्तिरूप में वही भावी विश्व का उपादान और पूर्ण स्वातंत्र्य रूप है। शिव तथा शक्ति अभिन्न होने पर भी शिव तटस्थ हैं तथा शक्ति संकोचप्रसरणशीला है। व्यावहारिक दृष्टि से जिसे हम शिव कहते हैं, वह भी एक तरह से शक्ति का ही एक रूप है, क्योंकि–

'शक्त्या विना परे शिवे नामधाम न विद्यते'।[२]

जगत् के मूल में स्थूल दृष्टि से इस शक्ति के ही दो विरूद्ध स्वरूपों के खेल विद्यमान हैं। ये दो शक्तियाँ स्थिति-विशेष में समरस तथा अद्वयभाव से अविभक्त रूप में विद्यमान रहती हैं। दूसरी स्थिति में ये परस्पर विषम भाव लेकर एक दूसरे के ऊपर क्रिया करने लगती हैं। इनमे एक का नाम अग्नि तथा दूसरी का सोम है। अग्नि तापमय एवं दुःखप्रद है तथा प्रकाश स्वरूप से प्रकाशित होता है। सोम शीतल एवं आनन्ददायक है तथा विमर्श रूप से प्रकाशित होता है। अग्निक्रिया का नाम है संहार और सोम क्रिया का नाम है सृष्टि। साम्यावस्था में अग्नि तथा सोम संहार और सृष्टि कुछ भी नहीं करते। यही स्थिति का स्वरूप है। इसका पारिभाषिक नाम है–रवि या सूर्य। स्पष्ट है कि सृष्टि तथा संहार के मूल में जो अखण्ड शक्ति विद्यमान है, उसका नाम है सूर्य। तंत्र में सूर्य को कामतत्त्व कहा गया है।[३] अग्नि तथा सोम के संसर्ग से सोम के प्राधान्यानुसार सृष्टि होती है तथा अग्नि के प्राधान्यानुसार संहार होता है। वेद में भी में भी जगत् को 'अग्नीषोमात्मक' कहा गया है। अग्नि और सोम के प्रतीक शुक्ल और रक्त बिन्दु कला के नाम से अभिहित होते हैं। इस प्रकार काम और कला बिन्दुओं के योग से काम-कला का विकास होता है।[४]

पराशक्ति परमशिव के साथ नित्य और अभिन्न है। जब यह परमशिव का अथवा आत्मा का स्फुरण देखने की इच्छा करती है, तब क्रमशः सृष्टि का उदय होता है। यह महाशक्ति के गर्भ में समग्र विश्व महाशक्ति के साथ अभिन्न रूप मे विद्यमान रहता है। यह महाशक्ति से

१. वही, पृ०-९१-९१.
२. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-१५३ पर उद्धृत।
३. वही, पृ०-१५४ पर 'कामाख्यो रविः'
४. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथक् तो है नहीं, तो है नहीं, पृथक्‌रूपेण प्रतिभासमान भी नही होता। किन्तु महाशक्ति की सृष्टि-इच्छा जाग्रत् होने पर विश्व से अविभक्त रहती हुई भी वह विभक्त रूपेण प्रतीयमान हो सकती है। तान्त्रिक आचार्य इसे ही विसर्ग-क्रिया कहते हैं। शक्ति में कार्य का अविभक्त रूप में विद्यमान रहना ही बिन्दु का व्यापार है और उसका अविभक्त रहते हुए भी विभक्तरूपेण प्रतिभासमान होना विसर्ग का व्यापार है। जिसे सृष्टि कहा जाता है, वह विसर्ग-व्यापार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[1]

कामकला का जो साम्यभाव है, अर्थात् जिसे काम या सूर्य कहा जाता है, उसकी स्थिति अखंडित है। उसका साम्य-भंग कथमपि नहीं होता। वह महास्थिति-स्वरूप है, परन्तु कामकला का जो वैषम्य भाग है, उस तरफ निरन्तर सृष्टि-संहार का खेल चल रहा है।[2]

सृष्टि के मूल में बिन्दु है। इसे महाबिन्दु भी कहा जाता है। प्रकाश अथवा शिवांश और विमर्श अथवा शकत्यंश जब समभाव में अधिष्ठित रहते हैं, तब 'बिन्दु' नाम से अभिहित होते हैं। दर्पण में सूर्य के प्रकाश प्रतिफलित होने पर जैसे पास की दीवार पर एक चमचमाता प्रकाश बिन्दु भासित हो उठता है, उसी तरह से स्वच्छ विमर्शरूपी दर्पण में परम शिवरूपी प्रकाश की किरणें जब प्रतिफलित होती हैं, तो उस समय ज्ञानरूपी दीवाल पर महाबिन्दु भासित होने लगता है और इस तरह से 'अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहं' इत्यादि वाक्यों में निविष्ट अहंता का स्पष्ट भान होने लगता है। यह महाबिन्दु बाद में शुक्ल, रक्त और मिश्र बिन्दु के रूप में त्रिधा विभक्त हो जाता है। शुक्ल और रक्त बिन्दुओं का एक युगल रहता है। इनमें शिव और शक्ति स्वतन्त्र रूप में अपनी रत्यानावस्था का परित्याग कर सृष्टि की ओर उन्मुख होते हैं और शब्दमयी एवं अर्थमयी सृष्टि के रूप में षडध्वात्मक जगत् का निर्माण करते हैं।[3]

सृष्टि के प्रारम्भ में समष्टि रूप में स्थित एक ही बिन्दु व्यष्टि में तीन बिन्दुओं के रूप में परिणत हो जाता है। प्रकाशांश और विमर्शांश—दोनों का मूल ही सृष्टि का मूल है। प्रकाशांश को 'अम्बिका' कहा जाता है जो वामा, ज्येष्ठा और रौद्री इन तीन शक्तियों के रूप में प्रकाशित होती है। शान्ता नाम है विमर्शा का, जो इच्छा, ज्ञान, और क्रिया रूप में अभिव्यक्त होती है। जहाँ अम्बिका और शान्ता साम्यभाव में स्थित रहती हैं, उसका नाम है–मूल बिन्दु या समष्टि बिन्दु। यह मूल बिन्दु ही मूल त्रिकोण का मध्य बिन्दु है। इसी का नाम है परावाक्। परमात्मा या सदाशिव इसी मूल बिन्दु के अवस्थाविशेष का नाम है। इसी प्रकार वामा और इच्छा में साम्य से जिस बिन्दु का आविर्भाव होता है, उसका नाम है–पश्यन्ती वाक्। ज्येष्ठा एवं ज्ञान के साम्य से जो बिन्दु प्रकट होता है, उसे मध्यमा वाक् कहते हैं एवं रौद्री व क्रिया के तादात्म्य से जो बिन्दु होता है, उसका नाम है बैखरी वाक्। ये तीन बिन्दु मूल त्रिकोण के तीन बिन्दु हैं। यही मूल या आदि त्रिकोण है। इसमें मध्य बिन्दु ही परामातृका है। यही योनिस्वरूप विश्वमातृका का संक्षिप्त विवरण है। शब्दब्रह्मविदगण तथा योगी इसी की भावना करते हैं।[4]

---

१. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-१५५.
२. वही, पृ०-१५६.
३. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९३.
४. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-१५७.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बिन्दु से सृष्टि होती है और संहार में बिन्दु में ही प्रवेश होता है। मूलत्रिकोण का चित्र इस प्रकार है–

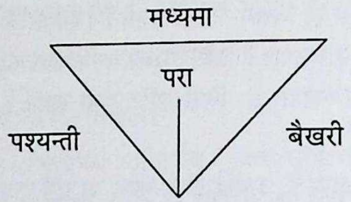

स्मर्त्तव्य है कि ब्राह्मी लिपि में एकार और ईकार तीन बिन्दुओं के रूप में ही लिखे जाते हैं। एकार से वाग्भव बीज और ईकार से त्रिपुरसुन्दरी बीज की निष्पत्ति मानी गई है–

त्रिकोणमेकादशमं वह्निगेहं च योनिकम्।
श्रृंगारं चैव एकारं नामभिः परिकीर्तितम्।।[1]

इस श्लोक में एकार बीज का वर्णन है। एक बिन्दु ऊपर दो बिन्दु नीचे रखने से त्रिकोण का आकार बन जाता है। स्वरों में एकादश एकार का ब्राह्मीलिपी में यही स्वरूप है। त्रिकोण की आकृति सिंघाड़े जैसी होती है, अतः इसे श्रृंगाट भी कहते हैं। बौद्ध तंत्रों में इसका वर्णन इस प्रकार से हुआ है–.

एकाराकृति यद्दिव्यं मध्येषट्कार भूषितम्।
आलयः सर्वसोख्यानां बौधरत्नकरण्डकम्।।[2]

(३) कौलागम सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया

कौलागमों में मातृका अर्थात् वर्णों से ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि मानी गई है। इसके अनुसार 'अकार' अर्थात् 'अनुत्तर' ही परम तत्त्व है। उल्लेखनीय है कि अनुत्तर पद का प्रयोग शिव या शक्ति के लिए ही नहीं, भगवान् बुद्ध के लिए भी हुआ है। अनुत्तर से प्रथमतः आनन्द, इच्छा और उन्मेष अवस्थाएँ अभिव्यक्त होती हैं, जो कि आकार, इकार, और उकार वर्णों के प्रतीक हैं। फिर इन्हीं से स्वर और व्यंजनात्मक मातृका और उससे सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि होती है।[3]

मानव के चित्त् में जैसे अन्तर्मुख और बहिर्मुख इन दो वृत्तियों का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार परम सत्य के भीतर भी चित् और आनन्द इन दो अंशों का यह द्विविध स्पन्दन गृहीत होता है। चित् से बहिःस्पन्दन के कारण जब द्वितीय चित् का आविर्भाव होता है, तब बहिर्मुख प्रथम चित् उस द्वितीय चित् के भीतर अपने प्रतिबिम्ब को देख पाती है एवं देखकर उसे अपनी सत्ता के रूप में पहचान सकती है। यही आनन्द कहलाता है। 'आ'

---

१. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९४ पर उद्धृत।
२. वही, पृ०-९४ पर उद्धृत।
३. आगम और तंत्रशास्त्र, पृ०-९२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ण का प्रतीक है।[१] यह आनन्द ह्लादिनी-शक्ति का स्वरूप है। चित् अवस्था में अनुकूल और प्रतिकूल भाव नहीं रहते। किन्तु आनन्दावस्था नित्य अनुकूल भावमय है, इसमें प्रतिकूल भाव नहीं है। चित् सत्ता में एक ही एक है, दूसरा कोई नही है। किन्तु आनन्द-सत्ता में एक ही द्वितीय का स्वागं रचकर अपने साथ स्वयं खेल करता है। इस आनन्द से ही सृष्टि अभिव्यक्त होती है। श्रुति का कथन है-'आनन्दाद ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।' युगलभाव के बिना आनन्द नहीं होता एवं आनन्दभाव के बिना सृष्टि नहीं होती।[२] आनन्द के सूक्ष्मकण आनन्द के मूल उद्गम-स्थान से निकलते ही एक आवरण से आच्छन्न हो पड़ते हैं एवं अन्तः स्थित आनन्दसत्ता का फिर अनुभव नहीं कर सकते। शास्त्रीय परिभाषा में यही इच्छा का विकास है। इसका प्रतीक 'इ' है। वास्तव में इच्छा आनन्द का अन्वेषण करने अथवा खोज निकालने की शक्ति है। इच्छा से ही जगत् की सृष्टि होती है। इसलिए सम्पूर्ण जगत् के भीतर सर्वत्र ही अन्वेषण का एक भाव विद्यमान रहता है। जब तक आन्नद नहीं मिलता, तब तक अन्वेषण का विराम नहीं।[३]

जब इच्छा-शक्ति घनीभूत होती है, तब ईशन-शक्ति का उदय होता है। इसका प्रतीक 'ई' है। इसकी परावस्था में जब विषयीभूत आनन्द प्रकट हो जाता है, तब इच्छा-शक्ति (ईशन शक्ति) ज्ञान-शक्ति का आकार धारण करती है। इसी का दूसरा नाम उन्मेष है, जिसका प्रतीक 'उ' है। उन्मेष रूप ज्ञानशक्ति अपने विषय ज्ञेयसत्ता का प्रकाश करती है। ज्ञेय का प्रतीक 'ऊ' है, जो 'उ' की ही घनीभूत अवस्था है। ज्ञेय पदार्थ ज्ञान से पृथक् नहीं है, अविद्यावश पृथक् प्रतीत होता है। इस अविद्या को ही क्रियाशक्ति कहा गया है। वर्णमाला में इस क्रियाशक्ति के प्रकाशक वर्ण 'ए, ऐ, ओ, औ' हैं। क्रियाशक्ति का खेल जब पूर्ण हो जाता है, तब क्रिया की निवृत्ति हो जाती है।[४]

'अ' से ' ऊ' तक की जो धारा है, जिसे प्रवृत्तिधारा कहते हैं, वह शक्ति की बहिर्मुख धारा है, किन्तु क्रियाशक्ति की पूर्णता के साथ-साथ बहिर्मुख धारा का अन्त हो जाता है एवं उस समय स्वभावतः ही अन्तर्मुख धारा की अभिव्यक्ति हो जाती है। प्रवृत्ति की धारा जब इस बार निवृत्ति की धारा में परिणत हुई, तब वे सब पृथक्-पृथक् अवभासित हो रही शक्तियाँ या कलाएँ स्पन्दनवश एकीभूत होकर समष्टि भाव को प्राप्त होती है, जिनका नाम पड़ता है 'बिन्दु'। यह बिन्दु सम्पूर्ण शक्तियों(चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया) की एकीभूत अवस्था का नामान्तर है। बिन्दु की अभिव्यक्ति होने पर यह स्वभावतः ही अनुत्तर या अकार का आश्रय कर प्रकाशित होता है। कारण, अकार ही चित्-शक्ति या अनुत्तर है।[५] उसका आश्रय लेकर ही सब कुछ प्रकाशित होता है-'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'[६]

---

१. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-६१.
२. वही, पृ०-६२.
३. वही,
४. वही, पृ०-६३-६४
५. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ०-६४.
६. वही, पृ०-६४ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी का नाम अंकार अर्थात् बिन्दु-संयुक्त अनुत्तर है। पहले बहि:स्पदन के वेग से जो आविर्भाव होता है, वह सन्मात्र या अव्यक्त से होता है। तदनन्तर जो बहिर्मुख धारा का निर्गम होता है, वह चित् या आकार से होता है। उसका अवसान 'औकार' में अर्थात् चित्-शक्ति से क्रिया-शक्ति पर्यन्त पाँच शक्तियों का आविर्भाव हुआ। इस बार अनुत्तर पंचशक्ति समन्वित हुआ, अर्थात् बिन्दु संयुक्त हो गया। अब जो सृष्टि होगी, वह इस 'अं' से होगी, 'अ' से नहीं। पहले की सृष्टि बैन्दव सृष्टि थी। इस बार वह एक बिन्दु ही विभक्त होकर अपने को दो बिन्दुओं में परिणत करता है। इसी का नाम है-विसर्ग। अब जो सृष्टि होगी, वह वैसर्गिक सृष्टि होगी। यह वैसगिक सृष्टि वास्तव में व्यञ्जन वर्णों की सृष्टि है। तान्त्रिक परिभाषा के अनुसार यही तत्त्व-सृष्टि है। 'क' से 'ह' तक व्यंज्ञन वर्ण विभिन्न तत्त्वों के द्योतक हैं। वस्तुत: ये सब प्रतीक मात्र हैं। जब इन तत्त्वों के अभिव्यक्त होने पर तत्त्व-सृष्टि का अवसान होता है, तब जानना चाहिए कि हकार-पर्यन्त सृष्टि हो गई है।[१]

रुद्रयामल कौलमत का प्रधान ग्रन्थ है। इसमें सूक्ष्म सृष्टि, स्थिति और संहार की चर्चा की गई है। संसार में जो कुछ भी पिण्ड है, वह वस्तुत: उसी प्रक्रिया में से गुजरता हुआ बना है, जिस अवस्था में से यह समूचा ब्रह्माण्ड बना है। सब में वही तत्त्व ज्यों के त्यों है। परन्तु सत्त्व, रज, तम, काल और प्राणशक्ति की अधिकता ओर न्यूनता के कारण उनमें भेद प्रतीत हो रहा है। जितनी नाड़ियाँ या द्वार या आधार मनुष्य में हैं, उतनी ही समस्त ब्रह्माण्ड में और उतनी ही ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु में हैं।[२] मेरूदण्ड में सबसे आन्तरिक नाड़ी को सुषुम्णा कहते हैं। सुषुम्णा का सच्चा स्वरूप है शून्य पदवी। आलंकारिक रूप से इसे एक कुल्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, यह दर्शाने के लिए कि शून्य तक पहुँचने के लिए उत्तरोत्तर बढते हुए शून्यत्व के क्रम से अनेक अवस्थाओं को पार करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में एकाग्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, चेतना का अपसरण होता जाता है, जिसका लक्ष्य ऐसी अवस्था प्राप्त करना है, जहाँ पूर्ण एकाग्र चेतना विषयाश्रित नहीं रह जाती और संतुलित होकर महाशून्य की साक्षी बन जाती है। किसी उपाय द्वारा इससे आगे जाना सम्भव नहीं है। महाशून्य का भेदन चित्कला के अनुग्रहपूर्ण आविर्भाव से ही सम्भव है।[३]

रुद्रयामल में कहा गया है कि सुषुम्णा-मूल अर्थात मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी की सुप्तावस्था में अवस्थिति है। इसे ही सृष्टि कहते हैं। इस कुण्डलिनी का जागरण ही 'पालन' है। प्रकृति के गुणों का जब विस्तार हो जाता है तो उन्हें प्रलयोन्मुख करने के लिए संहार-रूप कार्य का जन्म होता है।[४] इस शरीर में सबसे प्रधान कार्यकारिणी शक्ति कुण्डली है। यह विश्व-ब्रह्माण्ड में प्रव्याप्त महाकुण्डलिनी का ही पिण्डगत स्वरूप है।[५] सृष्टि की प्रक्रिया में वह प्राण-कुण्डलिनी में रूपान्तरित हो जाती है। यह रूपान्तरण एक क्रमिक प्रक्रिया द्वारा होता

१. वही, पृ०-६५.
२. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-१२२.
३. गोपीनाथ कविराज, पृ०-७५.
४. रुद्रयामल उ०त०, २५/५-६.
५. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-१२२-२३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, जिसमें शक्ति-कुण्डलिनी मातृकाओं एवं वर्णों के विकास द्वारा स्वयं को अधिकाधिक कसती जाती है और प्राण एवं शून्य के स्तर पर पहुँच जाती है। अतः सार रूप में कुण्डलिनी पराबिन्दु अथवा महामाया ही है। नाद के रूप में यह प्रत्येक व्यक्ति में रहती है।[१]

सृष्टि, स्थिति और संहार भय आदि के कारण हैं। उस भय के नाश के लिए प्रणव (ऊँ) ही समर्थ है। गुणातीत, अनन्त और अक्षर रूप की भावना करनेवाला योगी साधक होता है।[२] ऊँकार वेद का प्रणव है, हुंकार शैवागम सम्मत प्रणव है और ह्रींकार शाक्तागम सम्मत। इस प्रकार प्रणव के अनेक रूप तंत्र शास्त्र में वर्णित हैं। विज्ञान भैरव में कहा गया है[३]–"प्रणव आदि का भली भाँति उच्चारण करते हुये, उसकी उत्तम ध्वनि के अन्त में शून्यभावना करनी चाहिए। हे भैरवि! शून्य से पर शून्य शक्ति ही है, अन्य नहीं। प्रणव में स्थित अकार, उकार और मकार उस परब्रहम के व्यक्त स्वरूप को बताते हैं और चतुर्थ अर्धमात्रा-स्वरूप अक्षर समस्त ब्रह्मतत्त्व का वाचक है।"

योग सूत्र में इसी अर्थ में कहा गया है–'तस्य वाचकः प्रणवः'[४]। अव्यक्तरूप प्रणव से सृष्टि होती है और वही प्रणव अपनी दीप्ति से व्यक्त शरीरों में समाहित भी रहता है। सूक्ष्म अकारादि (अ, उ, म) से दिव्य आकाश में प्रणव का आभासन होता है, स्थूल निरक्षर (मातृका) से (वैखरी वाणी का विषय बनने से) वह अव्यक्तावस्था को प्राप्त हो जाता है।[५]

तंत्रसम्मत छत्तीस तत्त्व

तंत्र-विद्या के शैवागमों, शाक्तागमों और कौलागमों में प्रायः समान रूप से ३६ तत्त्वों को माना गया है, जिनसे समग्र विश्व की रचना हुई है।[६] इन तत्त्वों की अभिव्यक्ति के रूप में ही जगत् की सृष्टि होती है। सृष्टि-रूप में अभिव्यक्त होने पर भी इन तत्त्वों का तादात्म्य परमतत्त्व से बना रहता है। ये न तो शिव से ही अलग हैं और न एक दूसरे से ही पृथक होते हैं। प्रत्येक तत्त्व मूलतः शिव ही है, इसलिए प्रत्येक तत्त्व एक दूसरे में उपस्थित रहता है।

तंत्रसम्मत ३६ तत्त्वों का विवरण इस प्रकार है– (१) शिव (२) शक्ति (३) सदाशिव (४) ईश्वर (५) शुद्ध विद्या (६) माया (७) विद्या या अविद्या (८) कला (९)राग (१०) काल (११) नियति (१२) पुरुष या जीव (१३) प्रकृति (१४) बुद्धि (१५) अंहकार (१६) मन (१७) श्रोत्र (१८) त्वक् (९) चक्षु (२०) जिह्वा (२१) घ्राण (२२) वाक् (२३) पाणि (२४) पाद (२५) पायु (२६) उपस्थ (२७) शब्द (२८) स्पर्श (२९) रूप (३०) रस (३१) गन्ध (३२) आकाश (३३) वायु (३४) तेज (३५) जल (३६) पृथ्वी।

---

१. गोपीनाथ कविराज, पृ०, ७५
२. रुद्रयामल उ०त०, २५/७.
३. विज्ञान भैरव, धारणा-३९, ४५
४. पातञ्जल योगदर्शनम्-१/२७.
५. रुद्रयामल उ०त०, २५/८
६. दें प्रिन्सुप्ल ऑफ शक्ति, पृ०-१३२, तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि,-१५४:भारतीय दर्शन, पृ०-६७१, गोपीनाथ कविराज- पृ०-७१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन तत्त्वों का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जाता है। यथा–

(i) शुद्ध अध्वा एवं अशुद्ध अध्वा के आधार पर[१]।

शुद्ध अध्वा–शिव से लेकर शुद्ध विद्या तक पाँच तत्त्व। इस स्थिति में चेतना को अपने शुद्ध संवित्- स्वरूप का ज्ञान बना रहता है। इन तत्त्वों तक की सृष्टि में माया का कोई प्रभाव नहीं रहता है।

अशुद्ध अध्वा–इसके अन्तर्गत शेष ३१ तत्त्व हैं। इस स्थिति में माया का प्राधान्य रहने के कारण इसमें भेद-ज्ञान का प्राधान्य रहता है।

(ii) शिवतत्त्व, विद्या-तत्त्व एवं आत्म-तत्त्व के आधार पर[२]

शिव तत्त्व–इसके अन्तर्गत शिव और शक्ति हैं। इनमें सत्, चित्, आनन्द ये तीनों ही अनावृत्त और सुस्पष्ट रहते हैं।

विद्यातत्त्व–हैं–सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या। इनमें आनन्द अंश तो आवृत्त रहता है, किन्तु सत् और चित् अनावृत्त रहते हैं।

आत्मतत्त्व–शेष ३१ तत्त्व आत्म-तत्त्व कहलाते हैं, क्योंकि उनमें आनन्द और चित् ये दोनों ही आवृत्त रहते हैं, केवल 'सत्' (=सत्ता) अंश ही प्रकट और अनावृत्त रहता है। चित् अंश के आवृत्त रहने के कारण ये तत्त्व जड़वत् प्रतीत होते हैं। यहाँ 'आत्म' शब्द का यह अर्थ नहीं है कि ये चैतन्य-प्रधान हैं, अपितु 'आत्म' शब्द का प्रयोग यहाँ जड़-शरीर की आत्मा समझने के अर्थ में हुआ है।

(iii) शुद्ध तत्त्व, शुद्धाशुद्ध तत्त्व एवं अशुद्ध तत्त्वं के आधार पर।[३]

शुद्ध तत्त्व या सृष्टि की बीजावस्था–इसके अन्तर्गत हैं–शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या।

शुद्धाशुद्ध तत्त्व या सृष्टि की मिश्रावस्था–ये हैं–माया, पञ्चकञ्चुकाएँ अर्थात् काल, विद्या, राग, कला और नियति तथा पुरुष।

अशुद्ध तत्त्व या सृष्टि की स्थूलावस्था–इसके अन्तर्गत प्रकृति से लेकर पृथ्वी तक सांख्यदर्शन सम्मत २४ तत्त्व आते हैं।

प्रमुख तत्त्वों का विवरण इस प्रकार है–

(१) शिव–सृष्टि-क्रम का पहला तत्त्व 'शिव' तत्त्व है। शिव-तत्त्व परमशिव का सृष्टि रूप में प्रथम स्पन्द है। इसमें चित्शक्ति का प्राधान्य रहता है।[४] परमशिव के सिसृक्ष होने पर शिव और शक्ति–ये दो तत्त्व उत्पन्न होते हैं, परमशिव निर्गुण और निरञ्जन हैं, शिव सगुण

---

१. भारतीय दर्शन, पृ०-६७२.

२. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७५

३. दॅ प्रिन्सुप्ल ऑफ शक्ति, पृ०-१३३.

४. तंत्रसार, पृ०-७४-'चित्प्राधान्ये शिवतत्त्वम्।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और सिसृक्षा रूप उपाधि से विशिष्ट।[१] यह शुद्ध 'अहम्' के अनुभव की अवस्था है। इस अवस्था में प्रमेय (इदम्) का सर्वथा अभाव रहता है। सम्पूर्ण संसार अव्यक्त रूप में इस तत्त्व में वर्तमान है। यह देश और काल से अतीत है, फिर भी सभी देशों और कालों में एक रूप में वर्तमान है।[२]

(२) **शक्ति**–यह परमशिव की अभिव्यक्ति का दूसरा तत्त्व है, जो शिव का अभिन्न स्वरूप है। शिव का धर्म ही शक्ति है। धर्मी और धर्म अलग-अलग नहीं रह सकते। इसलिए मत्स्येंद्रनाथ ने कहा हे कि शक्ति के बिना शिव नहीं होते और शिव के बिना शक्ति नहीं रह सकती।[3] वस्तुत: शिव-शक्ति दोनों एक ही स्तर पर हैं जो सृष्टि से पहले का स्तर है, जैसे गर्भाधान के पहले स्त्री की निर्गर्भ स्थिति होती है। ये एक ही तत्त्व के दो रूप हैं, इनका विभेद मात्र व्यावहाकि दृष्टि से विवेचना के लिए किया जाता है। शिव का परिच्छिन्न चित् (अहं) के रूप में प्रकट होना ही शक्ति है। यह अहं-भासन का लक्षण चित् के स्वरून में निहित होता है, जिससे शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं रह जाता, तथापि समस्त भेदात्मक गुणों से स्वतन्त्र होने के कारण चित् शिव और अपने आत्मचेतनात्मक गुण के कारण शक्ति कहलाता है।[4] शिव तत्त्व की अवस्था में अनुभव का प्रत्यय 'अहम्' होता है। शक्ति तत्त्व की अवस्था में यह अनुभव 'अहमस्मि' रूप ग्रहण कर लेता है। इस अवस्था में आनन्द-शक्ति का प्राधान्य रहता है।[५]

(३) **सदाशिव**-सृष्टि क्रम तृतीय तत्त्व 'सदाशिव' है। इसकी अभिव्यक्ति शिव की इच्छा-शक्ति से होती है। जब शिव (या शिव-शक्ति) में सृष्टि करने की इच्छा उठती है तो वह सदाशिव हो जाता है। सदाशिव अवस्था स्त्री के गर्भाधान होने जैसी अवस्था है। यह शक्तितत्त्व का प्रथम और स्थूल उन्मेष है। इस स्तर पर इच्छा-शक्ति का प्राधान्य हो जाता है। इस अवस्था में इस प्रकार का ज्ञान होता है कि मैं ही शिव हूँ। सदाशिव जगत् को अपने से अभिन्न (अहं=मैं) रूप में जानते हैं। इनका यह 'मैं' का भाव (=अहं-ता) ही पराहन्ता या पूर्णाहन्ता कहलाता है।[६] इस अवस्था में अनुभव का प्रत्यय 'अहम' 'इदम्' होता है। अहम् शिव का परिचायक है और 'इदम्' विश्व का, किन्तु यहाँ 'इदम्' अंश अस्पष्ट ही रहता है, प्रधानता 'अहम्' अंश की ही होती है। इसलिए यहाँ जगत् का अव्यक्त रूप में भान होता है।[७]

रुद्रयामल के ७४ वें और ८० वें पटल में सदाशिव के ध्यान एवं चक्रक्रम का वर्णन किया गया है। आनन्द भैरवी का कथन है –"सदाशिव का ध्यान तीनों लोकों को जीतनेवाला एवं महापातकनाशक है। यह आयु और आयोग्य की वृद्धि, शत्रुसंहार एवं आनन्दप्राप्ति का गुह्यतम ध्यान है।[८] सदाशिव का मन्त्र जाप जो करता है, उसकी सारी अभिलाषाएँ तृप्त होती हैं।[९] सदाशिव और शाकिनी के प्रसन्न होने पर भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।[१०]

१. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७३.
२. भारतीय दर्शन।
३. कौलज्ञाननिर्णय, १७/८,
४. गोपीनाथ कविराज, पृ०-७२।
५. भारतीय दर्शन, पृ०-६७३.
६. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७३।
७. ई०प्र०वि० भाग-२, पृ०-१९१ 'सृष्टिक्रमोपदेशादौ प्रथममुचितं तत्सदाख्यं तत्त्वम्'।
८. रुद्रयामल उ०त०, ७४/१-२
९. वही, ७४/२२.
१०. वही, ८०/२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) ईश्वर–चौथा तत्त्व है–'ईश्वर'। जब शिव-चैतन्य में सृष्टि का सम्पूर्ण चित्र मानसिक रूप से आ जाता है, किन्तु अभी बहिर्गत नहीं हुआ रहता, तो वह ईश्वर कहलाता है। सदाशिव-अवस्था में केवल सृष्टि की इच्छा उठती है, किन्तु ईश्वरावस्था में सृष्टि का पूरा खाका मन में ही तैयार हो जाता है। इस अवस्था में सृष्टि चूँकि मानसिक प्रत्यय के रूप में ही रहती है, अतः इसे 'ज्ञान' कहा जाता है।[१] इस अवस्था में विषय की प्रधानता होने पर चेतना का रूप 'इदम् अहम्' हो जाता है।[२]

(५) शुद्धविद्या–सृष्टि-क्रम का पाँचवाँ तत्त्व है–'शुद्धविद्या'। इसमें इदम् की प्रधानता होती है। (इदमहं विमर्श) चेतना के प्रमाता तथा प्रमेय तत्त्वों की एकाकारिता की अवस्था शुद्ध विद्या की अवस्था होती है।[३] इस स्तर पर क्रियाशक्ति की प्रधानता रहती है।[४] जैसे परमशिव का बहिःऔन्मुख्य 'शुद्धविद्या' कहलाता है।[५] ईश्वरावस्था में विश्व मानसिक प्रत्यय या विमर्श के रूप में ही रहता है, किन्तु शुद्ध विद्या के स्तर पर विश्व प्रतिबिम्ब के रूप में बाहर आभासित होने लगता है।

(६) माया–छठा तत्त्व है माया। 'यह जगत् मुझसे भिन्न है'–इस प्रकार ईश्वर की वृत्ति का नाम 'माया' है।[६] इस स्तर पर सार्वभौम आत्मा सीमित आत्मा के रूप में प्रकट होता है। भेद का अवभासन करने के कारण ही यह मायाशक्ति कहलाती है। इसे परमेश्वर की स्वरूपगोपनात्मिका इच्छाशक्ति भी कहा गया है।[७] माया का स्वरूप तिरोधानकारी है।[८] जो अपनी पूर्णता में शिव था, वह माया के प्रभाव के कारण जीव बन जाता है। उसकी अभेद दृष्टि सर्वथा छिप जाती है तथा उसमे भेददृष्टि का उदय हो जाता है। वह अपने शुद्ध अहंरूपी संवित् स्वरूपता को भूल जाता है तथा अपने आपको संकुचित संवित् के रूप में समझने लगता है तथा अपने प्रमेय अंश 'इदम्' को अपने से सर्वथा भिन्न अचेतन मानने लगता है। माया ही कर्त्ता और कर्म के बोध का कारण है।[९] परमेश्वर की शक्ति होने के कारण यह नित्य है तथा विश्व का कारण है। माया शिव द्वारा स्वेच्छया गृहीत रूप है। जैसे एक अभिनेता जान-बूझकर भिन्न-भिन्न प्रकार का अभिनय करता है, वैसे ही परमशिव भी अपनी इच्छमात्र से अनेक प्रकार की भूमिका ग्रहण करता है।[१०] शाक्त सिद्धान्त के अनुसार मायाशक्ति चित्शक्ति का ही परिणाम है।[११]

---

१. तंत्रसार, आ०-८, पृ०-७४, 'ज्ञानशक्तिप्राधान्ये ईश्वरतत्त्वम्।'
२. गोपीनाथ कविराज, पृ०-७२.
३. गोपीनाथ कविराज, पृ०-७२.
४. तंत्रसार, आ०-८, पृ०-७४, क्रियाशक्ति-प्राधान्ये विद्यातत्त्वम्।
५. तंत्रालोक, टीका, भा०-६, पृ०-५०-४१.
६. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७३.
७. तंत्रालोक, टीका, भा०-३, पृ०-२८३, 'मायास्वरुपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तिः'।
८. ई०प्र०, भा०-२, ३/१/७-'तिरोधानकारी मायाभिधा पुनः'।
९. दॅ प्रिन्सुप्ल ऑफ शक्ति, पृ०-१३४.
१०. शिवसूत्र-विमर्शिनी, ३/९
११. दॅ प्रिन्सुप्ल ऑफ शक्ति, पृ०-१३१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(७-११) कला, विद्या, राग, काल और नियति–माया से कला, विद्या, राग, काल और नियति का प्रादुर्भाव माना जाता है। ये माया के पंचकच्चुक कहे जाते हैं। ये माया की संकोचनकारी शक्तियाँ हैं। ये पञ्चकंचुक परमचैतन्य की सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, आत्मसंतोष, नित्यता तथा स्वातंत्र्य पर आवरण हैं। कला से अल्पकर्तृत्व, विद्या से भेदबुद्धि, राग से अपूर्णता, काल से अनित्यता तथा नियति से अणुत्व–ये पाँच कंचुकों द्वारा उत्पन्न हीनताएँ हैं। नियति स्वतन्त्रता का अपहरण करती है। पाँच कंचकों से परवश शिव को पुरुष अथवा जीव की संज्ञा दी गई है।[1] मायाजनित ये तत्त्व जीव के पूर्ण स्वरूप को आवृत्त किये रहते हैं। इन संकुचित शक्तियों से अपूर्णता में आबद्ध होने के कारण इन कंचुकों को जीव का बंधन या पाश भी कहा जाता है।[2]

(१२) पुरुष–जब परमतत्त्व माया और उसके पञ्चकंचुकों के प्रभाव से सीमित विषयी का रूप ग्रहण कर संसारी हो जाता है तो इसे पुरुष कहा जाता है। पुरुष तत्त्वतः शिव ही है, किन्तु माया के तिरोधानकारी प्रभाव से अपने स्वरूप को भूलकर परिमित जीव बन जाता है। इस प्रकार अज्ञानवश अपने को बंधन में डाल देता है। जब तक इसे शिवभाव के स्वातंत्र्य का बोध नहीं होता, तब तक वह अनेकानेक जीव-योनियों में संचरण करता हुआ अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुख आदि को भोगता रहता है। आत्मस्वभाव की पूर्णता की अभिव्यक्त हो जाने पर वह मुक्त हो जाता है।[3]

(१३) **प्रकृति**–तेरहवाँ तत्त्व प्रकृति है, जो सत्त्व, रजः और तमः इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम है, प्रकृति को ही चित्त कहते हैं।[4] महत् तत्त्व से लेकर पृथ्वी तत्त्व पर्यन्त सभी तत्त्वों का मूल कारण प्रकृति तत्त्व है। पुरुष भोक्ता है और प्रकृति उसकी भोग्या है। किन्तु वास्तव में दोनों एक ही हैं। दोनों की अभिव्यक्ति एक साथ होती है। जिस प्रकार पुरुष जगत्-उन्मेष रूपी क्रीड़ा करने वाले परमेश्वर की आत्मकल्पना है, उसी प्रकार प्रकृति उसकी वेद्य-कल्पना है।[5]

(१४-३६) प्रकृति से ही शेष तत्त्वों की सृष्टि होती है। इसमें तीन अन्तःकरण-मन, बुद्धि और अहंकार, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्दियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ और पञ्चमहाभूत तत्त्व हैं। इन तत्त्वों की स्वरूप-विषयक अवधारणा सांख्यदर्शन के समान ही है। दोनों दर्शनों में मूलभूत अन्तर केवल इतना ही है कि सांख्य दर्शन के अनुसार ये तत्त्व प्रकृति के विकास हैं, किन्तु तंत्रशास्त्र के अनुसार ये तत्त्व प्रकृति के विकास होते हुए भी अन्ततः परमशिव की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। सांख्य में जहाँ प्रकृति आदि तत्त्व है, वहीं तंत्र में प्रकृति स्वयं सृष्टि-विकास का एक तत्त्व है। तंत्र के अनुसार सृष्टि के सभी तत्त्व परमशिव की विभिन्न अवस्थाओं के विभिन्न रूप ही हैं। इनका अलग से अपना कोई अस्तित्त्व नहीं।

१. गोपीनाथ कविराज, पृ०-७२.
२. भारतीय दर्शन, पृ०-६७६.
३. वही,
४. नाथ सम्प्रदाय, पृ०-७४
५. तंत्रालोक विवेक, भा०-१, पृ०-२०९-इदमेव हि परं स्वातंत्र्यं यत् स्वस्वरूपं वेदकमेवसत् वेद्यत्वेन अवभासयति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मा, बन्धन और मोक्ष

(क) आत्मा

तंत्र में आत्मा के लिए 'जीव' या 'पशु' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह आत्मा स्वरूपतः नित्य, विभु, चेतन और अन्यान्य शिवधर्माक्रांत होते हुए भी संसारावस्था में उन धर्मों के विकास का अनुभव नहीं कर पाता। सर्वज्ञान-क्रियारूप शक्ति जैसी शिव की है, वैसी ही जीव या पशु मात्र की है। यही चैतन्य शक्ति है। शिवस्वरूप में यह सर्वज्ञत्व तथा सर्वकर्तृत्वरूपा शक्ति सर्वदा अनावृत्त है। पशु में भी यह शक्ति समान रूप से है जरूर, पर पशु की सर्वज्ञान-क्रिया-शक्ति अनादिकाल से पाश-समूह से अवरूद्ध है। मल, कर्म और माया-इन तीन प्रकार के पाशों में से कोई आत्मा एक पाश से, कोई दो पाश से ओर कोई-कोई तीनों पाशों से आबद्ध होती है।[1] आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में सच्चिदानंद शिव है जो माया की अशुद्धताओं से आच्छादित अथवा लिप्त हो जाने से पशु या जीव के रूप में भासित होता है। पशुरूप ग्रहण करने पर भी शिव की सर्वोच्चता अथवा पूर्णता में कोई कमी नहीं आती। पशुरूप ग्रहण करके भी शिव शिवरूप भी रहता है तथा पशु रूप भी अर्थात् शिव विश्वोतीर्ण भी रहती है और विश्वमय भी, शिवावस्था में उसे अपनी पूर्णता का ज्ञान रहता है, किन्तु पशु-अवस्था में उसे यह ज्ञान नहीं रहता है।[2]

तंत्रशास्त्र में तीन प्रकार के पशु (आत्मा) बतलाये गये हैं-(१) सकल पशु (२) प्रलयाकल पशु और (३) विज्ञानाकल पशु।[3]

(१) सकल पशु-जिन आत्माओं में मल आदि तीनों ही पाशों का बन्धन रहता है, उन्हें सकल आत्मा कहते हैं।[4] सकल है जीवन की वर्तमान अवस्था। सामान्य मनुष्य विकारों के प्रभाव में; सत्त्व, रजस् आदि गुणों के बन्धन में, माया तथा कर्मों के पाश में जीवन व्यतीत करता सकल पशु रूप से मुक्ति पाने के लिए अथक प्रयास एवं साधना तथा पुरुषार्थ करता है। उसके द्वारा माया के काल, नियति, राग, विद्या एवं प्रारब्ध कर्मों के प्रभावों को निर्मूल किया जाता है और प्रलयाकल की अवस्था को प्राप्त किया जाता है।[5]

(२) प्रलयाकल पशु-सकल के बाद प्रलयाकल की अवस्था है। ये प्रलयकाल में देह-सम्बन्ध से विच्छिन्न होते हैं। लिहाजा इनके देह भी नही, इन्द्रिय भी नहीं। देह का मूल उपादान और इन्द्रिय का उपादान मूल प्रकृति में लीन है। यह अज्ञान अवस्था है, सुषुप्तिवत्। सभी जीव प्रलयाकल में प्रलय की अवस्थिति तक इस प्रकार विदेह और विकरण अवस्था में अज्ञानात्मक मूल प्रकृति में लीन रहते हैं।[6]

१. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-९-१०.
२. भारतीय दर्शन, पृ०-६७८.
३. तंत्र दर्शन, पृ०-२५
४. तंत्र और आगम-शास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-१०.
५. तंत्र दर्शन, पृ०-२५.
६. तंत्र ओर आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-१०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३) विज्ञानाकल पशु–विज्ञानाकल पशुत्व की तीसरी स्थिति है। यह विज्ञान या आन्तरिक बोध की अवस्था है, जिसमें कर्म के समस्त बन्धन समाप्त हो जाते हैं। यह अवस्था जागृत या आत्मज्ञानी पशु की है। आत्मज्ञान की अवस्था में भी पशुभाव बना रहता है, क्योंकि यहाँ पर यह ज्ञान तो हो गया है कि 'मैं सनातन हूँ', 'मैं आत्मा हूँ' लेकिन अभी मिलन नहीं हुआ है।[१] विज्ञानाकल अवस्था में शिव केवल आणवमल से युक्त होता है।[२]

पशुत्व की निवृत्ति का एकमात्र उपाय है परमेश्वर की अनुग्रहशक्ति का संचार करना और तन्मूलक दीक्षारूप क्रिया।[३]

(ख) बन्धन या पाश

बन्धन क्या है? इसके उत्तर में कबीर ने बहुत सुन्दर ढ़ंग से रूपक मूलक भाषा में कहा है[४]–

आज होरी मैं कहा सँग खेलूँ, दुविधा धूम मचाय रही है!
पाँच पचीसन फाग रच्यो है, ममता रङ्ग बनाय रही है।।
कनट-कटोरा विषय-रस भर-भर, तृष्णा मन को लुभाय रही है!
करके सिङ्गार कुमति बैठी है, भरम घुँगरू बजाय रही है।।
मताय-मताय किए बस अपने, मैं-मैं रागिन छाय रही है!
जान-बूझकर सुनो भाई साधो! सन्त-जना ने पीठ दई है।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो! हमरो तो ऐसहि बीत गई है।।

आत्मा को जो संसार का अनुभव होता है, उसका एकमात्र कारण पाश से सम्बन्ध है। पाश का अर्थ होता है–बन्धन। पाश अचेतन, चेतनाधीन, परिमाणशील और चैतन्य का प्रतिबन्धक है।[५] मल, कर्म और माया साधरणतया इन तीन प्रकार के पाश का उल्लेख पाया जाता है। एतदतिरिक्त दो पाश और चर्चा में आते हैं –महामाया और तिरोधान-शक्ति।

(१) मल-पाश–मल की व्युत्पत्ति है–'मालिनी करोति दृक्क्रियात्कं तेज आच्छादयति इति मल:'।[६]

अर्थात् 'दृक्क्रियात्मक तेज को जो आच्छादित कर ले, वह मल है।' अनादि काल से चला आ रहा यही मल पुरुषों के पशुत्व का कारण है। चित् और अचित् का अविवेक मल से उद्भूत है, इसलिए मल की निवृत्ति न होने तक पूर्ण विवेक सिद्ध नहीं हो सकता। इस अविवेक के कारण विवर्त का उदय होता है। मल ही आणव पाश है। आत्मा की नित्य और

१. तंत्र दर्शन, पृ०-२५
२. भारतीय दर्शन, पृ०-६७९.
३. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-११.
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-३९ पर उद्धृत।
५. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-१८.
६. रुद्रयामल (उ०त०), संपूर्णानन्द संस्करण- प्रस्तावना, पृ०-३५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यापक चिन्शक्ति यदि अनादि पाश से उपरूद्ध नहीं होती, तो संसार-अवस्था में भोग-निष्पत्ति के लिए कला आदि के द्वारा अपने सामर्थ्य के उत्तेजना की आवश्यकता नहीं होती तथा मोक्ष के लिए भी परमेश्वर की कृपा या बल की अपेक्षा नहीं रहती। मल एक है, मगर उसकी शक्ति अनेक है।[1]

तंत्रशास्त्र में सामान्यतः पाँच प्रकार के मलों की चर्चा होती है-सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, विकार और प्रत्यय। एक विशेष परिस्थिति में सत्त्वगुण की अवस्था में भी मानव मन फँसता है। सत्त्व की अवस्था में शुद्धि और समत्व की चाह, संयम और संतुलन प्राप्त करने की इच्छा के रूप में मन वहाँ अटक जाता है। रजोगुण में सुख-भोग की इच्छा या किसी अन्य प्रकार की भोगेच्छा या वासना में मन अटकता है। तमोगुणी मल तो सर्वज्ञात ही है। विकारों का सम्बन्ध सूक्ष्म संस्कारों से है। व्यक्तित्त्व-विकास के क्रम में, परिवर्त्तन और परिणति के क्रम मे जिन संस्कारों को मनुष्य ग्रहण करता है, उनमें ही फँस जाता है। प्रत्यय का सम्बन्ध है-संसार से, बाह्य परिस्थिति से और पदार्थ जगत् से। संसार से सम्बन्धित जो भी इच्छा, अनिच्छा, वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि भाव हैं, जिनका तात्कालिक अनुभव होता है, प्रत्यय कहे गये हैं। वही प्रत्यय जो तत्काल प्रकट नहीं होता, बीज रूप में मनुष्य के व्यक्तित्त्व मे आरोपित हो जाता है तथा बाद मे विकार या संस्कार का रूप ले लेता है।[2]

आणव मल को मूल मल कहा जाता है। इसके ही कारण अनय मलों का प्रभाव बढ़ता है।

(२) कर्म-पाश—यह धर्म-अधर्मात्मक और अदृष्ट, बीज आदि नामों से जाना जाता है। कर्मसन्तान प्रवाहरूप में अनादि और सूक्ष्मदेह के मध्य अवयवभूत बुद्धितत्त्व में आश्रित है।[3] कर्म एक ऐसा बन्धन है जो चेतना की सर्वज्ञता को सीमित करता है और चेतना के असीम तत्त्व का अनुभव नहीं होने देता। कर्म के मुख्यतः बाह्य और अव्यक्त दो रूप होते हैं। बाह्य में भी कर्म के तीन रूप हैं-स्थूल, सूक्ष्म और कारण। जीवन स्थूलकर्म चेतना में स्मृति रूप में और स्मृति के भीतर भी बीज के रूप में छिप जाता है। सूक्ष्म अवस्था में मनुष्य अपने अन्तःकरण-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के द्वारा कर्म करता है। यह कर्म भी अन्तःकरण में उत्पन्न होकर बीज रूप में चेतना की गइराई में छिप जाता है और बाद में कारणरूप में प्रकट होता है।[4]

अव्यक्त स्थिति में भी पुरुप कर्म के बन्धन से मुक्त नहीं होता। अन्तर इतना ही है कि उस अव्यक्त अवस्था में कर्मों की परिभाषा बदल जाती है। कर्मभोग बदल जाते हैं। यहाँ कर्म का

---

१. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-१९.
२. तंत्र दर्शन, पृ०-१९.
३. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-२०
४. तंत्र दर्शन, पृ०-२१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य अर्थ है क्रिया से। क्रिया जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित कर चेतना की सर्वज्ञता को अवगुण्ठित करती है।[१]

(३) **माया-पाश**—कला से पृथ्वी तक तत्त्व की समष्टि ही माया का स्वरूप है।[२] माया को तीन भागों में विभक्त किया गया है-काल, नियति और कला। काल वह ज्ञान है जो समय के बन्धन, समय की सीमा में प्राप्त हो। जल्दी और विलम्ब की परिभाषा का निमित्त है काल। नियति का सम्बन्ध यहाँ कर्म से है। अच्छे कर्मों का भोग अच्छा प्रारब्ध या अच्छा भाग्य कहलायेगा और बुरे कर्मों का भोग बुरा भाग्य कहलायेगा। इसके ऊपर व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं होता। कला का तात्पर्य होता है—अभिव्यक्ति। कला को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है—राग और विद्या। किसी कला की अभिव्यक्ति द्वारा राग उत्पन्न हो सकता है और किसी अन्य कला के द्वारा विद्या। राग वास्तव में आसक्ति है। भोग, पदार्थ, जीवन, परिवार और समाज से आसक्ति हो सकती है। राग को कला के रूप में बड़ा बन्धन माना गया है, जिसके चंगुल से मनुष्य का निकल पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि कोई माने कि वह सभी से मुक्त हो गया है, तो भी शरीर से आसक्ति तो रहती ही है।.. ..समाज से दूर जंगल या एकान्त में रहते हुए भी शरीर-भोग और मन का भोग नही छूटता।. .. राग से मुक्ति तभी मिलती है जव पंचभूतों से निर्मित शरीर से आसक्ति टूटती है और केवल चैतन्य-अवस्था में स्थिति-ज्ञान होता है।[३] इसका प्रतिसंतुलन है विद्या, राग के पलड़े को संयमित और संतुलित रखती है। विद्या का अर्थ है अनुभव और अनुभूति। अनुभूति से प्राप्त ज्ञान विद्या है और विद्या के द्वारा राग को संयमित और संतुलित रखा जा सकता है।[४]

काल, नियति और कला तथा कला में राग और विद्या के समूह माया की वे अवस्थाएँ हैं, जिनमें मानव-चेतना सांसारिक भोगों या कर्मों में लिप्त रहती है।[५]

इसी तरह महामाया और तिरोधान-शक्ति को भी एक विशेष अर्थ में पाश कहा जाता है।[६] महामाया संसार में, ब्रह्माण्ड में, व्यक्त या अव्यक्त क्षेत्र में परिवर्त्तन और अनुशासन का कारण रहती है। यह व्यक्ति-सापेक्ष है। इसी के प्रभाव के कारण व्यक्ति वास्तविक सत्य को, मूल सत्ता को पहचानने में समर्थ या असमर्थ होता है। शिव-तत्त्व जितना विराट-विस्तृत है, महामाया भी उतनी ही विराट और विस्तृत है।[७]

(ग) मोक्ष या निर्वाण

मोक्ष या निर्वाण पूर्णता की स्थिति है। मोक्षावस्था में आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप स्वयं

---

१. तंत्र दर्शन पृ०-२१.
२. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ०-२०.
३. तंत्र दर्शन, पृ०-२०
४. वही, पृ०-२०.
५. वही,
६. रुद्रयालम् (उत्तरतंत्रम्)-संपूर्णानन्द संस्करण-प्रस्तावना, पृ०-३५.
७. तंत्र दर्शन, पृ०-१८.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिव हो जाता है। इस स्थिति में भेद-ज्ञान या द्वेत-ज्ञान अद्वैत-ज्ञान या अभेद-ज्ञान में परिणत हो जाता है। मुक्तावस्था शिवावस्था है। जिस प्रकार भूसी से युक्त धान होता है भूसी के दूर हो जाने पर चावल कहलाता है, उसी प्रकार कर्मों से बँधा हुआ 'जीव' और कर्मों से छूटा हुआ 'सदाशिव' माना जाता है।[१] जिस प्रकार जल में जल, दूध में दूध और घी में घी डालने से कोई अन्तर नही पड़ता, उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है।[२] शिव ही अपनी लीलावश आत्मा-रूप, पशुभाव ग्रहण करता है, किन्तु मलों के प्रभाव के कारण वह अपने स्वरूप को भूल जाता है। साधना आदि के द्वारा मलावस्था हटने से चेतना की स्थिति में परिवर्त्तन होकर जब अपने निर्मल स्वरूप की वास्तविक अनूभूति होती है तो उसे पौरूष ज्ञान कहते हैं। इसी से मोक्ष प्राप्त होता है, पौरुष ज्ञान को भी ज्ञान ही कहते हैं, क्योंकि उसमें भी कोई वस्तुगत परिवर्त्तन नहीं होता, वरन् ज्ञानात्मक परिवर्त्तन ही होता है। इस शुद्धीकरण या रूपान्तरण की प्रक्रिया में आत्मा कोई नवीन रूप धारण नहीं करती। वह अपने ही वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करती है।

तंत्र में निर्वाण का स्वरूप बहुविध वर्णित है। कहीं मूलाधारस्थ कुण्डलिनी का जागृत होकर सहस्रार में परम शिव से सम्मिलन को 'मोक्ष' कहा गया है, कहीं पर शिव-शक्ति सामरस्य को ही मुक्तावस्था कहा गया है। पुनःपुनः जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है। रुद्रयामल में वर्णित मनोमहाप्रलय मोक्ष की ही अवस्था है, जिसमें योगी परमतत्त्व में मन को विलीन किये रहता है।

तंत्रशास्त्र में भी मोक्ष की दो अवस्थाएँ वर्णित हैं- जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। किसी भी चिन्तन से तत्त्व प्रकाशित नहीं होता, वह स्वयं ही प्रकाशित होता है। इन्द्रिय-समूह को निष्क्रिय रखकर अपनी आत्मा में मन को जो लीन रखता हुआ मृतवत् रहता है, वह साक्षात् जीवन्मुक्त कहा जाता है।[३] जीवन्मुक्ति व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व को अपना ही स्वरूप, अपना ही विभव तथा अपनी ही अभिव्यक्ति मानता है। वह सारे संसार में अपने एकत्व की अनुभूति करता है। जीवन्मुक्ति पूर्ण विश्वप्रेम की स्थिति है। जीवन्मुक्त योगी संसार के भोगों को भी अपने स्वरूप के लीलाविलास के रूप में लेता है। वह जागतिक भोगों में भी अपने स्वरूप को ही भोगता है, क्योंकि जगदानन्द उसके स्वरूपानन्द का ही स्फुरण है।[४] जीवन्मुक्त व्यक्ति देहपात के बाद विदेहमुक्ति की अवस्थिति का अनुभव करता है।

रुद्रयामल में मोक्ष के विभिन्न साधनों यथा, सुषुम्णा-साधन, डाकिनी-साधन, भेदिनी-साधन, छेदिनी-साधन आदि तथा योग के विभिन्न रूपों का वर्णन हुआ है। योगियों के जपनियम में कहा गया है कि सर्वप्रथम योगी बद्धपद्मासन में बैठकर योनिमुद्रा का विधान कर, तत्पश्चात् मनोरम प्राणायाम में काकचञ्चुपुटकृति मुख से मूलाधार चक्र में वायु को सम्पूरित

१. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-४९
२. वही, पृ०-४८
३. वही, पृ०-४८
४. भारतीय दर्शन, पृ०-६८२-८३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते हुए कन्दस्थान में आकुञ्चन के अभ्यास से चित्स्वरूपिणी कुण्डलिनी जागृत होती है। इस समय अधरोष्ठ बन्दकर दाँतों के ऊपर दाँतों को प्रगाढ़तापूर्वक बिना जिह्वा का प्रसारण किये योगी को जप करना चाहिए। इस जप में जिह्वा के द्वारा दाँतों का स्पर्श नहीं करना चाहिए। इसके बाद साधक वीरासन में स्थित होकर काकचञ्चु मुखाकृति करके जिह्वा को तालु तथा जिह्वामूल स्थान में योजित करना चाहिए एवं जिह्वाग्र से अमृत रस का पान करना चाहिए। इस प्रकार खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने वाला योगी अमरत्व को प्राप्त करता है तथा जीवन्मुक्त हो जाता है।[१]

इसी तरह कहा गया है कि योग के बिना कुण्डलिनी-जागरण की सिद्धि भी नहीं प्राप्त हो सकती। योग से ही मोक्ष प्राप्त होता है-यह योगार्थ का निर्णय है।[२] कुण्डलिनी-जागरण की साधना में षट्चक्रों का भेदन करने के बाद (महापद्म) सहस्रार में मन के लय की पराकाष्ठा को मनोमहाप्रलय कहते हैं। मनोमहाप्रलय की अवस्था को प्राप्त साधक मुक्त होकर काल को वश में करके तत्त्वदर्शी, सर्वविद् और सर्वतोभद्र हो जाता है।[३] ब्रह्म एक है तथा उससे अतीत त्रिलोक की कल्पना भ्रमवश की जाती है। जब यह त्रिजगत ब्रह्म में विलीन हो जाता है, तब महालय की स्थिति होती है। इस महालय में मन को एकाग्र करके साधक सर्वकालजयी, मृत्युञ्जयी, महावीर, महापति, सर्वव्यापक तथा ईश्वरस्वरूप हो जाता है। वह समदृष्टिवाला, क्षुधातृष्णारहित तथा मितभाषित होकर निराकर ब्रह्म में अपने मन को एकाग्र करता है, यही महालय की स्थिति है। ऐसे साधक को किसी प्रकार का संकट वाधित नहीं करता।[४]

सुख-दुःख आदि का संग सब कुछ इन्द्रियों के ही द्वारा होता है। इसलिए इन्द्रियों के व्यापार को और उसमें अहंभाव को समुचित रूप से त्यागने पर साधक अपने में स्थित होता है और अपनी आत्मा की अनुभूति में ही वर्तमान रहता है। मनबुद्धि, चेतना, प्राणशक्ति और आत्मा-यह चार समूह हैं; ये चारों ही अहंभावात्मक कार्यक्षेत्र और अनुभूति में जितने अधिक क्षीण हो जाते हैं, साधक उतना ही अधिक भैरवरूप या भैरवमय हो जाता है-

इन्द्रियद्वारकं सर्वं सुखदुःखादिसङ्गमम्।
इतीन्द्रियाणि संत्यज्य स्वस्थः स्वात्मनि वर्तते।।[५]
मानसं चेतना शक्तिरात्मा चेति चतुष्ट्यम्।
यथा प्रिये परिक्षीणं तदा तद् भैरवं वपुः।।[६]

इसी प्रकार 'शिवसूत्र' में कहा गया है-'सुख-दुःख बाह्य वृत्तियाँ हैं-ऐसा सतत् जानता है; और उनसे विमुक्त वह (साधक) केवली हो जाता है। उस कैवल्य अवस्था में आरूढ़ हुए

१. रुद्रयामल उ०त०, २५/८२-८८.
२. वही, २५/७१-७२.
३. वही, २९/३९-४०
४. वही, २९/४२-४७.
५. विज्ञान, भैरव, धारणा-११०
६. वही, धारणा-११२,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगी का अभिलाषा-क्षय के कारण जन्म-मरण का पूर्ण क्षय हो जाता है। ऐसा भूत-कंचुकी, विमुक्त पुरुष परम शिवरूप ही होता है'।[१]

शिव में चित्त को इस तरह एकाग्र करना चाहिये, जिससे जीव और ब्रह्म (शिव) के ऐक्य की अनुभूति हो सके। इस समय साधक तन्मय (ब्रह्ममय) हो जाता है।[२] सङ्गहीन और उपाधियों से रहित होकर निज-स्वरूप में तल्लीन रहता हुआ योगी परमतत्त्व का ज्ञाता होता है।[३]

जब साधक मोक्षावस्था में पहुँचता है तो वह स्वयं शिवमय हो जाता है एवं अनंत आनन्द से मग्न हो जाता है। उसकी अनुभूति को काव्यात्मक रूप में कुछ इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है[४]–

मेरे आंगन श्वेत कबूतर!
उड़ आया ऊँची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!

गर्मी की हल्की संध्या यों–
झांक गई मेरे आंगन में,
झरीं केवड़े की कुछ बूँदें
किसी नवोढा के तन-मन में;

लहर गई सतरंगी चूनर, ज्यों तन्वी के मृदुल गात पर!
उड़ आया ऊँची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!

मेरे हाथ रची मेंहदी, उर–
बगिया में बौराया फागुन,
मेरे कान बजी बंसी-धुन
घर आया मनचाहा पाहुन;

एक पुलक प्राणों, चितवन एक नयन में, मधुर-मधुरतर!
उड़ आया ऊँची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!

कोई सुन्दर स्वप्न सुनहले–
आंचल में चंदा बन आया,
कोई भटका गीत उनींदा
मेरी सांसों से टकराया,

छिटक गई हो जैसे जूही, मन-प्राणों में महक-महक कर!
उड़ आया ऊँची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!

---

१. श्री शिवसूत्र व्याख्या, ३/३४-३५: ३/४२-४३.
२. रुद्रयामल उ०त०, २७/८६-८७.
३. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-४९.
४. मरौ हे जोगी मरौ, पृ०-४७-४८ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरा चंचल गीत किलकता
घर-आंगन देहरी-दरवाजे,
दीप जलाती साँझ उतरती
प्राणों में शहनाई बाजे;

अमराई में बिखर गए री, फूल सरीखे सरस-सरस स्वर!
उड़ आया ऊँची मुंडेर से, मेरे आंगन श्वेत कबूतर!

वैष्णवों की मुक्ति के लिए यह निर्देश दिया गया है कि वे स्वाधिष्ठान-चक्र में अपने मन को स्थिर करें, साथ ही मन्त्र, जप आदि (हवनादि) का भी अभ्यास उसे करना चाहिए। परमतत्त्व की अनुभूति होने पर अनुष्ठान का आचरण अनपेक्षित हो जाता है। जैसे अंधकार से व्याप्त घर में दीपक के द्वारा घटज्ञान होता है, वैसे ही अज्ञानादि से आच्छादित आत्मा मन्त्र के द्वारा प्रकाशित होता है।

ब्रह्मज्ञान, योग-ध्यान, मन्त्र-जप, नेति-नेति आदि नाना प्रकार की क्रियाएँ मुक्ति-मार्ग की पगडंडिया हैं। शिव के प्रति असाधारण भक्ति श्रीविद्यारूपा है। भक्ति के मनन, कीर्त्तन, ध्यान, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य-भाव, सख्य-भाव तथा आत्मनिवेदन-ये दश अङ्ग हैं। इस भक्ति की कृपा से साधक निश्चित ही जीवन्मुक्त हो जाता है। वह योगी समाधि में स्थित होकर अन्य योगियों में प्रिय होता है।[1]

जो योगी सर्वव्यापी, शान्त, आनन्दमय, अव्यय (शिव या ब्रह्म) को देख लेता है, उसे कुछ भी पाने या जानने को नहीं बचता। ज्ञान-विज्ञान के प्राप्त होने पर, हृदय में ज्ञेय की धारणा स्थिति होने पर और शान्ति-पद के मिल जाने पर न योग की आवश्यकता रहती है, न धारणा की। परब्रह्म को जान लेने पर सभी नियम समाप्त हो जाते हैं। सुगंधित वायु के मिलने पर पंखे की क्या आवश्यकता? न आसन लगाना पड़ता है, न प्राणायाम करना होता है। यम-नियम भी नहीं रहते। स्वयं ही आत्म-दर्शन होता रहता है।[2]

भाव

तंत्र में भाव का अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान है। शरीर और विचार से भी गहरा तल भाव-भावनाओं का है। साधना में शरीर और विचार, दोनों से ज्यादा भाव की शुद्धि की उपयोगिता है। यह इसलिए कि मनुष्य विचार से बहुत कम, भाव से ज्यादा जीता है। घृणा, प्रेम, क्रोध आदि सब भावनाओं से सम्बन्धित हैं, विचारों से नहीं। जीवन की अधिकतर चर्या भाव के जगत् से उद्भूत होती है, विचार के जगत् से नहीं।....जब तक भाव के जगत् में परिवर्त्तन न हो, केवल विचार के जगत् में सोच-विचार से कोई क्रान्ति जीवन में नहीं होती। इसलिए साधना में जो सबसे आधारभूत बिन्दु है, वह भावनाओं का है, भावों का है।[3]

१. रुद्रयामल उ० त०: २७/९४-१०४.
२. हिन्दी कुलार्णव तंत्र, पृ०-४८.
३. ध्यान-सूत्र, पृ०-८०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रयामल में कहा गया है कि भाव से परे कुछ भी नहीं, यह सम्पूर्ण जगत् भाव के अधीन है। भाव से ही योग की प्राप्ति होती है–

भावात् परतरं नास्ति भावाधीनमिदं जगत्।
भावेन लभ्यते योगस्तस्माद् भावं समाश्रयेत्।।[१]

भाव के द्वारा ही सब कुछ प्राप्त है, भाव के बिना किसी प्रकार की सिद्धि नहीं हो सकती।[२] भैरवी कहती है कि जो मंदभाग्य है, उनकी शरण में (भैरव की) नहीं जाता, उसे पशुयोनि प्राप्त होती है; जो उनमें भावत्रय की भावना करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है! भाव से देव-दर्शन सुलभ होता है। भाव से ही परमज्ञान की प्राप्ति होती है। सभी शास्त्रों का गूढ तत्त्व भाव ही है। जब साधक सर्वमूलभूत देवी-भाव को प्राप्त करता है, तब उसे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है और उसका ध्यान दृढ़ हो जाता है।[३] भाव से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। भाव से ही साधक अनुगृहीत होता है। अनुग्रहप्राप्ति से वह महासुखी होता है, सुख से पुण्य और पुण्य के प्रभाव से शिव का दर्शन होता है।[४]

भाव से ही तीनों लोकों की सिद्धि होती है। भाव ही परम ज्ञान है। कोटि-कन्या प्रदान करने, सैकड़ों बार वाराणसी का तीर्थाटन करने और कुरूक्षेत्र जाने से कोई लाभ नहीं, यदि भाव की प्राप्ति नहीं होती। चाहे गया जाकर श्राद्धपूर्वक दान-दक्षिणा कर लें, चाहे विभिन्न पीठों का भ्रमण कर लें या चाहे अनेक होमजाप कर लें, किन्तु यदि भाव नहीं तो सब बेकार है। भाव से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से मोक्ष उपलब्ध होता है।[५]

भाव के बिना तंत्र-मन्त्र शक्तिहीन है–

'न भावेन विना देवि! तन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः'।[६]

वीरसाधना, मोक्षविद्या, पीठपूजा, कन्या को भोजन कराना, अपनी स्त्री के साथ या दूसरे किसी के साथ प्रेम, जितेन्द्रिय भाव या कुलाचार कर्म-सब भाव के बिना खोखला एवं व्यर्थ है। भाव से ही मुक्ति मिलती है। कुलवृद्धि, गोत्रवृद्धि, फलप्राप्ति सब कुछ भावाधीन है।[७]

भावत्रय

शक्ति-साधना तीन प्रकार के आचारों से की जाती है-(१) दक्षिणाचार (२) वामाचार और (३) कुलाचार। 'रुद्रयामल' में इनके लक्षण इस प्रकार दिए गए हैं[८]–

---

१. रुद्रयामल उ०त०, २७/३०.
२. वही, ११/४३-४४.
३. वही, १/११४-१७.
४. वही, १/१२०-२१.
५. वही, १/२२०-२३.
६. रूदयामल उ०त०, ६/७१.
७. वही, ६/७२-७६.
८. रुद्रयामल (पञ्चमकार तथा भावत्रय, विषय प्रवेश, पृ०-५-६ पर वर्णित एवं उद्धृत)।
(i) प्रभाते स्नान-सन्ध्यादि, मध्याह्ने जप ईश्वरि।
और्णमासनमात्मार्थं, भक्ष्यं पायस-शर्करम।।
माला रुद्राक्ष-सम्भूता, पात्र पाषाण-सम्भवम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) 'दक्षिणाचार' में प्रातः स्नान, दिन में पूजन, हविष्यान्न भोजन, पूजन में ऊर्णासन तथा रुद्राक्ष-माला के प्रयोग, श्रोत-स्मार्त धर्म में दृढ़ रहकर साधना करने का विधान है। पञ्चमकार (अपने मूल अर्थ में) से पूजन करना सर्वथा निषिद्ध माना गया है और पहले तो ब्रह्मचर्य से साधक को रहना चाहिए, यदि ब्रह्मचर्य से न रह सके, तो स्व-स्त्री में रत रहें।

(२) 'वामाचार' में स्नान-शौच का कोई बंधन नहीं है। साधक सर्वदा सर्वकाल में जप-ध्यानादिक कर सकता है, रात्रि-पूजन विशेषतया प्रशस्त है। इस आचार में साधक को वर्णाश्रम-धर्म के बन्धन में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। वामाचारी को सर्व-वर्णों में समत्व समझना चाहिए। मद्य-मासांदिक से देव-पूजन करना विहित है। साधना में स्वकान्ता,परकान्ता के बीच कोई भेद नहीं माना जाता।

(३) 'कुलाचार' राजयोग है और इसके पञ्चमकार अन्तर्याग से सम्बन्धित हैं।

दक्षिणाचार, वामाचार और कुलाचार तान्त्रिक साधना की कोटियाँ हैं। इन्हें तीन भावों के द्वारा क्रमशः निष्पन्न की जाती है। भावत्रय हैं-पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। पशु आदि भाव वस्तुतः साधक के स्तर हैं। इन तीन भावों में किसे सर्वोत्तम माना जाय-इस प्रश्न पर विभिन्न तंत्रशास्त्रों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। 'कालीविलासतंत्र' के अनुसार पशुभाव सर्वोत्तम है और वीरभाव निकृष्ट।[१] अधिकतर तंत्र 'पशुभाव' को निकृष्ट मानते हैं।

वस्तुतः ये तीनों भाव साधना की भावदशा के तीन क्रमिक स्तर हैं। पशुभाव से साधना

भोगः स्वकीय कान्ताभिर्दक्षिणाचार इत्ययम्।।
द्रव्येण मधुना देवि! सिद्धि-हानि-करो मतः।

(ii) 'वामाचारं' प्रवक्ष्यामि, श्री दुर्गासाधनं परम्।
यं विधाय कलौ शीघ्रं, मांत्रिकः सिद्धिभाग् भवेत्।।
माला नृ-दन्तसम्भूता, पात्रं तु नरमुण्डकमु।
आसनं सिद्ध-चर्मादि, कङ्कणं स्त्रीकुचोद्भवम्।।
द्रव्यमासव-तत्त्वाढ्यं, भक्ष्यं मांसादिकं प्रिये।
चर्वणं बाल-मत्स्यादि -मुद्रा वीणा-खः कथा।।
मैथुनं परकान्ताभिः सर्ववर्णसमानता।
'वामाचार' इति प्रोक्तः, सर्व सिद्धिप्रदः शिवे!।।

(iii) 'कुलाचारं' प्रवक्ष्यामि, सेव्यं योगिभिरूत्तमैः।
कुल-स्त्रियं (षट्चक्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ)
कुल गुरूं (आज्ञा चक्र में हंस-पीठस्थ गुरू)
कुल देवीं (कुल-कुण्डलिनी) महेश्वरि!।।
नित्यं यत् पूजयेद् विश्वं स 'कुलाचार' उच्यते।

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, विषयप्रवेश प्र०-छः पर उद्धृत।
श्रुणु भावत्रयं देवि! दिव्य-वीर-पशुक्रमात्।
दिव्यश्च देववत् प्रायो वीरश्चोद्धत-मानसः।।
पशुभावः सदा देवि! शुद्धश्च शुचिवत् सदा।-कालीविलास, ६-४/१०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरम्भ होती है और पर्याप्त ऊर्जा संचित करके साधक वीरभाव में प्रवेश करता है तथा वीरभाव में अपनी ऊर्जा को रूपांतरित करके दिव्यभाव तक पहुँच जाता है। इस सम्बन्ध में रुद्रयामल का संतुलित दृष्टिकोण है। कहा गया है कि 'पशुभाव में ज्ञानी होकर वीरभाव में प्रविष्ट होना चाहिए, वीराचार से साधक रुद्र हो जाता है। इन दोनों भावों से गुजरकर साधक को दिव्यभाव की साधना करनी चाहिए'।[१] रुद्रयामल के अनुसार दिव्य, वीर और पशु के क्रम से भाव तीन हैं। इनमें दिव्यभाव सर्वश्रेष्ठ और सर्वसिद्धि है, है, द्वितीय भाव अर्थात् वीरभाव मध्यम कोटि का है और पशुभाव सर्वनिन्दित है।[२] वेद और आगम के विवेक से दिव्यभाव का उदय होता है, आगम के विवेक से वीरभाव का उद्गम होता है। दिव्यभाव सर्वोत्तम है, उस भाव के जानने से आनन्दरससागर का सूत्र मिल जाता है। वीरभाव आगम का उल्लास है, उसमें क्रिया प्रधान है; वेदोद्भव के फल से पशुभाव का उद्भव होता है, जो सभी भावों में अधम है।[३] तीनों भाव तीन प्रकार के साधकों के लिए हैं। पशुभाव में ज्ञानसिद्धि होती है, वीरभाव में क्रियासिद्धि प्राप्त करके साधक साक्षात् रुद्र हो जाता है। दिव्यभाव में सर्वसिद्धि होती है।[४]

शाक्त तंत्रानुसार जिस किसी भी भाव से साधक पूजन-साधन करें, 'पञ्चमकार' (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन) प्रत्येक भाव में पूजा की सामग्री होती है। केवल भाव-विशेष में ये ही 'पञ्चमकार' अर्थ-विशेष रखते हैं। अस्तु! विभिन्न भावों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

(i) पशुभाव

तंत्रशास्त्र ने साधना की सबसे पहली सीढ़ी 'पशुभाव' को कहा है। पशुभाव ही आदिभाव है। तंत्रशास्त्र में आत्मा या जीव को 'पशु' कहा जाता है। पशु का अर्थ होता है-जानवर। जिस प्रकार घुड़सवार लगाम के माध्यम से घोड़े पर नियन्त्रण रखता है तथा उसे इधर-उधर, घूमने या दौड़ने के लिये निर्देश देता है, ठीक उसी प्रकार शिव भी पशु को अपने नियन्त्रण में रखता है। अर्थात् वह व्यक्ति विशेष को नियन्त्रण में रखता है; वह पशु या पुरुष के ऊपर बैठा हुआ सत्य है, चैतन्यावस्था है। पशु का दूसरा अर्थ है-जो डोरी से बँधा हुआ है, जो पाश के बन्धन में हो।[५] मनुष्य पशुओं में सर्वश्रेष्ठ है। जब तक निरन्तर साधना तथा अभ्यास से उसे ज्ञान न होगा, तब तक उसमें पशुत्व बना रहेगा। एक पाषाण-मूर्ति विशेष को ही देवता समझने वाला एकदम ब्रह्म को कैसे समझ सकता है? जिस व्यक्ति के हृदय में भेद-बुद्धि है; अपनी रूचि के अनुसार जो किसी वस्तु को भला और किसी को बुरा समझता है; उसमें पशुत्व है और

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १/१४७-४८
२. वही, ६/६९-७०
३. वही, ११/६-१०
४. वही, १/१३३-३५
५. तंत्र दर्शन, पृ०-२४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके लिए 'पशुभाव' से ही साधन-पूजन करना श्रेयस्कर हो सकता है, वीर तथा दिव्यभाव से नहीं।[1]

साधारणतया मनुष्य-जीवन की भी तीन ही प्रधान अवस्थाएँ देखने में आती हैं-बाल्य, यौवन और जरा। बाल्यावस्था में मनुष्य प्रायः सभी बातों से अनभिज्ञ रहता है। उसको उस समय सभी सांसारिक कार्यों की अ,आ, इ, ई सीखनी पड़ती है। बाल्यावस्था पूर्ण होने पर उसका शारीरिक विकास पूर्णता को प्राप्त होता है और वह युवावस्था के साथ-साथ कर्मक्षेत्र में प्रवेश करता है। इसी बात को विचार में रखते हुए मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक नींव को दृढ़ रखने के लिए हमारे धर्म-शास्त्रों ने बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करने का आदेश किया है।[2] यही चरम प्राकृतिक नियम है। यही नियम साधना के लिए भी अनुभव से प्रशस्त है। इसी नियम को ध्यान में रखकर महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाङ्ग योग का उपदेश किया है। यम-नियमादिक से आत्म-शुद्धि किए बिना एकदम असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। यह नवधा भक्ति का भी सिद्धान्त है। स्मरण, कीर्तन, पूजन का अभ्यास किए बिना साधक में आत्मसमर्पण का महाभाव नहीं आ सकता। प्रत्येक साधना का आरम्भ पशुभाव से किया जाना आवश्यक है। अभ्यास करते रहने से एक दिन पशुभाव स्वयं ही छूट जाता है।[3]

तंत्र के तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोण से साधक का पशुत्व मल, कर्म और माया के पाशों से बंधे होने के कारण है। व्यावहारिक दृष्टि कोण से तंत्र में आठ पाश (बन्धन) कहे गए हैं। ये हैं-घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति।[4]

ध्यातव्य है कि पशुत्व जीव का गुण नहीं है। जीव तो स्वयं परमात्मा ही है। जैसे सागर और उसकी लहर है, वैसे ही शिव और जीव है। जीव पशुत्व के पाश से आबद्ध है। इसी पशुपाश को साधना से काटना है, परन्तु जब तक साधक पशुपाश से बंधा हुआ है, उसे पशु ही की तरह आचरण करना पड़ेगा। अस्तु! अष्ट पाशों का विवरण इस प्रकार है-

(१) घृणा-साधक की पसंद और नापसंद को बताने वाली प्रवृत्ति ही घृणा है। जिस दिन मनुष्य के हृदय से 'घृणा' का भाव दूर हो जाएगा, उसके समीप संसार की सब पार्थिव वस्तुएँ पञ्चभूतों के विकारमात्र दीखेंगे। घृणा हमारे देहाभिमान को उत्तेजना देती है, हमारी इस प्रवृत्ति पर जोर देती है कि जिस वस्तु को हम बुरा मानें, उसे सारी दुनिया छोड़ दे। घृणा का परित्याग करने से हमारा देहाभिमान दूर होगा और हमारा पशुत्व नाश होगा। कारण, देहाभिमान का पोषण पशुत्व का प्रधान लक्षण है।[5]

---

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-१
२. वही, पृ०-१ ३. वही, पृ०-२
४. कुलार्णव तंत्र, १३ वॉं उल्लास-घृणा शङ्का भयं लज्जा, जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शील तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः।।
पाशबद्धः स्मृतो जीवः, पाशमुक्तः सदाशिवः।।
५. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-३-४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) शङ्का–साधक के हृदय में अन्य के प्रति सन्देह की भावना, दीर्घसूत्रता इत्यादि भावनाएँ–सब शङ्का के अन्तर्गत आती हैं। मनुष्य की लोलुप-प्रवृत्ति उसको सर्वदा शङ्कित बनाए रखती है। यदि मनुष्य अपने कार्यों को कर्त्तव्य समझकर करे और हानि-लाभ की चिन्ता के फेर में न पड़े, तो उसे शङ्कित होने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

(३) भय–साधक को अपने पार्थिव शरीर तथा इससे सम्पृक्त पार्थिव वस्तुओं से बड़ा प्रेम है। इसलिए उसको इनके नष्ट होने का सर्वदा 'भय' बना रहता है। अपने पशुत्व के कारण वह यह नहीं समझता कि जब इन वस्तुओं को एक दिन नष्ट होना ही है, तो मैं इन पर ममत्व क्यों रखूँ? इसी कारण 'भय' पशु-पाश है।[१] तंत्र में कहा गया है कि भय-आदि की प्रगाढ़ अवस्था में साक्षीत्व साधने पर भय-ऊर्जा का दिव्य-ऊर्जा में रूपान्तरण हो जाता है। विज्ञान भैरव में कहा गया है कि छींक आने के बाद, भय या शोक की प्रगाढ़ अवस्था में, बहुत गहरे गड्ढे में पहुँच जाने पर या युद्ध की द्रुतता में, कौतूहल के समय, क्षुधा आदि के अन्त अर्थात् निवृत्ति काल में ब्रह्म सत्ता का अनुभव समीप आ जाता है–

क्षुताद्यन्ते भये शोके गह्वरे वा रणाद्द्रुते।
कुतूहने क्षुधाद्यन्ते ब्रह्म सत्ता समीपगा।।[२]

(४) लज्जा–लज्जा का बहुत सुन्दर अर्थ पाश्चात्य दार्शनिकों ने हीनता-बोध (इन्फीरियरिटी काम्पलेक्स) किया है। 'लज्जा' वह भावना है, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य अपने को दूसरे से छोटा समझता है। दूसरों के चित्त में अपने विषय में बुरी या तुच्छ धारणा होने के निश्चय या आशंका मात्र से वृत्तियों का जो संकोच होता है, उनकी स्वच्छंदता के विघात का जो अनुभव होता है, उसे लज्जा कहते हैं। इस मनोवेग के मारे लोग सिर ऊँचा नहीं करते, मुँह नहीं दिखाते, सामने नहीं आते, साफ-साफ कहते नहीं, और भी न जाने क्या-क्या नही करते। 'हम बुरे न समझे जायँ,' यह स्थायी भावना जिसमें जितनी ही अधिक होगी, वह उतना ही लज्जाशील होगा।[३]

मनुष्य के हृदय में मानापमान की भावना 'लज्जा' से ही जागृत रहती है। मनुष्य इस मानापमान के फेर में पड़कर यह नहीं समझता कि यह मानापमान केवल उसके पार्थिव शरीर का ही तो है। आत्मा तो मानापमान से परे है।[४] कहा गया है–'शत्रु-मित्र में, मान-अपमान में समत्व की भावना बनाये रखकर, ब्रह्म ही परिपूर्ण हो रहा है–यह जानकर सुखी होना चाहिए'–

समः शत्रौ च मित्रे च समो मानावमानयोः।
ब्रह्मणः परिपूर्णत्वादिति ज्ञात्वा सुखी भवेत्।।[५]

---

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०, ४-५
२. विज्ञान भैरव, धारणा-९२
३. आचार्य शुक्लः प्रतिनिधि निबंध, पृ०-४६,
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-५
५. विज्ञान भैरव, धारणा-९९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) जुगुप्सा—पर-निन्दा को जुगुप्सा कहते हैं। मनुष्य दूसरे के दोष देखता है, फिर लोगों से उसके दोष कहता है। परदोष-दर्शन और पर-निन्दा में मनुष्य अपने दोष का मनन नहीं कर पाता, जिससे उसके अपने निज के दोष बढ़ते चले जाते हैं। जुगुप्सा के कारण उसकी प्रवृत्ति झूठ बोलने की हो जाती है और स्पष्टवादिता का उसमें अभाव हो जाता है। यह स्थिति आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यन्त हानिकारक है।[१] अतः कहा गया है–'न तो किसी में द्वेष की भावना करनी चाहिए, न राग की। राग-द्वेष, दोनों ही से मुक्त होने पर मध्य की स्थिति में ब्रह्म की भावना का प्रस्तार होता है'–

न द्वेषं भावेयत् क्वापि न रागं भावयेत् क्वचित्।
रागद्वेषविनिर्मुक्तौ मध्ये ब्रहम प्रसर्पति।।[२]

(६) कुल—मनुष्य का यह विचार कि वह अमुक 'कुल' या वंश का है, सर्वदा उसके हृदय में उच्चता या क्षुद्रता का भाव पैदा करता रहता है। वस्तुतः कुलीनत्व-अकुलीनत्व का विचार अत्यंत ही मूर्खतापूर्ण है। 'कुल' का पाश केवल हमारे देहाभिमान का ही पोषक होने से पशु-पाश है। स्वयं जीव, जिसकी यह देह है, कुलीनत्व-अकुलीनत्व से परे है। मैं, मेरा, यह मेरा –इत्यादि की यह भावना जब मन में किसी भी प्रसंग से उत्पन्न नहीं होती है और उसका आधार ही मन के लिये समाप्त हो जाता है, तब मन ध्यान की प्रेरणा के लिये सक्षम हो जाता है–

अहं ममेदमित्यादिप्रतिपत्तिप्रसङ्गतः।
निराधारे मनो याति तद्ध्यानप्रेरणाच्छमी।।[३]

(७) शील—सातवाँ पाश 'शील' अर्थात् शिष्टाचार है। सेवा, प्रणाम, उठने-बैठने, अन्य लोगों के साथ व्यवहार आदि के नियम–सब शील के अन्तर्गत हैं। यह आत्मिक स्वतंत्रता का तो कहना ही क्या, शारीरिक स्वतन्त्रता का भी नाश करने वाला है। शील का यही बन्धन साधक को खाने, पहनने, चलने-फिरने, बोलने इत्यादि सभी कार्यों में अपनी रूचि से विपरीत चलने को बाध्य करता है और उसके हृदय में यही चिन्ता बनी रहती है कि मेरा कोई कार्य शिष्टाचार के विरूद्ध न हो, जिससे लोग मेरी निंदा करें। शील का बन्धन काट देने से साधक विचार तथा कर्म में स्वतन्त्र हो जाता है और उसे यह चिन्ता नहीं सताती कि कोई उसकी निन्दा कर रहा है या स्तुति।[४]

(८) जाति—अन्तिम पाश है जाति। मनुष्य अपने जात्यभिमान के फेर मे पड़कर अन्य मनुष्य को हीन अथवा उच्च समझता है और इसी कारण समाज में व्यर्थ के झगड़े फैलाता है। जाति-भेद साधक की समदर्शिता का नाश करने वाला है और उसके अभिमान का पोषक होने के कारण पशु-पाश है।

---

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-६
२. विज्ञान भैरव, धारणा-१००
३. वही, धारणा-१०५,
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-७,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस सन्दर्भ में भविष्यपुराण की क्रान्तिकारी उद्घोषणा है[१]–"न तो ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणों के समान शुक्ल वर्ण हैं, न क्षत्रिय ढाक के फूल के समान लाल, न वैश्य हरताल के समान हरे और न शूद्र कोयले के समान काले हैं। चलने-फिरने से, शरीर के गठन से, रङ्ग और केश तथा शोणितादि धातुओं से सब एक ही प्रकार के दीखते हैं, तो चार भेद कैसे माने जायँ? गर्भवास, आकृति, रङ्ग-रूप, काम-काज, इन्द्रियों के व्यापार, जीवन-मरण, रोग, शोक पुरुषार्थ, बल तथा औषधि-प्रयोग-इन सब बातों में उक्त-चार जातियों में जातिकृत भेद तो कुछ भी देखने में नही आता। सभी तो उसी एक परम पिता परमेश्वर की संतान हैं। यह बात शास्त्रों के प्रमाणों, दृष्यन्तों तथा तर्क-वितर्क से सिद्ध है। फिर जातिकृत भेद कैसा? जब चारों वर्ण एक पिता की संतति हैं, तो फिर यह सिद्ध है कि एक पिता के पुत्रों की एक ही जाति हो सकती है, भिन्न-भिन्न जातियाँ नहीं।"

इस प्रकार उक्त अष्टपाश-'पशुपाश' कहलाते हैं। जिस पर उक्त अष्टपाशों का प्रभाव है, उसके लिए सर्वदा, सर्वकाल और सर्वावस्था में साधना कर सकना असंभव है। उसका (साधक का) मन सांसारिक पार्थिव प्रवृत्तियों क वश में होने से अध्यात्म की ओर नहीं जा सकता। अतएव जब तक चित्त निर्मल नहीं होता, मनोवृत्तियों पर विजय प्राप्त न होती, तब तक साधना पशुभाव से करनी होगी। नित्य स्नान, सन्ध्या-वन्दन, आचारशुद्धि, आहारशुद्धि-सब कुछ करना होगा।[२] वस्तुतः पश्वाचार विशुद्ध वैष्णवाचार है और वर्णश्रम धर्म के विधि-निषेधात्मक बन्धनों से जकड़ा हुआ है।[३]

यद्यपि पशुभाव शेष दोनों भावों से अधम माना जाता है, किन्तु ज्ञान की सिद्धि यहीं होती है–

'पशुभावे ज्ञानसिद्धिः ....।'[४]

---

१. भविष्य पुराण, अ०-४२/४१-४५ (पञ्चमकार तथा भावत्रय पृ०-८, पादटिप्पणी में उद्धृत)
न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा, न क्षत्रिया दकिं शुकपुष्पवर्णाः।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः, शुद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः।।
पाद-प्रचारैस्तनुवर्णकेशैः, सुखेन दुखेन च शोणितेन।
त्वङ्मांसकेशास्थिरसेः समानाः, चतुःप्रभेदा हि कथं भवन्ति।।
वर्णप्रमाणकृतिगर्भवास-वाग्-बुद्धि-कर्मेन्द्रिय-जीवितेषु।
बलित्रिवर्गामय-भेषजेषु, न विद्यते जातिकृतो विशेषः।।
स एक एवात्र पिता प्रजानां, कथं पुनर्जातिकृतः प्रभेदः।
प्रमाण दृष्यन्तनय-प्रवादेः, परीक्ष्यमाणो विघटत्वमेति।।
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च, तेषां सुतानां खलु जातिरेकः।
एवं प्रजानां हि पितैक एव, पित्रैक भावान्न च जातिभेदः।।

२. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-९

३. वही, पृ०-१०

४. रुद्रयामल उ०त०, १/१३४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पशुभाव में साधक को रात में पूजा-स्नानादि नहीं करना चाहिए। दिन में ही स्नान, पूजा, नित्यकर्म आदि सम्पादित कर लेना चाहिए। पुरश्चरण के समान कार्य शुद्धभाव से सिद्ध करना चाहिए। शम, दम आदि साधन सम्पत् से युक्त होकर और योग-शिक्षा में परिपूर्ण होकर ही आनन्दभैरवी का योग-परायण हुआ हुआ जा सकता है।.....योग-विद्या मे पारङ्गत हर भाव में नहीं हुआ जा सकता, जबकि पशुभाव में योग की सिद्धि शीघ्र हो सकती है।[१] यदि देवता की सदा साधना की जाय तो पशुभाव में भी सिद्धि हो सकती है। पशुभाव में सिद्धि का सूत्र है कि साधक प्रतिदिन वेदार्थचिन्तन करे और वेद का पाठ सुष्ठु ध्वनि से करे, हर तरह की निन्दा से दूर रहे तथा हिंसा और आलस्य को तो छोड़ ही दे। इसी तरह वह लोभ, मोह, काम, क्रोध, मदमात्सर्य से भी विमुक्त हो जाय।[२]

जो इस महाभाव पशुभाव को इस जगत् में जानता है, उसे पशुभाव में भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह जगत् देवता, महामन्त्र, परमतप, कुलाचार-सभी कुछ पशुभाव में श्रमाधीन ही है। वेदार्थज्ञान मात्र से ही पशुभाव कुलप्रिय है। स्मृति, आगम, पुराण, विविध वेदार्थज्ञान, सभी शास्त्रों के तत्त्व नाम के अभ्यास से साधक बुद्धिमान होता है। उत्तम साधक ज्ञानी होकर भवसागर का आश्रय करता है।[३]

पशुभाव में अवस्थित साधक को भगवती के चरण-कमल का दर्शन कैसे हो-इसका समाधान बताते हुए महाभैरवी कहती है-प्रातः अरूणोदय काल से लेकर अष्ट दण्ड निशा पर्यन्त पशुभाव का समय नियत है। प्रभातकाल में उठकर साधक को दैनिक कृत्यों को सम्पन्न करके शय्यास्थित हो जाना चाहिए तथा अपने सहस्रार के सहस्रदलकमल के मध्य में गुरू का ध्यान करना चाहिए। इसके बाद महागुरू तेजबिम्ब तरूणादित्य, अनन्तमहिमासागर शशिशेखर, पूर्णविकसित कमल पर आरूढ़ जगदीश्वर, रत्नालङ्कार से विभूषित देवों के देव का स्मरण करना चाहिए तथा अन्तर्याग के क्रम मे कमल के फूलों को समर्पित करना चाहिए। तदनन्तर महागुरू मन्त्र (ऊँ ऐं(गुरू नाम) आनन्दनाथाय गुरवे नमः ऊँ) का १०८ या १००८ बार जप करके ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा आयु और आरोग्य की वृद्धि के लिए गुरू को प्रणाम करना चाहिए। इसके उपरान्त अर्पण क्रिया और ऐं बीज मन्त्र के द्वारा तीन बार प्रणायाम करना चाहिए। गुरूमन्त्र के जाप से साधक को वाक्सिद्धि प्राप्ति होती है।[४] पशुभाव में स्थित साधक को गुरूवन्दना[५], गुरूस्तोत्र[६], महाशक्ति-स्तुति[७] का पाठ करना चाहिए। साधक प्रतिदिन गुरू के नजदीक रहकर प्रातः, मध्याह्न और सायं गुरूवन्दना और गुरूस्तोत्र का पाठ करके सिद्धि प्राप्त करता है।[८]

पशुभाव को महाभाव इसलिए कहा जाता है कि अन्य दोनों भावों का आधार यही है। पशुभाव की साधना से परिपक्व होकर ही महा वीरभाव में प्रविष्ट हुआ जाता है तथा वीरभाव

१. रुद्रयामल उ०त०, १/१३७-४२
२. वही, ११/१३-१४
३. वही, ११/१५-२०
४. वही, २/८-२१
५. वही, २/२२-३३
६. वही, २/३७-४१
७. वही, २/४२-४४
८. वही, २/३४-३६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के बाद अति सौन्दर्य आस्पद महाफल देने वाले दिव्यभाव की साधना में उन्मुख हुआ जाता है।[१]

पशुभाव मे अवस्थित साधक के लिए वीराचार का निषेध है, क्योंकि वह इस अवस्था के लिए अयोग्य है।[२] पश्वाचारी के लिए पञ्चमकार–मद्य–मांसादिक अपने प्रकृत रूप में एकदम वर्जित है। यदि कहीं आवश्यकता पड़ जाय तो उनके प्रतिनिधि प्रयुक्त किए जाते है; जैसे मांस के बदले लशुन–पलाण्डु प्रभृति, मद्य के बदले छाछ में गुड़ मिलाकर उसका प्रयोग आदि।[३] इसी तरह गृहस्थ साधक के लिए अपनी स्त्री ही में रत रहना ब्रह्मचर्य–पालन ही के समान समझा गया है। पश्वाचारी को मद्य, मांस, मैथुनादि से विरत करने के लिए यहाँ तक दलीलें दी गई हैं कि–"यदि मद्य–पान से सिद्धि मिले, तो सब मद्यप सिद्ध हो जाने चाहिए थे। मांस खाने से यदि पुण्य होता है, तो सब मांसाहारी जीव पुण्यात्मा हैं और यदि स्त्री–संभोग मात्र से मोक्ष मिलता है, तो संसार के जन्तुमात्र को मुक्त समझना चाहिए, क्योंकि सभी स्त्री–संभोग करते हैं"[४]

पशुभाव में स्थित साधक यदि इष्टदेवता का पूजन–यजन जीवन भर करता रहे, तो महासिद्धि को प्राप्त कर सकता है। दिन–प्रतिदिन ऐश्वर्य को प्राप्त करता हुआ गुरू–स्वभाव वाला हो जाता है और मधुमती महादेवी के श्रीपद को प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन करने वाला वनवासी या गृहस्थ साधक पशुभाव में स्थित सिद्धविद्या को प्राप्त करता है।[५] यद्यपि पशुभाव सबसे गर्हित भाव है, क्योंकि अज्ञानग्रस्त प्रमाता ही इसमें प्रविष्ट होते हैं, तथापि निरन्तर देवाराधना से इस भाव में भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है।[६] यदि इसमें सिद्धविद्या प्रसन्न होकर फलित हो तो साधक वीरभाव को प्राप्त करता है और वीरभाव के प्रसाद से दिव्यभाव की प्राप्ति होती है।[७]

इस प्रकार साधना करते–करते पशुभाव के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। साधक का हृदय आर्द्र होने लगता है और कुलार्णव में कथित लक्षणों से वह पहचाना जा सकता है। वे लक्षण

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६/४९–५१
२. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०–३८५
३. द्रष्टव्य, कुलार्णव तंत्र–५वॉ उल्लास, मेरूतंत्र, महाकालसंहिता आदि।
४. कुलार्णव तंत्र, २/११७–१९.
मद्यपानेन मनुजो, यदि सिद्धिं लभेत वै।
मद्यपानरता: सर्वे, सिद्धिं गच्छन्तु पामरा:।।
मांस–भक्षणमात्रेण, यदि पुण्या–गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिन: सर्वे, पुण्यभाजो भवन्ति हि।।
शक्तिसंभोग–मात्रेण, यदि मोक्षो भवेत् वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके, मुक्ता: स्यु: स्त्री: निषेवणात्।।
५. रुद्रयामल उ०त०, ६/५६–५९
६. वही, ११/१३
७. वही, ६/६१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार हैं[१]–"प्रसन्न, संतुष्ट, निर्द्वन्द्व, मात्सर्यरहित, कुलसम्बन्धी स्वाध्याय में लगे हुए, शान्त और जगदम्बा के भक्त, कुलचर्चा चलने पर जिनका आनन्दातिरेक से रोमाञ्च हो उठे, वाणी गद्‌गद् हो जाय और अश्रुपात् होने लगे, वे ही उत्तम कौलिक हैं।"

अतएव गुरू को दीक्षा देने से पूर्व अपने भावी शिष्य की पूरी परीक्षा कर लेनी चाहिए कि जिस साधक को मैं दीक्षित करने जा रहा हूँ, उसने 'वीरभाव' में प्रवेश की योग्यता प्राप्त कर ली है या नहीं। परीक्षा के कुछ नियम शास्त्र ने इस प्रकार बताए हैं[२]–

"जिसे दीक्षा लेनी हो, उसे गुरू अपमानपूर्वक खींचे और मारे। इस प्रकार खींचे व पीटे-मारे जाने पर जिसे विषाद न हो, बल्कि जो प्रसन्न होकर यह सोचे कि 'अब गुरू महाराज मुझ पर अनुग्रह करने वाले हैं', ऐसा सोचकर आनन्द के मारे जिसको कम्प, रोमाञ्च, नेत्र तथा स्वर में विकृति पैदा हो जाय, उस साधक को दीक्षा देने के योग्य समझना चाहिए।"

'पशुभाव के बाद उससे उच्चतर सोपान 'वीरभाव' है।

(ii) वीरभाव

वामे रामा रमणकुशला दक्षिणे चालिपत्रम्;
अग्रे मुद्राश्चणक-वटका शूकरस्योष्ण-मांसम्।
तन्त्री वीणा सरसमधुरा सदगुरोः सत्कथायाम्,
कौलो मार्गः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।।[३]

पशुभाव से साधक जब अपने शरीर तथा मन की शुद्धि कर लेता है, तब वह वीरभाव से साधाना करता है। वीरभाव तान्त्रिक साधना का मध्यकाल है। वीरभाव में क्रियासिद्धि होती है और साधक साक्षात् रुद्र हो जाता है। मन्त्रसिद्धि का पद भी यही है तथा अद्वैताचार के स्वरूप का स्रोत भी यही भाव है–

'वीरभावे क्रियासिद्धिः साक्षाद्रुद्रो न संशयः',।[४]
'वीरभावे मन्त्रसिद्धिरद्वैताचारलक्षणम्'।[५]

---

१. कुलार्णव तंत्र, ९/८४, ८६
निवृत्तदुखसंतुष्टा, निर्द्वन्द्वा गतमत्सराः।
कुलज्ञानरताः शान्ताः त्वद्-भक्तास्ते च कौलिकाः।।
कीर्त्यमाने कुले येषां, रोमाञ्चो गद्‌गदः स्वरः।
आनन्दाश्रु पतेद् देवि् कथिताः कौलिकोत्तमाः।।

२. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-११ (पाद टिप्पणी में उद्‌धृत)-
आकृष्टस्ताडितोवाऽपि यो विषांद न याति च।
गुरूः कृपां करोतीति, मुदा सञ्चिन्तयेत् सदा।।
आनन्दकम्परोमाञ्चं, स्वरनेत्रादिविक्रियाः।
येषां स्युस्तेऽत्र योग्याश्च, दीक्षासंस्कारकर्मणि।।

३. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-१२ पर उद्‌धृत।

४. रुद्रयामल उ०त०, १/१३४ ५. वही, १/१३६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनन्द भैरवी का कथन है कि वीरभाव के बिना तो कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता–

'वीरभावं विना नाथ! न सिध्यति कदाचन्।'[१]

किन्तु वीरभाव की साधना इतनी आसान नहीं है। इसलिए यह साधाना गुरूपदेश और गुरू के बताए विधान के बिना केवल पुस्तक पढ़कर या लोगों को देखकर कभी नहीं करनी चाहिए। यह अत्यंत दुर्गम मार्ग है, यहाँ स्थिति यह है कि इसमें गुरूपदिष्ट मार्ग से भी चलकर साधक यदा-कदा भटक जाता है। इसलिए कहा गया है–

कृपाणधारागमनात्, व्याघ्रकण्ठावलम्बनात्।
भुजङ्गधारणन्नूनमशक्यं कुलवर्त्मनम्।।[२]

अर्थात् तलवार की धार पर चलने, बाघ को गले लगाने और विषधर सर्प को धारण करने से भी कठिन यह कुल-मार्ग है, इसलिए वीरभाव की साधना में दृढ़भक्ति चाहिए, जैसा कि मेरूतंत्र में कहा गया है–

निन्दन्तु बान्धवा सर्वे, त्यजन्तु स्त्रीसुतादयः।
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा, राजानो दण्डयन्तु वा।।
लक्ष्मीस्तिष्ठतु वा यातु, न मुञ्चामि पथान्त्विदम्।
एवं यस्य दृढ़ा भक्तिः स वामे सिद्धिमाप्नुयात्।।[३]

अर्थात् 'चाहे सारे रिश्तेदार निन्दा करें, चाहे पत्नी-पुत्र साथ छोड़ दें, चाहे लोग मेरी हँसी उड़ाये, चाहे राजा दण्डित करे, धन चाहे रहे या जाये, परन्तु इस मार्ग को न छोड़ूँगा; ऐसी भक्ति जिसमें हो, वही वाममार्ग (वीराचार) का अधिकारी है।

वीराचार की कथा–'वीराचार' के सम्बन्ध में वशिष्ठ तथा बुद्ध की कथा उल्लेखनीय है। यह कथा 'रुद्रयामल' के १७ वें पटल में तथा कुछ हेर-फेर के साथ 'ब्रह्मयामल' के प्रथम पटल में वर्णित है। कहानी इस प्रकार है–"ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ ने निर्जन-स्थान में रहकर अत्यन्त कठोर तप शत सहस्र वर्ष तक किया, परन्तु फिर भी उन्हें गिरिजा का साक्षात्कार न हुआ। खिन्न होकर वे ब्रह्माजी के पास गए और प्रार्थना की–'मुझे कोई अन्य मन्त्रोपदेश दीजिए। इस विद्या से मुझे सिद्धिलाभ होता नहीं दीखता, अन्यथा मैं इसको आपके ही सामने कठोर शाप से शापित करूँगा।' ब्रह्माजी ने उन्हें रोकते हुए कहा–'हे योगदत्त पुत्र! ऐसा मत करो। तुम फिर पूर्ण मनोयोग से उसकी (जगदम्बा का) अर्चना करो, तभी वह प्रत्यक्ष होकर तुम्हें वर प्रदान करेगी। वह देवी परमशक्ति है तथा सब दु:खों से त्राण करनेवाली है। वह करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान सुशीतल तथा करोड़ों विद्युतपुञ्जों के समान है। महानीलवर्णा वह कालकामिनी सबकी आदि है। वह सम्पूर्ण जगत् का पालन करनेवाली है। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि उसी का कर्म है। हे पुत्र! तुम क्यों इतने उतावले होकर

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ११/१२
२. कुलार्णव तंत्र, २/१२
३. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-१३ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शॉप देने को तैयार हुए हो? एकान्त में एकाग्रचित होकर उस महाशक्ति की उपासना करो, अवश्य वह तुमको दर्शन देगी।' गुरू का यह वचन सुनकर तथा उन्हें नमस्कार कर वेदान्तविद् वशिष्ठ पुनः तप करने के लिए चल पड़े। पूरे १००० वर्ष तक फिर उन्होंने मन्त्र का जाप किया, किन्तु देवी प्रसन्न न हुई। इस पर मुनि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये तथा महाविद्या (तारा) को कठोर शॉप दिया। तब कुलेश्वरी महाविद्या ने, जो योगियों के भय को नाश करनेवाली है, क्रुद्ध वशिष्ठ के समक्ष प्रकट होकर कहा–'क्यों विप्र! तुमने निष्कारण शॉप क्यों दिया? तुम न तो मेरे कुलागम को ही समझते हो और न पूजा-पद्धति ही जानते हो। केवल योगाभ्यास से ही किस प्रकार देवता या मनुष्य मेरे चरण- कमलों का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं? मेरी उपासना कठोर तप तथा काया-कष्ट से नहीं की जाती। मेरी 'कुलागम' की उपासना वेदों तथा वेदों से भी ऊँची है (अर्थात् वेद 'पशुभाव' परक हैं।) वेदों के लिए भी अगोचर इस पुण्य साधना को केवल निर्मल आचारवाला, कुलार्थी तथा सिद्धमन्त्री ही जान सकता है। तुम उस बौद्ध देश महा-चीन (प्राचीनतम देश) में जाओ और अथर्ववेद के अनुसार चलो। वहाँ जाकर 'चीनाचार' से उपासना करने पर तुमको मेरे पदकमलों (जो स्वयं महाभाव हैं) का साक्षात्कार होगा और तुम कुलाज्ञानी तथा महासिद्ध बनोगे'। यह कहकर भगवती अन्तर्धान हो गई।[1]

महाविद्या सरस्वती (नीलसरस्वती) से यह सुनकर वशिष्ठ मुनि ने सबसे प्राचीन देश (महाचीन) की ओर प्रयाण किया, जहाँ बुद्ध भगवान् प्रतिष्ठित थे और बुद्ध भगवान् को बार-बार प्रणाम करके मुनि ने कहा–'हे बुद्धरूपी शङ्कर! मैं ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ आपका शरणागत हूँ। मेरा मन भ्रम से परिपूर्ण है। मैं यहाँ महादेवी की साधना करने आया हूँ। मै सिद्धिप्राप्ति के मार्ग से अनभिज्ञ हूँ। आप 'दिव्याचार' के ज्ञाता हैं, परन्तु आपके आचार को देखकर मेरे हृदय मे विभिन्न प्रकार की शङ्काएँ उत्पन्न हो रही हैं (वशिष्ठ जी ने यहाँ पञ्चमकार का सेवन देखा)। मेरे मन से, जो वैदिक आचारों की तरफ झुका हुआ है, इन शङ्काओं को दूर कीजिए। हे महाराज! आपके यहाँ तो मैं वेदबहिष्कृत आचारों का ही प्राधान्य देख रहा हूँ। (मुनि को उस समय तक यही विश्वास था कि ये सब आचार वेदविरूद्ध हैं)।[2] यह क्या बात हुई कि श्रेष्ठ दिगम्बर सिद्धगण रक्तापानोद्यत होकर मद्य-मांस का सेवन कर रहे हैं और रूपवती कामनियों से केलि कर रहे हैं? सर्बदा मांसासव से परिपूर्ण तृप्त होकर इनकी आँखें लाल हो रहीं हैं। ये बार-बार मद्यपान करते हुए रमणियों के साथ मदनोत्सव में मदमस्त हैं–

कथमेतत् प्रकारञ्च? मद्यं मांसं तथाङ्गनाम्।
सर्वे दिगम्बराः सिद्धा रक्तपानोद्यता वराः।।
मुहुर्मुहुः प्रपिबन्ति रमयन्ति वराङ्गनाम्।
सदा मांसासवः पूर्ण मत्ता रक्तविलोचनाः।[3]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १७/१०८-२४
२. वही, १७/१२५-२९
३. वही, १७/१३०-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वशिष्ठ मुनि ने कहा कि ऐसे महासिद्धों के, जो प्रसन्न होने पर वर देने को और अप्रसन्न होने पर विनाश करने को समर्थ हैं, इन वेदविरूद्ध आचारों पर किसकी श्रद्धा हो सकती है? ऐसी प्रवृत्तियों से मनःशुद्धि कैसे सम्भव है? हे प्रभो! बिना वेदाचार के सिद्धि कैसे मिल सकती है?'[१]

मुनि वशिष्ठ के द्वारा निवेदन किये जाने पर परमसिद्ध भगवान् बुद्ध ने कहा– 'हे वशिष्ठ! तुम उस 'कौलमार्ग' को सुनो, जिसके विज्ञान मात्र से मनुष्य अल्पकाल में रुद्रवत् हो जाता है। मैं उस 'कुलसिद्धि' प्रदान करने वाले आगम-सार को संक्षेप में कह रहा हूँ। वीराचारी को सर्वप्रथम शुद्ध, विवेक-युक्त और सभी प्रकार के पशुभाव से रहित होना चाहिए। वह पशु सङ्गति का सर्वथा परित्याग करके एकान्तवास करे, काम क्रोधादिक षड्रिपुओं को दूर करे। हठयोग का अभ्यास कर योग में दृढता प्राप्त करें। वेदाध्ययन करके वेदों के तत्त्वार्थ को अच्छी प्रकार समझ ले। अपने मन को सदा शील-औदार्यादि उन्नत वृत्तियों में नियोजित करें। प्राणायाम का अभ्यास करके क्रमशः अपनी मनोवृत्तियों को विनष्ट कर दे। प्राणायाम का अभ्यास प्रगाढ़ होता जाय। अभ्यास करते-करते उसकी (वीराचारी की) अवस्था ऐसी हो जाएगी कि उसके शरीर से स्वेद प्रवाहित होने लगेगा। यह अवस्था मध्यम है। सर्वोच्च अवस्था में साधक भूमि से ऊपर उठने लगता है। यह भूमि-त्याग की अवस्था परा है। इस प्रकार प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर साधक महायोगी हो जाता है। तदनन्तर उसे मौन स्वरूप को धारण कर शिव, कृष्ण, ब्रह्म प्रभृति की एकान्तिक भक्ति करनी चाहिए और मन में ऐसी धारणा करनी चाहिए कि ब्रह्म, विष्णु, शिव वायु के समान चञ्चल हैं। तब साधक को अपना मन आदिशक्ति पर स्थिर करना चाहिए, जो चित्-स्वरूपा है। तदनन्तर साधक को महावीर भाव से 'कुलाचार' के अनुसार शक्तिचक्र, वैष्णव-सत्त्व-चक्र और नवविग्रह तथा सकलदुःख-निवारिणी, सकल-सुखदायिनी, सर्वोत्तमा, प्रत्यक्ष देवता कुल-कात्यायनी का अर्चन करना चाहिए। यह कुल-कात्यायनी, जगज्जननी चिद्-रूपा है। यही ज्ञान का आधार है, आनन्द का भी आधार यही है। कोटिविद्युत-प्रतीकाशा इसी महाशक्ति से सब तत्त्व बने हैं। यही १८ भुजाओं वाली रौद्री शक्ति है, जो सुरा तथा मांस के पर्वतोपम ढ़ेरो को पसन्द करती है। मनुष्य को उसकी शरण में रहकर कुलमार्ग से उसके मन्त्र की साधना करनी चाहिए। तीनों लोकों में ऐसा कौन है, जो इस मार्ग से अन्य उत्तम मार्ग बता सकता है? इसी मार्ग से साधना कर जगदम्बा की कृपा से ब्रह्मा लोकों की सृष्टि, विष्णु स्थिति और शिव संहार करने में समर्थ हैं। इसी वीराचार के प्रताप से दिक्-पाल भी रुद्रोपम हो गए।[२] यह सकल जगत् वीर साधक के अधीन है तथा वीरसाधक कुलाश्रित है, इसलिए कुलमार्ग का आश्रय ग्रहण कर सर्वसिद्धीश्वर हो जाओ–

वीराधीनमिदं विश्वं कुलाधीनञ्च वीरकम्।
अतः कुलं समाश्रित्य सर्वसिद्धीश्वरो भव।।[३]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १७/१३२-३४

२. वही, १७/१३५-५.१.५

३. वही, १७/१५२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वीरभाव से साधना करने पर एक ही मास में आकर्षिणी-सिद्धि प्राप्त हो जाती है। दो मास के अभ्यास से बृहस्पति के समान विद्वता प्राप्त होती है। तीन मास की साधना से सुखवल्लभत्व की सिद्धि, चार मास के अभ्यास से साधक दिक्पालोपम्, पाँच मास के अभ्यास से कामदेव के समान और छः महीने में रुद्र के समान हो जाता है।[१] इस आचार का फल अन्य सभी आचारों से उत्कृष्टतम है। यही कौल मार्ग है, इससे परे कुछ भी नहीं है।[२]

आगे बुद्धरूपी शङ्कर ने कहा कि कौलमार्ग की एक मास की साधना से दृढ़चित्त वाले योगियों को इष्टकार्य की सिद्धि प्राप्त होती है। संन्यस्त जीवन अर्थात् पूर्ण कौल-जीवन से विप्र पूर्णयोगी हो जाता है।[३] जब शक्ति के बिना शिव अशक्त या शवतुल्य हो जाता है तो अन्य जड़बुद्धि वालों का क्या कहना-

'शक्तिं विना शिवोऽशक्तः किमन्ये जडबुद्धयः'।[४]

इस प्रकार बुद्धरूपी शंकर ने वशिष्ठ मुनि से कहा-'हे विप्र! पञ्चमकार का सेवन करते हुए महाशक्ति की आराधना करो, तभी महाविद्या के चरण-कमल का दर्शन प्राप्त कर सकोगे।[५]

इसके बाद वशिष्ठ मुनि मद्य, मांस,, मुद्रा तथा मैथुन के द्वारा कौल-साधना करके पूर्ण योगी हो गये। एकमात्र कौल-मार्गरूप योग-साधन का अभ्यास करके मुनि वशिष्ठ सर्व-सिद्धीश्वर हो गये। योनि के संयोग मात्र से साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है, अतः जीवात्मा और परमात्मा के इस योग का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।[६]

वीरभाव-सिद्धान्त-वीरभाव में पञ्चमकार अपने प्रकृत रूप में ही प्रयुक्त किए जाते हैं। इसमें पञ्चमकार का उपयोग केवल अष्टपाशों का छेदनकर जीव को स्वतन्त्र-उन्मुक्त करने के निमित्त ही किया जाता है। वीरचार के अनुसार पञ्चमकार केवल साधना में ही प्रयुक्त होते हैं और वाममार्ग में यदि सारा संसार प्रवेश कर जाय, तो अधिकांश लोगो को मद्य-मांस, स्त्री-सेवन सदा के लिए छूट जाय। तंत्रों में वीराचार के नियम तथा पञ्चमकार के प्रयोग के विषय में जो आज्ञाएँ दी गई हैं, उनको देखने से यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि पञ्चमकार के सेवन के विषय में वाममार्गियों के नियम अत्यतं ही कठिन हैं और जितनी अधिक रोक इनके प्रयोग के सम्बन्ध में वीरचार की साधना से हो सकती है, उतनी अन्य धर्मों तथा आचारों की साधना से नहीं।[७] तंत्र की कुछ ऐसी आज्ञाएँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं-

"लता-साधन ही कौलमत का प्रमुख साधन है, जिससे वीरसाधक का हित होता है।

१. रुद्रयामल उ०त०, १७/१५३-५४
२. वही, १७/१५५
एतदाचारसारं हि सर्वेषामप्यगोचरम्।
एतन्मार्गं कौलमार्गं कौलमार्गत् परं न हि।।
३. वही, १७/१५६-५७
४. वही, १७/१५७.
५. वही, १७/१५८-५९
६. वही, १७/१६०-६३
७. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-२८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसमें पञ्चतत्त्व (पञ्चमकार) का विधान है। इसका उल्लंघन नही करना चाहिए तथा इसे अत्यंत गुप्त रूप से करना चाहिए।"[१]

"पूजा-काल को छोड़कर मैंने विशेषकर मद्य, मांस, मत्स्य आदि पदार्थ को और किसी अवसर के लिए विहित नहीं ठहराया है"

मत्स्य-मांस-सुरादीनां पदार्थानां विशेषतः।
पूजाकालं विनाऽन्यत्र न मया परिकीर्तितः।।[२]

"पाँचों ब्रह्म ऋचाएँ और पाँचों द्रव्यों की शोधन विधि बिना जाने हुए जो कोई चक्रार्चन के नाम से इन पदार्थों का उपभोग करता है, वह महापापी होता है"–

पञ्चब्रह्मऋचा पञ्चद्रव्याणां परिशोधनम्।
अज्ञात्वा यश्चरेत् कर्म स महापातकी भवेत्।।[३]

"कालिका का पूजन सर्वदा पञ्चमकार से करें, शक्तिसङ्ग बिना जप न करें और बिना कारण (मद्य) के शक्ति (स्त्री) का सङ्ग न करें"–

सदा पञ्चमकारैश्च, पूजयेत् कालिकाऽम्बिकाम्।
शक्तिं विना नहि जपेन्न शक्तिः कारणं विना।।[४]

"दीक्षिता और देवता में भक्ति रखनेवाली, घृणा-लज्जादिक पाशों से जो मुक्त हो गई है, मन्त्र-जप में लगी हुई स्त्री को प्राप्त कर उसके साथ सब साधनाएँ करें"–

दीक्षितां देवताभक्तां, घृणालज्जाविवर्जिताम्।
जपासक्तां समासाद्य, सर्वं संसाधयेच्छिवे।।[५]

"साधना के लिए उत्तम शक्ति (स्त्री) वही है, जो गुरू-भक्त, जपासक्त, महाकामकुतूहल से युक्त, सुन्दरी, साध्वी, कटाक्षादि निक्षेप करनेवाली, विकाररहित, कुलनायिकाष्टक में से कोई, क्रोध-मात्सर्यादि षड्रिपुओं से रहित, सर्व दोषों से विहीन हो।"[६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वीरभाव की साधना में कई मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है–

(१) सर्वप्रथम यह ज्ञातव्य ही है कि वीराचार में पञ्चमकार अपने प्रकृत रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं।

(२) द्वितीयतः वीराचार के अनुसार पञ्चमकार का सेवन केवल पूजा में ही हो सकता है और वह भी इष्ट देवता के ध्यान के लिए ही, विषय-भोग के लिए कदापि नहीं।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १/९४-९५
२. समयाचार (वाममार्ग, पृ०-२९ पर उद्धृत)।
३. कालिका-कुलसर्वस्व, (वही, पृ०-२९ पर उद्धृत)
४. शक्ति-सङ्गम तंत्र, ताराखण्ड, ६/६,
५. वही, १३/१११
६. वही, १५/५, ११,१२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३) तृतीयतः वीर-साधना में जो स्त्री कुलमार्ग में दीक्षिता नहीं है और कुलमार्ग से बिल्कुल अनभिज्ञ है, उसके साथ संभोग नहीं करना चाहिए, चाहे वह वैदिक विधि से विवाहित स्त्री ही क्यों न हो। कहा गया है–

कामुको न स्त्रियं गच्छेद् यदीच्छन्तीमदीक्षिताम्।
सद्यः संस्कारसंशुद्धां, विहित्वात् स्त्रियं व्रजेत।।[१]

अर्थात् 'अदीक्षित स्त्री के साथ कभी संभोग ने करें, चाहे उसकी इच्छा भी हो। सद्यः संस्कार से शुद्ध स्त्री के साथ संभोग करना विहित है।'

"कौलमार्ग मे अदीक्षित स्त्री के साथ संभोग करने से सिद्धि-हानि होती है। ऐसी स्त्री के साथ वार्त्तालाप और संभोग करनेवाला कैसे कुलीन और मेरा पूजक है।"[२]

"यदि शक्ति (स्त्री)अनजान है (कौलाचार से) तब उसका शक्ति-साधन के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। असंस्कृत्यादि दोष से सिद्धि की हानि होती है, अतः उसका संस्कार (दीक्षा) करके ही संसर्ग करना चाहिए"–

यद्यज्ञानविशिष्टा सा स्वशक्तिः शिवकामिनी।
तदा न कुर्य्यात् ग्रहणं शक्तिसाधनमेव च।।
यदि कुर्य्याद् संस्कारात् संसर्ग साधकोत्तमः।
असंस्कृत्यादिदोषेण सिद्धिहानिः प्रजायते।।[३]

(४) चतुर्थतः वीराचारी को कुलाचार में अदीक्षित व्यक्ति के साथ, चाहे वे परम स्नेही ही क्यों न हों, मद्य-मांसादि का सेवन नहीं करना चाहिए।

एतदिरिक्त वीराचार में सम-अष्टकों का भी विधान है। दूसरे शब्दों में यदि कहें, तो कहा जा सकता है कि इन समाष्टकों को प्राप्त करना ही तो वीराचार का लक्ष्य है। इन समाष्टकों के विवेक से साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है। यो समाष्टक हैं–मारना, छिपाना, न निन्दा करना, न देखना, पूजा करना, भावना करना, तिरस्कार करना और घृणा नहीं करना–

समाष्टकं प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्वैकाग्रमानसा।
येन विज्ञानमात्रेण सिद्धिर्भवति साधके।।
घातयेद् गोपयेद् देवि! न निन्देन्न निरीक्षयेत्।
पूजयेत् भावयेच्चैव वर्जयेन्न जुगुप्सयेत्।।[४]

वीरसाधक को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि भयंकर दोषों का विनाश करना चाहिए। इसी इन्द्रियविकार, मन की दुर्बलता, निद्रा, लज्जा, द्वेष, दीर्घसूत्रता का भी संहार करना चाहिए। साधक को महामन्त्र, कुलक्रिया, मुद्रा, माला, तन्त्रार्थ, योगिनी और वीर

१. कुलार्णव तंत्र, ८/११०.
२. शक्तिसङ्गम, ताराखण्ड, ३५/१७-१८
३. रुद्रयामल उ०त०, १/१३१-३२
४. कुलप्रदीप (वाममार्ग, पृ०-२४ पर उद्धृत)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का संयोग, भैरवों का अत्याचार, योगिनियों की साधना और नाड़ी-भेदन को गुप्त रखना चाहिए। उसे मृत्यु, देवता, गुरू, ईश्वर, सुरा, विद्या, महाक्षेत्र, पीठ और योगादि की निंदा नहीं करनी चाहिए। इसी तरह वह योगिनी, मूढ़, उन्मत्त, जन्मकर्म (गर्भाधान), कुलप्रिया और धर्म के शास्ता का प्रणसंस्थिति की अवस्था में निंदा न करे। ज्येष्ठ भाई की स्त्री, योगियों के बौद्धाचार तथा शुभाशुभ कर्म भी उसे निन्दनीय नहीं लगना चाहिए। वह कन्यायोनि, दिन की रतिक्रीड़ा, पशुक्रीड़ा, नग्नस्त्री, प्रकटस्तनी स्त्री, विग्रह, जुआ, विष्ठा, अप्रमत्त की कारण-क्रिया को न देखे। पराभक्ति के द्वारा, वह देवता, गुरू, ईश्वर, शक्ति का साध्य अपने स्थूल और सूक्ष्म रूप को, अतिथि, माता-पिता, सिद्ध तथा योगी की सिद्धमन्त्र की सिद्धि के लिए पूजा करे। उसे संतोक्त योगसाधना, गुरू के उपदेशों, अपने धर्म, तीर्थ, देवता, कुलाचार, वीरतंत्र परमेश्वर, विधिविद्या, ठग, कलह, झूठ, अशुभ, पापियों के अखाड़े, आलस्य बहुत अधिक बोलना एवं अवैदिक कार्य करनेवाले ब्राह्मणों का परित्याग करना चाहिए। मल-मूत्र, रक्त, क्लेद (पसीना), हीनाङ्गी, मांस, कपाल हरण, मद्य आदि से घृणा नहीं करना चाहिए। वीरभाव के साधक योगियों का यही समयाचार है, गुरू की आज्ञा से जो यह करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।[१] कौलाचार के बाद योगविद्या की सिद्धि होती है। वीरभाव के बिना पूर्णयोगी होना सम्भव नहीं।[२]

वीरभाव की साधना का एकामात्र आधार यही है कि साधक अपने आप में और अपने इष्टदेव में कोई भेद ही न समझे-

अहं देवो न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाहं न शोक-भाक्।
सच्चिदानन्द-रूपोऽहं, नित्यमुक्तस्वभाववान्।।[३]

कबीर ने भी एक स्थल पर इसी भाव को इस प्रकार कहा है-

तूँ-तूँ करता तूँ भया मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नाऊँ परि जित देखौं तित तूँ।।[४]
एवं- लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।[५]

रुद्रयामल के देवी-रहस्य खण्ड में छिन्नमस्ता की मन्त्रसाधना में राजसिक पूजा (वीरभाव की साधना) के क्रम में वीर साधक कहता है-

अलिपिशितपुरन्ध्री भोगपूजा परोऽहम्।
बहुविधकुलामार्गारम्भ - संभावितोऽहम्।।
पशुजन-विमुखोऽहम् भैरवीम् आश्रितोऽहम्।
गुरूरचरणरतोऽहं भैरवोऽहम् शिवोऽहम्।।[६]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, २२/४१-५८, तुलनीय कुलप्रदीप (वाममार्ग, पृ० २४-२५ पर उद्धृत)।
२. वही, २२/६०
३. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४१ पर उद्धृत।
४. सन्त कबीर, पृ०-२८
५. वही, पृ०-३९
६. रुद्रयामल (शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०३८१ पर उद्धृत)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् 'मै' कौलसाधना के अन्य विभिन्न रूपों के रूप में भी उस साधना का अनुसरण करता हूँ, जहाँ मदिरा, मांस और पत्नी का आनन्द है। पशुभाव से मैं वि[illegible] हो चुका हूँ, देवी भैरवी में मै अपना आश्रय ढूँढता हूँ। गुरु के चरणों में मेरी अगाध भक्ति [illegible] मैं ही भैरव हूँ। शिव भी मैं ही हूँ।'

'सोऽहं' भाव के पूजन के लिए अष्ट पाशों से मुक्त होना जरूरी है। किन्तु मनुष्य मदिरा, स्त्री आदि के आस-पास ही जीवनपर्यन्त घूमता रहता है। मनुष्य के पतन के मुख्य कारण कौन से हैं? उनमें सर्वप्रथम है–मदिरा और स्त्री, मत्स्य, मांस मुद्रा और अन्य गौण वस्तुएँ। इन वस्तुओं के कारण मानव ने अपनी मानवता खो दी है। तदनन्तर शिव की आकांक्षा हुई कि इन जहरों का इस रूप मे प्रयोग किया जाय कि वे मानव-व्यवस्था में घुले जहर को निकाल दे। विष ही विष का प्रतिकारक है। यह उन व्यक्तियों की सम्यक् चिकित्सा है, जो मद्य और स्त्री के अति व्यसनी हैं। चिकित्सक को अनिवार्य रूप से अनुभवी होना चाहिए। यदि प्रयोग में या चिकित्सा में जरा भी भूल हुई तो रोगी की जान जा सकती है।......इसलिए पंचतत्त्वों के पक्ष में गुप्त एवं रहस्यमय तर्क हैं, जिन्हें उसी रूप में समझने के बाद ही उनका अनुसरण किया जा सकता है।[1] इसलिए कहा गया है कि इसे अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए।[2]

भौतिक क्रियाओं में वीरसाधक अपने आप को सामूहिक रूप से सभी कार्यों के साथ सम्बद्ध करता है, क्योंकि इसी से सार्वजनिक जीवन का ताना-बाना बुना है।[3] फिर पञ्चमकारों का त्याग क्यों किया जाय? क्यों न प्रवृत्तियों के अनुकूल चलते हुए इनको साधना का उपकरण बना दिया जाय? जब ये वस्तुएँ परमात्मा ने बनाई हैं, तो इन्हे बुरा, निन्दित या त्याज्य बताकर क्या हम अपने नियन्ता का अपमान नहीं करते? क्यों न हम इन वस्तुओं को भी अन्य वस्तुओं की भाँति परमात्मा को अर्पित करें? क्यों न अपने सारे जीवन के कार्यक्रम को ही साधना का रूप दे दिया जाय?[4] सौन्दर्यलहरी में कहा गया है–

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनम्।
गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुति-विधिः।।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशा।
सपर्य्या-पर्य्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्।।[5]

अर्थात् 'हे मातः, जो कुछ भी मैं बोलता हूँ (चाहे वह अनर्गल प्रलाप ही क्यों न हो), वह सब तेरे नाम का जप है। जो कुछ मेरा शिल्प (हाथों से किया हुआ कर्म-चाहे वह लौकिक दृष्टि में जघन्य से जघन्य पाप ही क्यों न हो) है, वही तेरे अर्थ-पूजा मे प्रदर्शित विभिन्न मुद्राएँ हैं। मेरा पाद-सञ्चार सब तेरी प्रदक्षिणा है। मेरा खाना-चबाना सब तेरे नाम का होम है। मेरा

१. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-४०२
२. रुद्रयामल उ०त०, १/९५, २२/४३
३. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९९
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४४
५. सौन्दर्य लहरी, २८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेट जाना ही तेरा नमन है। मेरे सर्वशारीरिक सुख ही तेरे प्रति आत्म-निवेदन की मेरी दशा है। इस प्रकार हे माते! इस संसार-क्षेत्र में जो कुछ मेरे कार्य-कलाप हैं, वह सब तेरी ही सपर्य्या है।

यद्यपि ब्रह्मस्वरूप पूर्ण एवं निष्क्रिय आनन्द है और जीव के रूप में ब्रह्म सुख-दु:ख का अनुभव करता है-तथापि वह भी ब्रह्म ही है। जब ऐसी अनुभूति प्रत्येक स्वाभाविक क्रिया में होने लगती है, तब प्रत्येक कर्म पशु कर्म नहीं रह जाता, बल्कि वह एक धार्मिक क्रिया, एक यज्ञ हो जाता है। प्रकृति में सभी कार्य शक्ति के ही अंग हैं। इस प्रकार जब वीरसाधक मद्यपान करता है, तो वह मद्य को तारा-द्रवमयी ही जानता है। वही साक्षात रूप मे मुक्तिदात्री है। कैसे कोई व्यक्ति जो कि सच्चे अर्थ में मद्य में देवी को देख लेता है, हानि उठा सकता है; कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए, जो जिह्वा के अग्रभाग से उसके (साधक के) सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, अपने को प्रकाश समझते हुए, जो कि उसके द्वारा पिया गया मद्य का भी प्रकाश है, वह कहता है-'साऽहम्', 'मैं ही ब्रह्म हूँ', 'मै स्वयं ही अपने को आहूति अर्पित करता हूँ-स्वाहा'। इसलिए जब वीरसाधक खाता है, मद्यपान करता है या संभोग करता है तो वह अपने आपको पृथक् व्यक्ति नहीं समझता, जो अपनी विशिष्ट सीमित आकांक्षाओं को संतुष्ट कर रहा हो....,बल्कि वह अपने को ऐसे आनन्द में समझता है मानो शिव कर रहे हों-'शिवोऽहम्', 'भैरवोऽहम्।'[१] सम्यक् संभोग यदि ध्यान एवं कर्मकाण्ड से समन्वित हो तो आध्यात्मिक विकास का साधन हो सकता है। किन्तु जो व्यक्ति इसे एक अभद्र और पाशिवक दृष्टिकोण से देखता है, वह इसके मर्म को समझने के लिए तैयार नहीं है।[२] अंग्रेजी में एक कहावत है-'संसार में कोई भी वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है, परन्तु हमारा विचार ही उसको अच्छा या बुरा बनाता है।' ज्ञानार्णव तंत्र में कहा गया है-"धर्माधर्म का पूर्णज्ञान हो जाने पर सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। विष्ठा, मूत्र, स्त्री-रज, नख, अस्थि-ये सब मन्त्रवेत्ता के विचार में पवित्र हैं। जल में नानाविध देवताओं का निवास है, उस जल से 'मूत्र' पैदा हुआ है, तो 'मूत्र' क्यों दूषित बताया जाता है? स्त्री-रज वह वस्तु है, जिससे मनुष्य-देह उत्पन्न होती है और इसी मनुष्य-देह से परमपद की प्राप्ति होती है, तो फिर 'स्त्री-रज' से घृणा क्यों? पुंवीर्य 'बिन्दु' कहलाता है और 'बिन्दु' यह शिवरूपी शरीर है। इसी शरीर की अस्थियाँ आदि है जो बिन्दु-सम्भूत होने से शिव-तत्त्व हैं। इसीलिए ये दूषित हो ही नहीं सकतीं। 'रेतस्' इस देह का कारण होने से नि:संदेह पवित्र है। फिर इससे घृणा क्यों की जाती है?[३] हे सुन्दरी! यह सब जो

१. शक्ति एण्ड शाक्त, पृ०-३९९

२. वही, पृ०-४००

३. ज्ञानार्णव, तंत्र, २२वाँ पटल (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४५-४६ पर उद्धृत)।
धर्माधर्म-परिज्ञानात् सकलेऽपि पवित्रता।
विष्ठामूत्रं स्त्रीरजो वाऽपि नखास्थि-सकलं प्रिये!।।
विचारयेत् मन्त्रवित् तु पवित्राण्येव सुव्रते।
नानाविधा हि देवेशि! देवता सलिलस्थिता:।।
तेनोदकेन यज्जातं मूत्रं कस्मात् ते दूषयेत्।
स्त्रीरज: परमेशानि् देहस्तेनैव जायते।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ बताया गया है, वह निर्विकल्प साधक का ज्ञान मार्ग है। हे महेशानि! यदि साधक सविकल्प (यानि उसमें भेदबुद्धि है) तो उपर्युक्त वस्तुओं का प्रयोग कर वह पाप का भागी होती है, जैसे शिशु जब मातृगर्भ से बाहर निकलता है, तब उसके सभी अवयवों का संसर्ग मातृ-योनि से होने के कारण उसका अपनी माता के साथ उस समय भग-लिङ्ग संयोग होना स्वाभाविक है, परन्तु वह उस समय निर्विकार होने से पापी नही कहलाता। अब यदि वह (बड़ा होने पर) काम-वासना पूर्ण होकर अपनी माता के साथ कुचेष्ठ्य करे, तो उसे गुरूतल्पगमन का पाप लगेगा। उस समय उसकी यह दलील नही चल सकती कि मै पैदा होने पर माता की ही योनि से तो निकला हूँ और निकलते समय योनि-स्पर्श हुआ ही है। अतएव हे भद्रे! दोष तभी है, जब वासना कुलषित हो। सब कुछ ठीक है, केवल कलुषित वासना बुरी है।[१]

इसलिए तंत्र कहता है कि-"पहले अपने आपको बदलो और तब कर्म स्वभावत: अपने आप बदल जाएगा। सर्वप्रथम एक भिन्न प्रकार की चेतना को उपलब्ध होओ और उसके पीछे-पीछे एक भिन्न तरह का कर्म, चरित्र, व्यवहार स्वत: चला आएगा।"[२]

अत: वासना को ही मारने के लिए वीरभाव से साधना करना आवश्यक हो जाता है। जब कोई बात नित्य कार्यों में होने लगती है, तव उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं रह जाता।[३]

तत्त्वशुद्धि[४]-वीराचार की साधना कितनी पवित्र भावना से की जाती है, यह उसके तत्त्वशुद्धि की प्रक्रिया में देखा जा सकता है-

---

कथं दूषणं येन प्राप्यते परमं पदम्।।
पुरूषस्य तु यद् वीर्यं बिन्दुरित्यभिधीयते।
बिन्दुस्तु परमेशानि! कायोऽयं शिवरूपक:।।
शिवतत्त्वेन चास्थ्यादि दूषणं नास्ति बैन्दवे।
रेत: पवित्रं देहस्य कारणं केन निन्द्यते।।

१. ज्ञानार्णव, तंत्र, २२ वॉ पटल (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४६ पर उद्धृत)।
ज्ञानमार्गोऽयं सकलो निर्विकल्पस्य सुन्दरि!।
सविकल्पो महेशानि! पाप-भाग् जायते नर:।।
मातृगर्भाद् विनिर्गत्य शिशरेव न संशय:।
इन्द्रियाण्यखिलान्यस्य देहस्थान्यापि वल्लभे!।।
निर्विकारतया तत्र नान्यथा भवति प्रिय!।
भग-लिङ्ग-समायोगो जन्मकाले सदा भवेत्।।
काम्यते सा यदा देवि! जायते गुरूतल्पग:।
अतएव यदा यस्य वासना कुत्सिता भवेत्।।
तत्तद् दूषणं संयुक्तमन्यत् सर्वं शुभं भवेत्।
पवित्र सकलं भद्रे! वासना कलुषां स्मृता।।

२. दॅ तंत्रा एक्सपीरियन्स, पृ०-२२
३. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४७
४. वही, पृ०-४८-५०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सुरापूरितपात्रं वामकरे आदाय–

'ब्रह्माण्डमण्लाकारं पात्रं नौमि सुधामयं सुधयापूरितं साक्षादायुर्वित्त प्रयच्छ मे। ऊँ ह्रीं श्रीं भगवति, महालक्ष्मि! सुरपुरधामानमूर्ध्वशून्यमधः शून्यप्रकाशनाप्रकाशभक्षिणि! सोमसूर्याग्नि भक्षिणि! आगच्छ, आगच्छ, विश, विश,फट्'।

इति दक्षकरे शुद्धिखण्डमादाय–

'ऐ प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्श-रूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूम्यात्मने, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄ एं ऐं ओं औं अं अंः आत्मतत्त्वयात्मतत्त्वात्मनेविश्वरूपाय विश्वरूपात्मने सरस्वतीहिरण्यगर्भसहिताय सरस्वतीहिरण्यगर्भसहितात्मने आणवमलशुद्ध्यर्थं स्थूलदेहमाधारे आत्मतत्त्वेन शोधयामि।

नाभिचैतन्यरूपादौ हविषा मनसा स्रुचा,
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।[1]
ऐं आत्मतत्त्वेनस्थूलदेहं शोधयामि नमः स्वाहा।।

क्लीं मायाकलाविद्याकालनियतिपुरूषात्मने कं...मं विद्यातत्त्वेन तैजस-पुरुषाय तैजस-पुरुषात्मने लक्ष्मीनारायणसहिताय लक्ष्मीनारायणसहितात्मने कार्मिकमलशोधनार्थं सूक्ष्मदेहं हृदये विद्यातत्त्वेन शोधयामि–

धर्माधर्महविर्दीप्ते स्वात्माग्नौ मनसा स्रुचा,
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।[2]
क्लीं विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि नमः स्वाहा।।

सौः शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मने यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं शिवतत्त्वाय शिवतत्त्वात्मने प्राज्ञपुरुषाय प्राज्ञपुरुषात्मने विद्याशङ्करसहिताय विद्याशङ्करसहितात्मने मायिकमलशोधनार्थं कारणदेहं शिरसि शिवतत्त्वेन शोधयामि–

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा,
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।
सौः शिवतत्त्वेन कारणदेहं शोधयामि नमः स्वाहा।।

ऐं क्ली सौः प्रकृत्यहङ्कारादिषट्त्रिंशत्तत्त्वात्मने अं आं......ळं क्षं सर्वतत्त्वाय सर्वतत्त्वात्मने विश्वतैजसप्राज्ञपुरुषाय महाकरणदेहं विश्वतैजसप्राज्ञपुरुषात्मने आणवकार्मिकमायि-कमलशोधनार्थं स्थूलसूक्ष्मकारण सर्वाङ्गे जीवपरमात्मनोरैक्येन शोधयाम्यमृतं जुहोमि स्वाहा–

अहन्ता पात्र-भरितमिदन्ता परमामृतम्,
पराहन्तामये वह्नौ जुहोमि शिवरूपतः।
ऐ क्लीं सौं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, २६/१२२
२. वही, २६/१२४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततो मूलाधारे अनादिवासनेन्धनज्वलिते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा कुण्डलियधिष्ठितं चिदग्निं ध्यात्वा–

'मूलं हंसः चिदग्निमण्डलाय नमः'।

इति मनसा सम्पूज्य–मूलं पुण्यं जुहोमि स्वाहा, पापं कृत्यमकृत्यं सङ्कल्पं धर्मम् अधर्मं स्वाहा, मूलं हंसः, इत पूर्वे प्राणबुद्धिदेह–धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं परमशिवगुरूदेव तायै समर्पितमस्तु स्वाहा–

अन्तरनिरन्तरनिरिन्धनमेधमाने,
मोहान्धकारपरिपन्थिनि सम्विदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ,
विश्वं जुहोमिवसुधादिशिवावसानम्।।[1]

उपरोक्त तत्त्वशुद्धि से स्पष्ट है कि वीराचार की साधना का केवल एकमात्र उद्देश्य 'जीवपरमात्मनोरैक्य' है और इसी की प्राप्ति के लिए पञ्चमकार का प्रयोग पूजन में किया जाता है।

इसी प्रकार वीरभाव की साधना करने से साधक के अष्टपाश कट जाते हैं और उसका मन वासनाओं से मुक्त हो जाता है। अब उसे पूजोपचार में किसी भी वस्तु तथा स्थान से घृणा नहीं होती। श्री कालीकर्पूरस्तव में कहा गया है–

समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवतीम्,
रतासक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुं।
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः,
समस्ताः सिद्धोघा भुवि चिरतंर जीवति कविः।।[2]
शमशानस्थःसुस्थो गलितचिकुरो दिकपट्धरः,
सहस्त्रंत्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमं।
जपँस्त्वत् प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो,
महाकालि! स्वैरं स भवति धरित्रीपरिदृढ़ः।।[3]

अर्थात् 'हे जगदम्बे! यदि तेरा भक्त पीनस्तन और पीनजघनों वाली युवती के साथ सुरतासक्त होकर मुक्तकेश दिगम्बर रहकर निशीथ–काल में तेरे मन्त्र का जाप करे, तो समस्त सिद्धगण उसके वशीभूत हो जाते हैं और वह प्रकाण्ड पण्डित होकर चिरकाल तक जीवित रहता है। हे महाकालि! जो साधक स्थिरचित्त से श्मशान में स्थित होकर मुक्तकेश दिगम्बर अवस्था में अपने स्खलित वीर्य से लिप्त किए हुए आक के सहस्त्र पुष्पों को, तेरा ध्यान करता

१. रुद्रयामल उ०त०, २६/१२७
२. सविधि श्रीकालीकर्पूरस्तवः, श्लोक–१०
३. वही, श्लोक, १५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुआ, तेरे नाम मन्त्रजपपूर्वक, एक-एक करके तेरे निमित्त अर्पण करता है, वह अनायास ही राजा होता है।'

ध्यातव्य है कि उपरोक्त साधना बिना घृणा, लज्जा आदि का त्याग किए सम्भव नहीं है। जो ऐसा करता है, वह अष्टपाशों से मुक्त हो गया। उपर्युक्त समय, स्थान तथा सामग्री से इष्टदेव का प्रेम से पूजन करनेवाला ओर उसके चरणों में लीन होकर उसके मन्त्र का जप करनेवाला निस्सन्देह वीर-भाव की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। वह 'सिद्धवीर' है-

हालां पिबन् दीक्षितमन्दिरेषु।
सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु।।
गृहे गृहे चर्वण चर्वयन्तम्।
विराजते कौलिचक्रवर्ती।।[१]

अर्थात 'कौलिकों का सम्राट, जिसने कुलमार्ग की साधना में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है, कलार की हाट में मदिरा पीता है, रात्रि में गणिका के घर में सोता है और घर-घर जहाँ भी प्राप्त हो गया, वहाँ चर्वण-भक्षण करता हुआ शोभित होता है।'

उपरोक्त अवस्था विचारणीय है। कलार की हाट और वेश्या का घर समाज में सर्वनिंदित स्थान समझा जाता है। दरवाजे-दरवाजे फिरकर खाना महानिन्दित तथा अपमानजनक कार्य समझा जाता है। किन्तु कौलिक का तो देहाभिमान नष्ट हो चुका है। उसमें मानापमान की भावना कहाँ से आवे? उसके लिए गणिका गणिका नहीं रह गई। उसकी दृष्टि में तो वह जीती-जागती जगदम्बा की प्रतिमा है। मद्य उसके लिए मद्य नहीं रह गया। माँगना उसके लिए भिक्षावृति नहीं रह गई। उसके लिए तो मानापमान दोनों समान हैं।

वीरभाव की साधना सच्चे हृदय से करते-करते यह अवस्था समय प्राप्त होने पर साधक को स्वयं प्राप्त हो जाती है। इसके पूर्णरूपेण प्राप्त होते-होते कुछ बीच मे माध्यमिक अवस्था रहती है। उस समय साधक को कुछ-कुछ देहाभिमान रहता है। यह अवस्था वीर तथा दिव्य भावों के बीच की 'सिद्धवीर' या 'दिव्यवीर' अवस्था है। इस मध्यकालीन अवस्था में साधना के प्रयोग और दुष्कार हो जाते हैं। साधक 'चीनाचार' से साधना करने लगता है। अब उसे सामान्य शौच से भी प्रयोजन नहीं है। पहले-पहल तो वे हाथ-पैर-मुँह धो लेते हैं, फिर यह कार्य मानसिक कल्पना से किया जाता है, बाद मे मानसिक कल्पना की भी आवश्यकता नहीं रहती।[२] पुरश्चर्यार्णव में इसका वर्णन इस प्रकार है[३]-"कलाई से नीचे हाथ व गुल्फ से नीचे पैर धो लीजिए, तथा कुल्ला कर लीजिए, चीन-स्नान हो गया। इस प्रकार का स्नान कर तथा दान व पूजादि कर साधक मन में चिन्तन करे-मेरा देह मलिन नहीं है, मेरा कोई पाप नहीं है, किस बात का नहाना, कैसा नहाना! साधक बिना नहाए तथा भोजन करने के बाद इष्ट-साधन

१. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-५७ पर उद्धृत।
२. वही, पृ०-५९.
३. पुरश्चर्यार्णव, (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-५९ पर वर्णित)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करे और कल्पना करे कि मेरे हृदय के अन्दर मुझमें सारा संसार प्रतिष्ठित है, मुझे मन्त्रसिद्धि हो गई है और देवता मुझे वर देने को तैयार है।"

उपरोक्त महाचीनक्रम 'निष्कल' है और अशक्तों के लिए है, जिनको कुछ सङ्कोच, झिझक या घृणा है, परन्तु जो इसके भी ऊपर उठ चुके हैं, उनके लिए 'सकलक्रम' है, जिसका वर्णन 'पुरश्चर्यार्णव' इस प्रकार करता है[1]–"स्नान, शौच, दन्तधावन, जप, पूजन, तर्पण, नियम इत्यादि सब मन से ही करें, शरीर से नहीं अर्थात् इनकी कल्पना मात्र ही करनी चाहिए। चीनाचारी को सब दिन, समय, मुहूर्त प्रभृति शुभ हैं, कोई भी काल अशुभ नहीं है। उसके लिए दिन, रात, साँझ, सवेरे, आधी रात में कोई अन्तर नहीं है। वह शुद्धि (स्थूलशुद्धि) नहीं करता। उसका मन निर्विकल्प है, उसकी कोई पसन्द, नापसन्द नहीं। सफाई या शुद्धि की उसको कोई आवश्यकता नहीं है, अमेध्य में वह कोई दोष नहीं मानता, चीनाचारी को देवी का पूजन सदा बिना नहाए हुए और भोजन करने के बाद करना चाहिए। अर्द्ध-रात्रि में गंदे स्थान पर जाकर देवता को मन्त्रयुक्त बलिदान देवें।

साधक स्त्रियों से द्वेष न करे। स्त्रियों का विशेष रूप से पूजन करे। जहाँ कहीं भी स्त्रीगमन, स्पर्शन, दर्शन करे। अचूड़क (चूडोपनयन होने से पूर्व जो बालक मर गया हो, उसे अचूड़क कहते हैं।) कपाल में स्त्रियों को ताम्बूल और यथारूचि भक्ष्य द्रव्य-मांस, मत्स्य, दधि, क्षौद्र, मद्य आदि सर्वप्रकार भक्ष्य-भोज्य देकर तथा स्वयं खाकर जप करे। दिशा, काल, तिथि आदि की जप, अर्चा बलि-प्रदान आदि में कोई अपेक्षा नहीं होती।

महामन्त्र की साधना में 'चीनाचार' के अनुसार वस्त्र, आसन, शरीर, घर, स्पर्शास्पर्श के विषय में स्वेच्छाचार है अर्थात् छुआछूत का कोई विचार नहीं है। तैल-मर्दन, ताम्बूल-भक्षण तथा नाना प्रकार के वस्त्र धारण करें। शरीर को कपड़े से पोंछ सकता है। सर्वदा जगदम्बा के चरणों में मन लगता हुआ साधक केवल मन्त्र-स्नान करे। केशों को बढ़ा हुआ रखें। प्रसन्न मन होकर स्वेच्छाचरण करे। इसमें साधक को धर्म है, अधर्म नहीं। अपने को सर्वदा कृतार्थ समझकर मन को संतोष देकर निर्विकल्प रहे।

सद्यः मद्यपान करके मातङ्गी के साथ विहार करता हुआ उसके योनि का चुम्बन, अवलेहन, दर्शन करता हुआ जगदम्बा के चरणों का अनन्यभाव से चिन्तन कर इष्टमन्त्र का जप करें। योनि में जगदम्बा का चिन्तन करके जप करे। गले में मुण्ड (नरकपाल) माला, हाथ में नरकपाल लिये रहे। स्मृतिशास्त्र में कथित शौचक्रिया (अर्थात इतने बार पायु या उपस्थ धोना आदि) न करे। 'महाचीन' क्रमानुसार महामन्त्र के साधन में देश, काल, भक्ष्याभक्ष्य, शौचाशौच आदि का कोई नियम नहीं। यह विधि-निषेध से परे है। दिन-रात, सुबह-शाम, जब चाहे तभी मांस खाकर तथा मद्य पीकर स्त्री के सहवास में जप करे।[2]

१. पुरश्चर्यार्णव, (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ० ६०-६१ पर सन्दर्भित)
२. पुरश्चर्यार्णव (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-६०-६१ पर उद्धृत)।
.... निर्विकल्पः सदा भवेत्।
सद्यो मद्यं पिबेद् देवि! मातङ्गीभिर्विहारवान्।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार अन्य 'साधनक्रम' यथा 'महानीलक्रम' गन्धर्वक्रम, सौभाग्यक्रम आदि भी हैं और ये सब साधनक्रम उच्च कोटि के 'वीर' साधक के लिए हैं।

उपरोक्त साधना से स्पष्ट है कि ऐसा साधक भय, घृणा, लज्जा, मानापमान आदि से मुक्त हो जाता है। रुद्रयामल में कहा गया है कि मध्याह्न से सायं पर्यन्त निर्जन और एकान्त स्थान में वीरभाव की साधना करके रात्रि में गंधादि से युक्त होकर ताम्बूल से मुख को आपूरित करके साधक विजया (भाँग) के आनन्द से युक्त होवे। तब आनन्द के उद्रेक से समन्वित एकाग्रचित्त से कुमारी की पूजा का विधान तथा मन्त्र का जप करें। निर्भीक होकर रातभर जप करने से साधक दिव्य प्रमाताओं में भी उत्तमोत्तम होकर कालिका का दास हो जाता है।[१]

जो योग, आगम और कौलमार्ग को नहीं जानता, वह देवी की पूजा कैसे कर सकता है, उसको योग की सिद्धि कैसे होगी? वीराचार के अज्ञान से योगाभ्यास निष्फल है।[२] वीराचार के बिना दिव्याचार नहीं प्राप्त हो सकता, इसलिए वीराचार की साधना के बाद दिव्य भाव की साधना करनी चाहिए।[३]

वीराचारी के लिए देवी का ध्यान

आनन्दभैरवी का कथन है कि वीराचारी को मुझ भैरवी कुलकुण्डलिनी देवी का मूलाधार में ध्यान करके पूजन करना चाहिए।[४] ध्यान और पूजन की भाव-दशा इस प्रकार है[५]—

कालीं कालीं कुलेशीं कलकलकलिज ध्यानकालानलार्कां
कल्योल्कां कालकल्लां किलिकिलिकलिकां केलिलावण्यलीलाम्।
'सूक्ष्माख्यां संक्षयाख्यां क्षयकुलकमले सूक्ष्मतेजोमयीं तां
आद्यन्तस्थां भजति प्रणतसदयां सुन्दरीं चारूवर्णाम्।।,

योनिं चुम्बन् लिहन् पश्यन्, जपं कुर्यादनन्यधीः।
योनौ विचिन्तय जप्तव्यं ....
मुण्डमाला गले धार्या, कपालं पाणिसङ्गतम्।
न शौचादिक्रिया कार्याः, स्मृतिशास्त्रप्रचोदिताः।।
एका लिङ्गे गुदे पञ्च, इत्याद्याः प्रकीर्तिताः।
न ताः कार्याः साधकेन्द्रैः ....
न देशकालनियमो, भक्ष्यादिनियमो न हि।
शौचादिनियमो नास्ति, महामन्त्रस्य साधने।।
दिवसे वा तथा रात्रौ, रात्रिशेषे निशामुखे।
मांसं भुक्त्वाऽऽसवं पीत्वा, स्त्रियं गत्वाऽऽचरेज्जपम्।।

१. रुद्रयामल उ०त०, ११/३७-३९
२. वही, १६/३८-३९
३. वही, २६/५८
४. वही, २६/६१
५. वही, २६/६१-६५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अष्टादश-भुजैर्युक्तां नीलेन्दीवरलोचनाम्।
मदिरासागरोत्पन्नां चन्द्रसूर्य्याग्निरूपिणीम्।।
चन्द्रसूर्य्याग्निमध्यस्थां सुन्दरीं वरदायिनीम्।
कामिनींकोटिकन्दर्प-दर्पान्तक-पतिप्रियाम्।।
आनन्दभैरवाक्रान्तामानन्द-भैरवीं पराम्।
योगिनीं कोटिशीतांशुगलद्गात्रमनोहरम्।
कोटिविद्युल्लताकारां सदसद्भक्तिवर्जिताम्।
ज्ञानचैतन्यनितरां तां वीरां भावयन्ति हि।।

इस ध्यान के प्रसाद से आनन्दभैरव, आनन्दभैरवी, संसार तथा सभी सन्तुष्ट होते हैं। मूलाधार में देवी का ध्यान करके यदि साधक स्थिरचित्त से प्राणायाम करता है तो वह योगसिद्ध होता है। वीरभाव में सूक्ष्मवायु के द्वारा साधक अपना मृत्यु-जन्मसङ्कट को जान लेता है। एक माह के अभ्यास से आकर्षणी-सिद्धि, दो मास के अभ्यास से वाणी-सिद्धि, तीन माह के अभ्यास से योगी, चार माह के अभ्यास से दिक्पालगोचर, पाँच महीने के अभ्यास से कामदेव तथा छः मास क अभ्यास से साधक साक्षात् रुद्र हो जाता है।.....वीराचार महाधर्म है और चित्त-स्थैर्य्य का कारण है, जिसके प्रसाद से साधक दिव्य भाव में प्रविष्ट होता है और वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।[१]

इस प्रकार वीरभाव की साधना से साधक अष्टपाशों का छेदन करके जीवन्मुक्त की अवस्था में पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर अब पञ्चमकारों की प्रकृत रूप में आवश्यकता नहीं रह जाती। आवश्यकता न होने पर अब उसके लिए इच्छा-अनिच्छा भी नहीं रह जाती। जब साधक की ऐसी अवस्था हो जाती है, तो समझ लेना चाहिए कि वह 'दिव्यभाव' के अन्दर प्रवेश कर चुका है।

(iii) दिव्यभाव

पशुभाव और वीरभाव की साधना करने के बाद साधक दिव्यभाव में प्रविष्ट होता है। दिव्यभाव में देवता का दर्शन होता है।[२] चित्त की प्रत्येक प्रवणता के साथ समाहित मनवाला होकर, शुद्ध होकर इस भाव की साधना करनी चाहिए। इसमें सभी कार्य देवता की प्रसन्नता के लिए ही किया जाता है। इस भाव से सभी सिद्धियाँ होती हैं और धर्म का उदय होता हैं। देवतुल्य हीने के कारण ही इसका नाम दिव्यभाव है।[३]

दिव्यभाव की साधना में पञ्चमकारों का प्रयोग अपने प्रकृत रूप में नही होता। या यों कहिए कि स्थूल रूप में पञ्चमकारों का प्रयोग अब बचकाना लगता है। अब तो साधना बहुत रहस्यमयी हो चली है। मद्य अब वह मद्य नहीं, बल्कि ब्रह्मानन्द रस है-" मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र

१. रुद्रयामल उ०त०, २६/६६-७३
२. वही, १/१३६-'दिव्यभावे देवताया दर्शनं परिकीर्तितम्।
३. वही, १/१४९-५०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक बार-बार जाकर चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्ति के सामरस्य से उत्पन्न सुख को अनुभव करते हुए व्योमपङ्कज (सहस्रदलकमल) से निकलती हुई सुधा का पान करना ही 'सुधापान' है। इनके अतिरिक्त तो केवल मद्य पीनेवाले हैं। अन्यथा स्थूल मद्यपान करते रहने पर तो योगी योगभ्रष्ट हो सकता है"-

मूलाम्भोजो ब्रह्मरन्ध्रं चालयेदाशु चालयेत्।
गत्वा पुनः पुनस्तत्र चिच्चन्द्रः परमोदयः।।
चिच्चन्द्रःकुण्डलीशक्तिः सारमस्य महोदयः।
व्योमपङ्कजनिस्यन्द-सुधापान-रतो नरः।।
मधुपानमिदं नाथ! बाह्ये चाभ्यन्तरे सताम्।
इतरन्मद्यपानन्तु योगिनां योगघातनम्।[१]

शक्तिसङ्गम का कथन है-'न मद्यं माधवी मद्यं-मद्यं शक्ति-रसोद्भवम्'।[२] अर्थात् 'मद्य' माध्वी, पैष्टी प्रभृति नहीं है, बल्कि शक्ति-शिव सामरस्य से उद्भूत रस है।

दिव्य भावापन्न महात्मा के लिए 'मद्य' की क्या परिभाषा है, द्रष्टव्य है[३]-

'धुर तें मधुर मधुरस हू विधुर करे,
मधुरस बेधि उर गुरूरस फूली है।
ध्रुव पहलाद उर हिय अहलाद जासों,
प्रभुता तिलोकहू की तिन सम-तूली है।
बेदम से बेद मतवारे मतवारे परे,
मोहे मुनिदेव देव सूली उर सूली है।
प्याला भरि दे री, एरी! सुरति किलारी तेरी,
प्रेम-मदिरा सों मोहि मेरी सुधि-बुधि भूली है।।

इसी तरह दिव्यभाव के साधक के लिए मांस-मत्स्य का अर्थ है-'पुण्य और अपुण्य का ज्ञानखड्ग से संहार कर जो परशिव में अपने चित्त को लगाता है, वही मांस का भक्षक है, अन्य तो केवल प्राणघातक हैं। शरीरस्थ जलस्थान में निवास करने वाले मछलियों को शरीरस्थ वह्नि में दग्ध करने वाला मत्स्य-साधक कहलाता है।'[४]

'विजयातंत्र' और 'आगमसार' में मत्स्य की यह परिभाषा है'-

गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।[५]

अर्थात् गङ्गा-यमुना नाम की मनुष्य-शरीर में दो नाड़ियाँ-इड़ा-पिङ्गला हैं। इनमें दो

१. रुद्रयामल उ०त०, २६/१३५-३७, तुलनीय कुलार्णव तंत्रः पाँचवा उल्लास।
२. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-६९ पर उद्धृत।
३. वही, पृ०-७० पर उद्धृत।
४. रुद्रयामल उ०त०, २६/१३९-४१, तुलनीय कुलार्णव तंत्रः पाँचवा उल्लास।
५. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-७३ पर उद्धृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'मत्स्य' (श्वास-प्रश्वास) चलते रहते हैं। जो साधक इन दोनों श्वास-प्रश्वास नामक मत्स्यों को पकड़ कर खा जाता है, वह 'मत्स्य' साधक है। अर्थात् जो कुम्भक क्रिया से श्वास-प्रश्वास को रोक देता है।

दिव्यभाव के लिए 'मुद्रा' का अर्थ आगमसार में इस प्रकार है[1]–

सहस्रारे महापद्मे, कर्णिका-मुद्रितश्चेरत्।।
आत्मा तत्रैव देवेशि! केवलं पारदोपमः।।
सूर्यकोटिप्रतीकाशश्चन्द्र – कोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च, महाकुण्डलिनीयुतः।।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्रः मुद्रासाधक उच्यते।

अर्थात् 'हे देवेशि! सहस्रदलपद्म की कर्णिका में आत्मा का निवास है, जो पारद के समान है, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान तथा करोड़ों चन्द्रमाओं के समान उत्तम शीतलता से युक्त है, बड़ा कमनीय है। ऐसी आत्मा को महाकुण्डलिनी से युक्त करने का ज्ञान जिसमें उदित होता है, वह मुद्रा-साधक है। तात्पर्य यह कि सहस्रार में कुण्डलिनी-युक्त आत्मा का ध्यान करना 'मुद्रा' कहलाता है।'

रुद्रयामल में भी कहा गया है कि ब्रह्मकिरण में सब कुछ आरोपित करके सुधीजन को तर्पण करना चाहिए। आनन्द-स्वरूप परमात्मा में चित्त एकाग्र करना ही मुद्रा है। शेष पदार्थ तो केवल भोगार्थ हैं।[2]

इसी तरह दिव्यभाव के साधक के लिए 'मैथुन' अब स्थूल मैथुन नहीं है। वह उस मैथुन से दिव्य-मैथुन का सूत्र पा लिया है, जो उससे कहीं अधिक आनन्दप्रद और मुक्त करनेवाला है। अब उसका मैथुन है–

परशक्त्या च मिथुन-संयोगानन्दनिर्भराः।।
मुक्तास्ते मैथुनं तत् स्यादितरे स्त्रीनिषेवकाः।
एतत्पञ्चमकारेण पूजयेत् परनायिकाम्।।[3]

अर्थात् 'आत्मा और पराशक्ति के मिथुन (जोड़े) के संयोगानन्द का आस्वादन करना ही 'मैथुन' है, अन्य तो केवल स्त्री-निषेवक हैं'।

श्री कालीकर्पूरस्तव में कहा है–

समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवती ।
रतासक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम्।।
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः।
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः।।[4]

---

१. आगमसार (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-७३ पर उद्धृत)।
२. रुद्रयामल उ०त०, २६/१४२
३. वही, २६/१४३-४४, तुलनीय, कुलार्णव तंत्र, पाँचवा उल्लास
४. सविधिश्रीकालीकर्पूरस्तव, श्लोक-१०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह श्लोक वीरभाव के वर्णन में भी उद्धृत किया जा चुका है, किन्तु ध्यातव्य है कि कालिका विद्या की साधना वीरभाव तथा दिव्यभाव दोनों से होती है। द्रष्टव्य है–

दिव्यभावं वीरभावं, विना कालीं प्रपूजयेत्।
पूजने नरकं याति, तस्य दुःखं पदे पदे।।[1]

अतः यहाँ श्रीकालीकर्पूरस्तव के उपरोक्त श्लोक का दिव्यभावपरक अर्थ श्री विमलानन्दनाथ की विमलानन्ददामिनी स्वरूपव्याख्या (टीका) के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है[2]–

"अस्मिन् लययोगो वर्ण्यते। हे मातः! जननि! भक्तः दिव्याचाररतो योगी साधकः। यदि नक्तं निशायां प्रबुद्धः सन् इत्यर्थः(या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी- भगवदगीता) समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवती रतासक्तः सर्वदिग्विदिग्स्थितानां जीवानां उत्पादयित्र्या च नित्ययुवतीरूपया कुलकुण्डलिनीशक्त्या सह जीवात्मानं परात्मनि लीनं कुर्वन् सन् (योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत्। स श्रृंगाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि। आनन्दमयः सम्भूय ऐक्यं ब्रह्माणि सम्भवेत्।। घेरण्डसंहिता।। तथा च गोरक्षसंहितायां जीवने सहितां शक्तिं समुत्थाय शिरोऽम्बुजे। शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परशिवेन सङ्गमम्। नानासुखविहारं च चिन्तयेत् परमं पदम्।।) अत्र स्तनजघनधृगित्यनेन कुलकुण्डलिन्या जगतां सृष्टिस्थिति-कर्तृत्वे सूचितं (ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं इष्टदेवस्वरूपिणी। सदा षोड्शवर्षीयां पीनोन्नतपयोधरां श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्।। तन्त्र कल्पद्रुमः।।)।

विवासाः विगतं वासः मायावरणो यस्य तथाभूतः प्रबुद्धः इत्यर्थः। गलितचिकुरगलितं नष्टं चिकुरत्वं चापल्यं यस्य सः, निश्चलचित्तः सन्। त्वां परमशिवेन सह सामरस्यनिरतां त्वां चिन्तयन् तव मन्त्रराजं मनसा चिन्तयति, स तत्त्वज्ञानी भूत्वा दिव्यौघसिद्धौघमानवौघा सदृश चिरजीवी भवतीत्यर्थः। समस्ताः सिद्धौघाः अत्र बहुवचनप्रयोगेण दिव्यसिद्धमानवौघानां ग्रहणं बोद्धव्यम्।"

इस प्रकार दिव्यभाव का साधक उपरोक्त अर्थों में पञ्चमकार का सेवन करता हुआ समाधिस्थ रहता है। इस भाव से उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है। इसे आनन्द का समुद्र कहते हैं।[3] सुदृढ चित्तवाला विवेकसूत्रग्राही सभी भावों में समबुद्धि रखता है, चराचर जगत् में भैरवी के श्री चरणों का ही दर्शन करता है और अखण्डज्ञान से समन्वित चित्तवाला होकर निर्मल आनन्द की अनुभूति करता है-यही दिव्यभाव का लक्षण है। दिव्यभावचक्र में ही, अन्य दोनों भाव विश्राम करते हैं।[4] भावसोपानक्रम से जो दिव्यभाव का आश्रय ग्रहण करता है, उस उत्तम साधक को महासिद्धि की प्राप्ति होती है, बिना दिव्यभाव की भावना में प्रविष्ट हुए कोई

---

१. निरूत्तरतंत्र (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-७५ पर उद्धृत)।
२. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-७५ पर सन्दर्भित्।
३. रूद्रयामल उ०त०, ११/८.
४. वही, ११/२२-२५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधक यदि श्री भैरवी के चरण-कमलों का दर्शन करने की इच्छा करता है, तो वह साधक मूढ़ समझा जाता है।[१]

दिव्य और वीरभाव में स्थित साधक महावीर संज्ञायुक्त होकर ज्ञानचक्षुवाला होकर दिव्य-दृश्य का दर्शन करता है। तर्कादिशास्त्र अनेक हैं, आयु अल्प है, विघ्न करोडों हैं-इस स्थिति में साधक को सार-वस्तु का ग्रहण उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार हंस जल में से दुग्ध को ग्रहण कर लेता है। दिव्य-वीरभाव में स्थित महाभक्त कलियुग में महाविद्या के परमपद का दर्शन करते हैं।[२] दिव्यभाव की आचारविधि में रत साधक सिद्धों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह शिवस्वरूप होकर विचरण करता है तथा आठों ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो जाता है।[३]

दिव्यभाव की साधना में चरम सीमा पर पहुँचकर साधक के सब भेदभाव, विकल्प आदि नष्ट हो जाते हैं। उसे पूजा-पाठ, जप-तप, ध्यान आदि की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। वह स्वयं देवमय हो जाता है।[४] इस अवस्था का चित्रण कबीर के इन शब्दों में देखा जा सकता है[५]-

माला जपूँ न कर जपूँ, मन में जपूँ न राम।
राम हमारा हमें जपे, हम पाये विसराम।।
कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गङ्गा-नीर।
हरि पाछे डोलत फिरैं, कहत कबीर-कबीर।।

'कुलार्णव' में ऐसे योगी का लक्षण इस प्रकार दिया है-"जिस का वायु-सञ्चार नष्ट हो गया हो (श्वासोच्छ्वास क्रिया पर जिसका पूर्ण अधिकार हो गया हो); पाषाणवत् जो निश्चल हो (जिसके शरीर पर शीत-उष्ण अथवा किसी प्रकार के आघात का कोई असर न पड़ता हो, उससे पीड़ा आदि का अनुभव न होता हो), परजीव अर्थात् परमात्मा के निवास का जिसे पूर्णज्ञान हो, वह योगी है; शरीर चाहे जागता हो, चाहे सोता हो, किन्तु दोनों अवस्थाओं में जो सुप्तवत् ही अवस्थान करता है और निःश्वासोच्छ्वासहीन है, वह निश्चय ही मुक्त है।[६]

जिसका इन्द्रिय-समूह निःस्पन्द हो गया है, जिसने मन तथा वायु को अपने मे लीन कर दिया है, जो बिल्कुल मुर्दे के समान स्थित है, वह जीवन्मुक्त है। जिसकी सुनने, सूँघने, स्पर्श करने, देखने की क्रिया ही खत्म हो चुकी है; जिसको सुख-दुःख में अन्तर की समझ नहीं है,

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ११/२६-२८
२. वही, १/२०१-२०४
३. वही, ११/३१
४. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-८३
५. वही, पृ०-८४ पर उद्धृत।
६. कुलार्णव तंत्र, नवम् उल्लास- प्रणष्टवायुसञ्चारः, पाषाण इव निश्चलः।
परजीवैकधामज्ञो, योगी योगविदुच्यते।।
स्वप्नजाग्रदवस्थायां, सुप्तवत् योऽवतिष्ठते।
निःश्वासोच्छ्वासहीनश्च, निश्चितं मुक्त एव सः।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसके मन में कोई संकल्प नहीं है; न कुछ जानता है, न समझता है–इस प्रकार जो काष्ठ के समान जड़ हो जाता है और परमशिव में जिसकी आत्मा विलीन हो जाती है, वह 'समाधिस्थ' कहलाता है।[१]

जिस प्रकार प्रगाढ़ अन्धकार में अवस्थित व्यक्ति कुछ नहीं देखता, उसी प्रकार योगी के लिए यह प्रपञ्च अलक्ष्य हो जाता हैं और दृष्टिगत नहीं होता। फिर तो जब उपर्युक्त प्रकार से देहाभिमान नष्ट हो जाने के कारण परमात्मा का विशेष ज्ञान हो जाता है, तब जहाँ–जहाँ योगी का मन जाता है, वहीं उसको समाधि–अवस्था प्राप्त हो जाती है। उस परमातमा के दर्शन होने से फिर हृदय की ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है, सर्वसंशय कट जाते हैं, कर्मों का क्षय हो जाता है"।[२]

पुनः कहा गया है कि 'अक्रिया' अर्थात् सभी कर्मों से निवृत्ति पूजा है, 'मौन' ही सर्वोत्तम जप है, कुछ भी चिन्तन न करना सर्वोच्च ध्यान है और किसी भी वस्तु की इच्छा न होना परम फल है–

अक्रियैव परा पूजा, मौनमेव परो जपः।
अचिन्तैव परं ध्यानं, अनिच्छैव परं फलम्।।[३]

• • •

---

१. वही, नवम उल्लास–निष्पन्दकरणग्रामः, स्वात्मलीनमनोऽनिलः।
य आस्ते मृतवत् साक्षात् जीवन्मुक्तः स उच्यते।।
न श्रृणोति न चाघ्राति, न स्पृशति, न पश्यति।
न जानाति सुखं दुखं, न सङ्कल्पयते मनः।।
न चापि किञ्चिज्जानाति, न च बुध्यति काष्ठवित्।
एवं शिवे विलीनात्मा, समाधिस्थ इहोच्यते।।

२. वही, नवम उल्लास– यथा गाढ़ान्धकारस्थो, न किञ्चिदिह पश्यति।
अलक्ष्य च तथा योगी, प्रपञ्चं नैव पश्यति।।
देहाभिमाने गलिते, विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र–यत्र मनो याति, तत्र–तत्र समाधयः।।
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वं संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परात्मनि।।

३. वही, ९/३८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षष्ठ अध्याय

रुद्रयामल और साधना एवं उपासना

उपासना

उपासना का अर्थ है–पास होना, प्रभु के निकट होना और निकट होते-होते परमात्मा से एकरूप हो जाना। परमात्मा के द्वार पर साधक एक प्रेमी की तरह जाए। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के चरणों पर सब रख दे, जैसे कोई प्रयसी अपने प्रेमी के चरणों पर सब रख दे–ऐसा परमात्मा से सम्बन्ध जुड़े, तब ही उपासना हुई। लेने-देने का नहीं, दांव-पेंच का नहीं, आकांक्षाओं-अभीप्साओं का नहीं। प्रार्थना की भाव-दशा तो ऐसी है[१]–

मानिनी, सब कुछ निछावर चरण पर तेरे–
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

खोल दे निज नयन-पाटल
युग-युगों से स्निग्ध उर-तल,
वेदना बन जाये यमुना–
एक सुधि की साँस से गल;

रागिनी, सुर-लय निछावर भजन पर तेरे–
ध्वनन कर पुण्यतम क्षण है!
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

आज बन्दी-सा बना है
धड़कनों की आह का स्वर
अधर का संगीत खोया–
कहरती-सी है लहर,

मानिनी, मन-प्राण नूपुर-झनन पर तेरे–
किरण कर पुण्यतम क्षण है!
वरण कर पुण्यतम क्षण है!

१. मरौ हे जोगी मरौ, पृ०-९३ पर उद्धृत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यामलीय उपासना

शिव-शक्ति की अभेद भावना यामलीय उपासना का लक्ष्य है और ऐसी भावना हो जाने पर अनुग्रह की प्राप्ति होती है। उनके अनुग्रह से ही महान् सुख मिलता है तथा साधक मोक्ष प्राप्त करता है।[१]

यामल के लक्षणों में 'नित्यकृत्य-प्रदीपन' तथा क्रम-सूत्र का निर्देश महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों लक्षणों की पूर्त्ति में 'यामलीय उपासना-दृष्टि' सर्वात्मना अभिव्यक्त है। नित्यकृत्य में ब्रह्म-मुहूर्त में शस्यात्याग के पश्चात् करणीय कर्मों का व्यवस्थित कथन करते हुए संपूर्ण दिन की चर्याओं का क्रम निर्दिष्ट है तथा शयनकाल तक की पूरी प्रक्रिया पर पूरा सांगोपांग विमर्श प्रस्तुत है ओर उपासना की विविधता को लक्ष्य में रखकर क्रमसूत्रों में 'पंचांग' कथन अतिमहत्त्वपूर्ण है। 'पंचाग' के विषयों का महत्त्व और स्पष्टीकरण 'पंचांग' में-(क) पटल (ख) पूजा-पद्धति (ग) कवच (घ)सहस्रनाम और (ङ) स्तोत्र'-इन पांच अंगों का संकलन रहता है। प्राचीन ग्रन्थों में इन पांच विषयों को देवता के शरीर का ही प्रमुख अंग माना गया है।[२] यथा-

पटलं देवता-गात्रं पद्धतिर्देवताशिरः।
कवचं देवता-नेत्रे सहस्रारं मुखं स्मृतम्।।
स्तोत्र देवीरसा प्रोक्ता पंचांगमिदमीरितम्।[३]

अर्थात् पटल देवता का शरीर है, पद्धति सिर है, कवच दोनों नेत्र हैं, मुख सहस्रार (सहस्रनाम) और स्तोत्र देवता की रसना-जिह्वा है।

उपरोक्त दृष्टिकोण से रुद्रयामल में यामलीय उपासना के सभी लक्षण घटित होते हैं। नित्यकृत्य के अन्तर्गत विभिन्न साधनाओं में विभिन्न नियम हैं। इसी तरह पंचांग अर्थात् पटल, पूजा-पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र का पर्याप्त वर्णन प्रकृत ग्रन्थ में है। क्रमशः द्रष्टव्य है-

(क) पटल

'पट्'+कलच् =पटल। पटल शब्द की व्युत्पत्ति है-'पाटयति दीव्यते यः सः पटलः। इसकी परिभाषा से ज्ञात होता है कि 'पटल' में पूजा-विधि, मन्त्र और बीजाक्षर के समस्त समूहों का रहस्य ग्रथित रहता है। उसके अध्ययन से सभी गूढ़ रहस्य स्वयं प्रकाशित होकर साधक के समक्ष आ जाते हैं। उपासना से सम्बद्ध विधि-विधानों को समझने के लिए पटल का ज्ञान अत्यावश्यक है, इसीलिए इसे देवता के शरीर की संज्ञा दी गई है। जैसे किसी वस्तु को पहचानने के लिए सर्वप्रथम उसका आकार-प्रकार, आकृति आदि को पहचानना आवश्यक होता है, उसी प्रकार पटल से साधना के शरीर का ज्ञान आवश्यक है।[४]

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५२
२. वही, पृ०-५२.
३. वही, पृ०-५२ पर उद्धृत।
४. वही, पृ०-५२-५३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रयामल में पटल के अन्तर्गत वर्णध्यान, पूजाविधि, मन्त्र आदि का पर्याप्त वर्णन किया गया है। यथा–

(१) **वर्णध्यान**–वर्णध्यान के ज्ञान से अकस्मात् सिद्धि मिलती है।[1] चक्रभेदन में वर्ण और देवता के ध्यान का विशेष महत्त्व है। रुद्रयामल में विशुद्ध-चक्र के १६ दलों में अवस्थित १६ स्वर वर्णों–अं से अः तक का स्वरूप एवं ध्यान-विधि बतलायी गई है। इसी तरह अनाहत-चक्र के वर्णन-क्रम में कं से लेकर ठं तक के वर्णों का स्वरूप एवं ध्यानविधि निर्देशित किया गया है।

(२) **मन्त्र**–देवता के अमित तेज के तत्त्वरूप का मनन होने से और सभी प्रकार के भयों से त्राण (रक्षा) होने से 'मन्त्र' कहलाता है–

मननात्तत्त्वरूपस्य देवस्यामिततेजसः।
त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः।।[2]

मानसिक प्रक्रिया के द्वारा ग्रहण किये जाने के कारण 'मन्त्र' की संज्ञा व्यवहत होती है। 'मन्त्र' पद 'मनन' के प्रथम अंश से तथा 'त्र' त्राण या बंधन से मुक्ति के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। 'मन' और 'त्र' का समन्वित रूप ही 'मन्त्र' है, जो चतुर्वर्ग का आमन्त्रण करता है।[3]

तंत्र में योगविधि के रूप में अष्टाङ्ग योग के अतिरिक्त मन्त्रयोग पर भी बल दिया गया है। मंत्रयोग के अभ्यास द्वारा मन की सीमा का विस्तार कर मनः शक्ति को स्वतन्त्र किया जाता है। मनःशक्ति की स्वतन्त्रता में चेतना में भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञान समान रूप से प्रज्वलित हो उठते हैं।[4] मन्त्रयोग का सिद्धान्त यह है कि परमात्मा से भाव, भाव से नामरूप और उसका विकार एवं विलासमय यह संसार पैदा हुआ है। इसलिए जिस क्रम से इसकी सृष्टि हुई है, उसके विपरीत क्रम से ही इसका लय होगा, यह निश्चित है। अर्थात् परमात्मा से भाव और भाव से नामकरण द्वारा जब सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव संसार-बन्धन में आ गए हैं, तो इससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी नामरूप का आश्रय लेकर नामरूप से भाव में तथा भाव से भावग्राही परमात्मा में चित्तवृत्ति को मिलाने (विलीन करके) पर ही मुक्ति होगी। इसलिए हमारे. मनीषियों ने नाम एवं रूप का अवलम्बन लेकर ही साधना-विधि बतलायी है, इसी साधना-विधि को मन्त्रयोग कहते हैं।[5]

मन्त्र के सम्बन्ध में आगे चर्चा करने से पहले दो पहलुओं पर प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा–(अ) मन्त्र दीक्षा क्या है? (आ) मन्त्र को गोपनीय रखने का क्या रहस्य है?

मन्त्र-दीक्षा–मन्त्र-दीक्षा का अर्थ है कि जब शिष्य समर्पण करता है तो गुरू उसमें

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ७१/४
२. कुलार्णव तंत्र, १७/५४
३. द गार्लेण्ड ऑफ लेटर्स, पृ०-२७६
४. तंत्र दर्शन, पृ०-१७२
५. मन्त्र महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-१७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रवेश करता है; वह उसके मन-आत्मा में प्रविष्ट होता है। गुरू शिष्य के अन्तस् में जाकर उसके अनुकूल ध्वनि की खोज करेगा। वह उसका मन्त्र होगा। जब वह उसका उच्चारण करेगा तो वह भिन्न आयाम में भिन्न व्यक्ति हो जाएगा। जब तक समर्पण नहीं होता, मन्त्र नहीं दिया जा सकता है। मन्त्र देने का अर्थ है कि गुरू ने शिष्य में प्रवेश किया है, गुरू ने उसकी गहरी लयबद्धता को, उसके प्राणों के संगीत को अनुभव किया है। तभी वह शिष्य को उसका प्रतीक-मन्त्र देता है, जो उसके अन्तस् के संगीत से मेल खाता हो। और जब शिष्य उस मन्त्र का उच्चारण करता है, तो वह अपने आंतरिक संगीत के जगत् में प्रवेश करता है, तब आन्तरिक लयबद्धता उपलब्ध होती है।[१]

मन्त्र गोपीनय क्यों?—मन्त्र महज चाबी है, और चाबी तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक ताले को न जान लिया जाए। चाबी तभी सार्थक है, जब वह ताले को खोले। किसी भी चाबी से काम नहीं चलेगा। प्रत्येक आदमी विशेष ढंग का ताला है, उसके लिए विशेष ढ़ंग की चाबी जरूरी है। यही कारण है कि मन्त्रों को गुप्त रखा जाता है। गुरू ही चाबी का निर्माण करता है। कभी-कभी गलत चाबी के प्रयोग करने से ताला नष्ट हो जाता है, बिगड़ सकता है। ताला इतना बिगड़ सकता है कि फिर वह सही चाबी के मिलने पर भी न खुले। यही कारण है कि मन्त्रो को बिल्कुल गुह्य रखा जाता है, उन्हें दूसरों को नहीं बताया जाता है।[२]

एक ही शब्द भिन्न-भिन्न ढंग से प्रयुक्त हो सकता है। यथा ओम् है। उसमें तीन ध्वनियाँ हैं- अ, उ, और म्। अगर 'उ' पर, बीच की ध्वनि पर बल दिया जाए, तो उससे एक अलग चाबी बनेगी। अगर 'अ' पर बल दिया जाए तो दूसरी चाबी बनेगी। अगर 'म्' पर बल पड़े तो और ही चाबी बन जाएगी। और वे तीनों अलग-अलग ताले खोलने में समर्थ होंगी। यही कारण है कि मन्त्र के सही-सही उपयोग पर इतना जोर दिया जाता है; गुरू से जिस रूप में मन्त्र मिले, उसे ठीक उसी रूप में प्रयोग करना चाहिए।[३] मन्त्र का उच्चारण वर्ण और स्वर के अनुसार ठीक-ठीक करना चाहिए। मन्त्रों के अनुवाद का उच्चारण करने पर विशिष्ट ध्वनियों के अभाव में देवता का प्रकाशन नहीं हो सकता। चेतना का एक विशेष ध्वनि-शरीर ही मन्त्र है। मन्त्र केवल वर्णों के समूह ही नहीं हैं। मन्त्रों का कुछ न कुछ अर्थ भी होता है और बीजमन्त्र जिसमें अर्थ नहीं होते, साधक के लिए दीप्तिमान्-तेज या शक्ति के पुञ्ज हैं। मन्त्र स्वयं देवी या देवता के स्वरूप हैं। मन्त्र अतिमानवीय शक्ति का जागरण करते हैं। केवल वर्ण-उच्चारण जननमरणशील जीवसदृश है, जबकि मन्त्र ध्वनि-शरीर में शाश्वत तथा नित्य ब्रह्म है।[४]

इसलिए गुरू कान में मन्त्र देता; वह उसका सही उच्चार बताने के लिए मन्त्र को कान में उच्चारित करता है और शिष्य को उसके ठीक-ठीक उच्चार एवं उपयोग को स्मरण रखना होता है। यही कारण है कि लोगों को अपने-अपने मन्त्र गुप्त रखना चाहिए। उसे बाँटते नहीं

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पॉ०बु०सं०) पृ०-१२६
२. वही, पृ०-१२६-२७
३. वही, पृ०-१२७
४. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-२७८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फिरना चाहिए। यह दूसरों के लिए हानिकर हो सकता है। यह शिष्य के लिए भी हानिकर हो सकता है। इसके कई कारण हैं। पहली बात कि, इससे शिष्य वचन तोड़ रहा होता है। जैसे ही वचन टूटता है कि गुरू के साथ उसका सम्पर्क टूट जाता है। वचन पालन करने से ही सतत् सम्पर्क कायम रहता है। दूसरी बात कि दूसरे को बताने में, दूसरे के साथ उसके सम्बन्ध में बातचीत करने से, मन्त्र मन की सतह पर चला आता है और उसकी गहरी जड़ें टूट जाती हैं। तब मन्त्र गपशप का हिस्सा बन जाता है। और तीसरा कारण है कि गुप्त रखने से मन्त्र गहराता है।[१]

मन्त्र-साधन—मन्त्र एवं तंत्रशास्त्र के ग्रन्थों में मन्त्र को साधन या अभीष्ट फलदायक बनाने के लिए सिद्धादि-शोधन, मन्त्र-चैतन्य, मन्त्रों की कुल्लुका, मन्त्र के दोष तथा दोष-निवृत्ति के उपाय आदि बातों पर ध्यान दिया जाता है। इन बातों की विधिवत जानकारी एवं उनका सम्यक् उपयोग करने से मन्त्र साधन बनकर अभीष्ट सिद्धि देता है, अन्यथा मन्त्र साधक का सबसे बड़ा शत्रु हो जाता है और वह साधक का नाश भी कर देता है।[२] अतः उनका सबको संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

(i) सिद्धादि-शोधन—मन्त्र-शोधन में कुलाकुलविचार, सिद्ध, साध्य सुसिद्ध एवं शुत्र-विचार तथा ऋणी-धनी विचार किया जाता है। कुलाकुलचक्र,[३] अकडमचक्र[४], अकथहचक्र[५], राशिचक्र[६], नक्षत्रचक्र[७], एवं ऋणिधनि-चक्रों[८] के आधार पर साधक के लिए सिद्धिदायक मन्त्र का चुनाव किया जाता है। इस प्रक्रिया को सिद्धादि-शोधन कहते हैं।

(ii) मंत्र-चैतन्य—साधारणतः शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो किसी अर्थ के अवगत हो जाने पर मनःप्रेरित वायु के आघात से कण्ठ, तालु आदि विशेष स्थानों से उच्चारित होने वाला शब्द तथा दूसरा अन्तः करण में अर्थ को उद्भासित करने वाला चैतन्य शब्द, जिसे व्याकरण 'स्फोट' या 'शब्द-ब्रह्म' कहते हैं। 'स्फोट' का अर्थ है—जिससे अर्थ स्फुटित हो। अर्थ का स्फुरण स्पन्दन या कम्पन से होता है तथा कम्पन नाद सहकारी है। अतः कम्पन या स्पन्दन शब्द रूप ही हैं। चैतन्य-स्पन्दन जिससे समस्त सूक्ष्म अर्थ, शब्द तन्मात्रा, आकाश, स्थूल शब्द तथा स्थूल सृष्टि की अभिव्यक्ति हुई, शब्द-ब्रह्म अथवा सगुण ब्रह्म ही है। मन्त्र का भी यही मूलस्वरूप है और इसके इसी अर्थ में मन्त्र, देवता एवं गुरू का ऐक्य होता है,

---

१. तंत्र-सूत्र, भाग-४ (पॉ०बु०सं०) पृ०-१२७-२८
२. साधकं नाशयेन्मन्त्रः नास्ति मन्त्रसमो रिपुः-योगिनीहृदय तंत्र
(मन्त्र-महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-३१ पर उद्धृत)
३. रुद्रयमाल उ०त०, ३/३२-३६
४. वही, ३/१७-२३.
५. वही, ५/२-२९
६. वही, ३/६०-६७
७. वही, ३/३८-५५
८. वही, ४/८२-९१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसे जप में आवश्यक माना गया है। इसलिए यह आवश्यक है कि साधक के चित्त में अपने मन्त्र के प्रति साधारण शब्द-भाव न रहे, अपितु उसमें ब्रह्मभाव जाग्रत हो जाय। इस भाव के आते ही मन्त्र चैतन्य रूप में स्फुरित होने लगता है और इस स्थिति में साधक का मन उसमें तल्लीन एवं तन्मय हो जाता है।[१]

प्रकृत शोधग्रन्थ के ५३ वें पटल में मणिपुर मन्त्र-चैतनय की चर्चा की गई है। कहा गया है कि "सर्वत्र समभाव से उत्तम मूर्त्ति का संस्मरण करना चाहिए। शरीर अपरिच्छिन्न चराचर ब्रह्मण्ड है। मूलाधार से मणिपुर तक त्रिगुणात्मक है। वर्णमाला के अनुसार उसका बार-बार जप करना चाहिए। पूर्णतेजोमयी कोटिकामाग्निरूपिणी का ध्यान करना चाहिए। स्वदेवता एवं उसकी अपरिच्छिन्न मूर्ति का सदा मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक ध्यान करना चाहिए।[२] मूलाधार में सुधा-सागर-वासिनी कोटिकालानलोज्ज्वला का सदा ध्यान करना चाहिए। हव्याग्नि के सदृश उज्जवल उद्ध्र्वशिख-प्रभाकर का जलते हुए ध्यान करना चाहिए। ललाट में कान्त पूर्णेन्दुकोटिसङ्ग का मनन करना चाहिए। वहाँ से रसपुञ्ज का स्राव होता है, जिससे अग्नि और प्रज्ज्वलित हो उठती है। स्थिरवायु, स्थिराकार मन्त्रार्थ की वहीं पर भावना करनी चाहिए अथवा शुद्धसङ्काश, पूर्णब्रह्म शुभ की भावना करनी चाहिए। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक तथा पुनः मूलाधार तक सूक्ष्मरूप महागुर्वी स्वदेवता का बार-बार ध्यान करना चाहिए। यही मन्त्रार्थ है, इसी से ज्ञान की प्राप्ति होती है और इस ज्ञान से मोक्ष होती है।"[३]

(iii) मन्त्रों की कुल्लुका—रुद्रयामल में कहा गया है कि जो व्यक्ति कुल्लुका को जाने बिना जप करता है, उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल नष्ट हो जाता है।[४] अतः मन्त्र का जप करने से पहले उसकी कुल्लुका का ज्ञान कर लेना चाहिए। जिस देवता के मन्त्र का जप करना हो उसकी कुल्लुका का सिर पर न्यास कर लेना चाहिए। ऐसा करने से जप निर्विध्न पूरा होता है तथा साधक को सिद्धि मिलती है। जैसे काली के मन्त्र की कुल्लुका है–'ॐ क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्'। इसी तरह अन्य देवताओं के मन्त्रों की कुल्लुका भिन्न-भिन्न है।

(iv) मन्त्र के दोष—वैसे तो शारदापटल[५] में रूद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख आदि ५० दोष तथा कुलार्णव[६] में रुद्र, कूटाक्षर, मुग्ध आदि ६० दोष मन्त्रों के कहे गए हैं, किन्तु मुख्य दोष ८ माने गये हैं। अतः मन्त्रों के इन आठ दोषों का निराकरण तो साधक को कर ही लेना चाहिए।[७] ये दोष हैं—अभक्ति, अक्षरभ्रान्ति, लुप्त, छिन्न, ह्रस्व, दीर्घ, कथन और स्वप्नकथन।

मन्त्र को अक्षर वर्णों की समष्टि मात्र समझना या दूसरे मन्त्र को अपने मन्त्र को श्रेष्ठ

---

१. मन्त्र-महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-३४
२. रुद्रयामल उ०त०, ५३/६-९
३. वही, ५३/१०-१४
४. मन्त्र-महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-३५ पर सन्दर्भित
५. वही, पृ०-३७ पर सन्दर्भित
६. कुलार्णव तंत्र, १५/६५-७०
७. मन्त्र रहस्य, पृ०-१९३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समझना अभक्ति नामक दोष कहलाता है। साधक की मन्त्र में भक्ति न होने पर उसे सिद्धि नहीं मिलती। गुरू या शिष्य के प्रमादवश मन्त्र के अक्षरों में उलट-फेर हो जाना अक्षर-भ्रांति दोष कहा जाता है। मन्त्र में किसी वर्ण की न्यूनता को लुप्त दोष कहते हैं। मन्त्र के संयुक्त वर्णों में से किसी अंश का छूट जाना 'छिन्न' दोष कहलाता है। दीर्घवर्ण के स्थान पर ह्रस्व का उच्चारण 'ह्रस्व' दोष तथा ह्रस्व वर्ण के स्थान पर दीर्घ वर्ण का उच्चारण 'दीर्घ' दोष कहलाता है। जाग्रत अवस्था में अपना मन्त्र किसी को बतला देना 'कथन' नामक दोष कहा जाता है, तथा स्वप्न में अपना मन्त्र किसी को बतला देना 'स्वप्न-कथन' नाम का दोष कहलाता है।[१]

इन दोषों को न जानते हुए या दोषों को जानकर उनकी निवृत्ति न करते हुए जो व्यक्ति मन्त्र-साधना करता है, उसे कभी भी सिद्धि नहीं मिलती है। रुद्रयामल में कहा गया है कि योग तत्त्व के द्वारा छिन्नादि समस्त मन्त्रदोष समाप्त हो जाते हैं। भुवनेशी देवी का बीज-मन्त्र इन्द्र के शॉप से दुष्ट है, उसे "ॐ ऐं ॐ" (ऐं को ॐ से सम्पुटित करके) मन्त्र से मार्जित किया जाता है।[२]

(v) मन्त्रोद्धार–अधिकतर मन्त्र अभिशप्त हैं। बिना उनका उद्धार किये हुये जप सफल नहीं हो सकता। मन्त्रोद्धार करते समय मूलमन्त्र को कुछ बीजमन्त्रों से सम्पुटित करके मन्त्र का उच्चारण किया जाना चाहिए। रुद्रयामल में रुद्राणी-मन्त्रोद्धार[३], काकिनी-मंत्रोद्धार[४], शाकिनी-मन्त्रोद्धार[५], हाकिनी-मन्त्रोद्धार[६] आदि के मन्त्रों का निर्देश किया गया है। यथा-रुद्राणी का मन्त्र है–

'ॐ नमः ते रुद्ररूपिणे'।

रुद्राणी मन्त्र का उद्धार करने के लिए डं से फं पर्यन्त सभी वर्णों से रुद्राणी मन्त्र को पुटित करना चाहिए–

'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ॐ नमः ते रुद्ररूपिणे डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं स्वाहा'

(अनुलोम स्थिति)

'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ॐ नमः ते रुद्ररूपिणे फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं स्वाहा'

(विलोम स्थिति)

(vi) विभिन्न मन्त्र–रुद्रयामल में साधना की विभिन्न अवस्थाओं में अनेक मन्त्रो का निर्देश किया गया है। यथा–

---

१. मन्त्र-महोदधि, प्रस्तावना, पृ०-३७
२. रुद्रयामल उ०त०, २८/१५-१७
३. वही, ४८/६-१०
४. वही, ५९/१८-२३
५. वही, ६१/७-९
६. वही, ८३ वॉ पटल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अ) आसव-शुद्धि हेतु मन्त्र

"ॐ ॐ श्रीं श्रीं अमृतामुखी मरणं हारय हारय योगसिद्धिं देहि देहि स्वाहा।"[१]

"क्लीं क्लीं क्लीं क्रीं क्रीं क्रीं सर्वयोगं साधय अमृतत्त्वं मयि समर्पय समर्पय शं विराट-पीठ-वासिनी(स्वाहा)।"[२]

शोधित द्रव्यों के भक्षणार्थ मन्त्र–"ॐ ॐ ॐ कपिले! ज्ञानसाधिनि! समयोगं साधय साधय। शाखा-प्रशाखा-सम्पूर्णे! महौषधिनिवासिनि! मामेकममरं कुरू कुरू स्वाहा।[३] मयि समर्पय समर्पय स्वाहा।"[४]

निर्गुण्डि-शोधन-मन्त्र[५]–"ॐ निर्गुण्डि महामाये! मसासत्त्वनिवासिनि! आयुरारोग्यजननि! ब्रह्मशब्दनिवासिनि! मदीयं सकलं कार्यं गुह्यं कुरू कुरू नं नं धौं धौं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं वज्रकायं देहि देहि वह्नि-सुन्दरि! (स्वाहा)।"

तुलसी-शोधन-मन्त्र[६]–"ॐ वैष्णवि! देवि! सत्त्वज्ञाननिवासिनि! क्लीं क्लीं क्लीं मां रक्ष रक्ष स्वाहा।"

विजया-शोधन-मन्त्र[७]–"ॐ क्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं विजये! ज्ञानसुन्दरि! भोगयोगमोक्षप्रदे! कायशोधनि! पावनि! मम कायशोधनि! पावनि! मम कायसिद्धिं देहि देहि स्वाहा।" एवं

"ॐ अमृतेऽमृत भवे! अमृतवर्षिणि! अमृतं आकर्षय आकर्षय
सिद्धिं देहि अनलप्रिये (स्वाहा)।"

(आ) अमरापञ्चक साधन के मन्त्र

नेतीयोग को सम्पन्न करने का मन्त्र[८]–"ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं योगिन्यै नमः।"

नेउलीयोग को सम्पन्न करने का मन्त्र[९]–" सं सं सं क्रीं क्रीं क्रीं देवि ॐ ॐ गात्र स्थायै नमः स्वाहा।"

धौतियोग को सम्पन्न करने का मन्त्र[१०]– "ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं महाधौतिनिवासिनि! मे नाड़ी मलं क्षालय क्षालय।"

क्षालन में प्रयुक्त होने वाला मन्त्र[११]–"ॐ ॐ २ ह्रीं ह्रीं ठं ठं ठं क्लीं क्लीं क्लीं मं मं मं श्रीं क्लीं श्रीं शीतले मलं क्षालय क्षालय स्वाहा।"

(इ) न्यास में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र

ऋषिन्यास में मन्त्र के द्वारा शिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा सर्वाङ्ग का स्पर्श किए जाने का विधान है[१२]–

१. रुद्रयामल उ०त०, ५२/१३२-३५
२. वही, ५२/१३७-३८
३. वही, ५५/८-९
४. वही, ५१/४१-४२
५. वही, ५५/२६-२९
६. वही, ५५/३२-३३
७. वही, ५१/४९-५३
८. वही, ५४/२९-३४
९. वही, ५४/४५-४६
१०. वही, ५४/३५-३७
११. वही, ५४/५३-५४
१२. वही, ४८/१०९-११२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इह रुद्र-शक्तिः महाविष्णुऋषये नमः–हाथ से सिर का स्पर्श।

हङ्क्तिछन्दसे नमः–मुख का स्पर्श।

महारुद्राणी लाकिनीमहाविद्या त्रिशक्ति देवतायै नमः–हृदय।

ॐ निजबीजाय ते नमः–गुह्य स्थान।

सकलायैव वज्राय कीलकाय नमः–सर्वाङ्ग।

इसी तरह विवेच्य ग्रन्थ में पञ्चमूर्तिन्यास[१], कलान्यास[२], पञ्चमन्त्रन्यास[३], पीठन्यास[४], कराङ्गन्यास[५] आदि में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का विवरण दिया गया है। षट्चक्रों के भेदन से सम्बन्धित मन्त्र इसी अध्याय में यथास्थान वर्णित किए गए हैं।

(vii) मन्त्रसिद्धि का फल–मन्त्रसिद्धि से साधक निरोग, वैराग्यहृदयवाला, त्याग-सुस्मृति-शम-दया से युक्त तथा माया से रहित हो जाता है। वह ऐश्वर्य, कवितारस, धनजन, लक्ष्मी, जापन, उल्लास, सुतधन, सम्मान, सन्मार्ग, कान्ता-समूह के आमोद, सङ्केतमन्त्रप्रियत्व, हरिहरब्रह्मैक भाव, लोक-गुरूत्व तथा शिवानन्दैकमुद्रा से युक्त हो जाता है।[६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पटल' के दृष्टिकोण से रुद्रायामल में बीजाक्षर, मन्त्र आदि का पर्याप्त वर्णन किया गया है।

(ख) पद्धति या पूजा-पद्धति

पूजा की परिभाषा कुलार्णव तंत्र में इस प्रकार दिया गया है–

पूर्वजन्मानुशमनादपमृत्युनिवारणात् ।
सम्पूर्णफलदानाच्च पूजेति कथिता प्रिये!।।[७]

अर्थात् "पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों का शमन, अपमृत्यु का निवारण तथा सपूंर्ण फल देने से इसका नाम 'पूजा' है।" पूजा की एक विशिष्ट पद्धति निर्धारित है, जिसमें मन्दिर-प्रवेश, द्वार- पूजन, आसन-स्थान पूजा, आसन-स्थापनादि से आरम्भ कर उद्घासन तक की क्रियाओं का समावेश होता है।.....पूजा-पद्धति से मानसिक व्यापार (क्रिया-कलाप) में एकाग्रता और तन्मयता आ जाती है। साथ ही एक पवित्र व्यवस्था-भाव का उदय होता है, जिससे निर्मल बने हुए मन में देवतानुशासन के साथ आत्मानुशासन की भावना का विकास होता है। इस आत्मानुशासन की प्रतिष्ठा से जीवनचर्या में एक अलौकिक सफलता की कुंजी साधक को प्राप्त होती है। अप मृत्यु-निवारण और ऐहिक, आमुष्मिक पापक्षय तो देवता की कृपा से स्वयंसिद्ध है।[८]

---

१. वही, ४८/१३६-३८
२. वही, ४८/१४९-५७
३. वही, ४८/१७७-९९, २०५-२०७, २११-१७
४. वही, ४८/२३९-५५
५. वही, ४८/२६०-६२
६. वही, २८/४-९
७. कुलार्णव तंत्र, १७वाँ उल्लास
८. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुद्रयामल में अनेक शक्तियों का विभिन्न प्रयोजन के निमित्त पूजन-स्तवन किया गया है।

(१) शक्त्युपासना

शक्त्युपासना का क्रम आदिम जातियों के द्वारा प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है।[१] महेश्वर केवल पराशक्ति द्वारा ही प्रकाशित होते हैं। शक्ति बिना 'शिव' 'शव' मात्र ही रह जाते हैं। पराशक्ति ही महेश्वर की दिव्य ज्योति है। समाधिनिष्ठ मर्हषि भी इस शक्ति के प्रकाश के बिना न महेश्वर-शिव को देख सकते हैं और न पा सकते हैं।[२] शक्ति मानव के दैनन्दिन व्यावहारिक जीवन में आपदाओं का निवारण कर ज्ञान, बल, क्रियाशक्ति आदि प्रदान कर उसकी धर्म-अर्थ-काममूलक इच्छाओं को पूर्ण करती है तथा अन्त में अलौकिक परमानन्द का अधिकारी बनाकर उसे मोक्ष प्राप्त कराती है।[३]

यद्यपि देवी ने स्वयं कहा है कि-"मैं सदा एक हूँ, मेरी एकता में कोई भेद नहीं है,मुझमें और देवरूप में भी कोई अन्तर नहीं समझना चाहिए। जो वह है वही मैं हूँ, जो मैं हूँ वही वह है। 'वह-यह ऐसा जो भेद दिखाई देता है, वह बुद्धि के विभ्रम से उत्पन्न है"-

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्।।[४]

तथापि भगवती शक्ति एक होकर भी लोक-कल्याण के लिए अनेक रूपों को धारण करती है। 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' में भी कहा गया है कि यही आद्या शक्ति 'त्रिशक्ति' के रूप में प्रकट होती है-

अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णं बह्वीः प्रजाः सृजमानाः सरूपाः।[५]

विवेच्य ग्रन्थ में अनेक शक्तियों की उपासना का विधान किया गया है। यथा-डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, भेदिनी, छेदिनी, रुद्राणी, कंदवासिनी, भैरवी, कुमारी आदि। प्रमुख शक्तियों का विवरण एवं पूजापद्धति इस प्रकार है-

षट्चक्रों की अधिष्ठातृ देवियाँ-मूलाधार से आज्ञा-चक्र की अधिष्ठातृ देवियाँ क्रमशः डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा हाकिनी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन देवियों के साथ चक्रों के अधिष्ठातृ देव भी हैं, जिन्हें क्रमश ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कृष्ण, सदाशिव और परनाथ की संज्ञायें प्राप्त हैं।

(१) डाकिनी-कन्दस्थान में अवस्थित चतुर्दलीय मूलाधार-चक्र में चक्राधिष्ठात्री देवी डाकिनी अरूणिम कमल पर विराजमान हैं। वह रकताङ्गच्छविमोहिनी, तीन नेत्रों वाली,

---

१. शक्ति कल्ट इन एनसीएन्ट इण्डिया, पृ०-३७
२. रुद्रयामल, तंत्र, पृ०-१६४
३. वही, पृ०-१६४-६५
४. देवी भागवत, ३/६/२ (रुद्रयामल तंत्र पृ०-१६५ पर उद्धृत)
५. श्वेताश्वेतर उपनिषद्, ४/५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गतिमोहिनी, श्रुति भुजा तथा कुलपथज्ञानाकुलज्ञानिनी है।[१] षट्चक्र-विवरण में उसे रक्तवर्णा और रक्ताक्षी (लाल नेत्र) कहा गया है।[२] किन्तु प्रकृत ग्रन्थ में उसे शुक्लवर्णा, अतिसुन्दर आदि कहा गया है।[३] मूलाधार-चक्र की साधना में डाकिनी की उपासना की जाती है। साधक की मूलाधार-पद्म में डाकिनी का ब्रह्मा के साथ बार-बार ध्यान करना चाहिए।[४] इस हेतु उसे दो मन्त्रों का जाप करना चाहिए-

ब्रह्म-मन्त्र[५]-"ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म सर्वसिद्धिपालिका मां सत्त्वगुणे रक्ष रक्ष ह्रीं स्वाहा।"

डाकिनी-मन्त्र[६]-"ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ डाकिनि! महाडाकिनि! ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं मम योगसिद्धिं साधय साधय"।

मन्त्र का जाप करके साधक को पुरश्चरण की सिद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए एवं मूलपद्म में चित्त का लय करना चाहिए। तदनन्तर मानस जाप एवं स्तोत्र[७] का पाठ करना चाहिए। इस प्रकार साधक चक्रभेदन में समर्थ होता है। डाकिनी का ध्यान करने के बाद स्तोत्र का पाठ करने से सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है।[८]

(२) राकिणी-लिङ्गमूल में अवस्थित षटदलीय स्वाधिष्ठान-चक्र के जलमंडल के अन्तर्गत 'वं' बीज के अनुसार में अधिष्ठित विष्णु के पार्श्व में रक्तकमल पर राकिणी देवी विराजित हैं। वे नीलवर्णा हैं तथा नाना प्रकार के आयुधों से उद्यत भुजाओं से सुशोभित अंगवाली हैं। दिव्य वस्त्रों तथा आभूषणों से भूषित तथा अमृतपान करने से प्रसन्न चित्तवाली हैं।[९]

कुण्डली रूपिणी देवी राकिणी की पूजा मानस द्रव्य या बाह्य द्रव्य के द्वारा अनन्तहृष्ट चित्त से सावधानी पूर्वक करनी चाहिए। भक्तिपूर्वक मन ही मन इसके मूल मन्त्र के जाप के बाद होम करना चाहिए।....मांस, मुद्रा, मत्स्य, सारद्रव्य, सपिष्टक, धृतादि के द्वारा साधक को नित्य तर्पण करना चाहिए।[१०]

राकिणी का मन्त्र[११]-"ओं महाकालकृष्णेन्द्र नीलमणि निभ राकिणीवल्लभ

---

१. रुद्रयामल उ०त, ३०/२७.
२. षट्चक्र-विवरण, पृ०-१३ पर उद्धृतं
३. रुद्रयामल उ०त, ३१/५.
४. वही, ३०/४.
५. वही, ३०/१६-१७.
६. वही, ३०/२०-२१
७. वही, ३०/२७-३६.
८. वही, ३१/५-७
९. षट्चक्रनिरूपणम, श्लोक-१७, सर जॉन उड्रफ संस्करण, दि सर्पेन्ट पॉवर, १९५३.
१० रुद्रयामल उ० त०, ४२/१-८.
११. वही, पृ०-२८९-९०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुण्डलीमहावीर राकिणीकैवल्यमोक्षदात्रैय नमः। क्रां क्रौं क्रं क्रं क्लीं श्रीं रां रीं रूं रें रैं रों रौं रं रः स्वाहा। परमवैष्णवी महाभैरवी महाविष्णुः कुलदेवता परजननिष्फल पुरूषोत्तम वासुदेव हृषीकेश केशवनारायण दामोदर पञ्चचूड चतुर्भुज शङ्खचक्रगदाधर राकिणी सूक्ष्मा कुलकुण्डली राधिका बाह्यदेवता श्री श्री विद्याचैतन्यानन्दमयी विश्वव्यापिका जगन्मोहिनी मूलात् प्रभृति षडाधार भेदिनी बन्धनाकारप्रकाशिनी मनोभवा मां मां मांस रूधिरादिशरीरपरिवारादिकं पालय गोपय स्थापय स्थापय शत्रून् घातय ओं हौं हौं स्थौं स्थौं हं सकल ह्रां सकल ह्रीं श्रीं जुहोमि नमो नमः स्वाहा।"

इस मन्त्र का पाठ करके तर्पण करना चाहिए। तर्पण के बाद अभिषेक सर्वदा करना चाहिए। अभिषेक में मन्त्र के बाद 'अभिषिञ्चामि नमः स्वाहा' कहना चाहिए। तदनन्तर भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अष्टोत्तर सहस्त्रनाम[१] का स्तवन करना चाहिए।[२]

(३) लाकिनी–नाभिपद्म या मणिपुर-चक्र की कर्णिका में 'रं' बीज मन्त्र के अनुस्वार (०)के पार्श्व अरूण-पद्म पर देवी लाकिनी विराजमान रहती है। ये श्यामवर्णा, सर्वशुभकर्मा, पीताम्बरा, अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत, उन्मत्तचित्तवाली, सृष्टि का संहार करने वाली हैं। ऐसी शक्ति का मणिपुर-पद्म में ध्यान करने से साधक में पालन और संहार की क्षमता उत्पनन होती है तथा मुख से सदा ज्ञान की धारा प्रवाहित होने लगती है।[३]

नित्यसिद्धि एवं काम्यसिद्धि के लिए मणिपुर स्थित परा देवी लाकिनी की प्राणबुद्धि से पूजा करनी चाहिए।[४] देवी लाकिनी कामदायिनी है। वह साधक को इहलोक में चिरजीवन प्रदान करती है। इसकी साधना में योगी मणिपुर में स्थैर्य प्राप्त करता है। कुलमार्ग में लयस्थान विश्वेश्वरी पद ही है। लय-योग से साधक मणिपुर में देवता का साक्षात् दर्शन करता है। देवी की पूजा के बाद स्तोत्र[५] का पाठ करने वाला शीघ्र ही कुलमार्ग की कृपा का भाजन बनता है और योगी-पद को प्राप्त कता है।[६] षट्चक्रभेदनार्थ तथा सर्वसिद्धि के लिए लाकिनी देवी के स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।[७]

(४) काकिनी–द्वादशवर्णवाले अनाहत-चक्र की पद्म-कर्णिका के अन्दर अरूणिम कमल पर तीन नेत्रों वाली काकिनी देवी सुशोभित हैं। उनकी चार भुजाओं में से दो में पाश और कपाल है तथा दो भुजाएँ वर और अभय मुद्रावाली हैं। वे नव तडित् वर्ण (स्वर्ण) वाली तथा पीताम्बरा हैं। वे ही प्रकार के अलङ्करण से सुशोभित हैं और कंकाल की माला धारण करती हैं। वह आर्द्रआनन्दित हृदय वाली हैं।[८]

---

१. रुद्रयामल उ० त०, ४२/१६-१२४.
२. वही, ४२/९-११.
३. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक सं०-२२, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणासी; १९५४
४. रुद्रयामल उ०त०,४५/१८,
५. वही, ५०/३-२७.
६. वही, ५०/३०-३२.
७. वही, ५०/१-२
८. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-२५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काकिनी-पूजन का मंत्र है-'वर्णेश्वर-प्रियानन्दां काकिनीं पूजाम्यहम्।'[१]

काकिनी देवी अनन्तसुख-साध्या, मनोजवा, नानारूपा, श्वासोच्छ्वासप्रकाशिनी,..... तथा ईश्वर की परम कला है।[२] हृत्पद्म के भेदन की साधना में चक्रस्थ वर्णों के (कं....ठं) ध्यान के बाद काकिनी देवी की पूजा करनी चाहिए। काकिनी का ध्यान है-

शशधरशतकोटिश्रीमयूखप्रभा या
सुरतरूगणशोभा निर्मला वेदहस्ता।
अरूण-किरण-भाला हारमाला विलोला
हृदयकमलमध्ये श्रीश्वरीं तां भजामि।।[३]

इस प्रकार सर्वात्मरूपा काकिनी का हृत्कमल में बार-बार त्रैलोक्योद्भवपुष्पक के द्वारा पूजा करनी चाहिए। पूजा-योग के प्रभाव से निश्चय ही सिद्धि मिलती है। तदनन्तर वर्णमाला क्रमानुसार महामन्त्र का जाप करना चाहिए। तब प्राणायाम करके सभी अङ्गों के मध्य में न्यास करना चाहिए।[४] उसके बाद काकिनी-स्तोत्र[५] का पाठ करना चाहिए।

(५) शाकिनी–विशुद्ध-चक्र की देवी है शाकिनी। देवी शाकिनी सुधासिन्धु से भी शुद्ध है। वह पीतवस्त्रा है और अपने चार करकमलों में शर, चाप, पाश और अंकुश धारण करने वाली है[६]। देवी शाकिनी सुशीला, त्रिभुवनवरदा, पीतवस्त्रा, वेदाद्या, वेदमाता, सुखमयललिता, वेदहस्तोज्जवलाङ्गी तथा सर्वदा प्रसन्नचित्त एवं श्री सदानन्द से युक्त है।[७]

विशुद्ध-चक्र की साधना में सर्वप्रथम शाकिनी का ध्यान करना चाहिए, तदनन्तर सदा शिव का। किन्तु दोनों में अभेदबुद्धि ही रखनी चाहिए।[८]

विवेच्य ग्रन्थ के ६१वें, ६२वें, ६८वें एवं ६९ वें पटल में शाकिनी का ध्यान वर्णित है।[९] यथा-

वन्दे नित्यां सुशीलां त्रिभुवनवरदां शाकिनीं पीतवस्त्रां
वेदाद्यां वेदमातां सुखमयललितां वेदहस्तोज्जवलाङ्गीम्।
ध्यायेत् पीयूषधाराऽमलघटसुधया स्निधदेहां हसन्तीं
मायां शम्भोर्ललाटे विधुकरण-करां श्रीसदानन्दयुक्ताम्।।[१०]

शाकिनी का मन्त्र है[११]-" ॐ ऐं शाकिनि! त्वं मम दोषान् विनाशय स्वाहा स्वाहा। क्लीं

१. रुद्रयामल उ०त०, ५८/३८.
२. वही, ५९/१३-१५.
३. वही, ५९/२७.
४. वही, ५९/२८-३०.
५. वही, ६०/१-१६
६. षट्चक्र-निरूपण, श्लोक-३० (उड्रफ संस्करण)
७. रुद्रयामल उ० त०, ६१/३, ६८/५.
८. वही, ६१/१-२, ६८/१-४.
९. वही, ६१/३-६, ६२/३२-३४, ६८/५-८, ६९/३७-४०.
१०. वही, ६८/५.
११. वही, ६१/७-९, ६८/९-११.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिरण्याक्षि सनातनि शाकिनि महामाये ह्रीं स्वाहा"। शाकिनी की पूजा के बाद उसके वाम भाग में अवस्थित शाकम्भरी विद्या की भी पूजा करनी चाहिए।[१] तदनन्तर द्वारदेवता, सभी देवताओं एवं शक्रादियों का पूजन करके पुनः शाकम्भरी देवी के दक्षिण भाग में स्थित शाकिनी देवी का पराभक्तिपूर्वक ध्यान करके पूजन करना चाहिए।[२] ध्यान के अन्त में मानस पूजा, फिर ध्यान एवं चित्त का आवाह्न करना चाहिए। भक्तिपूर्वक पाद्यादि से नित्यपूजन एवं नाम जाप करने पर कण्ठ में (विशुद्ध-चक्र) देवी का दर्शन प्राप्त होता है। शाकिनी देवी की पूजा-प्रक्रिया विस्तार से इस शोध-ग्रन्थ में बतायी गयी है।[३]

शाकिनी-पूजा तीन प्रकार से हो सकती है-मानसिक, साक्षात् तथा वाणी के द्वारा। मानसिक पूजा का विधान योगियों के लिए, साक्षात् पूजा गृहस्थों के लिए तथा वाचामय या वाचिक पूजा तामसिक राजाओं एवं कामियों के लिए है। एक ही पूजा तीन ढंग से करने पर सिद्धि त्रिप्रकारक होती है। गृहस्थों को किसी काल में, ब्रह्मचारियों को तीनों काल में तथा योगियों को सभी काल में सिद्धि की प्राप्ति होती है, जबकि दुष्टों के द्वारा की गई पूजा विफल होती है। रजस्, सत्त्व और तमस् तीन प्रकार के भाव के कारण ही पूजा त्रिप्रकारक होती है। शक्ति भी त्रिप्रकारक है-ब्रह्माणी, वैष्णवी एवं महेश्वरी। अतः पशु, वीर एवं दिव्य रूप तीन भाव से शक्तिब्रह्मत्रय की पूजा करनी चाहिए। सभी स्थितियों में मोक्ष-प्राप्ति के लिए बलिदान देना चाहिए। क्रमशः गुणयोग के द्वारा सर्वविद्या का पूजन करने पर योगी शीघ्र ही पर-ब्रह्ममय हो जाता है।[४]

पूजन आदि करने पर एवं कण्ठपद्म में अवस्थित शाकिनी-शाकम्भरी का ध्यान करके कण्ठपद्म में भूतशुद्धि करनी चाहिए। भूतशुद्धि से कण्ठ (विशुद्ध-चक्र) स्थिर होता है।[५] भूतशुद्धि[६], प्राण-प्रतिष्ठा[७], पूजा-विधान[८] करने के बाद शाकिनी-देवी का प्रणाम-प्रदक्षिणा करना चाहिए। वन्दना-प्रदक्षिणा करने से पहले तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। वन्दना-प्रदक्षिणा इस प्रकार है-

सम्बन्धे वरदे देवि! त्रैलोक्यकुलपावनि!।
सर्वसिद्धिप्रदे देवि! शाकिनि! त्वां नमाम्यहम्।।
वेदविद्याप्रसन्ने! त्वं नानाविद्याविनोदिनि!।
भवानि! सिद्धिदे! देवि! वरदा भव सर्वदा।।[९]
सदाशिवयुते! नित्ये! सदाशिवविहारिणि!।
..
स्थित्यादिक्रमसंस्थिता भव महाकाशप्रभाचञ्चले।।[१०]

---

१. रुद्रयामल उ० त०, ६१/१०-१३, ६८/१२-१५, १८-२०. २. वही, ६८/१६-१७.
३. वही, ६१/१९-३५ ,६८/२१-३८
४. वही, ६२/२-८, ६९/२-९
५. ६२/९-३७, ६९/१०-४३.
६. वही, ६२/३८-४३, ६९/४३-४९.
७. वही, ६२/४४-४६, ६९/५०-५२.
८. वही, ६२/४७-१०८, ६९/५३-११७.
९. वही, ६२/१०९-१११, ६९/११८-१२०.
१०. वही, ६२/११३-११७, ६९/१२१-१२५.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार नमन करके भाव के द्वारा भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है एवं प्रदक्षिणारत साधक को पूजा का फल प्राप्त होता है।

(६) हाकिनी–आज्ञा-चक्र की अधिष्ठातृ देवी हाकिनी है। इसके ६ मुख हैं और प्रत्येक के तीन नेत्र हैं तथा छः भुजायें हैं और यह शक्ति शुक्ल वर्ण के कमल पर अधिष्ठित है। इसकी भुजायें वर, अभय-मुद्रा, रुद्राक्षमाला, मनुष्य-कपाल, डमरू और पुस्तक से सुशोभित हैं।[१]

हाकिनी का मन्त्र है[२]–"ॐ ब्रह्म श्मशानसहितं शम्भुं विभुं हं भं रं वं हुताशनमयं यं ईं यं ऐं क्लीं सौः श्रीं क्लीं हाकिनि देवी स्वाहा"।

एवं–"हं रं स्त्रीं ह्रौं श्रीं ह्रीं क्लीं क्षं क्षं क्षं हाकिन्यै परनाथ-भासुरगुरोः शक्त्यै नमो स्वाहा" आदि।

आज्ञा-चक्र के भेदन-क्रम में हाकिनी और परशिव का पूजन-यजन किया जाता है। हाकिनी-देवी की पूजा-प्रक्रिया विस्तार से विवेच्य ग्रन्थ में बतायी गई है।[३] पूजा-प्रक्रिया के प्रमुख अंगों का विवरण इस प्रकार है। सर्वप्रथम साधक यथोचित आसनादि कर्म, आचमन, विभिन्न प्रकार के शोधन, प्राणायाम, ध्यान आदि के बाद भूतशुद्धि करता है। भूतशुद्धि के अन्तर्गत शरीर की ऐसी अवस्था का ध्यान करना चाहिए, जैसे शरीर आग में जल रहा हो, जैसे वायु से शरीर सूख रहा हो या फिर जैसे जल में शरीर डूबा जा रहा हो–

वह्निना दह्यमानं तु देहं ध्यात्वा पुनः पुनः।
वायुना शोष्य देहं तु जलेनाप्लावयन् पुनः।।[४]

मूलमन्त्र के द्वारा सुधासागर सम्भव दिव्यमय सर्वांग का ध्यान करके मनःपूजा करनी चाहिए। तदनन्तर न्यासजाल[५] करना चाहिए। न्यास-जाल में शिवशक्ति-न्यासजाल परम अद्भुत है, जिसके करने मात्र से षट्चक्रों का भेदन हो जाता है। इसके अनतर्गत षट्चक्रों के मध्य में शक्ति-युक्त शिव का न्यास किया जाता है।[६] शिवशक्ति-न्यास इस प्रकार है[७]–

मूलाधार-पद्म में–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा! वं शं षं सं डाकिनी-सहिताय ब्रह्मणे नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा।"

स्वाधिष्ठान-चक्र में–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा! बं भं मं यं रं लं राकिणी-सहिताय विष्णवे नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा।"

---

१. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-३२.
२. रुद्रयामल उ०त, ८३/६,८.
३. वही ८५/३-२२३.
४. वही, ८५/६५.
५. वही, ८५/६७-१५६.
६. वही, ८५/११८-१२१.
७. वही, ८५/१२२-२७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणिपुर-चक्र में–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा! डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनी-सहिताय रुद्राय नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि नमः।"–(स्वाहा)

अनाहत-चक्र में–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा! कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनी-सहिताय ईश्वराय नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा।"

विशुद्ध-चक्र में–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा! अं आं इं ईं उं ऊ ऋं ॠं लृं लृं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनीसहिताय सदाशिवाय नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा"।

आज्ञा-चक्र में–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा! हं क्षं हाकिनीसहिताय परशिवाय नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा।"।

न्यासजाल के बाद जनक आदि सिद्ध पुरुषों की भावना करने पर पहले परशिव का, तदनन्तर हाकिनी का ध्यान करना चाहिए–

परशिव का ध्यान[१]–

शुक्लाभं परमेश्वरं परशिवं सूक्ष्मातिसूक्ष्मं गुरूं
सर्वाऽलङ्कृतविग्रहं त्रिजगतां सारं परं निर्मलम्।
अद्वैतं दशहस्तपङ्कजतलं श्रीदं त्रिनेत्रं शिवं
देवेन्द्रैः परिपूजितं सुखमयं सच्चित्परानन्ददम्।।
ध्यायेत् पञ्चमुखं महास्त्रवरदं भक्तैः सदा पूजितम्।।

हाकिनी-ध्यान[२]–

त्रैलोक्योत्सववन्दितां त्रिजगतामानन्दपूर्णोदयां
नानाऽलङ्कृतभूषणां सुमुकुटोल्लासैकबीजप्रभाम्।
श्यामां मोक्षदेवहस्तकमलां कारूण्य वारांनिधिं
शोभामण्डलमण्डितां पथि भजे श्रीहाकिनीमीश्वरीम्।।

ध्यान के बाद महामुद्रादर्शन[३], अर्ध्यस्थापन[४], षोडशोपचार द्रव्यों के द्वारा पूजन[५], ऋषिध्यान[६], जीव संस्कार[७], जीवदान, अर्ध्यसार[८] आदि करना चाहिए।

काली-पूजा के समान ही हाकिनी की पूजा करनी चाहिए। गन्धर्वनगर, पर्वत, निर्जन स्थान, शून्यागार या श्मशान में महाविद्या हाकिनी की पूजा साधक करें।[९] पाद्य मन्त्र इस प्रकार है[१०]

"ॐ श्रीं महादेवि पाद्यं गन्धोदितं गृह्ण गृहण हाकिन्यै हूँ स्वाहा।"

---

१. रुद्रयामल उ०त, ८५/१६४-६५
२. वही, ८५/१६७
३. वही, ८५/१६८-६९
४. वही, ८५/१७०
५. वही, ८५/१७१
६. वही, ८५/१७२-७३
७. वही, ८५/१७५
८. वही, ८५/१९६-२०१
९. वही, ८५/२०२-२०७
१०. वही, ८५/२०८-२०९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदनन्तर दापन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वन्दना आदि करके तीन बार प्राणायाम करें, फिर निर्भय एवं पवित्र होकर महामालाक्रमानुसार जप करें। मन्त्र है[१]–"ॐ रं हालाहलं महाकालपरनाथाय धीमहि क्लीं हाकिनी चतुर्थ्यन्तपदात्मिका सोऽहं हंसः स्वाहा"।

इस मन्त्र का एक लाख जाप करने से सिद्धि मिलती है और अज्ञानी भी ज्ञानी, असिद्ध भी सिद्ध हो जाता है।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् परमेश्वरि।।[२]

ऐसा कहकर समर्पण करके उसके हाथ में (हाकिनी के) हेमरूप का ध्यान करते हुए प्राणायाम पूर्वक तीन बार मन्त्र-जाप करना चाहिए। इसके बाद बलिदान[३], स्तोत्र-पाठ[४], कवच-पाठ[५], एवं सहस्रनाम-स्तवन[६] करना चाहिए।

अन्य शक्तियाँ

(१) भैरवी–तंत्र-साहित्य में भैरवी के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। अभिनव के तंत्रसार में त्रिपुरभैरवी, सम्पत्प्रदाभैरवी, कौलेशीभैरवी, सकलसिद्धिदाभैरवी, भयविध्वंसिनीभैरवी, रुद्राभैरवी, त्रिपुराबालाभैरवी, नवकूटाबालाभैरवी, कामेश्वरभैरवी, षट्कूटाभैरवी, नित्याभैरवी, चैतन्यभैरवी, भुवनेश्वरीभैरवी, अन्नपूर्णाभैरवी आदि अनेक रूपों में महाशक्तिभैरवी का वर्णन किया गया है। वहाँ पर इन शक्ति-स्वरूपों की पूजाविधि भी वर्णित है।

विवेच्य ग्रन्थ में भैरवी के कतिपय दोषों की चर्चा की गई है। योगी इन दोषों को विनष्ट कर देते हैं। कहा गया है कि यह शक्ति विधिपूर्वक जप की जाने वाली होते हुए दग्ध तथा कीलित है। वह शिवतत्त्व का संधान करनेवाली तथा मोहक स्वभाव वाली है। वह मूर्च्छिता वीर्य्यवर्जिता, स्तम्भिता, आवरणयुक्ता, छिन्ना, रूद्धा, त्रासिता के साथ-साथ प्रबुद्धा भी है। वह शक्तिबीज (मन्त्र) रहिता, शक्तिहीना, सुप्ता,.....,मंदहासवाली, सत्त्वहीना, अतिगुह्य, क्षुधार्ता तथा धूर्त्ता है। योगकाल के निरोधन या योग-क्रिया से दूर रहने से समस्त अविद्यायें प्रसन्न रहती हैं, किन्तु साधक वीरभाव में अवस्थित होकर पुरश्चरण कर्म के द्वारा सिद्धि का अधिकारी होता है।[७]

(२) कन्दवासिनी–शरीर मे मूलाधार-चक्र की जहाँ स्थिति बताई गई है, वह स्थान है-कन्द। यह स्थान अधोमुखी त्रिकोण के समान है। यहीं स्वयंभू (धूम्र) लिङ्ग की कल्पना

---

१. रुद्रयामल उ०त, ८५/२१४-१६
२. वही, ८५/२२०
३. वही, ८५/२२२-२३
४. वही, ८६/२-१९
५. वही, ८७/७-४९
६. वही, ८९/३-१७७
७. वही, २८/२२-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की गई है, जिस पर सार्धत्रयवलयाकार महाशक्ति कुण्डलिनी सुषुप्तावस्था में वेष्टित है। इस महाशक्ति कुण्डलिनी के अतिरिक्त कंद स्थान में एक और शक्ति–'कंदवासिनी'–की कल्पना की गई है। इस शक्ति की पूजा, ध्यान[१] और स्तोत्र-पाठ[२] आदि मूलाधार-चक्र की साधना में सहायक है। विवेच्यग्रन्थ के ३२वें पटल में आनन्दभैरवी ने स्वयं कनदवासिनी के स्तव, ध्यान आदि को कुण्डलिनी-शक्ति से सम्बद्ध माना है।

(३) भेदिनी–मूलाधार-चक्र की साधना में जहाँ डाकिनी-शक्ति की पूजा का महत्त्व है, वहीं मूलाधार से आज्ञा-चक्र के भेदन में भेदिनी, छेदिनी और कन्दवासिनी शक्तियों की पूजा, ध्यान स्तव आदि का अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान है। भेदिनी शक्ति के ध्यान से योगी काल-जाल को हरण करने में समर्थ हो जाता है।[३] भेदिनी-स्तोत्र[४] का पाठ करके जो मूलाधार में आनन्दभैरवी की पूजा करता है, यह योगत्व की सिद्धि प्राप्त करता है।

(४) छेदिनी–छेदिनी शक्ति समस्त ग्रन्थियों का छेदन करनेवाली है। इस शक्ति की कृपा से योगी 'आनन्त्य दशा' को प्राप्त करता है।[५] रुद्रयामल में छेदिनी-साधन[६] का वर्णन किया गया है।

(५) शाकम्भरी–कण्ठपद्म (विशुद्ध-चक्र) की अधिष्ठातृ देवी शाकिनी के बाएँ भाग में शाकम्भरी देवी की अवस्थिति है। अत: कण्ठपद्म के भेदन में शाकिनी देवी के साथ-साथ शाकम्भरी देवी का भी पूजन-यजन किया जाता है। शाकम्भरी का ध्यान[७] विवेच्य ग्रन्थ मे वर्णित है। यथा–

शाकम्भरीं वेदविद्यां माधवीं शक्ति-शोभिताम्।
मुनिदेवमहेन्द्रादि ब्रह्मविष्णुशिवाश्रयाम्।।
ध्यायेऽहं कण्ठपद्मस्थां सर्वसिद्धिसमृद्धिदाम्।।[८]

एतदतिरिक्त रुद्रयामल में योगिनी-शक्ति[९], रुद्राणी-शक्ति[१०], काली-शक्ति[११] आदि का भी यथोचित निर्देश किया गया है।

(ii) देवोपासना

(१) कृष्ण की उपासना–कृष्ण की पूजा के साधक कालजाल को वश में कर लेता है। श्रीकृष्ण जगदीश्वर हैं एवं तीनों लोकों को आनन्द एवं मोक्ष देनेवाले हैं। स्वाधिष्ठान-चक्र की साधना में राकिणी देवी के साथ-साथ श्रीकृष्ण का भी पूजन-यजन करना अनिवार्य है। श्रीकृष्ण का मन्त्र है[१२]–

१. रुद्रयामल उ०त, ३२/६-१३
२. वही, ३२/२१-३२, २८/६९-८९
३. वही, ३१/१
४. वही, ३१/८-१५
५. वही, ३१/२२-२३
६. वही, ३१/२४-३४
७. वही, ६१/१२-१३, १६-१८; ६२/३५; ६८/१४-१५, १८-२०; ६९/४१-४२
८. वही, ६२/३५
९. वही, ३१ वाँ पटल
१०. वही, ४७ वाँ पटल एवं ४८ वाँ पटल
११. वही, ७५ वाँ पटल
१२. वही, ३८/४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ॐ क्लीं स्त्रीं क्लीं श्रीकृष्णं श्रीकृष्णं प्रणय प्रणय चन्द्रिकाकाश ब्रह्म ब्रह्म भजामि प्रकृति पुरुषिकां काकिनीं भूयो भूयो भजामि श्रवणगनयनं नमः स्वाहा।" श्रीकृष्ण का ध्यान[१] स्वाधिष्ठान-चक्र में करना चाहिए। यथा-

जगतां सत्त्वनिलयं श्रीकृष्णं गोकुलेश्वरम्।
स्वाधिष्ठानस्थितं श्यामं भजेद् भुजचतुष्ट्यम।।
शङ्खचक्रगदापद्ममहाशोभामनोहरम् ।।[२]
सर्वविद्यागतं काम्यं श्रीगोविन्दं सुशीतलम्।। आदि।

रूदयामल में कृष्ण की पूजा-पद्धति[३] एव स्तोत्र-पाठ[४] का भी वर्णन किया गया है।

(२) बटुक की अर्चना—भैरव को रुद्ररूप माना जाता है। ये सद्यः सिद्धि हैं। जहाँ अन्य देवता दीर्घकाल की साधना के बाद ही कदाचित् प्रसन्न होते हैं, भैरव तुरन्त फल देते हैं। शिवागम-सार में बटुक भैरवनाथ के विषय में ऐसा ही कहा गया है-

अन्ये देवास्तु कालेन प्रसन्ना सम्भवन्ति हि।
बटुकः सेवितः सद्यः प्रसीदति ध्रुवं शिवे।।[५]

बटुक का जपमन्त्र है-

"क्लीं क्रीं ह्रीं ह्रीं बटुकं क्लीं षोडशारं प्रकाशय ह्सौः ह्सौः ह्रौं स्वाहा"।[६] एवं-

"बटुकं क्षेत्रपालं गं कण्ठाब्जं में सदानन्द प्रकाशय प्रकाशय स्वाहा।[७]

बटुकं का ध्यान[८]-

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि
स्तरूणतिमिरनीलो व्यालययश्रोपवीती।
क्रमसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतु
र्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः कौलिकानाम्।।

विवेच्य ग्रन्थ में एतदतिरिक्त भी बटुका के ध्यान[९] की चर्चा है। विशुद्ध-चक्र के भेदन-क्रम में सदाशिव की साधना के साथ बटुक की अर्चना भी की जाती है।

(३) मृत्युञ्जयपूजा—मृत्युञ्जय शिव का ही दूसरा नाम है। मानव की सबसे बड़ी चिन्ता

---

१. वही, ३८/२६-३२
२. वही, ३८/२६-२७
३. वही, ३८/३३-५७
४. वही, ३९/७-३०
५. शिवागमसार (रुद्रयामल तंत्र, पृ०-३०२ पर उद्धृत)
६. रुद्रयामल उ०त०, ७४/३१-३२
७. वही, ७४/३४-३५
८. वही, ७४/३६
९. वही, ७४/३७-३९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शरीर की स्वस्थता, मानसिक प्रसन्नता, दीर्घजीवन और मृत्यु से रक्षा की होती है। इस चिन्ता का निवारण करने का सरलतम उपाय है–महामृत्युञ्जभगवान् महादेव की भक्ति। यही वह साधना है, जिसे साधकर मनुष्य आगे बढ़ता है, आशाओं के दीप जलाता है और उनके उज्जवल प्रकाश मे अपने विचारों, प्रयासों एवं आकाक्षाओं को मूर्तिमान् बनाकर सफल होता है।[१]

मृत्युञ्जय-पूजा मणिपुर-चक्र भेदन में सहायक है। भगवान् रुद्र के अनंत मन्त्र हैं। उनमें मृत्युञ्जय मन्त्र द्वारा मणिपुर में स्थित रुद्राणी और रुद्र को चैतन्य करना चाहिए। उसके लिए प्रसाद मन्त्र 'ॐ हौं स्वाहा', 'ॐ हौं जूं स्वाहा' अथवा मृत्युञ्जय-महामन्त्र का मानस जाप करना चाहिए[२] इसके पश्चात् पूजा-विधान, न्यास-विधान तथा अन्य प्रक्रियाओं का अनुसरण करना चाहिए। मणिपुर-चक्र मे मृत्युञ्जय-मन्त्र का जाप होना चाहिए, क्योंकि इसी चक्र में अमृत का निवास है और अमृत ही मृत्यु को जीतने का सर्वोत्तम साधन है।[३]

महामृत्युञ्जय के नाम से प्राप्त होने वाले कुछ प्रमुख मन्त्र[४]

(क) ऐकाक्षरी मन्त्र–"हौं"

(ख) त्र्यक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र–"ॐ जूँ स:"

(ग) चतुरक्षरी अमृत-मृत्युञ्जय मन्त्र–"ॐ वं जूं स:"। इसका जप करने से शरीर में बढ़े हुए ताप की शीघ्र शान्ति होती है।

(घ) नवाक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र–"ॐ जूं स: पालय पालय"।

(ङ) दशाक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र–"ॐजूं स: मां पालय पालय"। यदि किसी अन्य रोगी की रक्षा के लिए जप करना हो तो 'मां' के स्थान पर 'रोगी का नामं द्वितीया विभक्ति का एकवचन बनाकर जोड़ देना चाहिए।

(च) पंचदशाक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र–"ॐजूं स: मां पालय पालय स: जूं ॐ" आदि।

मृत्युञ्जय-पूजा में सर्वप्रथम विनियोग, न्यास, ध्यान व मानसी पूजा या संक्षिप्त पूजा के बाद स्रोत को पाठ करना चाहिए।

न्यासविधि-ऋषियादिन्यास–[५]इसमें मन्त्रों के उच्चारण के साथ हाथ से विभिन्न अङ्गों का स्पर्श किया जाता है–

(अ) शिरसि कहोड ऋषये नम:

(आ) ऋषये नम सुखे देवीपदं

---

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-१५३
२. वही, पृ०-१५४
३. वही, पृ०-१५४
४. वही, पृ०-१५५-५६
५. रुद्रयामल उ०त०, ४८/२५६-५९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(इ) गायत्रीच्छन्दसे नमः

(ई) हृदि मृत्युञ्जयायै देवतायै नमः आदि।

तदनन्तर कराङ्गन्यास[1] करने के बाद निम्नलिखित ध्यान करना चाहिए–

इन्द्वर्कानललोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तास्पदं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुच्छविम्।
कोटीन्दुविगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषाकुलम
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये।।[2]

ध्यान करने के बाद संक्षिप्त पूजा[3] करके मृत्युञ्जय-स्तोत्र[4] का पाठ करना चाहिए।

एतदतिरिक्त विवेच्य ग्रन्थ में रुद्र[5], सदाशिव[6], परशिव[7] आदि की भी यथोचित परिचर्चा की गई है।

(ग) कवच

'कवच' शब्द 'कव' ग्रहणे धातु से निष्पन्न है। कालीतंत्र की टीका में कहा है कि–"बाह्य एवं आन्तरिक कामनाओं पर नियंत्रण रखने के लिए कवच की आवश्यकता है। यह कवच पाठ द्वारा देवताओं का साधक के समस्त शरीर के अवयवों तथा दिशाओं में न्यास करने से सहज साध्य है।[8] यह तर्क संगत भी है, क्योंकि लौकिक दृष्टिकोण से कोई भी योद्धा अपने अंग-प्रत्यंगों की रक्षा के लिए युद्ध में जाने से पहले कवच धारण करता ही है।

पृथक् तत्त्वों का पारस्परिक सम्बन्ध और आकर्षण कामशक्ति पर आधरित है। इस प्राकृतिक शक्ति का सभी जीवित प्राणियों में निवास है, इसके द्वारा जहाँ असीम सुख प्राप्त होता है, वहीं अत्यंत पीड़ा भी उत्पन्न होती है। इसलिए इसे पशु-प्रकृति कहा गया है। इस पर नियंत्रण रखने के लिए प्राचीन महर्षियों ने सर्वाधिक बल दिया है और इसके अनेक उपाय भी बताएँ हैं। कवच-पाठ पूर्वक वैसी भावना से यह सहज सम्भव है। कुत्सित भावनाओं और अनिष्ट परिणामों से सुरक्षा प्राप्त करने का सहज उपाय प्राणिमात्र में देवत्व बुद्धिरखना और स्वयं को देवरूप मानना है'। यह कवच-पाठ से प्राप्य है।[9]

---

१. वही, ४८/२६०-६२
२. वही, ४८/२६३
३. वही, ४८/२६४-७४
४. वही, ४९/६-३०
५. वही, ४८ वाँ पटल
६. वही, ७४ वाँ पटल
७. वही, ८५ वाँ पटल
८. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५३-५४ पर वर्णित
९. वही, पृ०-५४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कवच के प्रयोग की दिशाएँ

प्रत्येक देवता के कवच के अन्त में फलश्रुति दी जाती है, जिसमें वर्णित रहता है कि–

- इस कवच के पाठ से रक्षा होती है,
- इसे किसी विशेष पर्व पर भोजपत्र आदि वस्तु पर स्याही आदि से लिखकर धारण करना चाहिए,
- कवच-पाठ का पुरश्चरण,
- कवच-पाठ द्वारा भस्माभिमन्त्रण, जलाभिमन्त्रण कवच (ताबीज) निर्माण
- कवच द्वारा अभिमार्जन,
- वस्त्रादि वस्त्र से झाड़ना आदि।

इनके अतिरिक्त एक प्राचीन हस्तलिखित पद्धति से यह भी प्राप्त हुआ है कि कवच-पाठ में अन्य सूक्तों और प्रत्येक स्थान की रक्षा के लिए प्रार्थित देवता के मन्त्रों का जप भी इसमें किया जाता है। इसे 'कवचीकरण' कहा जाता है। 'कवची-मन्त्रगणों' का शास्त्रीय प्रयोग अत्यंत प्रभावशाली होता है।[१]

रुद्रयामल में कई कवचों का वर्णन किया गया है। यथा काकिनी-कवच, शाकिनी-कवच, हाकिनी-कवच, कन्दवासिनी-कवच, ईश्वर-सम्मोहन-कवच, प्रासादमन्त्र-कवच, परनाथकवच, कुमारीकवच आदि। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(१) काकिनी कवच–काकिनी देवी का कवच १०८ अक्षरों का है। "काकिनी-कवच को जो साधक घर, हाथ, सिर, कण्ठ, हृदय, बाँह या कमर में धारण करता है, उसे हर चीज़ की सिद्धि होती है। योगसिद्धि, क्रियासिद्धि, शिवासिद्धि ......अणिमादि अष्टसिद्धि उसके हाथ मे स्थिर होती है। अकाल या सुकाल कभी भी इसके पाठ से धर्मसञ्चय होता है। धर्मसञ्चय से साधक जयी होता है, जयी होने पर शिवत्व की भी प्राप्ति होती है। जहाँ शिवा है, वहीं शिव भी है, दोनों इस कवच की आत्मा हैं। वे दोनों अर्थात् पार्वती-परमेश्वर ही कर्त्ता हैं, वे ही कार्य-कारण स्रष्ट्य हैं।[२] काकिनी-कवच का १०८ नामाक्षर प्रकृत ग्रन्थ में वर्णित है।[३]

(२) शाकिनी-कवच–इस कवच के ऋषि-सदाशिव, छंद-गायत्री एवं देहदेवता-शाकिनी है।[४] कवच-पाठ –औं श्रीं क्लीं मे शिर: पातु ब्लूँ हलूँ मे ललाटकम्" से प्रारम्भ होकर "हृत्कालिका सदा पातु सर्वाङ्गसर्वदेशके" पर्यन्त है।[५] इसके पाठ से साधक अकस्मात् सूर्य के समान तेजस्वी, कामजेता, स्वस्थ एवं निरोग हो जाता है।.........शाकिनी-कवच पाठ के बाद काममन्त्र का पाठ करना चाहिए तथा उसके बाद शाकिनी का ध्यान करना चाहिए।[६]

---

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५४
२. रुद्रयामल उ०त०, ७९/१-८
३. वही, ७९/१०-२३,
४. वही, ७९/२४-२५
५. वही, ७९/२५-३६
६. वही, ७९/३७-४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काम-मन्त्र[१]–"ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौव्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुम्म इषाण सर्वलोकम्म इषाण"।।

शाकिनी-ध्यान[२]–

प्राणख्यां शुक्लपद्मे निरवधिनिलयां शाकिनीं पीतवस्त्रां।
सूक्ष्मां भूषत्तिरुद्रोद्भवतनुचपलां चञ्चलां सिद्धिलोलाम्।
हस्तैः पद्मैश्चतुर्भिः सुनयनकलैर्भासमानां शिवाढयां
पद्मभीतिप्रचण्डासिचयसहितां शाकमातां भजामि।।

जिसका बच्चा मर जाता है और वह स्त्री काकवन्ध्या हो जाती है, वह यदि इस कवच को धारण करे तो सभी दोष दूर हो जाते हैं। लकड़ी के ताबीज में भरकर इस कवच को यदि कोई योद्धा युद्ध के दौरान कण्ठ में धारण करे तो वह निश्चित रूप से अक्षयत्व प्राप्त करता है। यदि इस कवच को गोरेचन, कुङ्कुम, कालागुरू, हल्दी और लाक्षारस से लिखकर धारण करे तो वह अमरत्व प्राप्त करता है।[३]

(३) हाकिनी-शक्ति-कवच–इस कवच की ध्वनि मात्र से कालरुद्र के प्रभाव द्वारा भूत, प्रेत, पिशाचादि भय से दूर भाग जाते हैं।[४] इसके ऋषि हैं–सदाशिव; छंद–गायत्री; पर देवता–श्री हाकिनी; शक्ति–स्वाहा तथा मूलकीलक है–सिद्ध–लक्ष्मी। इस कवच का विनियोग देह के अन्तर्गत महाकाम की सिद्धि के लिए जप में करना चाहिए।

यह कवच "ॐ पातु शीर्षचक्रं मे क्लीं पातु भालमंडलम्" से प्रारंभ होकर सर्वदेशे सर्वपीठे मातृका पातु नित्यशः" पर्यन्त है।[५] यह कवच सर्वसिद्धिप्रदायक एवं दुःख-विनाशक है। जो सुबह उठकर इस देवदुर्लभ कवच का पाठ करता है,वह कालजयी होता है और मनुष्य से ऊपर उठकर देवत्व की प्राप्ति करता है। ......यह कवच अकाल-मृत्यु को दूर करनेवाला, संसारार्णव को पार कराने वाला तथा अरनन्दसारमङ्गल है। इसके पाठ से साधक जीवन्मुक्त होता है। इसे अमावस्या में, रविवार, संक्रांति, शनिवार या मंगलवार को धारण करने पर साधक सर्वशास्त्रों का ज्ञाता, यामल का अर्थवेत्ता; शान्तिविद्या आदि को प्राप्त कर ईश्वरत्व को भी प्राप्त कर लेता है। पुरुष दाहिने हाथ में तथा स्त्री बाएँ हाथ में यदि इसे धारण करते हैं तो उसके मन में जो-जो है, सब की सिद्धि होती है। गोरोचन, कुङ्कुम और अलक्त से लिखकर इसे धारण करने पर हाकिनी योगजाप के प्रभाव से निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है।[६]

(४) श्रीशाकिनीसदाशिवकामनामहाकवच–इसके ज्ञान मात्र से सर्वगूढ़प्रियानन्द-

१. रुद्रयामल उ०त०, ७९/४१
२. वही, ७९/४४
३. वही, ७९/४७-५०
४. वही, ८७/६
५. वही, ८७/७-४९
६. वही, ८७/४९-५९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामरस्य तथा कौलाचार की सिद्धि होती है।.....यह सभी सौभाग्यों का जनक एवं सर्वानन्दमयी है। रुद्रयामल में कथित यह कवच प्राय:सभी तंत्रों में अतिदुर्लभ है। इसके ऋषि हैं– सदाशिव, छंद–गायत्री; देवता –शाकिनी जीवबीज–सकलहरीं; शक्ति–माया तथा कीलक है–कामस्वाहा।[१]

यह महाकवच "ॐप्रभावा सदा पातु महाकाशाधिशाकिनी" से प्रारंभ होकर "सर्वत्र कपिला पातु महाभगवतीश्वरी" पर्यन्त है।[२] इस सर्वसिद्धिदायक कवच का ज्ञान अतिगुह्यकर है।...इस कवचराज को यदि पुरुष दाहिने बाँह में तथा स्त्री बाँयी भुजा में धारण कर इसका पाठ वन में, वृक्ष के नीचे या पीपल के पेड़ के नजदीक करे तो कोटिमहापातक का नाश होता है तथा राजत्व की प्राप्ति होती है। तीन शाम यदि १० बार, १०० बार या १००० बार इसका जाप किया जाए तो साधक कल्पवृक्ष का मालिक हो जाता है अर्थात् वह मनचाही वस्तु प्राप्त कर सकता है।[३] प्रतिदिन इसका पाठ करने पर साधक भोग और मोक्ष दोनों का लाभ करता है।[४]

(५) कन्दवासिनी-कवच–इसे कुण्डली कवच भी कहा जाता है। इसका पाठ करने पर योगी सभी धर्माधर्म को जान लेता है, अणिमादि की सिद्धि होती है तथा सभी देवता वशीभूत हो जाते हैं। प्रात:काल में तीन बार, मध्याह्न में दो बार तथा सायंकाल में एक बार यदि इसका पाठ किया जाए तो महायोगी को कुण्डली–दर्शन प्राप्त होता है।[५]

इस कवच के ऋषि हैं– ब्रह्मेन्द्र, छंद–गायत्री, देवता–कुलकुण्डली तथा इसका विनियोग सभी अभीष्ट की सिद्धि के लिए करना चाहिए।[६] इस कवच का प्रारम्भ–" ओं ईश्वरीजगतां धात्री ललिता सुन्दरी परा। कुण्डलीकुलरूपा च पातु मां कुलचण्डिका।। "से होकर "नवलक्षमहाविद्या दशदिक्षु प्रपातु माम्" पर्यन्त है।[७] जो इस कवच का पाठ ध्यानयोग में योगमार्ग–व्यवस्थित होकर करता है, वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है।....इसका पाठ यदि राज्यहीन व्यक्ति करे तो उसे धन की प्राप्ति होती है, पुत्रहीन को पुत्रप्राप्ति एवं योगहीन को योगत्व की प्राप्ति होती है। पुरुष इसे दाहिने भुजा में तथा स्त्री बाँयी भुजा में धारण करे तो सर्वाभीष्ट की प्राप्ति होती है इसे सोना, चाँदी तथा ताम्बा में स्थापित करके पूजन करना चाहिए। सभी स्थान और सर्वकाल में इसका पाठ करने पर सिद्धि की प्राप्ति होती है तथा साधक कुण्डलीपुत्र हो जाता है।[८]

परनाथकवच–यह कवच ज्ञानगम्य, पुरातन, अतिगोपनीय, योगसार एवं सभी तंत्रों में दुर्लभ है।[९] इस श्रीपरनाथमहाकवच के ऋषि हैं–सदाशिव, देवता–परमात्मा, बीज–हसौः, कीलक–ज्ञान, शक्ति और आनन्द तथा इसका विनियोग सर्वाभीष्ट की सिद्धि के लिए करना

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ७३/ ५–९
२. वही, ७३/१०–६५
३. वही, ७३/६७–७३
४. वही, ७३/७७
५. वही, ३३/१–५
६. वही, ३३/६
७. वही, ३३/७–५६
८. वही, ३३/५७–६५
९. वही, ८८/४–५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए।

यह महाकवच "ॐकारं वेदबीजं मे सदा पातु शिरोधनम्" से प्रारम्भ होकर " सर्वभुक् कालरुद्रो मे सर्वत्र परिपातु माम्" पर्यन्त है।[१]

साधक इसका एक बार भी यदि पाठ करे तो वह साक्षात् रुद्रस्वरूप हो जाता है तथा उसकी कीर्ति, धन, कान्ति, प्रतिभा और आयु में निश्चित रूप से वृद्धि होती है। इसके स्मरण मात्र से राजत्व और योगसिद्धि होती है तथा साधक कामक्रोधजयी, मृत्युञ्जय, महाकवि हो जाता है, उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। जो साधक इस कवच को रक्त, चन्दन या कुङ्कुम से लिखकर कण्ठ या सिर में धारण करता है, वह वीरपुत्र होकर कोटिमहापातक को नष्टकर अनायास ही योगसिद्धि प्राप्त करता है। इसका १०८ बार जाप करने से पुरश्चर्या का फल मिलता है।[२]

(७) ईश्वरसम्मोहनकवच–इसका महत्त्व ग्रंथिभेदन, भाषादिसिद्धिलाभ एवं कायनिर्मलसिद्धि हेतु है। इसके ऋषि हैं–ब्रह्मा, छंद-अनुष्टुप्, देवता–ईश्वर, शक्ति–काकिनी, कीलक–क्रूँ तथा जप में इसका विनियोग ध्यानसाधनसिद्धि एवं हृदब्जभेदनार्थ करना चाहिए।[३]

यह कवच "प्रणवों मे पातु शीर्ष ललाटं च सदाशिव:" से आरम्भ होकर "क्रोधभूपतय: पान्तु श्रीमायामदनान्विता:" पर्यन्त है।[४]

इस कवय के पाठ से असाध्य भी साध्य हो जाता है, इसके धारण एवं पूजन से साक्षात् सर्वपीठफल की प्राप्ति होती है। काकचञ्चुपुट मुद्रा में यदि इसे सात या पाँच बार पढ़ें, तो गूढ़सिद्धि होती है। इसके पाठ से देवत्व की प्राप्ति,आरोग्य, परमज्ञान और सम्मोहन–शक्ति की प्राप्ति तथा जगत् वश में हो जाता है। यदि तीन बार पाठ किया जाय तो दुश्मनों की सेना स्तम्भित हो जाती है।.....इसके पाठ से अणिमा–लघिमा आदि की सिद्धि होती है तथा साधक स्त्रियों के लिए कामदेव सदृश हो जाता है।[५] इस कवच के पाठ से वाणी वश में हो जाती है, लक्ष्मी स्थिर हो जाती है, सब तरह के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, साधक नि:सङ्ग होकर शिववत् विहार करता है तथा सदाशिव में उसके मन का लय हो जाता है।[६]

(८) प्रासादमन्त्र-कवच–कुलार्णव तंत्र में शिव देवी से कहते हैं–"ऊर्ध्वाम्नाय में 'श्री प्रासाद-परा' मन्त्र अधिष्ठित है, जो हम दोनों का परम स्वरूप है। उसे जो जानता है, वह स्वयं शिव हो जाता है। शिव से कृमि तक सभी प्राणियों में प्राण के मार्ग से निश्वास–उच्छ्वास के रूप में यह मन्त्र विद्यमान है। जैसे हवा के बिना आकाश में बादल नहीं ठहरते, वैसे ही

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ८८/६-३३
२. वही, ८८/३५-४०
३. वही, ६६/४-७
४. वही, ६६/८-६८
५. वही, ६६/७२-७७
६. वही, ६६/८३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'परा-प्रासाद' मन्त्र के बिना यह लोक नहीं ठहर सकता। परा-प्रसाद मन्त्र से यह चराचर जगत व्याप्त है।.... जो मन्त्र परा-प्रासाद मन्त्र से संगत नहीं है, वे मंत्र शक्ति से रहित होकर फल नहीं देते हैं।[१]

'अनन्त-चन्द्र-भुवनमिन्दु-बिन्दु-युगान्वितः' अर्थात् अनन्त चन्द्र है नाद-बिन्दु (ँ), 'भुवन' है औकार, 'बिन्दु' है हकार और 'बिन्दु-युग है सकार। इस प्रकार श्री प्रासाद-परामन्त्र "हसौं" सिद्ध हुआ, जो भुक्ति-मुक्ति रूपी फलदायक है। श्री परा-प्रासाद मन्त्र सादि अर्थात् 'स्हौं' कहा गया है।[२]

कवच–सभी आम्नायों में पूजित प्रासादमन्त्र का कवच सिद्धिदायक तथा सब प्रकार से रक्षाकारक है।[३] इस कवच के ऋषि हैं–वामदेव; छंद पङ्क्ति, देवता–देवेश सदाशिव तथा इसका विनियोग साधक अभीष्ट की सिद्धि हेतु करे।[४]

यह कवच "शिरो मे सर्वदा पातु प्रासादाख्यः सदाशिव" से प्रारम्भ होकर "पृथिवीं पर्थिवः पातु सर्वदैकं सदाशिवः" पर्यन्त है।[५]

प्रातःकाल इसका पाठ करने पर अभीष्ट फलसिद्धि होती है।....व्यास, वशिष्ठ आदि सभी महासिद्ध इसका पाठ करके तथा इसे धारण करके प्रधान तत्त्व-चिन्तक हुए हैं। इसे दाहिने बाँह में धारण करने पर साधक युद्ध, द्यूत और वाद-विवाद मे विजयी होता है, शिर में धारण करने पर देवता, मनुष्य और गन्धर्व वशीभूत हो जाते हैं। इसे भोजपत्र पर लिखकर तथा शुक्लपट से लपेटकर एवं चाँदी के ताबीज में भरकर यदि शरीर में धारण करे, तो अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जिस किसी को इसे नहीं देना चाहिए, न ही इसका प्रकाशन करना चाहिए, केवल शिष्य और भक्तवत्सल साधक के समाने ही इसका भेद खोलना चाहिए।...जो इस कवच का गंध, पुष्पादि से पूजा करता है, वह राजराजेश्वर होकर जीवन्मुक्त हो जाता है।[६]

(९) कुमारीकवच–कुमारीकवच त्रैलोक्यमङ्गल और महापातक को नष्ट करनेवाला है। इसके पाठन और धारण से लोक में साधक महासिद्ध होता है[७]

यह कवच "प्रणवो (ॐ) मे शिरः पातु माया सन्दायिका सती" से प्रारम्भ होकर "पातु मां वरदा वाणी वटुकेश्वरकामिनी" पर्यन्त है।[८]

इस कवच के पाठ से साधक का देह वज्र के समान शीघ्र मजबूत हो जाता है तथा वह

---

१. हिन्दी कुलार्णवतंत्रः तीसरा उल्लास, पृ०-१३
२. वही, चौथा उल्लास, पृ०-१६
३. रुद्रयामल उ०त०, ७७/१-३
४. वही, ७७/५
५. वही, ७७/६-८८
६. वही, ७७/८९-/१०५
७. वही, ९/१-२
८. वही, ९/६-२३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वसिद्धीश्वरी योगी और ज्ञानी हो जाता है, वाद-विवाद में, व्यवहार में, युद्ध में, श्मशान आदि में सिद्ध होता है।[१] इसके पढ़ने और सुनने से साधक भक्ति-मुक्ति, तुष्टि-पुष्टि और राजलक्ष्मी-धनसम्पदा प्राप्त करता है। इसे धारण एवं जप करने से असाध्य भी साध्य होता है।....स्त्री यदि इसे वामभुजा में धारण करे तो वह सब तरह का कल्याण, कई पुत्र, सभी सम्पत्ति प्राप्त करती है। यदि पुरुष दाहिने भुजा में इसे धारण करे तो वह दिव्यदेह प्राप्त करता है और वायुवेगी होकर शिवलोक के परे चला जाता है।[२]

(घ) सहस्त्रनाम

आराध्य देवता के एक सहस्त्र, अष्टोत्तर सहस्त्र अथवा अधिक नामों का संग्रह 'सहस्त्रनाम' कहलाता है। यह संग्रह किसी विशेष दृष्टि से चुने हुए नामों की परिणति है। इनका सम्बन्ध शरीरस्थ अन्तर्नाड़ियों से भी माना गया है। ७० हजार नाड़ियों वाले देह में सहस्त्रनाड़ियों की प्रमुखता होने से उनका प्रबोधन इन नामों के स्मरण से होता है। मस्तक में स्थित सहस्त्रदलकमल की पंखुड़ियों से भी इसका सम्बन्ध है। उसे मानें तो इनके स्मरण से अमृत की प्राप्ति होती है, ऐसा समझना चाहिए।[३]

जिस प्रकार वृक्ष में जड़ से शिखा तक एक ही रस परिव्याप्त रहता है, किन्तु पत्र, शाखा और पुष्पादि विभिन्न रूपों में वृक्ष व्यक्त होता है, वैसे ही एक शक्ति विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, उसी को महाशक्ति कहा जाता है। वे विभक्तस्वरूप मूल में एक होने के कारण पुनः एक होने की चेष्टा करते हैं। वस्तुओं के पारस्परिक भौतिक और मानसिक विघटन-संघटन में यही एक से अनेक और अनेक से एक हो जाने की इच्छा मूल कारण है। इसी इच्छा का नाम शक्ति है। एक से अनेक और अनेक से एक होने की इच्छा जिस सर्वोच्च सत्ता का सहस्त्रों नाम से ज्ञानी विद्वान साधक स्तवन करते हैं। ऐसे स्तवनों से मन शैनः शैन निर्मल होता है तथा उसमें मूलशक्ति के प्रति भक्ति-प्रीति उदित होती है, जिसके द्वारा इस संसार से निस्तार अथवा पुनः उस सत्ता में लय सम्भव है।

ये सहस्त्रनाम ज्योतिष और धर्मशास्त्रों अनुसार अनिष्टकारिणीग्रहदशा, अन्तर्दशा आदि में अनिष्टों की शान्ति एवं ईश्वरकृपा-प्राप्ति के अन्यतम उपाय हैं। 'तद्दोषपरिहारर्थं विष्णुसाहस्त्रकं जपेत्, शिवसाहस्त्रकं जपेत्, सूर्यसाहस्त्रकं जपेत्' आदि वचन इसके प्रणाम हैं। सहस्त्रनामार्चन की विधि से अयुतार्चन, लक्षार्चन और कोट्यर्चन की विधियाँ बनी हैं, दीपार्चन के प्रयोग भी मिलते हैं और विभिन्न काम्य-प्रयोग भी इनके द्वारा किए जाते हैं।[४]

रुद्रयामल में राकिणी, हाकिनी, कुण्डलिनी, श्रीकृष्ण, कुमारी, परनाथ आदि के सहस्त्रनाम दिए गए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

१. रुद्रयामल उ०त०, ९/२६-२७
२. वही, ९/३०-४२
३. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५५
४. वही, पृ०-५५-५६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१) श्रीकृष्ण-राकिणी-सहस्रनाम–इस सहस्रनाम का उपयोग कुलकुण्डलिनीमिलन, सर्वसाधन की निष्पत्ति, परममोक्षत्व, नित्यसुखप्राप्ति तथा योगसिद्धि में है। इस सहस्रनाम-स्तोत्र के ऋषि हैं–गणेश कुलगणाधिपति, छंद-बृहती, देवता-श्रीमत्कृष्णमहाकालपुरुषोत्तम कुलकुण्डलिनी राधाराकिणी तथा इसका विनियोग षड्दलाधारादि प्रकाशषट्पद्म की सिद्धि हेतु करना चाहिए।

यहाँ श्रीकृष्ण-राकिणी के सहस्रनाम में क्रमशः पहले श्रीकृष्ण का तदनन्तर राकिणी का नाम वर्णित है। नामों की शृंखला 'ओं श्रीकृष्णो महामाया यादवो देवराकिणी' से प्रारम्भ होकर 'महापर्वतप्रेमभारोपपन्नो महादेवपत्नीशभावोपपन्ना' पर्यन्त है।[१]

जो साधक प्रातः काल उठकर शुद्धता से या शुद्धमन से तथा भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, वह योगी निश्चित रूप से शान्ति पाता है। प्रतिदिन ध्यान करके तीनों संध्या (प्रातः मध्याह्न और सायं) शुद्ध होकर जो साधक इसका पाठ करता है, वह छः महीने में योगी हो जाता है। एक बार भी यदि इसका पाठ किया जाए जो अकालमृत्यु, अपमृत्यु तथा सर्वव्याधि दूर हो जाती है। बुरी परिस्थिति में जो इसका नित्य पाठ करता है, उसका समय शीघ्र सुखद हो जाता है। राजत्वहरण एवं अच्छीवृत्ति के चले जाने पर एक महीने के पाठ से पुनः राजत्व की प्राप्ति होती है।[२]....कोई योगाभ्यास करे, किन्तु श्री कृष्ण-राकिणी के सहस्रनाम का पाठ न करे तो कुलाचार का लाञ्छन माना जाता है और वह योग-भ्रष्ट हो जाता है। कुलीन को ही यह देना चाहिए।[३]

(२) काकिनीश्वर-सहस्रनाम–श्रीकाकिनी और ईश्वर के श्रवण से आयु और आरोग्य में वृद्धि होती है। इसके पाठ से वाञ्छित-सिद्धि, महापातकनाश और दारिद्रय-नाश होती है तथा महैश्वर्य की प्राप्ति होती है। इसका जाप ध्यान-योगी प्रातः, मध्याह्न और सायं को अस्त होते सूर्य को नमस्कार कर करें। साधक पहले निर्मल और शुद्धचित्त से काकिनीश्वर के संयोग का ध्यान करे।[४] काकिनी का ध्यान[५]–

ध्यायेद्देवीं महाकालीं काकिनीं कालरूपिणीम्।

...

हृत्पद्मकर्णिकामध्याकाशसौदामिनीप्रभाम् ।

इस प्रकार ध्यान करके नाममङ्गल का बार-बार पाठ करना चाहिए। ईश्वर का ध्यान[६]–

"ईश्वरं कोटिसूर्याभं ध्यायेद्धृदयमण्डले।

...

कोटिकालानलं दीप्तं काकिनीदक्षिणस्थितम्।"

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ४२/१६-१२४
२. वही, ४२/१२६-१३१
३. वही, ४२/१३४-३८
४. वही, ६४/९-१३
५. वही ६४/१४-१८
६. वही, ६४/१९-२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधक ऐसा मन में परमेश्वर का ध्यान करके तदनन्तर ईश्वर और काकिनी के सहस्रनाम का पाठ करे।

विवेच्य ग्रन्थ में ईश्वर और काकिनी के क्रमशः अष्टोत्तर सहस्रनाम दिए गए हैं, जिनमे पहले ईश्वर का नाम है, तब काकिनी का नाम है। इस सहस्रनाम-स्तोत्र के ऋषि हैं-ब्रह्मा, छंद-गायत्री, देवता-जगदीश्वर काकिनी तथा इसका विनियोग निर्वाण और योग-सिद्धि के लिए करना चाहिए। श्री काकिनीश्वर सहस्रनाम का क्रम "ॐ ईश्वरः काकिनी ईशान कमलेश्वरी" से प्रारंभ होकर "स्वनामगुणपूरकः स्वगुण नाम सम्पूरणी" पर्यन्त है।[१]

ध्यान करके नित्य इसका (सहस्रनाम) जप करने या विशेषतः मध्याह्न में जप करने से दुष्ट इन्द्रियों का भय समाप्त हो जाता है। योगाभ्यास में ग्रंथिभेद और योगध्याननिरूपण में सायंकाल एवं रात में इस सहस्रनाम की साधना करनी चाहिए। देहस्थ देवता को वश में करने, महामोह के शमन के लिए, दुश्मन की सेना का स्तंभन करने के लिए इसका प्रतिदिन पाठ करना चाहिए।......इसका पाठ शून्यागार, भूमिगर्तमण्डप, निर्जनस्थान, गङ्गागर्भ, घने जंगल, एकान्त, अकालरहित स्थान, श्मशान, पीपल के पेड़ के नीचे, वटशाखा पर या इष्टकामना-गृह में करना चाहिए। महापीठ स्थान में आसन में दृढ़ होकर, ध्यान-धारणा से शुद्धाङ्ग होकर तथा न्यास-पूजादि संपन्न करके प्रातः पाठ करने पर साधक मृत्यु को जीत लेता है। इसके पाठ से अष्टाङ्ग-सिद्धि, अमरत्व-प्राप्ति, देहस्थदुःखनाश, दुष्टग्रहनाश, योगी-दर्शन, आयुवृद्धि आदि की प्राप्ति होंती है तथा साधक शुद्ध शील निराकर होकर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, शिवस्वरूप होकर नित्य कार्य में सिद्ध तथा जीवन्मुक्त हो जाता है।[२]

(३) हाकिनी-सहस्रनाम-इस सहस्रनाम-स्तोत्र के ऋषि हैं-सदाशिव, छंद-गायत्री, देवता-श्रीपरमेश्वरीहाकिनीमहाशक्ति, बीज-क्लीं, शक्ति-स्वाहा, मूलकीलक-सिद्धलक्ष्मी तथा इसका विनियोग देहान्तर्गत महाकायज्ञान की सिद्धि के लिए जप में करना चाहिए। इस सहस्रनाम की शृंखला "ॐ हाकिनी वसुधा लक्ष्मी परमात्मकला परा" से प्रारम्भ होकर "क्षुन्निवृत्तिः क्षणज्ञानी वल्लभा क्षणभङ्गुरा" पर्यन्त है।[३]

इसके पाठ से आयु और आरोग्य की वृद्धि, श्रीगुरू की विश्वास-प्राप्ति, पापनाश, दुःखनाश, योगसिद्धि, काव्यसिद्धि, ज्ञानसिद्धि, वाक्-सिद्धि, खड्गसिद्धि, खेचरत्व, सब कामनाओं की सिद्धि होती है। इसके पाठ द्वारा चित्त को भ्रूमध्य या भ्रूपद्म (आज्ञाचक्र) में स्थिर करने पर डाकिनी-सिद्धि और कुडलीसिद्धि होती है।[४] भ्रूमध्य चक्रसार में ध्यान कर-करके यदि इसका पाठ करें तों राकिणी-सिद्धि और देवता-दर्शन होता है। शिवालय में रात्रि के तीसरे प्रहर उठकर यदि पाठ किया जाए तो हिरण्याक्षी लाकिनीशा वशीभूत होती है।[५] पूजा या जप

१. रुद्रयामल उ०त०, ६४/२४-२१४
२. वही, ६४/२२२-२४२
३. वही, ८९/३-१७७
४. वही, ८९/१५०-८५
५. वही, ८९/१८७-८९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अन्त में एक बार पाठ करने से वीरसिद्धि और काकिनी वशीभूत होती है; शुद्धचित जितेन्द्रिय होकर रात में शय्या, चण्डिकागृह या मधुगृह में पढ़ने पर सब स्थान और सर्वदा शाकिनी-सिद्धि होती है।..... शिव और शक्ति के मध्यभाग में यंत्र स्थापित करके यदि पाठ करे, तो साधक सर्वज्ञ हो जाता है। सुन्दर एकान्त स्थान में तप:सिद्धि फल के उदित होने पर इसका पाठ करने से जीवन्मुक्ति मिलती है।[१]

पुरुष यदि इसे कण्ठ, सिर या दाहिने भुजा पर धारण करे, तो वह महासिद्ध तथा महाकवि होता है। स्त्री यदि बायीं भुजा में धारण करे तो सर्वसिद्धि होती है। गोरोचन, कुङ्कुम, रक्त, चन्दन आदि से मन्त्र को लिखकर धारण करने पर आद्यादेवी पर प्राणसिद्धि होती है। पीठ में पूर्णिमा, कृष्णचतुर्दशी और भौमवार (मंगलवार) को आधी रात को इस सहस्रनाम का पाठ करने से मदनसिद्धि होती है। इसी प्रकार अन्य पाठविधि एवं तत्फलप्राप्ति की चर्चा करते हुए अन्त में कहा गया है कि यदि सूअर के मांस या कुलद्रव्य के द्वारा बेल के पेड़ के नीचे या पीठ में विधिपूर्वक इसका पाठ-पूजन किया जाए तो परमादेवी संतुष्ट होती है और सिद्धि प्रदान करती है।[२]

(४) परनाथ-सहस्रनाम—इसके जाप से भ्रूपद्मभेदन एवं हाकिनी-योग की सिद्धि होती है।[३] सहस्रनाम-स्तोत्र के ऋषि हैं—सदाशिव, छन्द-उष्णिक्, देवता-श्रीपरनाथ-महापुरुषमहात्मा, बीज-हसौं, शक्ति-सां, मूलकीलक-प्रचण्डपरनाथ तथा इसका विनियोग चतुर्वर्ग हाकिनी परयोग की सिद्धि के लिए जप में करना चाहिए। इस सहस्रनाम का क्रम "ॐ हसौं सां परेशश्च पराशक्तिः प्रियेश्वरः" से प्रारम्भ होकर "भ्रान्तिहन्ता भ्रान्तिदाता भ्रान्तस्थो भ्रान्तिवल्लभः" पर्यन्त है।[४]

इसके पाठ एवं धारण से साधक महापातक का नाश करने में समर्थ एवं आयु व आरोग्य की वृद्धि होती है। युद्ध, ग्रहभय, घनेजंगल, जल एवं भय में इसे एक बार पड़ने से साधक देववल्लभ होता है।[५] गले या दक्षिण बाँह में भक्तिपूर्वक धारण करने पर साधक सर्वदा राजसम्मान, अमरत्व और शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है और वह अवधूतेश्वर होकर चमकता है। रक्त, चन्दन, हल्दी, कुङ्कम, सेफालिका पुष्प (जिसमें दण्ड, दल एवं सङ्कुल न हो) को मिलाकर चन्दन के जल से इसे लिखने पर साधक १२ दिन में ही साक्षात् पार्वतीपुत्र हो जाता है तथा इसे एक माह, दो माह या तीन माह धारण करके सहस्रनाम कीर्त्तन करने से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।[६]

(५) श्रीभुवनमङ्गलसहस्रनाम—इस सहस्रनाम में शाकिनी और सदाशिव के १००८

१. रुद्रयामल उ०त०, ८९/१९०-९७
२. वही, ८९/२०४-१७
३. वही, ९०/२
४. वही,९०/१२-११८
५. वही, ९०/१२३/२४
६. वही, ९०/१३०-३४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाम क्रमश हैं। पहले शाकिनी का नाम है, तदनन्तर सदाशिव का नाम है। इस सहस्रनाम-स्तोत्र के ऋषि हैं–सदाशिव, छंद-गायत्री, देवता–सदाशिव और शाकिनी तथा इसका विनियोग पुरूषार्थ-प्राप्ति, अष्टसिद्धि एवं समययोग (समायाचार) की सिद्धि के लिए करना चाहिए। इस सहस्रनाम का क्रम "ॐ शाकिनी पीतवस्त्रा सदाशिव उमापति:" से प्रारम्भ होकर "शिवो विश्वेश्वरोऽनन्त: सर्वातीतो निरञ्जन:" पर्यन्त है।[१]

इस सहस्रनाम का पाठ राजद्वार, नदी-तीर, संग्राम, सुनसान स्थल, शून्यागार, निर्जन-स्थान, घनघोर रात या श्मशान में करके तथा मन में कामदेव का चिन्तन करता हुआ लाल कमलों से पूजा करके प्रत्येक नाम के उच्चारण के साथ घी के साथ हवन नित्य करना चाहिए तथा मूलमन्त्र से पुटित पिघलाया हुआ घी अग्नि में समर्पित करना चाहिए। अपने अन्तर में भी होम करना चाहिए। ताजा मधु और मांस के साथ मन्त्र उच्चारण करता हुआ प्रत्येक नाम को पुटित करके कुण्डलीरस जिह्वा के मुखकमल में हवन करने पर साधक जीवन्मुक्त होता है। इसका धारण, पाठ या स्तुति विधिपूर्वक करने पर साधक साक्षात् महारुद्र, योगी, सिद्ध और सारसङ्केकत-दर्शक होता है। कण्ठ में धारण करने पर सभी लोकों में विजयी, राजत्व-प्राप्ति होती है। दाहिने हाथ में धारण करने पर साधक धनवान्, गुणवान, अकालमृत्यु एवं सर्वव्याधि को दूर करनेवाला हो जाता है।[२]

इसके पाठ से अनेक तरह के स्तम्भन करने में साधक समर्थ हो जाता है। यथा, जलस्तम्भन, वीर्यस्तम्भन, वह्निस्तम्भन, वज्रस्तम्भन आदि।[३] अन्ततः इस सहस्रनाम का पाठक धर्मार्थकाममोक्ष एवं कीर्ति की प्राप्ति करता है तथा आत्मदृष्टिपात अर्थात् आत्मा के स्वरूप से परिचित हो जाता है।[४]

(६) कुण्डलिनी-सहस्रनाम-इस सहस्रनाम-स्तोत्र के ऋषि हैं–ब्रह्मा, छंद-जगती, देवता-श्रीमन्महाकुण्डलिनी तथा इसका विनियोग सर्वयोग-समृद्धि की सिद्धि के लिए करना चाहिए। इस सहस्रनाम का क्रम "श्री मन्महाकुण्डली च कुलकन्या कुलप्रिया" से प्रारम्भ होकर "सर्वत्र सर्वदेशे च कुलरूपा सदाऽवतु" पर्यन्त है।[५]

इस सहस्रनाम से कुलकुण्डलिनी देवी के सभी मन्त्र, सभी देवता और मनुष्य की चेतना, अणिमादि अष्टासिद्धि, साधकों के हित सिद्ध होते हैं।[६] साधक आसव और नरमांस के द्वारा कुलबद्ध होकर महारात्रि में प्रत्येक नाम का उच्चारण कर कार्यसिद्धि के लिए हवन करे। पञ्चाचाररत होकर यदि ऊर्ध्व रेता हो तो साधक एक वर्ष में आनन्दभैरवी की कृपा प्राप्त करता है। उसे ऐहिक कार्य सिद्धि सर्वसिद्धि तथा तीनों लोक वशीभूत हो जाते हैं। वही परमयोगी है,

१. रुद्रयामल, उ०त०, ७२/१३-१३३
२. वही, ७२/१३६-४४
३. वही, ७२/१४७-१५३
४. वही, ७२/१५८
५. वही, ३६/६-१९१
६. वही, ३६/१९२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो इसका अर्थ सुस्पष्ट जानता है। जो इसका जाप करता है, वह शिवमय हो जाता है, वही ध्यानस्थ-समाधिस्थ हो पाता है। जो साधक भक्तिपूर्वक इसे कण्ठ, सिर या भुजा में धारण करता है, वह सहसा चतुर्व्यूह से मुक्त हो जाता है, वही काली का पुत्र है, विद्यानाथ, धनवान्, पुत्रवान्, योगी, सर्वज्ञ है। स्त्री यदि इसे बाँयीं भुजा में धारण करे तो सर्वसिद्धीश्वरी हो जाती है।[१]

(७) कुमारी-सहस्त्रनाम—इस सहस्त्रनाम कचव के ऋषि हैं—बटुकभैरव छंद-अनुष्टुप्, देवता-कुमारी तथा इसका विनियोग सभी मन्त्रों की सिद्धि-समृद्धि के लिए करना चाहिए। इस सहस्त्रनाम की शृंखला "ओं कुमारी कौशिकी काली कुरूकुल्ला कुलेश्वरी" से प्रारम्भ होकर "औपकारी अंशरूपा अस्त्रबीजप्रकाशनी" पर्यन्त है।[२]

जो साधक भक्तिपूर्वक इस सहस्त्रनाम का पाठ करता है, उसे सभी विद्याओं का फल प्राप्त होता है तथा वह दिन-रात मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर होता है।......इसके जाप एवं पाठ से अकस्मात् सिद्धि मिलती है। इसी तरह इसके पाठ से अनेक लाभ हैं।[३]

इसका पाठ उटज, जंगल के बीच, पर्वत, भीषण कानन, कान्तार, प्रेतभूमि, महारणक्षेत्र, शून्यागार, नदीतट, गङ्गागर्भ, योनिपीठ, गुरू का घर, देवगृह, कन्यागार, कुलालय, भूगर्भ, शिवाकुल, पीपल या बेल के पेड़ के नीचे, कुलवृक्ष के समीप तथा अन्य सिद्ध स्थान में करना चाहिए।[४]

इसे पुरुष दक्षिण भुजा में तथा स्त्री बाँयीं भुजा में धारण करे तो पुत्रादि संपत्ति की प्राप्ति होती है। आनन्दभैरवी की कृपा से मोक्ष प्राप्त होता है तथा सहस्त्रनाम के भक्तिपूर्वक पाठ से सर्वत्र फलोदय होता है।[५]

(ङ) स्तोत्र

कुलार्णव तंत्र के १७ वें उल्लास में कहा गया है कि—

स्तोक-स्तोकेन मनसः परमप्रीतिकारणात्।
स्तोत्रसन्तरणाद् देवि! स्तोत्रमित्यभिधीयते।।[६]

अर्थात् "स्तोक यानि अल्प ही से मन को अति प्रसन्न करने से और स्तोतृ अर्थात् स्तुति (प्रशंसा) द्वारा पार होने से 'स्तोत्र' कहलाता है"। इसके अनुसार स्तोत्र से मन की प्रसन्नता, कष्टों से सन्तरण एवं इष्टदेव की प्रीति-कृपा प्राप्त होती है। स्तोत्र में देवता का गुणानुवाद, आत्मनिवेदन तथा इच्छा-सम्प्राप्ति की प्रार्थना तो रहती ही है, साथ ही उनमें देवता सम्बन्धी बीजमन्त्र, तंत्र, यंत्र और विधान भी रहते हैं, जिनका अभिप्राय यह रहता है कि स्तोत्र-पाठ के साथ ही मन्त्रजपादि भी होते रहें। स्तोत्र-पाठ से श्रद्धा जागृत होती है, आत्मविश्वास दृढ़ होता

---

१. रुद्रयामल, उ०त०, ३६/१९७-२०४
२. वही, १०/१०-१४३
३. वही, १०/१४५-६०
४. वही, १०/१६१-६५
५. वही, १०/१७८-७९
६. कुलार्णवतंत्र, १७ वाँ उल्लास

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है और इन दोनों के आधार से बुद्धि और निर्णय का बल प्राप्त होता है। मानसिक शक्ति के विकास का यही मूल आधार है। अतः स्तोत्र-पाठ को उपासना में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।[1]

विवेच्यग्रन्थ में डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, कन्दवासिनी, भेदिनी, योगिनी, श्रीकृष्ण, रुद्राणी, मृत्युञ्जय, काली आदि के स्तोत्र वर्णित हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(१) डाकिनी-स्तोत्र–डाकिनी मूलाधार-चक्र की देवी है। अतः कुण्डलिनी-साधना में मूलाधार-चक्र में सुषुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत करने हेतु डाकिनी-स्तोत्र का भी पाठ किया जाता है। रुद्रयामल के ३० वे पटल में डाकिनी-स्तोत्र का वर्णन है।[2] एक श्लोक द्रष्टव्य है–

या देवी नवडाकिनी सुरमणी विज्ञानिनी मोहिनी
मां पातु प्रियकामिनी भवविधेरानन्दसिन्धूद्भवा।
मे मूलं गुणभासिनी प्रचयतु श्रीकीर्तिचक्रं हि मां
नित्या सिद्धिगुणोदया सुरदया श्रीसंज्ञया मोहिता।।[3]

डाकिनी के साथ ब्रह्म का ध्यान करके इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। इस स्तोत्र के पाठ एवं धारण से साधक को योगिनी की सङ्गति प्राप्त होती है एवं महापातक का नाश होता है। एक रूप विशालनयनाम्बुज जगन्नाथ का ध्यान करके स्तोत्र का पाठ करने पर साधक योगिराड् होता है।[4]

(२) राकिणी-स्तोत्र–राकिणी स्वाधिष्ठान-चक्र की देवी है। अतः षट्चक्र-भेदन क्रम में राकिणी-स्तोत्र का भी पाठ किया जाता है। प्रकृत ग्रन्थ में यह स्तोत्र ४१ वें पटल में वर्णित है।[5] कुण्डलीवधू राकिणी-स्तोत्र का एक श्लोक निम्न लिखित है–

या राकिणी त्रिजगतामुदयाय चेष्टा
संज्ञामयी कुलपरा कुलवल्लभस्था।
विश्वेश्वरी स्मरहरप्रियकर्म्मनिष्ठा
कृष्णप्रिया मम सुखं परिपातु देवी।।[6]

इस स्तोत्र का पाठ षट्चक्र-भेदनकाल, कुलविन्याससमय एवं कुलचक्रप्रवेश के समय सदा करना चाहिए। दिन में तीनों सायं इसका जाप एवं पाठ करने पर साधक भवबन्धन से मुक्त हो जाता है तथा अचलाभक्ति प्राप्त करता है। इसके पाठ से साधक शीतल और गुणवान् होता है।[7]

(३) लाकिनी-स्तोत्र–लाकिनी मणिपुर-चक्र की देवी है। अतः षट्चक्रभेदन क्रम में

---

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५६
२. रुद्रयामल उ०त०, ३०/२७-३६
३. वही, ३०/२९
४. वही, ३०/३७-३८
५. वही, ४१/१८-३५
६. वही, ४१/२०
७. वही, ४१/३६-४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका भी स्तोत्र-पाठ किया जाता है। प्रकृत ग्रन्थ में लाकिनी-स्तोत्र पटल संख्या-४५ एवं ५० में वर्णित है।[१] एक श्लोक द्रष्टव्य है-

चन्द्राभाकरणाश्रया श्रयति या शब्दच्छटा या उमा
मायामोहमहोदयोदयति या कृष्णक्रियामोहिनी।
लक्ष्मीर्नीलकलेवरा मम मणेः पूरं सदा रक्षतु
श्रीविद्याऽभयदायिनी त्वमपि सा मे नाभिमूलोदया।।[२]

इस स्तोत्र के पाठ से साधक को भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा साधक चिरंजीवी होता है एवं कुलमार्ग व मणिपुर-चक्र में स्थिरता प्राप्त होती है। भक्तिपूर्वक पाठ करने पर कुलमार्ग के प्रसाद से साधक योगी होता है।[३]

(४) काकिनी-स्तोत्र-काकिनी देवी अनाहत-चक्र की देवी है। इसका स्तोत्र-पाठ भी स्वभावतः षट्चक्रभेदन क्रम में किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के ६० वें पटल में यह स्तोत्र वर्णित है।[४] स्तोत्र का एक श्लोक इस प्रकार है-

सर्वेभजन्ति निजमोक्षफलाय नित्यं
दीनोऽहमद्य भुवनेशि! मुद्राऽऽश्रयामि
त्रैलोक्यपूजितपदं हृदयाम्बुजस्थं
चित्तप्रकाशकमशेषसुखानुभूतम्।।[५]

शाकिनी-स्तोत्र-शाकिनी विशुद्ध-चक्र की देवी है। षट्चक्रभेदन क्रम में इसके स्तोत्र का भी पठन किया जाता है। रुद्रयामल के ७० वें पटल में शाकिनी-स्तोत्र वर्णित है।[६] एक श्लोक दर्शनीय है-

सूक्ष्मां स्थूलाप्रभाढ्यां चरणतलविभाकोटिवन्धूककान्तिं
कान्तानां कामकान्तां जयरति भवतीं शाकिनीं शोकहन्त्रीम।
शब्दान्तः प्रान्तरस्थां स्थितिलयगगनां पद्मरागस्त्रजाढयां
कान्त्या विश्वं ज्वलन्तीं मदनवधुरमाबीजमालां स्मरामि।।[७]

इस स्तोत्र का पाठ करते हुए यदि ध्यान किया जाए तो पुण्य [illegible] पीठादि का दर्शन होता है, योगियों को सिद्धि मिलती है तथा राजा भी वशीभूत हो जाता है।

(६) हाकिनी-स्तोत्र-हाकिनी आज्ञा-चक्र की देवी है। स्वभावतः षट्चक्र-क्रम में

१. रुद्रयामल उ०त०, ४५/२५-३३ एवं ५०/३-२७
२. वही, ५०/९
३. वही, ५०/२९-३२
४. वही, ६०/१-१६
५. वही, ६०/९
६. वही, ७०/४-१९
७. वही, ७०/७
८. वही, ७०/२०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस स्तोत्र का भी पाठ किया जाता है। विवेच्य ग्रन्थ के ८६ वें वटल में हाकिनी-स्तोत्र वर्णित है।[१]

स्तोत्र का एक श्लोक इस प्रकार है-

हिरण्यालङ्कारां त्रितयनयनां पट्टवसनां
महास्निग्धां शुद्धां कुलजनवरामिन्दुवदनाम्।
सदा स्तौमि श्रीदां भुवनकरूणां भावतरूणां
त्रिवेणीश्वेताभां वसमयतनुं भ्रू-युगदले।।[२]

इस स्तोत्र का पाठ ध्यान और न्यास से समन्वित होकर करना चाहिए। प्रतिदिन चार बार पाठ करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है।.....एक हजार बार पाठ करने पर पुरश्चर्या का फल प्राप्त होता है। इसे श्मशान, निर्जन स्थान, वन या अन्तरिक्ष में पढ़ने पर योगी अमर, वाग्मी, ज्ञानवान्, और जितेन्द्रिय होता है तथा भ्रूपद्म में स्थिरता प्राप्त होती है।[३]

(७) कन्दवासिनी-स्तोत्र-शरीर में मूलाधार-चक्र की जहाँ स्थिति बताई गई है, वह स्थान है-कन्द (sacrum)। कन्द-स्थान में महाशक्ति कुण्डलिनी के अतिरिक्त एक और शक्ति की कल्पना की गई है, जिसका नाम है-कन्दवासिनी। इस शक्ति की पूजा, ध्यान और स्तोत्र-पाठ आदि मूलाधार-चक्र की साधना में सहायक है।[४]

विवेच्य ग्रन्थ के २८ वें एवं ३२ वें पटल में कन्दवासिनी-स्तोत्र की महिमा गायी गई है।[५] स्तोत्र का एक श्लोक उद्धृत है-

श्रीकुण्डे रणचण्डिका सुरतिका कङ्कालिका बालिका
साकाशा परिवर्जिता सुगतिका ज्ञानोर्मिका चोत्मुका।
सौक्ष्मा सूक्ष्मसुखप्रिया गुणनिका दीक्षा च सूक्ष्माख्यका
सानन्दं मम कन्दवासिनि शिवे। संत्राहि संत्राहि कम्?[६]

सर्वदा तथा सभी समय इस स्तोत्र के पाठ से साधक कालयोगेन्द्र और महाविद्यानिधि हो जाता है। मूलपद्मबोधन, मूलप्रकृतिसाधन, निजमन्त्रबोधन और घोरसंकटकाल में इसका पाठ करने पर विपत्ति उसी तरह नष्ट हो जाती है, जैसे सूरज के उगने पर अँधेरा।[७] इसके पाठ से राजा की तरह साधक सर्वेश, सर्वकर्त्ता हो जाता है, अपने घर में योग-योगांग का वक्ता (ज्ञानी) एवं परमपुरुष निर्मलात्मा-महात्मा हो जाता है। इस स्तोत्र को प्रणव से पुटित करके जो इसका पाठ करता है, वह भूतल पर कुण्डलीपुत्र हो जाता है।[८]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ८६/३-१९
२. वही, ८६/४
३. वही, ८६/२०-२७
४. रुद्रयामल उ०त०: धर्म दौर दर्शन, पृ०-१७८-७९
५. रुद्रयामल उ०त०, २८/७१-८९ एवं ३२/२१-३१
६. वही, ३२/३०
७. वही, २८/९०-९२
८. वही, ३२/३१-३२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(८) भेदिनी-स्तोत्र–मूलाधार-चक्र से आज्ञाचक्र के भेदन में भेदिनी, छेदिनी और कन्दवासिनी शक्तियों की पूजा, ध्यान, स्तोत्र आदि का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।[१] विवेच्य ग्रन्थ के के ३१ वें पटल में भेदिनी-स्तोत्र वर्णित है।[२] एक श्लोक द्रष्टव्य है–

या भेदिनी सकलग्रंथिविनाशनानां
धर्म्मान्तरे सकलशत्रुविनाशनस्था।
सा मे सदा प्रतिदिनं परिपातु देहं
कालार्थिका भगवती सुतकार्य्यकर्त्री।।[३]

इस स्तोत्र का पाठ करके जो मूलाधार में आनन्दभैरवी का ध्यान करता है वह योग को प्राप्त करता है, उसका मन शान्त होता है, शीघ्र राजत्व प्राप्ति होती है, वायुवश में होकर अकस्मात् सिद्धि मिलती है।[४]

(९) योगिनी-स्तोत्र–योगिनी तंत्र[५] में देवी ईश्वर से यामिनी-गणों की उत्पति जानने की इच्छुक है। ईश्वर देवी से योगिनी की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए सृष्टि के आदि में परस्पर अपनी उपस्थिति का स्मरण दिलाते हैं।[६] उस समय किसी के साथ देवी के वार्त्तालाप के प्रसङ्ग का ईश्वर ने स्मरण दिला कर कहा कि काली रूप तुम्हारी रश्मि से घोर रूपवाली, महायुद्ध में उत्सुक करोड़ों योगिनियाँ उत्पन्न हुईं और वे सब सूर्यमय रूप में प्रकाशित हुईं।[७]

वस्तुतः शिव की महाशक्ति की अंनत लीलायें हैं। असंख्य शक्तियों में वही महाशक्ति अधिष्ठित है। योगिनी आदि उसी की अन्यान्य संज्ञायें हैं।[८] विवेच्य ग्रन्थ के ३१ वें पटल में योगिनी-स्तोत्र का वर्णन हुआ है।[९] एक श्लोक इस प्रकार है–

या योगिनी सकलयोग-सुमन्त्रणाद्या
रूच्या महद्भणमयी करूणानिधाना।
सा मे भयं हरतु वारणमत्तचित्ता
संहारिणी भवतु सोदररत्नहारा।।[१०]

इस स्तोत्र का पाठ करने वाला साधक प्रियभक्त होता है तथा मूलपद्म में स्थिर होकर षट्चक्रों का भेदन करके सहस्र-राज्य को प्राप्त करता है।[११]

---

१. रुद्रयामल उ०त० : धर्म ओर दर्शन, पृ०-१८४
२. रुद्रयामल उ०त०, ३१/८-१५
३. वही, ३१/८
४. वही, ३१/१६-१७
५. योगिनी तंत्र, पूर्वखण्ड, ८/३
६. वही, ८/८
७. वही, ८/६७-६८
८. रुद्रयामल उ०त० : धर्म और दर्शन, पृ०-१७८
९. रुद्रयामल उ०त०, ३१/३७-४३
१०. वही, ३१/४२
११. वही, ३१/४४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१०) रुद्राणी-स्तोत्र–महाशक्ति की एक शक्ति रुद्राणी भी है। रुद्रयापमल उ० त० के ४७ वें पटल में रुद्राणी-स्तोत्र वर्णित है।[१] आनन्द भैरवी का कथन है कि रुद्राणी-स्तोत्र के श्रवण, पठन या धारण से साधक महासिद्ध होता है तथा काल को भी वश में कर लेता है।[२]

इस महारुद्रशक्ति-स्तोत्र के ऋषि हैं–महाकालभैरव, छंद-अनुष्टुप, देवता-श्रीरुद्ररूपिणी, बीज-वाँ, शक्ति-द्रां, कीलक-स्फें स्फें तथा इसका विनियोग सर्वाभीष्ट सिद्धि के लिए जप में करना चाहिए। एक श्लोक स्तोत्र का इस प्रकार है–

रसा सिद्धिदात्री शिवानन्दकर्त्री
महामैथुनानन्दसम्भेदनत्वात्।
सुखाश्वास-तत्त्वात्तपः प्राणरक्षा
त्वमेका परं ब्रह्मरूपेण सिद्धा।[३]

(११) मृत्युञ्जय-स्तोत्र या रुद्रमृत्युञ्जय-स्तोत्र–इस स्तोत्र के ज्ञान से सभी योगी षट्चक्रभेदन में समर्थ हो जाते हैं तथा मोक्षाभिलाषी आकाशगामिनी हो जाता है। सर्वरक्षाकर इस स्तोत्र के पाठ से साधक महादेव-स्वरूप हो जाता है।[४] प्रकृत ग्रन्थ में यह स्तोत्र ४९ वें पटल में वर्णित है।[५] स्तोत्र का एक श्लोक द्रष्टव्य है–

भजामि शम्भुं सुखमोक्षहेतुं रुद्रं महाशक्तिसमाकुलाङ्गम्।
रौद्रात्मकं रुद्रहिमांशुशेखरं कालं कुलेशं शिवशङ्करञ्च।।[६]

इस स्तोत्र का नित्य पाठ करने से साधना के मध्य में रोगादि विकार नहीं सताते हैं। इसमें शिव की स्तुति सुख एवं मोक्ष के लिए की गई है। नमनात्मक स्तुतिपरक यह स्तवन सद्यः फलद है। यदि मणिपुर में ही कुम्भक करके इसका पाठ किया जाए तो साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।[७]

(१२) काली-स्तोत्र–दस महाविद्याओं में प्रथम महाविद्या काली है। रुद्रयामल में भी कहा गया गया हैं–'आद्या देवी कालिकाख्या केवला निष्कला शिवा'।[८]

काली काल अर्थात् समय की शक्ति है। शिव का एक नाम है–महाकाल। मृत्यु को भी काल नाम से संबोधित किया जाता है। मृत्यु के देवता हैं–यम। यम का अर्थ होता है नियंत्रण या निरोध। मृत्यु के देवता यम जीवन के काल-चक्र को अपने नियंत्रण में रखते हैं। दूसरे शब्दो में, काल-चक्र में सृष्टि की सीमा तथा विस्तार को यम नियंत्रित करते हैं। यम वस्तुतः

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ४७/७-५९
२. वही, ४७/१-२
३. वही, ४७/३०
४. वही, ४९/४-५
५. वही, ४९/६-३०
६. वही, ४९/६
७. वही, रुद्रयामल तंत्र, पृ०-२९७
८. रुद्रयामल उ०त०, ७५/३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक अवधारणा है, जो काल की अवधारणा को नियन्त्रित कर सृष्टि को संचालित करता है। काली काल की इसी अवधारणा या पक्ष की शक्ति है–निरोधक शक्ति या नियन्त्रित शक्ति।[१]

कालचक्र सनातन है। उसे कोई नियन्त्रित नहीं करता। यम सृष्टि, मनुष्य, पशु–पक्षी, वनस्पति, पदार्थ तथा भौतिक जीवन के अन्य समस्त क्षेत्रों के परिवर्त्तन–क्रम को, व्यक्त या दृश्य अवस्था को नियन्त्रित करते हैं। अव्यक्त सनातन है, सतत् गतिशील है, संहार के समय उसका रूप दूसरा हो जाता है। इसी सनातन, अव्यक्त और अनुभवातीत काल–सिद्धान्त को समझने हेतु तंत्र में काली–आराधना या काली–उपासना की पद्धति है। कालशक्ति का अनुभव करना विद्याओं की प्रथम साधना, क्रिया और अनुशासन है।[२]

काली का वास्तविक रूप है[३]–

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीं।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम्।।
मुण्डमालाधंरा देवीं ललज्जिह्वा दिगम्बरां।
एवं संचितयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम्।।

रुद्रयामल में भी कहा गया है[४]–

कपाला मुण्डमालाढ्या शववाहनवाहना।
ललज्जिह्वा सरोजाक्षी चन्द्रकोटिसमोदया।।
वाय्वग्नि भूजलान्तस्था भवानी शून्यवासिनी।

विवेच्य ग्रन्थ में काली का स्तवन ७५ वें पटल में किया गया है।[५] एक श्लोक इस प्रकार है–

भास्वत्कोटिप्रचण्डानलगुणललिता भाविता सिद्धकाली
प्रोक्तं यद्योगगीतावचनसुरचनामङ्गलं योगिनाद्या।
श्यामानन्ददुमाख्ये भजनयजनगङ्गाङ्गतीरप्रकाशं
सर्वानन्दोत्सवत्वं वरदसुखदासम्भवे मय्यभावे।[६]

इस स्तवन का पाठ करने से साधक परमराज्य को प्राप्त करता है। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में स्तवन का पाठ यदि सौ बार किया जाए तो मोक्ष और पुरश्चर्याफल प्राप्त होता है।[७]

---

१. तंत्रदर्शन, पृ०–७४
२. वही, पृ०–७४–७५
३. वही, पृ०–७५ पर उदधृत
४. रुद्रयामल उ०त०, ७५/५–६
५. वही, ७५/८–४५
६. वही, ७५/१६
७. वही, ७५/४६–४७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी तरह इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण-स्तोत्र[1], कुमारी-स्तव[2] आदि का भी वर्णन किया गया है।

शारीरिक चक्र और उनकी साधना

तंत्र और योग में आन्तरिक मनुष्य का एक निश्चित मानचित्र है। तंत्र और योग की मान्यता है कि मनुष्य के शरीर-विज्ञान में सात केन्द्र हैं, सूक्ष्मशरीर में, न कि स्थूल शरीर में।[3] ये सात चक्र हैं-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार। चक्रों को बहुधा लोग आधुनिक शरीर-विज्ञान द्वारा प्रदर्शित स्नायुओं के गुच्छों के समान मानते हैं, किंतु बात वास्तव में ऐसी है नहीं। संस्कृत ग्रन्थों में जिन कुण्डलिनी और चक्रों का वर्णन है, वे स्थूल देह से सम्बन्धित नहीं हैं, प्रत्युत वे सूक्ष्मदेह में अवस्थित होते हैं।[4]

मनुष्य के व्यक्तित्त्व को सात शंरीरों में विभक्त किया जा सकता है-

(१) स्थूल शरीर या 'फिजिकल बॉडी', जिसे हम सब जानते हैं। (२) आकाश शरीर या 'इथरिक बॉडी' (३)सूक्ष्म शरीर या 'एस्ट्रल बॉडी' (४) मनस् शरीर या 'मेंटल बॉडी' (५) आत्मिक शरीर या 'स्पिरिच्युल बॉडी' (६) ब्रह्म शरीर या 'कॉस्मिक बॉडी' तथा (७)निर्वाण शरीर या 'बॉडीलेस बॉडी'। बाद का हर शरीर पहले के शरीर से सूक्ष्म होता चला जाता है।[5] जैसे सात शरीर हैं, ऐसे ही सात चक्र भी हैं। प्रत्येक चक्र मनुष्य के एक शरीर से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है।[6]

इसी बात को शास्त्रीय ढंग से पाँच शरीरों के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है। तान्त्रिक शरीर-विज्ञान में सर्वप्रथम पंचकोशों का वर्णन आता है। मनुष्य के पाँच शरीर होते हैं, जिनके द्वारा वह जीवन में समस्त क्रियाओं का सम्पादन करता है। वे हैं-अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश[7]। ये पाँचों शरीर एक-दूसरे से अभिन्न हैं तथा नाड़ियों, प्राण और चक्रों के माध्यम से अन्तर्ग्रथित हैं।[8]

(१) स्थूल शरीर या भौतिक शरीर-जीवन के पहले सात वर्ष में भौतिक शरीर ही निर्मित होता है, बाँकी सारे शरीर बीजरूप होते हैं, उनके विकास की सम्भावना होती है, लेकिन वे विकसित उपलब्ध नहीं होते। पहले सात वर्ष इसलिए अनुकरण के ही वर्ष हैं। पहले वर्षों में कोई बुद्धि, कोई भावना, कोई कामना विकसित नहीं होती, विकसित होता है सिर्फ भौतिक शरीर।[9] तंत्र के अनुसार अन्नमय कोश का यह भौतिक शरीर या पदार्थमय स्थूल शरीर

१. रुद्रयामल उ०त०, ३९/७-३०
२. वही, ८/१४-३३
३. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२३०
४. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-५, पृ०-२४
५. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-१९७
६. वही, पृ०-२२१
७. तंत्र दर्शन,पृ०-८
८. वही, पृ०-९
९. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-१९७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। तंत्र के अनुसार इस सृष्टि में, सब कुछ पंचतत्त्वों से ही निर्मित है और जिस दिन शरीर के पंचतत्त्व नष्ट हो जायेंगे, शरीर अस्तित्त्वहीन हो जाएगा।.....समस्त पदार्थमय जीवन अन्न के ही परिवर्तित रूप हैं। इसलिए भौतिक शरीर को अन्नमय माना गया है। अन्य विचारधाराओं और सिद्धान्तों में शरीर की विभिन्न उपमाएँ दी गई हैं। वेदान्त में इसे मांस-पिण्ड कहा गया है। अन्य सिद्धान्तों के अनुसार भी शरीर रक्त-मांस-मज्जा से निर्मित है।[१]

इस अन्नमय कोश का संचालन करने के लिए नाड़ियों का समूह है। नाड़ियो के ये समूह स्थूल और सूक्ष्म, दोनों प्रकार के हैं। इन नाड़ियों के माध्यम से अन्नमय कोश में प्राणशक्ति का संचार होता है।[२]

(२) भाव-शरीर या आकाश-शरीर–दूसरे सात वर्ष में भाव-शरीर या आकाश-शरीर का विकास होता है। इसलिए दूसरे सात वर्ष व्यक्ति के भाव-जगत् के विकास के वर्ष हैं। १४ वर्ष की उम्र में इसलिए यौन परिपक्वता उपलब्ध होती है, वह भाव का बहुत प्रगाढ़ रूप है। कुछ लोग १४ वर्ष के होकर ही रह जाते हैं; शरीर की उम्र बढ़ती जाती है, लेकिन उनके पास दो ही शरीर होते हैं।[३]

इस शरीर को प्राणमय कोश कहा जा सकता है। यह मनुष्य का सूक्ष्म शरीर है, जो ऊर्जा से निर्मित है।.......तंत्रशास्त्र के अनुसार प्राणमय शरीर लाल रंग का है। अन्नमय कोश के भीतर प्राणमय कोश या सूक्ष्म शक्ति की अभिव्यक्ति है।[४]

जिसका भाव शरीर विकसित नहीं हुआ, उसके जीवन का रस खाने-पीने पर समाप्त हो जाएगा। जिस कौम में पहले शरीर के लोग ज्यादा मात्रा में हैं, उसकी जीभ के अतिरिक्त कोई संस्कृति नहीं होगी। जिस कौम में अधिक लोग शरीर के हैं, वह कौम यौन-केन्द्रित हो जाएगा; उसका सारा व्यक्तितत्त्व-उसकी कविता, संगीत, फिल्म, नाटक, चित्र.......सब किसी अर्थों में यौन-अभिमुखी हो जाएगा।[५]

(३) सूक्ष्म शरीर या 'एस्ट्रल बॉडी'–तीसरे सात वर्षों में सूक्ष्म शरीर विकसित होता है–२१ वर्ष की उम्र तक। दूसरे शरीर में भाव का विकास होता है; तीसरे शरीर में तर्क, विचार और बुद्धि का विकास होता है। दूसरे शरीर के विकास के बाद १४ वर्ष में एक तरह की प्रौढ़ता मिलती है; लेकिन वह यौन प्रौढ़ता है। प्रकृति का काम उतने से पूरा जाता है। इसलिए पहले और दूसरर शरीर के विकास में प्रकृति पूरी सहायता देती है; लेकिन केवल दूसरे के विकास से मनुष्य, मनुष्य नहीं बन जाता। तीसरा शरीर.... जहाँ विचार, तर्क और बुद्धि विकसित होते हैं, वह शिक्षा-संस्कृति, सभ्यता का फल है। इसलिए दुनिया के सभी देश प्राय: २१ वर्ष के व्यक्ति को मताधिकार देते हैं।[६]

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-८
२. वही, पृ०-८
३. जिन खोजा तिन पाईयाँ, पृ०-१९८
४. तंत्र दर्शन, पृ०-८
५. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-१९८-९९
६. वही, पृ०-१९८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र के दृष्टिकोण से इसे मनोमय कोश कहा जा सकता है। मनोमयकोश वस्तुतः मन, बुद्धि और चित्त से बना है। यह चेतना की स्थूल अभिव्यक्ति का प्रतीक है, जो चेतना का जगत् से सम्बन्ध स्थापित करती है। मनोमय के अन्तर्गत मन की विभिन्न स्थितियों, विभिन्न भौतिक और बौद्धिक स्तरों का वर्णन किया जाता है।[1]

जब भी किसी कौम या समाज की जिन्दगी में तीसरे शरीर का विकास महत्त्वपूर्ण हो जाता है, तो बड़ी वैचारिक क्रान्तियाँ घटित होती हैं। बुद्ध और महावीर के समय में बिहार ऐसी ही स्थिति में था। इसलिए बुद्ध और महावीर की हैसियत के आठ आदमी (मक्खलि गोशाल, पकुधकच्चायन, अजित केशकम्बलिन, संजय वेलट्ठिपुत्त, पूरण काश्यप आदि) बिहार के छोटे से देश में पैदा हुए और हजारों प्रतिभाशाली लोग पैदा हुए। सुकरात और प्लेटो के समय यूनान की तथा कन्फ्यूशियस और लाओत्से के समय चीन की भी ऐसी ही स्थिति थी। लेकिन आमतौर से तीसरे शरीर पर मनुष्य रुक जाता है।[2]

(४) मनस्-शरीर–सम्मोहन, टेलीपैथी, क्लैरवायेंस आदि ये सब चौथे शरीर की सम्भावनाएँ हैं। आदमी बिना समय और स्थान की बाधा के दूसरे से सम्बन्धित हो सकता है; बिना बोले दूसरे के विचार पढ़ सकता है, या अपने विचार दूसरे तक पहुँचा सकता है...शरीर के बाहर घूम सकता है; अपने इस शरीर से अपने को अलग जान सकता है। इस मनस्-शरीर की बड़ी सम्भावनाएँ हैं, जो हम बिल्कुल ही विकसित नहीं कर पाते हैं; क्योंकि इस दिशा में खतरे बहुत हैं। प्रथमतः इस दिशा में मिथ्या की बहुत संभावना है, क्योंकि जितनी चीज़ें सूक्ष्म होती चली जाती हैं, उतनी ही मिथ्या की सभावनाएँ बढ़ती चली जाती हैं। अब एक आदमी अपने शरीर के बाहर गया या नहीं, उसके अतिरिक्त और कोई गवाह भी नहीं होगा। इसलिए धोखे में पड़ जाने की बहुत गुंजाइश है। इसलिए असली धोखे का जो जगत् है, वह चौथे शरीर से शुरू होता है। और ऐसा नहीं है कि चौथे शरीर में जो धोखा दे रहा है, वह जरूरी रूप से जानकर दे रहा हो। बड़ा खतरा यह है कि वह अनजाने दे सकता है, स्वयं को या दूसरों को दे सकता है। कारण, चीज़ें इतनी बारीक और निजी हो गई हैं कि उसके खुद के पास भी कोई कसौटी नहीं है कि वह जाकर जाँच करे कि सच में जो हो रहा है, वह हो रहा है–कि वह कल्पना कर रहा है।[3]

इसलिए चौथे शरीर का जो उपयोग करनेवाले लोग थे, उनकी बहुत तरह की बदनामी और निन्दा हुई। यूरोप में हजारों स्त्रियों को जला डाला गया 'विचेज' कहकर, डाकिनी कहकर। हिन्दुस्तान में सैकड़ों तान्त्रिक मार डाले गये इस चौथे शरीर की वजह से, क्योंकि वे कुछ रहस्य जानते थे जो कि हमें खतरनाक मालूम पड़े। आपके मन में क्या चल रहा है, वे जान सकते हैं; आपके घर में कहाँ क्या रखा है, यह उन्हें घर के बाहर से पता हो सकता है।

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-८
२. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-१९९
३. वही, पृ०-१९९-२००

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसलिए सारी दुनिया में इस चौथे शरीर को एक तरह का काला जादू समझ लिया गया कि एक काले जादू की दुनिया है, जहाँ कोई भरोसा नहीं कि क्या हो जाए! लेकिन खतरों के साथ उतने ही अदभूत लाभ भी हैं।[१] इस चौथे शरीर की बड़ी सम्भावनाएँ है। जितनी भी योग में सिद्धियों का वर्णन है, वे सारे इस चौथ शरीर की ही व्यवस्था है। और निरन्तर योग ने सचेत किया है कि उनमें मत जाना। इसलिए सबसे बड़ा डर यही है कि उसमें मिथ्या में जाने के बहुत उपाय हैं और भटक जाने की बड़ी सम्भावनाएँ हैं। और अगर कोई वास्तव में ही चला जाए तो भी उसका आध्यात्मिक मूल्य नहीं है।[२]

कुण्डलिनी इस चौथे शरीर की घटना है।[३] कुण्डलिनी के अस्तित्त्व का कोई वस्तुगत प्रमाण नहीं है। उसे केवल अन्तर्दृष्टि से ही देखा जा सकता है।[४] किन्तु चौथे शरीर और इ.. शरीर के तालमेल पड़ते हुए स्थान हैं; जैसे हम सात कागज रख लें और एक 'आल्पीन' सातों कागज में डाल दें, और एक छेद सातों कागज में एक जगह पर हो जाये। अब स्थिति ऐसी हो कि पहले कागज पर छेद विदा हो गया, नहीं है–फिर भी दूसरे–तीसरे आदि कागजों पर जहाँ छेद है, उससे मिलान (कॉरेस्पाडं) करनेवाला स्थान पहले कागज पर भी है; छेद तो नहीं है, इसलिए पहले कागज की जाँच करने पर वह छेद नहीं मिलेगा। लेकिन पहले कागज पर भी कॉरेस्पांडिग (मिलता–जुलता) कोई बिन्दु है, जिस पर अगर हाथ रखा जाये तो वह तीसरे चौथे कागज पर जो बिन्दु है, उसी जगह पर होगा।

अतः इस शरीर में जो चक्र हैं, कुण्डलिनी आदि की जो बात है, वह इस शरीर की नहीं है, इसलिए कोई शरीरशास्त्री इन्कार करे तो गलत नहीं कह रहा है–वहाँ कोई कुण्डलिनी नहीं मिलती, कोई चक्र नहीं मिलता। वह किसी और शरीर पर है, लेकिन इस शरीर से सम्बन्धित बिन्दुओं का पता लगाया जा सकता है।[५]

कुण्डलिनी चौथ शरीर की घटना है।[६] चौथा शरीर कम लोगों का विकसित होता है। इसलिए दुनिया में चमत्कार हो रहे हैं।.......ताबीज निकाल देना, किसी आदमी की तस्वीर से राख गिरा देना आदि चौथे शरीर के लिए बड़ी साधारण सी बातें है। इसलिए इस दुनिया से अगर चमत्कार खत्म करने हों, तो लोगो को समझाने से खत्म नहीं होगें; चमत्कार खत्म करने हों तो जैसे हम तीसरे शरीर की शिक्षा देकर प्रत्येक व्यक्ति को गणित और भाषा समझने के योग्य बना देते हैं, उसी तरह हमें चौथे शरीर की शिक्षा भी देनी पडेगी, और प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह की चीजों के योग्य बना देना होगा; तब दुनिया से चमत्कार मिटेंगे, उसके पहले नहीं मिट सकते। कोई न कोई आदमी इसका फायदा लेता रहेगा।[७]

---

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०–२००
२. वही, पृ०–२०१
३. वही, पृ०–२०१
४. तंत्रा इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०–६८
५. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०–२०२
६. वही, पृ०२०२
७. वही, पृ०–२०४–२०५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चौथा शरीर २८ वर्ष तक विकसित होता है।[१]

(५) आत्म शरीर–पाँचवां शरीर आत्म-शरीर या अध्यात्म-शरीर है। अगर ठीक से जीवन का विकास हो, तो ३५ वर्ष की उम्र तक उसका विकास हो जाना चाहिए। लेकिन वह तो बहुत दूर की बात है। चौथा शरीर ही नहीं विकसित हो पाता। इसलिए आत्मा वगैरह हमारे लिए बातचीत है, सिर्फ चर्चा है; उस शब्द के पीछे कोई सार-तत्त्व, कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि आत्मा हमारा अनुभव नहीं है। वह पाँचवा शरीर है। चौथे शरीर में कुंडलिनी जगे तो ही पाँचवें शरीर में प्रवेश हो सकता है, अन्यथा पाँचवे शरीर में प्रवेश नहीं हो सकता।[२]

आत्म-शरीर को विज्ञानमय कोश कहा जा सकता है। बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् के अनुभवों को पारकर स्वयं को चेतना की जिस सूक्ष्म अवस्था में स्थापित किया जाता है, वही विज्ञानमय की अवस्था है।[३]

(६) ब्रह्मशरीर–छठवाँ शरीर ब्रह्म-शरीर है। जब कोई आत्मा को विकसित कर ले और उसको खोने को राजी हो,तब वह छठवें शरीर में प्रवेश करता है। अगर दुनिया में मनुष्य जाति वैज्ञानिक ढंग से विकसित करे, तो ४२ वर्ष तक यह हो जाना चाहिए।[४]

ब्रह्म-शरीर को आनन्दमय कोश कहा जा सकता है। इसका सम्बन्ध परा अनुभूति से है। जब मनुष्य समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है, तब इस उच्च अवस्था को प्राप्त करता है।[५]

(७) निर्वाण-काया–सातवाँ शरीर ४९ वर्ष की आयु तक विकसित हो जाना चाहिए। वह सातवाँ शरीर निर्वाण काया है; वह कोई शरीर नहीं है, वह देहशून्यता (बॉडीलेसनेस) की स्थिति है। वहाँ शून्य ही शेष रह जाएगा। वहाँ कुछ भी शेष नहीं है।[६] इसलिए बुद्ध से जब भी कोई पूछता है, वहाँ क्या होगा, तो वे कहते हैं; जैसे दीया बुझ जाता है, फिर क्या होता है? खो जाती है ज्योति। 'निर्वाण' शब्द का मतलब होता है, दीये का बुझ जाना; इसलिए बुद्ध कहते हैं, निर्वाण हो जाता है।[७]

सात शारीरिक चक्र

जैसे सात शरीर हैं, ऐसे ही सात चक्र भी हैं। प्रत्येक चक्र मनुष्य के एक शरीर से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। विभिन्न चक्रों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

(१) मूलाधार-चक्र (Ganglion coccygeal plexus)

भौतिक शरीर का चक्र है–मूलाधार। इस मूलाधार-चक्र का भौतिक शरीर से केन्द्रीय

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२०५
२. वही, पृ०-२०५
३. तंत्र दर्शन, पृ०-९
४. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२०५
५. तंत्र-दर्शन पृ०-९
६. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२०५
७. वही, पृ०-२०५-२०६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्बन्ध है; यह भौतिक शरीर का केन्द्र है।[१] मूलाधार का अर्थ है–सर्वाधिक मौलिक, आधारभूत। मूल का अर्थ है–आधारभूत, जड़। मूलाधार चक्र वह केन्द्र है जहाँ काम-ऊर्जा विद्यमान रहती है, किन्तु समाज ने इस चक्र को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया है।[२]

मूलाधार चक्र की दो सम्भावनाएँ हैं–एक इसकी प्राकृतिक सम्भावना है, जो हमें जन्म से मिलती है, और एक साधना की संभावना है, जो साधना से उपलब्ध होती है। मूलाधार चक्र की प्राकृतिक सम्भावना कामवासना है, जो भौतिक शरीर की केन्द्रीय वासना है। इस चक्र की एक दूसरी सम्भावना है, जो साधना से उपलब्ध होगी, वह ब्रह्मचर्य है। संभोग इसकी प्राकृतिक सम्भावना है और ब्रह्मचर्य इसका रूपांतरण है। जितनी मात्रा में चित्त कामवासना से केन्द्रित और ग्रसित होगा, उतना ही मूलाधार अपनी अंतिम सम्भावनाओं को उपलब्ध नहीं कर सकेगा।[३]

इसका अर्थ यह है कि जो हमें प्रकृति से मिली है, उसके साथ हम दो काम कर सकते हैं; या तो हम उसके साथ जीते रहें, भोग में लिप्त रहें, तब जीवन में साधना शुरू नहीं हो पायेगी। दूसरा यह कि हम इसे रूपांतरित करें। रूपांतरण के पथ पर खतरा यह है कि कहीं हम प्राकृतिक केन्द्र से लड़ने न लगें। तो दमन भी बाधा है। इसलिए न भोग, न दमन, बल्कि समझ साधन बनेगी। कामवासना को जो जितना समझ पायेगा, उतना ही उसके भीतर रूपांतरण होने लगेगा। उसका कारण है; प्रकृति के सभी तत्त्व हमारे भीतर अन्धे और मूर्च्छित हैं। अगर हम उन तत्त्वों के प्रति होशपूर्ण हो जायें तो उनमें रूपान्तरण होना शुरू हो जाता है। तो अगर कोई अपनी कामवासना के प्रति पूरे भाव और पूरे चित्त, पूरी समझ से जागे, तो उसके भीतर कामवासना की जगह ब्रह्मचर्य का जन्म शुरू हो जाएगा।[४]

समाज द्वारा क्षति–मूलाधार चक्र को समाज ने अत्यधिक क्षति पहुँचाया है। मूलाधार चक्र के तीन कोण हैं। षट्चक्रनिरूपण[५] में भी कहा गया है–'वज्रा नाड़ी के मुखभाव में मूलाधार पद्म की कर्णिका के मध्य विद्युत के समान, कामरूप तथा अतिकोमल त्रैपुर नामक त्रिकोण विलसित है।' इस त्रिकोण का एक कोण है मुख की ओर, दूसरा गुदा की ओर और तीसरी जननेन्द्रिय की ओर। बच्चा अपना जीवन मुख के साथ प्रारम्भ करता है और गलत पालन-पोषण के कारण ज्यादातर लोग मौखिक ही रह जाते हैं, वे कभी विकसित नहीं होते। बच्चा जितना चाहता है, उतना माँ उसे अपना दूध पीने नहीं देती, अतः होंठ असन्तुष्ट ही रहता है। इसलिए लड़का बाद में सिगरेट पीयेगा, एक बड़ा चुम्बन लेने वाला होगा, बहुत बड़ा पेटू होगा। यदि माँ अपना स्तन बच्चे को उसके जरूरत के अनुसार दे तो मूलाधार विक्षत नहीं होगा।[६]

---

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२१
२. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२३०
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ पृ०-२२१-२२
४. वही, पृ०-२२२
५. रूयामल उ०त० : धर्म और दर्शन, पृ०-३२९ पर वर्णित
६. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२३०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ लोग मुँह से हटकर गुदा पर अटक जाते हैं।......गुदा पर अटकने के कारण जननेन्द्रिय उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया। इसलिए इतनी अधिक समलैंगिकता है। जब तक गुदा-संकेन्द्रण ख़त्म नहीं होता, तब तक समलैंगिकता विश्व से खत्म नहीं हो सकती।[१]

कुछ लोग मुँह और गुदा पर न अटककर जननेन्द्रिय तक आए हैं। किन्तु संभोग के प्रति मनुष्य में बहुत बड़ा अपराध-बोध पैदा किया गया है। संभोग का अर्थ ही पाप हो गया है। संभोग की इतनी अधिक निंदा की गई है कि व्यक्ति इसका आनन्द नहीं उठा सकता।[२]

इस प्रकार ऊर्जा कहीं मुँह में, कहीं गुदा में, कहीं जननेन्द्रिय में अटक गई है। यह ऊपर नहीं जा सकती। तंत्र कहता है कि मनुष्य को इन तीनों का फिर से निर्माण करना होगा। तंत्र का कथन है कि पहला प्रमुख कार्य मूलाधार पर किया जाना है। मौखिक रूप से मुक्त होने के लिए चीखना, हँसना, चिल्लाना, रोना आदि बहुत सहायक हैं। गुदा से मुक्त होने के लिए प्राणायाम, वास्त्रिक, तेज-श्वाँस अधिक सहायक है, क्योंकि यह सीधे गुदा-केन्द्र पर चोट करता है और गुदा संस्थान से मुक्त और निर्भार करता है। तदनन्तर काम-केन्द्र को अपराध-भाव और निन्दा से मुक्त किया जाना है। इसके बारे में पुनः एक नए सिरे से सीखना होगा, केवल तभी आहत काम-केन्द्र स्वस्थ ढंग से कार्य कर सकता है। तंत्र सेक्स के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। यह कहता है कि संभोग अच्छा है, स्वस्थ है, स्वाभाविक है; किन्तु प्रजनन से और अधिक सम्भावना संभोग में है। संभोग में समाधि की सुगंध है। इस प्रकार मूलाधार चक्र को अपने अधिकतम रूप में काम करना है, तभी ऊर्जा प्रवाहित हो सकती है।[३]

स्थान व स्वरूप—मूलाधार चक्र की अवस्थिति 'कन्द' स्थान में बताई जाती है। यह 'कन्द' गुदा से २ अंगुल ऊपर तथा मेढ्र (लिङ्गमूल) के एक अंगुल नीचे का भाग है। इसका क्षेत्र चार अङ्गुल मान है। गुदा तथा मेढ्र के मध्य योनि-स्थान ही 'कन्द प्रदेश' है। यहीं मूलाधार-चक्र है, जिसके मध्य कुण्डलिनी की अवस्थिति है।[४]

मेरूदण्ड (पीठ की रीढ़) के मध्य चन्द्र-सूर्य-अग्नि स्वरूपा (बाई ओर) इड़ा (दाहिनी ओर) पिङ्गला और बीच में सुषुम्णा की कल्पना की गई है। यह सुषुम्णा कन्द-स्थान के मध्य से सिर की ओर प्रसरित है। इसके अन्दर बज्रा नाड़ी है। उसके भी मध्य चित्रा या चित्रिणी नाड़ी है। चित्रिणी के भी मध्य में उनका प्रवाह साधन रूप ब्रह्मनाड़ी है। इसका मुख ब्रह्मद्वार है। यह सुषम्णा का मुख तथा अमृत-धारामय प्रदेश का प्रवेश-स्थल है। यही मूलाधार-चक्र है।[५] वह शारीरिक अवयव-दृष्टि से गुदा-द्वार के ऊर्ध्व तथा जननेन्द्रिय के नीचे स्थित है। यह स्थान कन्द कहलाता है। मूलाधार में रक्त वर्ण के चार दल हैं, जिन पर दक्षिणावर्त्त मार्ग से 'वं

---

१. दँ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२३१-३२
२. वही, पृ०-२३२-३३
३. वही, पृ०-२३३-३४
४. शिव संहिता, ५/७४-७५
५. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक; १-३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शं षं सं' ये चार स्वर्णिम मातृकायें हैं।[१] आधार पद्म की कर्णिका के मध्य एक चतुष्कोण है, जिसे 'धरामण्डल' कहतें हैं, जो ८ शूलों से आवृत है। इसके मध्य धराबीज 'लं' है, जो चार भुजाओं वाला माना जाता है तथा जो ऐरावत पर आसीन है। धराबीज 'लं' के बिन्दु (अनुस्वार) में चतुर्मुख ब्रह्मा विराजमान हैं, जिनकी चार भुजायें दण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष और अभय मुद्रा से विभुषित हैं। कर्णिका में एक और रक्ताभ कमल है, जिरा पर शूल, खटवांग, खड्ग और चषक से युक्त चार भुजाओं वाली अधिष्ठातृ देवी (डाकिनी) विराजमान हैं। कर्णिका के ही मध्य में विद्युत्प्रभावत् 'त्रेपुर' नामक त्रिकोण है, जिसके अन्दर कामरूप पीठ, कामवायु और कामबीज 'क्लीं' है। इसी के थोड़ा-सा ऊपर स्वयम्भूलिङ्ग है, जिसका वर्ण श्याम है। इसी को कुण्डलिनी चारों ओर से साढे तीन वलय आवेष्टित किये है।[२]

मूलाधारपद्म-भेदन-मूलाधार-पद्म में अवस्थित स्वयम्भुलिङ्ग में आवेष्टित कुण्डलिनी को जागृत करना ही 'मूलाधारपद्म-भेदन' है। अन्य चक्रों का भेदन भी कुण्डलिनी का उन-उन चक्रों से जागृत होकर गुजरना है।

मूलाधार-पद्म का भेदन करने से जीव अमर हो जाता है। षट्चक्र के भेदन के लिए भेदिनी-शक्ति के मन्त्र, सभी ग्रन्थियों के छेदन के लिए छेदिनी-शक्ति के मन्त्र तथा उच्चस्तरीय साधना-कुण्डलिनी-जागरण के लिए योगिनीमन्त्र का जप करना चाहिए। भेदिनीमन्त्र[३] इस प्रकार है-"ॐ ॐ ॐ ॐ २ ॐ २ ॐ ॐ ॐ ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म सर्वसिद्धि-पालिका मां सत्त्वगुणे रक्ष रक्ष ह्रीं स्वाहा। ॐ भेदिनी मां प्रापय्य प्रापय्य चित्तचञ्चलतां रक्ष रक्ष भेदिनि! मम अकालमरणं हर हर स्वं स्वं महांपापं नमो नमः स्वाहा"।

उपरोक्त मंत्र के जाप से देवी डाकिनी साधक की रक्षा करती है। तदनन्तर छेदिनी-मन्त्र[४] का जाप करना चाहिए-

"ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ २ ॐ २ ॐ ॐ ॐ ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म सर्वसिद्धिपालिका मां सत्त्वगुणे रक्ष रक्ष ह्रीं स्वाहा। शाम्भवी ब्राह्मणी मनोनिवेशं कुरू कुरू तारय तारय छेदिनि! मम मानस-महान्धकारं छेदय छेदय स्वाहा।"

इस मन्त्र के जप से साधक जीवन्मुक्त होता है। तत्पश्चात् श्रीयोगिनी-मन्त्र[५] का जप करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है-

"ॐ घोररूपिणी सर्वव्यापिनिं पापं में शोकं रोगं हर विपक्षं छेदय योगं मय्यर्पय अर्पय स्वाहा।"

इस मन्त्र के जप से साधक योगी हो जाता है, खेचरत्व की प्राप्ति होती है तथा योगाभ्यास

१. वही, श्लोक-४; तुलनीय, रुद्रयामल उ०त०, २२/२
२. वही, श्लोक ५-१०
३. रुद्रयामल उ०त०, ३०/४-६
४. वही, ३०/७-१०
५. वही, ३०/११-१३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के द्वारा योगिराट् होता है। तदनन्तर इस चक्र की अधिष्ठातृ देवी ध्यान ब्रह्मा के साथ करना चाहिए। इसके लिए ब्रह्म-मन्त्र के साथ डाकिनी-मन्त्र का जप करना चाहिए–

ब्रह्म-मन्त्र–"ॐ ॐ ॐ ॐ २ ॐ २ ॐ ॐ ॐ ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म सर्वसिद्धिपालिका मां सत्त्पगुणे रक्ष रक्ष ह्रीं स्वाहा।"

डाकिनी-मन्त्र–"ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ डाकिनि! महाडाकिनि! ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं मम योगसिद्धिं साधय साधय।"

तदनन्तर डाकिनी-स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।[१] इस स्तोत्र का पाठ करने से मन्त्री को योगिनी की संगति होती है, महापातक का नाश होता है और वह योगिराट् की स्थिति को प्राप्त करता है। इसी चक्र की साधना में भेदिनी-स्तोत्र[२], छेदिनी-स्तोत्र[३], योगिनी-स्तोत्र[४], कन्दवासिनी-ध्यान[५], कन्दवासिनी-स्तव[६], कन्दवासिनी-कवच[७], तथा कुण्डलिनी-स्तव[८] व कुण्डलिनी-सहस्रनाम[९] का पाठ करने का भी विधान है।

(२) स्वाधिष्ठान-चक्र (Palvicor Sacral plexus)

स्वाधिष्ठान चक्र दूसरे शरीर भाव शरीर से सम्बन्धित है।[१०] स्वाधिष्ठान चक्र है–मृत्यु केन्द। स्वाधिष्ठान बिल्कुल वही केन्द्र है, जिसे जापान में 'हारा' कहा जाता है। इसी कारण जापान में आत्महत्या को 'हाराकिरी' कहते हैं–हारा केन्द्र के द्वारा अपने आपको मारना।[११]

मनुष्यता के इतिहास में मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान् चक्र-ये दो केन्द्र अत्यधिक क्षतिग्रस्त हुए हैं, क्योंकि मनुष्य संभोग और मृत्यु से भयभीत रहा है। तंत्र का कहना है कि संभोग और मृत्यु की उपेक्षा मत करो। एक बार यदि साधक मृत्यु और संभोग को स्वीकारता है तथा उससे भयभीत नहीं है, तो उसके ये दोनों प्रारम्भिक केन्द्र सहज हो सकते हैं। किन्तु ये दोनों प्रारम्भिक केन्द्र समाज के द्वारा बुरी तरह क्षतिग्रस्त किए गए हैं। अन्य पाँचों केन्द्रों को क्षति नहीं पहुँचायी गयी है। उन्हें क्षति पहुँचाने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि व्यक्ति उन पाँच केन्द्रों में नहीं रहा है। किन्तु ये दो केन्द्र (मूलाधार और स्वाधिष्ठान) स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हैं। जन्म हुआ है–काम केन्द्र-मूलाधार; और मृत्यु होने वाली है–स्वाधिष्ठान। ये दो

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ३०/ २७-३६
२. वही, ३१/८-१५
३. वही, ३१/२४-३२
४. वही, ३१/३७-४२
५. वही, ३२/६-१३
६. वही, ३२/२१-३१
७. वही, ३३/६-५६
८. वही, ६/२७-३४
९. वही, ३६/६-१९०
१०. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२२
११. दें तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बातें प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में है। इसलिए समाज ने इन दो केन्द्रों को नष्ट किया है और मनुष्य को संचालित करने, उन पर दबाब बनाए रखने की कोशिश की है।[१]

तंत्र कहता है–"जब भी प्रेम करो, उस पर ध्यान-पूर्ण हो जाओ। जब कोई मरता है ध्यानपूर्ण हो.ओ, जाओ, देखो, निरीक्षण करो, मरते हुए व्यक्ति के साथ गहरे ध्यान में जाओ। जब कोई मरता है तो वहाँ मृत्यु का स्वाद लेने की एक सम्भावना होती है; क्योंकि जब कोई व्यक्ति मर रहा होता है तो वह अपने स्वाधिष्ठान-चक्र से अत्यधिक ऊर्जा विसर्जित करता है। जब आदमी मरता है, तो एकाएक ऊर्जा फूटती है और चारों ओर फैल जाती है, और मृत्यु का एक स्वाद मिल सकता है। वह एक बड़ी मुक्ति देता है।"[२] मूलाधार के द्वारा जो कुछ भी दिया जाता है, वह स्वाधिष्ठान के द्वारा ले लिया जाता है।[३]

स्वाधिष्ठान चक्र की भी दो सम्भावनाएँ है। मूलतः प्रकृति से जो सम्भावना मिलती है-वह है भय, घृणा, क्रोध, हिंसा। अगर इन पर ही कोई अटक जाता है, तो इसकी जो दूसरी, इसके बिल्कुल विपरीत रूपांतरण की स्थिति है– प्रेम, करूणा, अभय, मैत्री–वह सम्भव नहीं हो पाती।[४]

साधक के मार्ग पर, दूसरे चक्र पर जो बाधा है, वह घृणा, क्रोध, हिंसा–इनके रूपान्तरण का सवाल है। यहाँ भी वही भूल हो सकती है–कोई चाहे तो क्रोध कर सकता है और कोई चाहे तो क्रोध को दबा सकता है। किन्तु भय आदि को स्वीकारना पड़ेगा। भय, हिंसा आदि भी दूसरे-तल पर अनिवार्य है, अन्यथा मनुष्य बच नहीं सकता। भय उसे बचाता है, क्रोध उसे संघर्ष में उतारता है; हिंसा उसे साधन देती है दूसरे की हिंसा से बचने का। वह उसके शरीर की सम्भावनाएँ हैं। लेकिन साधारणतः हम वहीं रूक जाते हैं।[५]

अगर कोई भय को समझे तो अभय को उपलब्ध हो जाता है; अगर कोई हिंसा को समझे तो अहिंसा को उपलब्ध हो जाता है। असल में क्रोध एक पहलू है और दूसरा पहलू क्षमा है; वह उसी के पीछे छिपा हुआ पहलू है; वह सिक्के का दूसरा पहलू है। अगर हम सिक्के के एक पहलू को पूरा समझ लें, तो अपने आप हमारी जिज्ञासा उलटा के देखने की हो जाती है दूसरी तरफ। लेकिन हम उसे छुपा लें और कहें, हमारे पास है ही नहीं, भय तो हममें है ही नहीं तो हम अभय को कभी भी न देख पायेंगे। जिसने भय को स्वीकार कर लिया और कहा–भय है; और जिसने भय को पूरा जाँचा-पड़ताला, खोजा, वह जल्दी ही उस जगह पहुँच जायेगा, जहाँ वह जानना चाहेगा: भय के पीछे क्या है? जिज्ञासा उसे उलटाने को कहेगी कि सिक्के को उलटा के भी देख लो, और जिस दिन वह उलटायेगा उस दिन वह अभय को उपलब्ध हो जायेगा। ऐसे ही हिंसा करूणा में बदल जाएगी।[६]

---

१. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२३४-२३५
२. वही, पृ०-२३५
३. वही, पृ०-२४३
४. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२२
५. वही, पृ०-२२२-२३
६. जिन खोजि तिन पाइयाँ, पृ०-२२३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थान व स्वरूप—मूलाधार चक्र से ऊपर लिङ्गमूल में छ: दलों वाला स्वाधिष्ठान चक्र सिन्दूरी वर्ण का है। इसके छः दलों में दक्षिणावर्त्त में "बं भं मं यं रं लं" मातृकायें हैं।[१] कर्णिका के मध्य में आठ दल श्वेतवर्णवाला जलमंडल है, जिसमें अर्धचन्द्र विराजित है। इसके बीच में वरूण बीज "वं" है, जो मकर पर अधिष्ठित है। बीज की गोद में (बिन्दु या अनुस्वार में) गरूड़ाधिरूढ़ विष्णु हैं, जो अपनी चार भुजाओं में शंख, गदा, चक्र और पद्म धारण किए हैं तथा जो अपने गले मे वरमाला तथा वक्ष-स्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह और कौस्तुभ मणि से शोभित हो रहे हैं। कर्णिका के अन्दर विष्णु के समीप रक्तकमल पर श्यामवर्णा राकिणी-शक्ति अधिष्ठित है, जिनकी चार हाथों में शूल, अब्ज, डमरू तथा टंक सुशोभित हैं। इस शक्ति के तीन नेत्र हैं तथा उनकी नासिका से रक्त की धारा प्रवाहित होती रहती है।[२]

स्वाधिष्ठानचक्र-भेदन—स्वाधिष्ठानचक्र की साधना करनेवाले साधक पर काममोहित रमणियाँ आसक्त होने लगती हैं। साधक को अश्रुतशास्त्र भी नि:संदिग्ध भाव से गम्य हो जाता है। उसे रोग से मुक्ति मिल जाती है तथा वह संसार में निर्भय होकर भ्रमण करता रहता है।[३] जो मनुष्य इस स्वाधिष्ठान चक्र के क्रम को जानता है, वह धन्य है तथा वह जीवमुक्त हो जाता है।[४] रुद्रयामल मे कहा गया है कि इस चक्र के भेदन से साधक चित्त के विकारों से रहित, क्रोधविहीन तथा बलशाली हो जाता है। साधक धर्माधर्म का ज्ञाता, विज्ञ, त्रिकालदर्शी, निरहंकार, महात्मा, परब्रह्मज्ञानी, स्वतन्त्र, विवेकी, अविद्या की ग्रन्थि से शिथिल, शुचि, योगिनीपुत्र तथा योगपति हो जाता है। प्राणायाम का अभ्यस्त साधक योग में स्थित होकर छः महीने में 'योगी' हो जाता है।[५]

स्वाधिष्ठान चक्र के भेदन के लिए श्रीकृष्ण का ध्यान आवश्यक है।[६] श्रीकृष्णसाधन या ध्यान का वर्णन प्रकृत ग्रन्थ में किया गया है।[७] यथा, कहा गया है–

जगतां सत्त्वनिलयं श्रीकृष्णं गोकुलेश्वरम्।
स्वाधिष्ठानस्थितं श्यामं भजेद्भुजचतुष्ट्यम्।।[८]

स्वाधिष्ठानचक्र के भेदन में श्रीकृष्णसाधन अपरिहार्य है। इसके अन्तर्गत श्रीकृष्ण-ध्यान, मन्त्र-जप, श्रीकृष्ण-पूजा, श्रीकृष्ण-स्तोत्रपाठ आवश्यक है।[९] इसके साथ ही राकिणी का

---

१. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-१४,
तुलनीय रुद्रयामल उ०त०, २२/४-५
२. वही, श्लोक १५-१७
तुलनीय चक्र कौमुदी,२/३/४
३. शिव संहिता, ५/१००-१०१
४. चक्र कौमुदी, २/२४
५. रुद्रयामल उ०त०, ३७/५-११
६. वही, ३७/३५
७. वही, ३७/१४-३२ एवं ३८/२६-३२
८. वही, ३८/२६
९. वही, ३८/४-५७; ३९/७-३०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान तथा स्तोत्र, राकिणी-साधना, राकिणी-मन्त्रजप, सहस्रनाम आदि का पाठ करना चाहिए।[१] श्रीकृष्णमन्त्र[२] इस प्रकार है-

"ॐ क्लीं स्त्रीं क्लीं श्रीकृष्णं श्रीकृष्णं प्रणय प्रणय चन्द्रिकाकाश ब्रह्म ब्रह्म भजामि प्रकृतिपुरुषिकां काकिनीं भूयो भजामि श्रवणगनयनं नमः स्वाहा।"

तदनन्तर नरसिंह मन्त्र का जप करना चाहिए। इस मन्त्र के जप से शीघ्र ही स्वाधिष्ठान-चक्र का भेदन करने में साधक समर्थ हो जाता है। मन्त्र इस प्रकार है[३]-

"ॐ क्लीं रों रों रों नरसिंह! श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।"

इस मन्त्र के जप से साधक शीतोष्ण, सुख-दुःख, जय-पराजय, धर्माधर्म में समदर्शी तथा नित्यज्ञान को प्राप्त करनेवाला होता है।

श्रीकृष्ण मन्त्र का एक और प्रकार भी है[४]-"ॐ क्लीं कृष्ण! ॐ"।

इसके बाद श्रीकृष्ण का ध्यान[५], श्रीकृष्णपूजा[६], श्रीकृष्ण-स्तोत्र[७], राकिणी-ध्यान, राकिणी-मन्त्रजप, राकिणीस्तोत्र, राकिणी-सहस्रनाम का पाठ करना चाहिए।

(३) मणिपुर-चक्र (Solar plexus)

तीसरा चक्र मणिपुर है, जो सभी भावों-भावनाओं का केन्द्र है। मणि का अर्थ होता है- हीरा। जिंदगी बहुमूल्य है भावों-भावनाओं के कारण; हँसी, रोना, आँसुओं एवं मुस्कराहटों के कारण, केवल मनुष्य के पास ही यह बहुमूल्य हीरा है। जानवर हँस नहीं सकता, स्वभावतः वह रो भी नहीं सकता। सभी जानवर केवल दो चक्रों मूलाधार और स्वाधिष्ठान के साथ जीते हैं।[८]

किन्तु मणिपुर चक्र नकारात्मक भावों से बोझिल है। हमें यह सिखाया गया है कि अपने भावनाओं को दबाओं, हमें भावुक नहीं होना बताया गया है। इसलिए हमारा पेट असंतुलित हो गया है। जब हम भावनात्मक रूप से असंतुलित हो जाते हैं, तो मणिपुर शीघ्र प्रभावित हो जाता है। इसलिए विश्व के सभी भाषाओं में हम कहते हैं-"मैं इसे (किसी बात को) पचा नहीं पा रहा।" किन्तु दमित भावनाएं ऊर्जा (कुण्डलिनी) को आगे बढ़ने नहीं देती और उनके मार्ग में एक पत्थर, एक बाधा की तरह हो जाती हैं। इसलिए जब भी व्यक्ति कोई बात पचा नहीं पाता तो वह मिचली महसूस करता है; वमन करना चाहता है और वमन के बाद हल्का अनुभव करता है। योग में इसके लिए विधियाँ हैं। योगी एक बाल्टी पानी नमक मिलाकर

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ४०/८-२२; ४१/१८-३५; ४२/२-८; ४२/९-१६-१२६
२. वही, ३८/४
३. वही, ३८/१४-१६
४. वही, ३८/२२-२३
५. वही, ३८/२६-३१
६. वही, ३८/३४-३९
७. वही, ३९/७-३०
८. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुबह पीता है और उल्टी करना शुरू करता है। यह विधि मणिपुर को शुद्ध करने की महान प्रक्रिया है। आधुनिक थेरेपी में भी यह प्रक्रिया अपनाई जाती है।[1]

मणिपुर चक्र को शिथिल करने के लिए तंत्र में अत्यधिक प्रयास किया गया है। भावों को अभिव्यक्ति किया जाना है। जब भी चिल्लाने का मन करे, साधक चिल्लाये। जब भी हंसने का मन करे, वह हंसे।....अपने भावों, संवेदनाओं के द्वारा ही व्यक्ति उस (परम) तरंग-स्पन्दन को पा सकता है, जिसके द्वारा संवाद घट सकता है। यथा, व्यक्ति जितना चाहे; उतना कहे, फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता; किन्तु गाल पर ढलकी हुई एक आँसू सब कुछ कह देती है। बोलने से अधिक आँसू कह सकती है।[2]

मणिपुर चक्र तीसरे शरीर सूक्ष्म-शरीर (एस्ट्रल बॉडी) से सम्बन्धित है। सूक्ष्म-शरीर के भी दो हिस्से हैं। प्राथमिक रूप से सूक्ष्म-शरीर सन्देह, विचार, इसके आस-पास रुका रहता है। किन्तु सन्देह अगर रूपान्तरित हो तो श्रद्धा बन जाता है; और विचार अगर रूपान्तरित हो तो विवेक बन जाता है। किन्तु जिसने सन्देह को दबाया और विश्वास किया, वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होगा; उसके भीतर सन्देह उपस्थित ही रहेगा। नहीं, सन्देह समझना पड़ेगा सन्देह के साथ चलना पड़ेगा; और सन्देह एक दिन उस जगह पहुँचा देता है, जहाँ सन्देह पर भी सन्देह हो जाता है। जिस दिन सन्देह पर सन्देह होता है, उसी दिन श्रद्धा का प्रारम्भ हो जाता है। इसी तरह विचार को छोड़कर भी कोई विवेक को उपलब्ध नहीं हो सकता। अगर कोई विचार छोड़ेगा, तो विश्वास और अन्धविश्वास को उपलब्ध होगा, वह विवेक नहीं है। विचार की सूक्ष्मतम प्रक्रिया से गुजरकर ही कोई विवेक को उपलब्ध होता है।[3]

इस प्रकार मणिपुर चक्र के ये दो रूप हैं-सन्देह और श्रद्धा। सन्देह रूपान्तरित होगा तो श्रद्धा बनेगी। श्रद्धा सन्देह के विपरीत नहीं है, शत्रु नहीं है; श्रद्धा सन्देह का ही शुद्धतम विकास है-चरम विकास है; वह आखिरी छोर है जहाँ सन्देह का सब खो जाता है, क्योंकि सन्देह स्वयं पर सन्देह बन जाता है और आत्मघात कर लेता है और श्रद्धा उपलब्ध होती है।[4]

स्थान व स्वरूप-स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर नाभिमूल में १० दलों से युक्त करोड़ों मणियों की प्रभा के समान इस चक्र के दलों पर क्रमशः 'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं' १० मातृकायें (दक्षिणावर्त्त क्रम में) हैं।[5] षट्चक्र-निरूपण में इन मातृकाओं का रंग चमकीला नीला बताया गया है, जबकि रुद्रयामल में इसे विद्युत के समान बताया गया है।[6] कर्णिका के मध्य में रक्त वर्णमाला अग्नि-मण्डल है, जो त्रिकोण है, तथा जिसकी तीनों भुजाओं पर स्वस्तिक चिन्ह है, इस त्रिकोण के बीच में अग्नि बीज 'रं' है, जो मेषाधिरुढ़ है तथा जिसकी

१. तान्त्रिक ट्रांसफॉरमेशन, पृ०१७
२. दँ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४४
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२३
४. वही, पृ०-२४४
५. रुद्रायामल उ०त०, २२/६
६. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-१९, रुद्रयामल उ०त०, ४६/३५-३६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चार भुजाओं में से दो में वज्र और शक्ति अस्त्र है तथा अन्य दो हाथ वर और अभय मुद्राओं वाले हैं। वह्नि बीज "रं" की गोद (बिन्दु या अनुस्वार) में रक्ताभ रुद्र वृषभारूढ हैं; जो त्रिनेत्र और भस्मलिप्त अङ्गवाले हैं। रुद्र के समीप कर्णिका के अन्दर रक्तकमल पर शक्ति लाकिनी विराजमान है। वह श्यामा है, उनके तीन मुख तीन-तीन नेत्रों से युक्त हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं, दो में वज्र और शक्ति नामक अस्त्र है तथा दो हाथ वर और अभय मुद्राओं से युक्त हैं।[१]

मणिपुरचक्र-भेदन–मणिपुर-चक्र का उपरोक्त रूप में ध्यान करने पर साधक में संहार तथा पालन की शक्ति आती है और उसके मुखकमल में ज्ञानराशि के वैभववाली वाणी निरन्तर निवास करती है। तात्पर्य यह है कि साधक ब्रह्मा, विष्णु और शिव तुल्य हो जाता है।[२]

मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान-चक्र का भेदन करने के बाद साधक को मणिपुर पद्म में भावना करनी चाहिए। यह चक्र सुधामय, सिद्धक्षेत्र, अप्रकाश्य तथा महागुह्य है। केवल योग के द्वारा इसकी सिद्धि होती है।[३]

सर्वप्रथम साधक को चाहिए कि वह मणिपुर नामक महापीठ में मन का निवेश करे। मन का निवेशन इसलिए अनिवार्य है, क्योंकि मन ही योगी, भोगी, भक्त, युवा, मनुष्यों के सम्प्रदाय और सभी कार्यों का कारण है। इसलिए मन की जागतिक भावों में अवस्थिति का त्याग करके महाभाव में अवस्थित करना चाहिए। यह महाभाव नाना मणियों से शोभित 'मणिपुर' में किया गया मन का ध्यान है। यहाँ पर रुद्ररूपी चैतन्य तथा चैतन्य-रूपी शक्ति का ध्यान करना चाहिए। यहीं पर ऊर्ध्वरेतस् ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। यह भी भावना करनी चाहिए कि रुद्ररूपा सरस्वती ऊर्ध्वगामी हो रही है। इस तरह सम्पूर्ण पद्म को ऊर्ध्वमुखी करना चाहिए। यह पद्म कोटि मणियों से निर्मल है तथा कोटि शरत्कालीन चन्द्र-ज्योत्स्ना के समान है। यहाँ पर लोकरक्षिणी लाकिनी तथा रुद्राणी का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान के समय प्राणायाम का भी अभ्यास अनिवार्य है। कुम्भक के द्वारा प्राण तथा अपान का मिलन कराते रहना चाहिए। चक्र में मन का निवेशन करते हुए रुद्र तथा लाकिनी देवी की आराधना करनी चाहिए। यह महाभाव तथा साधन ही मुक्ति का मूल है। मणिपुर चक्र के सभी दलों को ऊर्ध्वमुखी (विकसित) करके कुलन्यास, विद्यान्यास सर्वन्यास् तथा निजन्यास का विधान करणीय है। चक्र के मूलमन्त्र (रं) का ध्यान करके कुलचक्र के अनुसार अर्ध्य-दान करना चाहिए। इसके बाद चैतन्यरूप कुलदेवता का पञ्चोपचार (पाद्म, अर्ध्य, धूप, दीप, नैवेद्य) पूजन और ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर १२ प्राणायाम सम्पन्न करके, मणिपुर स्थित देवता का भक्तिपूर्वक ध्यान करके मन्त्र (रुद्राणी-मन्त्र) का जप करना चाहिए। जप के बाद विधिपूर्वक पुनः दो प्राणायाम करना चाहिए।[४] तदनन्तर लाकिनी और रुद्राणी देवी के स्तोत्र आदि[५] का पाठ करना चाहिए। तब कुण्डलिनी शक्ति को हृदय में परिचालित करना चाहिए।[६]

१. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-२०-२१
२. वही श्लोक-२१ की षट्चक्र भेद टिप्पणी
३. रुद्रयामल उ०त०, ४४/२४, २६-२७
४. वही, ४४/५३-८६
५. वही, ४७/७५७;४८/६.२७४; ५०/३.२७;५२/५.१३१
६. वही, ४४/८६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह कुण्डलिनी सर्वोल्लासकारिणी, खेचरी, महदानन्द से मण्डित, मन्त्रयोगिनीरूपा, अनुग्रह करने वाली तथा परम सिद्धा है। इस भावना के साथ आनन्द-सन्दोहरूप, सुनिर्मल 'मणिपुर' की भी भावना करनी चाहिए। ऐसी भावना करनेवाला चाहे कौल हो या अधम, ज्ञानी हो या उत्तम साधक, यदि मणिपुर में योगाभ्यास करता है तथा मणिपुर स्थित देव की स्तुति करता है, तो निश्चित ही उसकी कुण्डलिनी प्रबुद्ध होती है। कुण्डलिनी के प्रबुद्ध होने पर मन्त्र की सिद्धि होती है। लाकिनी-सहस्रनाम के पाठ से मणिपुर में कुण्डलिनी का स्वतः भेदन हो जाता है।[१] लाकिनी-स्तोत्र नित्य १० बार पाठ करने से साधक साक्षात् रुद्र तथा रुद्राणी सहित शम्भु का दर्शनलाभ करके योगिनीवल्लभ, योगात्मा, परमात्मा तथा जीवन्मुक्त हो जाता है तथा उज्जवल और निर्मल मणिपुर का भेदन करके साधक शम्भु, ईश्वर तथा देवी के सायुज्य को प्राप्त करता है।[२]

मणिपुरचक्र-साधन

रुद्रयामल में कहा गया है कि साधक सर्वप्रथम चक्रस्थ डं से फं पर्यन्त वर्णों का ध्यान करे। तदनन्तर महापद्म में मन का निवेश करे। ऐसा करने से साधक चित्त की स्थिरता तथा दिव्यभक्ति की प्राप्ति करता है। शनैः-शनैः वायुपान (प्राणायाम) भी करता रहे। जिस वर्ण पर मन की एकाग्रता होती है, मन उसी वर्णवाला हो जाता है।[३] वर्णों के ध्यान के समय प्रत्येक वर्ण पर की गई एकाग्रता के समय देवी का विशेष-विशेष ध्यान रखना चाहिए।[४] ध्यान-मन्त्र का पाठ करने के पश्चात् पद्म की कर्णिका के मध्य बहुत हाथों वाली, विशाल नेत्रवाली, चन्द्रमा के समान अवयवों वाली, सुरभित चन्दन के समान अङ्गवाली, फलरूपी हार से विभूषित, कोटिकिरणस्वरूपा, सिन्दूर से सुशोभित भालवाली, तीन नेत्रों वाली, कालरूपा, लयकारिणी कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर चतुर्भुजा, षड्भुजा, अष्टभुजा, अपने वाहन पर स्थित दशभुजा दुर्गा, चतुर्दश भुजा रौद्री, षोडश भुजा रौद्री, अष्यादशभुजा तथा बीस भुजाओं वाली श्यामा का ध्यान-पूजन करके रुद्राणी-स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।[५] मणिपुर चक्र का भेदन करने के लिए जिस रुद्राणी और रुद्र के मन्त्र-जप का विधान है, वह इस प्रकार है[६]–

(अ) ॐ नमः ते रुद्ररूपिणे।

(आ) ॐ नमः ते महारुद्राय।

रुद्राणी-मन्त्र का एक प्रकार यह भी है कि डं से फं पर्यन्त सभी वर्णों से रुद्राणी के मन्त्र को पुटित करना चाहिए[७]–

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ४५/८-१७
२. वही, ४५/३४-३७
३. वही, ४६/३७-४०
४. वही, ४६/४१-४९..................
५. वही, ४६/५०-५६; ४७/७-५७
६. वही, ४८/६-९
७. वही, ४८/१०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुलोम स्थिति में –"डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ॐ नमः ते रुद्ररूपिणे डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं स्वाहा।"

विलोम स्थिति में–"डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ॐ नमः ते रुद्ररूपिणे फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं स्वाहा"

तदनन्तर प्रासाद-मंत्र, मृत्युञ्जय मंत्र तथा द्वादशाक्षर-मंत्र का जप करने का विधान है[१]–

(१) प्रासाद-मन्त्र–"ॐ सं स्वाहा"।

(२) मृत्युञ्जय-मन्त्र–"ॐ जूं सः"।

(३) महामृत्युञ्जय-मन्त्र–"ॐ जूँ सः पालय पालय सः जूँ ॐ"

(४) रुद्राणी-मन्त्र से सम्पुटित मृत्युञ्जय-मन्त्र–"ॐनमः ते रुद्ररूपिणे ॐ जूँ सः ॐ नमः ते स्द्ररूपिणे"।

(५) रुद्र-मन्त्र से सम्पूटित मृत्युञ्जय–"ॐ नमः ते महारुद्राय ॐ जूँ सः ॐ नमः ते महारुद्राय"।

इसके पश्चात् रुद्र के ५१ नाम द्वारा मातृकान्यास करना चाहिए[२]। यथा–

"ॐ अं श्रीकण्ठेशाय नमः, ॐ आं अन्तेशाय नमः।"

इसी तरह त्रिमूर्तीश, अमरेश, अर्द्धनारीश्वर......सम्बर्त्तकेश एकादश रुद्र के साथ नमः जोड़कर मातृकान्यास करना चाहिए।

(४) अनाहत चक्र (Cardiac plexus)

चौथा चक्र है–हृदय केन्द्र, अनाहत चक्र। अनाहत का अर्थ है बिना टकराई हुई ध्वनि–अनाहत नाद। इसका अर्थ बिल्कुल वही है, जब झेन लोग कहते हैं–"क्या आप एक हाथ से बजाई हुई ताली सुनते हैं?" हृदय बिल्कुल बीच में है, तीन चक्र नीचे हैं और तीन ऊपर। हृदय नीचे से ऊपर की ओर का या ऊपर से नीचे की ओर जाने का द्वार है। हृदय एक तरह से चौराहा है। यह शारीरिक नहीं है। यह वह स्थान है, जहाँ प्रेम का उदय होता है। इसलिए प्रेम भावनात्मक प्रेम नहीं है, भावनात्मक प्रेम तीसरे चक्र से सम्बन्धित है, चौथे से नहीं। प्रेम केवल भावनात्मक नहीं है। प्रेम में भावना से ज्यादा गहराई है। प्रेम में भावनाओं की अपेक्षा ज्यादा प्रामाणिकता है। भावनाएं तो क्षणिक हैं।[३]

किन्तु हृदय की पूरी तरह से उपेक्षा की गई है। व्यक्ति को सहृदय होना नहीं सिखाया गया है। इसलिए अनाहत चक्र अतिमहत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हृदय में ही पहली बार व्यक्ति अपने आप से सम्बन्धित होता है। हृदय के द्वारा ही पहली बार माँ से सम्बन्ध बनता है, मस्तिष्क के द्वारा नहीं। गहरे प्रेम में, गहरी कामोत्तेजना में व्यक्ति पुनः हृदय के द्वारा सम्बद्ध होता है। ध्यान में,

१. रुद्रयामल उ०त०, ४८/१५-१६; १८, २०, २२
२. वही, ४८/३९-५१
३. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रार्थना में भी ठीक यही घटता है। व्यक्ति अस्तित्त्व के साथ हृदय के द्वारा जुड़ता है, हृदय से हृदय तक। हृदय केन्द्र पर ही ध्वनिविहीन ध्वनि-अनाहतनाद-का अविर्भाव होता है।[१] अनाहत चक्र शब्दब्रह्ममय है। अनाहत शब्द की अवस्थिति के कारण इसे 'अनाहत' चक्र कहा गया है। यहाँ की ध्वनि बिना आघात के प्रकट होती है।[२] यहाँ पर बाणलिङ्ग की अवस्थिति है, जो सहस्त्र सूर्यों के समान प्रदीप्त है तथा वाणलिङ्ग की अहेतुक ध्वनि उत्पन्न करता है। इसीलिये यह 'अनाहत' पद्म कहलाता है। यहीं पर जीवात्मा का वास है-

शब्दब्रह्ममयः शब्दो न हेतुस्तदहेतुकः।
अनाहतारव्यं तत् पद्म पुरुषाधिष्ठितं परम्।।[३]

यदि कोई साधक हृदय केन्द्र पर शिथिल (रिलेक्स) होता है, तो वह ओंकार, ओम् का नाद सुनेगा।[४]

अनाहत चक्र का सम्बन्ध चौथे शरीर अर्थात् मनस् शरीर के साथ है। मनस् शरीर का जो प्राकृतिक रूप है, वह है-कल्पना, स्वप्न। हमारा मन स्वभावतः यह काम करता रहता है- कल्पना करता है और सपने देखता है। किन्तु अगर कल्पना पूरी तरह से, चरम रूप से विकसित हो, तो संकल्प बन जाती है; और अगर स्वप्न की क्षमता पूरी तरह से विकसित हो तो अतींद्रिय दर्शन (विजय) बन जाता है। अगर किसी व्यक्ति की स्वप्न देखने की क्षमता पूरी तरह से विकसित होकर रूपांतरित हो, तो वह आँख बन्द करके भी चीज़ों को देखना शुरू कर देता है। वह दीवाल के पार भी देख लेता है। 'विजन' का अर्थ यह है कि इन्द्रियों के बिना अब उसे चीज़ें दिखाई पड़नी और सुनाई पड़नी शुरू हो जाती है। काल और स्थान की जो दूरियाँ हैं, उसके लिए मिट जाती हैं।[५] शिवसंहिता में भी कहा गया है कि इस पद्म (अनाहत चक्र) का साधक त्रिकालदर्शी, दूरश्रुति तथा दूर दृष्टिवाला हो जाता है। वह आकाशगमन में समर्थ हो जाता है। उसे सिद्धों और योगियों के दर्शन होते हैं तथा खेचर को वश में करने वाला हो जाता है।[६]

इस प्रकार कल्पना और स्वप्त का रूपांतरण क्रमशः संकल्प और अतींद्रिय-दर्शन में हो सकता है, और ऐसा चौथा चक्र के जागृत होने पर ही हो सकता है।

स्थान व स्वरूप-मणिपुर चक्र के ऊपर हृदय-स्थान में बन्धूक पुष्प के समान उज्जवल अनाहत चक्र में सिन्दूर रंग के समान १२ वर्ण कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं इसके द्वादश दलों में विराजमान हैं। इसी पद्म के भीतर धूम के समान वायुमण्डल है, जिसके छः कोण हैं।[७]

---

१. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४७
२. षट्चक्रनिरूपणम, श्लोक, २२ का विवरण
३. षट्चक्र विवृति (तान्त्रिक टेक्ट्स, भाग-२, पृ०-११०)
४. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४७
५. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२४
६. शिव संहिता, ५/१११-११४
७. षट्चक्रनिरूपणम, श्लोक-२२, तुलनीय रुद्रयामल उ०त०, २२/८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसके मध्म में (ऊपर) दशकोटि विद्युत्प्रभायुक्त वाले त्रिकोण से युक्त सूर्यमण्डल है, जिसके मध्य धूमावलि से धूसरित वायु बीज "यं" है, जो कृष्ण मृग पर अधिरूढ़ है। वायुबीज (यं) के मध्य में करूणानिधान, सूर्य के समान आभावाले 'ईश' विराजमान हैं, जिनके हाथ वर और अभय मुद्राओं से युक्त है, वे लोकत्रय को भय आदि से मुक्ति प्रदान करने वाले हैं तथा उनके तीन नेत्र हैं। कर्णिका के अन्दर ईश के बगल में रक्ताभ कमल पर त्रिनेत्री देवी काकिनी अधिष्ठित है, जिनके दो हाथों में पाश और कपाल हैं तथा दो हाथ वर और अभय मुद्राओं से युक्त हैं। वह कङ्कालमाला धारण किए हुई है।[1] इस अनाहत पद्म की कर्णिका में एक अधोमुखी शक्ति त्रिकोण है, जिसके मध्य में बाणलिङ्ग नाम 'शिव' विराजमान हैं, जिसके ऊपर बिन्दुयुक्त अर्धचन्द्र विराजमान है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनाहत पद्म की कर्णिका में सर्वप्रथम वायुमण्डल, उसके ऊपर सूर्यमण्डल, उसके ऊपर वायु बीज तथा उसके ऊपर त्रिकोण तथा तत्रस्थ बाणलिङ्ग का ध्यान करना चाहिए।[3]

अनाहत चक्र भेदन—इसी चक्र में सभी देवता का निवास करते हैं तथा देवी का ध्यान करते हैं। प्राणवायु की स्थिरता तथा भक्तियोग के द्वारा इस पद्म का ध्यान करता हुआ योगी परमसिद्ध अवस्था को प्राप्त काता है। योगीजन इस पद्म की साधना करके शरीर में अष्ट ऐश्वर्य का दर्शन करते हैं। इस पद्म का भेदन सामान्य योगियों के लिए असम्भव है। यह पद्म सिद्धिमार्ग का प्रकाशक है। इस चक्र के भेद के लिए मन्त्रोद्धार, यजन, स्तवन, कवच, काकिनी के सहस्रनाम का पाठ अनिवार्य है।[4]

अनाहत चक्र के भेदन के लिए सबसे पहले इस पद्म का ध्यान आवश्यक है। इस हेतु इस पद्म के द्वादश दलों में विराजमान कं से ठं तक स्वर्णिम आभावाले वर्णों का ध्यान करना चाहिए। साधक को यह भावना करनी चाहिए कि ये द्वादशवर्ण सुललित, निर्मल, हंस से शोभित, कोटि दीप्तियों से दीप्त, उत्कृष्ट किरण-पुञ्जों से मिश्रित, सिन्दूर रंग से युक्त हैं। साधक को प्रत्येक दल में इस प्रकार की लिपि की भावना करनी चाहिए। प्रत्येक वर्ण के ध्यान की विधि पृथक-पृथक् है[5]–

(कं) अति विमल वर्ण वाले, प्रातः कालीन सूर्य तथा अरूण की कान्ति से युक्त, परम शिव रूप, नित्य, त्रिनेत्र, अनन्त और सूर्य-स्वरूप, उत्पत्यादि शक्ति युक्त स्वगृहकान्ति से शोभित शरीरवाले देव का ध्यान।

(ख) चन्द्रशेखर तथा त्रिनेत्ररूप, सिन्दूर वर्ण वाला, छः भुजाओं की शोभा से युक्त महनीय देव का ध्यान।

---

१. षट्चक्रनिरूपणम, श्लोक, २३-२४
२. वही, श्लोक, २५ तथा उसका विवरण
३. वही, श्लोक, २६ का विवरण
४. रुद्रयामल उ०त०, ५७/२-१८
५. वही, ५७/२१-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(गं) परम पुरुष, सुन्दर रत्न के समान प्रदीप्त मणिमाला से विभूषित, जितेन्द्रिय श्री गणपति का ध्यान।

(घं) अमल, अरूण, घोरनिनादवाले, कार्यदक्ष, मूर्तिरूपकमलवत्, त्रिनेत्र, फलरूपी आभूषण वाले, मखेश, रक्तवर्णरूप; वर, अभय, संहारमुद्रा तथा स्फटिक-निर्मित माला से विभूषित चतुर्भुज परमशिव का ध्यान।

(ङं) महामोक्ष के स्थानस्वरूप, सिन्दूरवत् अरूण वर्णवाले, त्रिनेत्र, राशि, कनक तथा रत्नरूपी आभरण वाले, पतितजनों के नाथ, महनीय गुणों वाले, लक्ष्मीनाथ, वर और अभय प्रदान करने वाले महनीय तथा निखिल जगत् के स्वामी का ध्यान।

(चं) कमलमाला से शोभित, व्यापक, शतचन्द्र के समान मुख वाले त्रिनेत्र, शिशु-सूर्यतुल्य, समस्त मणियों तथा रत्नों के समान आभूषणों से विभूषित, महज्ज्योत्स्ना की राशिस्वरूप, परमरस या सुधारस के बिन्दु से उत्पन्न शरीरवाले देवता का ध्यान।

(छं) सुन्दर कपाल तथा शरीर वाले, नेत्रस्थ, छलमलकर्त्ता, शिशुसूर्यवत् सुधा-धारा का पान करने वाले, स्वर्णिम जपमाला से आवृत शरीरवाले, त्रिनेत्र, योगेन्द्रस्वरूप, रत्नाभ-दल में उपस्थित, चारूवदनवाले देवता का ध्यान।

(ज) चतुर्मुख, अरूणिम शरीर वाले, विशालनेत्र वाले, सूक्ष्म कालस्वरूप, चक्रशरीरवाले, त्रिलोकी, साररूप, महाशङ्खस्वरूप, वर और अभय मुद्राओं को धारण करने वाले देव का ध्यान।

(झं) विशालकाय, तेजोमय, झं बीजयुक्त, कामहर्त्ता, अतिसुखस्वरूप, महासिन्दूर रंग के समान, कोटि सूर्य तथा चन्द्र के समान निर्मल, त्रिनेत्र, पञ्चमुख, दशभुज समस्त शरीर रूप देव का ध्यान।

(ञं) चन्द्रशेखर, ञं बीज युक्त, मखेश, त्रिनेत्र, नीलकमल, गदा, चक्र और निविड से युक्त हाथ वाले, महामाला से व्याप्त, स्वर्णिम माला से युक्त, नवोदित सूर्य-प्रभा के समान, सम्पूर्ण विश्व के द्वारा अर्चित रूप वाले देवता का ध्यान।

(टं) त्रिनेत्र, अधोश, बिन्दुयुक्तटकार से सुशोभित, जपमाला, वर अभय तथा खड्गधारण करने वाले, सोमेश, कनक-कुण्डल से शोभित शम्भु का प्रसन्नता पूर्वक ध्यान।

(ठं) त्रिनेत्र, कामस्वरूप, शिशुकरूणा से सिद्धियों को देने वाले, सुन्दररत्न के अलङ्कारों की छवि के कारण सर्वजनप्रिय, अनघरूप, सबिन्दु ठकार से युक्त, क्रोटि शिशु सूर्य की प्रभा से युक्त, कमल की सुन्दरमाला तथा चन्द्रमा को धारण करने वाले देवता का ध्यान।

उपरोक्त रीति से हृत्पद्म के द्वादश दलों में द्वादश वर्णों का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक वागीश, योगीन्द्र तथा दीर्घजीवी होता है। इस पद्म में अत्यन्त सूक्ष्म रूप वायु, निराकार ब्रह्म, शब्द स्वरूप साकार ब्रह्म,.....,योगियों के ईश, ईश्वर किरीटी भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए। इन्हीं ईश्वर के पास देवी काकिनी का ध्यान करना चाहिए। वे देवी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काकिनी परमेश्वरी स्वरूपा, त्रैलोक्यपूजिता,......., सुवर्णमयी, कोटिविद्युत् के समान उदित तथा पीठ-शक्ति-रूपा हैं। त्रिकोण के अन्दर शुद्ध सुवर्णतुल्य, निरञ्जनरूप ज्ञानयोग के उदयस्वरूप, ब्रह्मरूपी, बहुरूपी, दीपशिखा के समान आकारवाले, वाणलिङ्ग का ध्यान करना चाहिए। पद्म-केसर के मध्य अरूणसहित सूर्यमण्डल का ध्यान करना चाहिए।[१] एतदतिरिक्त अनाहतपद्म-भेदन में काकिनी-पूजा[२], काकिनी मन्त्रोद्धार[३], काकिनी-ध्यान[४], काकिनी-स्तोत्र[५] आदि का पाठ अत्यधिक सहायक है।

(५) विशुद्ध-चक्र (cervical plexus)

पाँचवां केन्द्र विशुद्ध चक्र कहलाता है। विशुद्ध का अर्थ है शुद्धता। निश्चय ही प्रेम के बाद केवल शुद्धता और निर्दोषता ही रहती है, उसके पहले नहीं। केवल प्रेम ही परिशुद्ध करता है, और कुछ नहीं। कुरूप व्यक्ति भी प्रेम में सुन्दर हो जाता है। प्रेम अमृत है, यह सभी विषों को साफ कर देता है। इसलिए पाँचवा चक्र विशुद्ध कहलाता है।[६]

विशुद्ध चक्र पाँचवें शरीर आत्म-शरीर से सम्बन्धित है।[७] पाँचवें शरीर में प्रवेश करने के पहले व्यक्ति सोया-सोया है। वह जो भी कर रहा है, वे नींद मे किये गये कृत्य हैं। उसकी बातों का कोई भरोसा नहीं है। पूरी दुनिया सोये हुए व्यक्तियों की दुनिया है, इसलिए इतना द्वन्द्व है-इतना झगड़ा, इतना उपद्रव-ये सोये हुए व्यक्ति पैदा कर रहे हैं। सोये हुए व्यक्ति को यह कभी पता नहीं चलता है कि मैं कौन हूँ, इसलिए वह पूरे समय इस प्रयास में लगा रहता है कि मैं किसी को बता दूँ कि मैं 'यह हूँ', कभी राजनीति के किसी पद पर सवार होकर लोगों को यह दिखाता है कि मैं यह हूँ, कभी एक बड़ा मकान बनाकर दिखाता है कि मैं यह हूँ.... वह सब ओर से चेष्टा कर रहा है कि लोगों को बता दें कि मैं यह हूँ।[८]

पाँचवें शरीर में पता चलता है कि व्यक्ति वस्तुतः है क्या। पाँचवें शरीर में गये व्यक्ति में कोई द्वन्द्व नहीं है। लेकिन पाँचवें शरीर का अपना खतरा है कि चाहे तो व्यक्ति वहाँ रूक सकता है, क्योंकि उसने अपने को जान लिया। यह इतनी तृप्तिदायी, आनन्दपूर्ण है कि शायद साधक आगे गति न करे। इसलिए पाँचवें शरीर में गए व्यक्ति के लिए अत्यंत सजगता जो रखनी है, वह यह कि आनन्द कहीं पकड़ न ले, रोकने वाला न बन जाय।[९] इसलिए जो आत्मवाद पर रूक जाते हैं, उनकी बातों में रहस्य नहीं होगा। उनकी बातें बिल्कुल विज्ञान जैसी प्रतीत होंगी, क्योंकि रहस्य की दुनिया तो इसके आगे है।[१०]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ५७/३२-५५
२. वही, ५८/६-३८
३. वही, ५९/१८-२६
४. वही, ५९/२७-३८
५. वही, ६०/१-१६
६. दँ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२४९
७. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२६
८. वही, पृ०-२२७
९. वही, पृ०-२२८
१०. वही, पृ०-२२९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाँचवें शरीर में अहंकार तो मिट जाएगा, 'मैं हूँ' इसमें दो चीज़ें हैं–'मैं' तो अहंकार है, और 'हूँ' अस्मिता है–होने का बोध। 'मैं हूँ' तो मिट जाएगा पाँचवें शरीर में, सिर्फ 'होना' रह जाएगा, अस्मिता रह जाएगी। इस जगह से आत्मवादी अनेक आत्माओं का अनुभव करेगा, क्योंकि अपने को वह अस्मिता में देख रहा है, अभी भी पृथक् है।[१] इसलिए पाँचवें शरीर तक जो खोज है, वह दुःख से छूटने की है, घृणा-हिंसा-वासना से छूटने की है; पाँचवें के बाद जो खोज है, वह स्वयं से छूटने की है। दो बातें हैं–किसी चीज़ से मुक्ति, यह एक बात है, यह पाँचवें शरीर तक पूरी होगी। फिर दूसरी बात है–किसी से मुक्ति नहीं, अपने से ही मुक्ति। इसलिए पाँचवें शरीर से एक नया जगत् शुरू होता है।[२] विशुद्ध चक्र का महत्त्व पाँचवें शरीर से सम्बन्धित होने के कारण स्पष्ट ही है।

स्थान व स्वरूप–अनाहत-चक्र के ऊपर कण्ठस्थानीय चक्र का नाम है विशुद्ध चक्र। इसमें १६ दल हैं। यहीं पर साक्षात् सदाशिव का वास है। यहाँ यदि महादेव और शाकिनी का ध्यान किया जाए तो साधक साक्षात् शिव-स्वरूप हो जाता है। विशुद्ध चक्र धूम्र वर्णमाला तथा विद्यत्पुञ्ज के समान कान्तिमान है। यह महापुण्यप्रद तथा धर्मार्थकाममोक्षप्रद है।[३]

विशुद्ध चक्र के १६ दलों में "अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः" रक्त वर्ण के १६ स्वर विराजमान हैं। कर्णिका में वत्ताकार श्वेत वर्ण का नभमण्डल है। इसके अन्दर पूर्ण चन्द्रमण्डल है और इसके ऊपरी भाग में श्वेत वर्णमाला आकाश बीज "हं" ऐरावत पर अधिरूढ़ है और जिसके चार हाथ पाश और अङ्कुश से युक्त तथा वर और अभय मुद्राओं से सुशोभित हैं। "हं" बीजमन्त्र के बिन्दु (अनुस्वार) में वृषभ के पीठ पर सिद्धासन मेंअर्धनारीश्वर के रूप में सदाशिव विराजमान हैं, जिनका अर्धशरीर हिमवत् तथा अर्धशरीर सुवर्णाभ है। वे पंञ्चमुख तथा दशभुज हैं। इनकी दश भुजाएँ शूल, टंक, कृपाण, वज्र, दहन (आग्नेयास्त्र), सर्प, घण्टा, अङ्कुश, पाश और अभय मुद्रा से युक्त हैं। वह बाघाम्बर तथा भस्म धूसरित हैं और गले में सर्पो की माला धारण किये हैं। उनके सिर पर सुधावर्षी चन्द्रमा शोभित है। कर्णिका के अन्दर के चन्द्रमण्डल में धवल वर्णवाली देवी शाकिनी अस्थि पर अधिष्ठित हैं, जो चार भुजाओं, पञ्चमुख तथा तीन नेत्र से युक्त हैं और जिनकी भुजाओं में शर, चाप, पाश और अङ्कुश विराजमान है।[४] इस प्रकार स्पष्ट है कि कर्णिका के मध्य नभोमण्डल, उसके मध्य चन्द्रमण्डल, उसके बीच नभबीज (हं) की अवस्थिति है। यहीं पर ऐरावत गज के ऊपर आरूढ़ स्वर्णाभ शुक्लाम्बर सदाशिव का ध्यान करना चाहिए।[५]

विशुद्धचक्र-भेदन–जो आत्मज्ञान से परिपूर्ण है, वह इस पद्म में चित्त को निरन्तर एकाग्र करके कवि, वाग्मी, ज्ञानी अत्यन्त शान्तचित्तवाला, त्रिकालदर्शी, सबका कल्याण

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२९
२. वही, पृ०-२३०
३. रुद्रयामल उ०त०, २२/९-१०
४. षटचक्रनिरूपणम्, श्लोक, २८-३०, तुलनीय चक्र-कौमुदी, ५/२-५
५. वही, श्लोक-३० का विवरण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने वाला, रोग-शोक से मुक्त, चिरंजीवी, अनन्त विपत्तियों का हंस के समान नाश करने वाला हो जाता है।[१] वह साधक भूतमात्र के प्रति करुणावान् लोभ से रहित, सरल, लज्जामुक्त, चपलताविहीन, तेज-क्षमा-धैर्य-शौच-अद्रोह-निरहङ्कार वाला हो जाता है।[२] जब विशुद्ध चक्र सक्रिय होता है तो साधक के शब्दों में मधुरता आ जाती है। उन शब्दों में एक सुगन्ध होता है, उनमें एक संगीत, एक नृत्य होता है। तब जो कुछ भी कहा जाय, वह काव्य होता है, एक महा आनन्द।[३]

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर और अनाहत चक्रों का भेदन करने के बाद विशुद्ध चक्र का भेदन करना चाहिए। चक्र-भेदन में वर्ण और देवता के ध्यान का विशेष महत्त्व है। समस्त १६ स्वर वर्ण इस चक्र के १६ दलों में विराजमान हैं। रुद्रयामल में विशुद्ध चक्र के १६ दलों में अवस्थित १६ स्वर वर्णों का ध्यान इस प्रकार हैं[४]–

(अं) चतुमुर्ख, शुक्लवर्ण, त्रिनेत्र, अलङ्कारों से सुशोभित; कमला, कमल, अस्त्र आदि से युक्त हाथ वाले हरिहर का ध्यान।

(आं) प्रभासा, कनकघटमधु से प्रसन्न होने वाली, विमाना, कमलमाला से विभूषिता, खड्गधारिणी, मुकुटमणिविभूषिता, अनेक अलङ्कारों से सुशोभित हिमकरकपिलावाहिनी (शाकिनी) का ध्यान।

(इं) विशुद्ध-पद्म में माया, भुवनस्थिता, वधु एवं श्रोषोडशी सहित, मायालक्षणलक्षिता, त्रिजगता; विद्या, अभय, एवं श्रीपद से युक्त, कमलसदृश चार वर्णों वाली त्रिनयना, विभिन्न रत्नों से निर्मित नूपुरधात्री सुरनता तथा शूल, खड्ग भाला एवं कमल धारण करने वाली का ध्यान।

(ईं) कोटि सूर्य से प्रकाशित, स्वर्णाभूषणों से विभूषित, ध्यान के द्वारा प्रसन्न होने वाली, ईकार के सदृश, त्रिनयन-कमला, वेदहास्योज्जवलाङ्गी, शंख, कमल, खड्ग और घण्टा सहित सुन्दर शरीर वाली, देवसिंहासनारूढा, वेदस्थिता, वेदसिद्धा, रक्त एवं बाललीला सहित देवी का ध्यान।

(उं) काञ्चनरस, हय, हंसारूढ़, इवरसनयुत, मन्दिराजालवाद्य, विशाल, शत रवि के समान चमकीला, जटाककुण्ड से आह्लादित, तरूणपुरुष, त्रिनेत्र, तीनों मुनियों के सहित ब्रह्मा का ध्यान।

(ऊं) सर्वरूप, शतचन्द्र से विभूषित, काञ्चनाभ, त्रिसर्ग, मन्दार अर्थात् मूँगे के द्वारा शोभित ललाटवाले, शुद्धरुद्रक्षमालावाले, दोनों हाथों में साँप एवं ललना के माला को धारण करने से आनन्दित, सिद्धों के इष्टसिद्धि, कुलकमल-धन का ध्यान।

(ऋं) सप्तरेखा सहित विमल माला से सुशोभित अङ्गवाले, मायाविस्थ, प्रसन्न एवं कमल

१. षटचक्रनिरूपणम्, श्लोक-३१
२. वही, विवरण में उद्धृत
३. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२५०
४. रुद्रयामल उ०त०, ७१/५-२०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदृश मुखवाले, वारणाकार देहवाले, पुण्य-यज्ञादि से सिद्ध होने वाले, मदनशशि-कलामादन तथा घण्टा, सुन्दर अस्त्र, खड्ग, कमल, कपाल व शुद्ध मुद्रासहित, छः भुजाओं वालें का ध्यान।

(ॠं) कमलमुख, शुक्लवर्ण, त्रिनेत्र, मायालक्ष्मी-सहित, नीलावस्त्र पहनने वाला, विभिन्न अलङ्कारों से विभूषित मुकुटवाले, चन्द्रमा की ज्योत्स्ना की तरह शीतल स्वभाववाले तथा खड्ग, कमल, ज्ञानमुद्रा, गदा, पाश और पाणि सहित छः भुजाओं वालें अतितीश का ध्यान।

(लृं) त्रिनेत्र, कमल के सदृशमुखवाले, तेजप्रकाशस्वरूप, पूर्णात्मा, परेश, त्रिगुणघनमय, नीलवर्ण त्रिभाव, पिङ्गकेश, शुद्ध एवं मालाओं से विभूषित सिरवाले तथा वेद, खड्ग, कमल, गदा, वर एवं ज्ञानमाला सहित षड्भुजाओं वाले स्थाणुकेश का ध्यान।

(लॄं) पतले वस्त्रवाले, शुक्ल किरणवाले, सुधामग्न; साँप, कमला, खड्ग एवं प्रिय वर भाव वाले, शुभकर्त्ता, सुरमुनियों द्वारा पूजित कराल, भूपाल, वेदभुजग का ध्यान।

(एं) कालवर्ण, शतयुवतियों के भोकता, प्रमुख देवों के द्वारा वेष्टित, सूर्यप्रभा के समान बिन्दुसर्ग(अनुस्वार), दो भुजाओं वाले, पद्मभाल, कराल, अलङ्कारों से विभूषित, किरीट, त्रिनेत्र, अमर, नूपुरेन्द्रप्रकाश, प्रमथसुतगणों के द्वारा व्यापित, झिण्टीश शम्बरीश का ध्यान।

(ऐं) शुक्लाभ या भवार्ण, त्रिवलितनयन, शुद्धबन्धूक के वस्त्रवाले, रत्नालङ्कार के हार वाले, तीनों लोकों के वचनस्वरूप, छह भुजाओं वाले, बीजसार, गगनपथकर, वह्निजाया- स्वरान्त, पञ्चरश्मि, योग के आदि भौतिकेश का ध्यान।

(ओं) शितकर, चलत्कुण्डल, अलङ्कृतकलेवर, निर्मल पीतवस्त्र वाले, शुक्लांशुशत से वेष्टित, मुकुट और नूपुर से सुशोभित तथा चारों हाथों में क्रमशः कमल, शङ्ख, शूल और अभयमुद्रा धारण करने वाले प्रवण लक्षण का ध्यान।

(औं) ब्रह्मद्वार का भेदन करने वाले, श्रुतिभुजललित, खड्गबाणस्थभाल, जन्तुओं के लिए कोटि कान्तिस्वरूप, शतसूर्यमुकुट से सुशोभित, रत्नालङ्कार से विभूषित, चरणतलरिभामण्डल, सारूणाभ, प्रणवधवल, सुसूक्ष्म, ओङ्कारस्वरूप, अनुग्रहेश क्रोधराज महेश का ध्यान।

(अं) अङ्काररूप बिन्दुभाव, दशललित हाथों वाले, व्याघ्रचर्म से आच्छादित, त्रिनेत्र, स्वकणकवलय, कोटिचन्द्र के समान प्रकाशमान्ः शूल, अस्त्र, इषुचक्र, फल, गदा, खेटक, कमल आदि से सुशोभित, अक्रूरदेव, सारद, स्थूलसूक्ष्म का ध्यान।

(अः) शुक्ल आभावाले, कोटिसूर्य के समान कान्तिमान्, शतललित भुजाओं वाले; विद्या, अस्त्र और खड्गवाले, त्रिनेत्र, आनन्दित, मंद हंसने वाले पचासमुखों से सुशोभित, सभी अङ्गो से रक्त प्रवाहित करने वाले, दीनों के दाता, आकारस्वरूप श्रीविसर्ग का ध्यान।

इसी प्रकार वर्णरूप का ध्यान शक्तिसहित लोकनाथ सदाशिव का ध्यान है, षोडशदलों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में इस प्रकार ध्यान करके स्थिरचित्त साधक को पूजन करना चाहिए। परिणामस्वरूप साधक की बुद्धि प्रसन्न होती है तथा वह खेचरत्व, वाक्यसिद्धि जलस्तम्भनादि की सिद्धि एवं अमरत्व की प्राप्ति करता है।[१]

मूलाधार में पृथिवीमण्डल, स्वाधिष्ठान में जलमण्डल, मणिपुर मे अग्निमण्डल, अनाहत में सूर्यमण्डल, विशुद्ध में चक्रमण्डल तथा आज्ञा में वह्निमण्डल की स्थिति है। आज्ञाचक्र से ऊपर साधना के अनेक स्तर हैं, यथाबिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समान, उन्मनी, महाबिन्दु।[२] रुद्रयामल में कहा गया है कि विशुद्ध चक्र का भेदन करके पूर्णगिरि का आश्रय लेकर तथा सूर्यमण्डल का भेदन करके प्रलयाकार ब्रह्मचक्र का ध्यान करना चाहिए। ब्रह्मचक्र के ऊपर ब्रह्मदण्ड, उसके ऊपर केवल जल, उसके ऊपर खड्ग नामक सिद्ध, उसके ऊपर सर्वबीजमय मातृकामण्डल, उसके ऊपर 'हंस' मन्त्र तथा उसके ऊपर कुलेश्वरी हैं तथा वहीं श्रीपद-कमल में मन को लीन करना चाहिए। तदनन्तर मूलाधार में वायुबीज (यं) से वह्निबीज (रं) को प्रज्ज्वलित करके शरीर को तप्त करना चाहिए। पुनः आरोह-क्रम मे चक्र बीजों को दग्ध करते हुए भ्रूमध्य-चक्र के वहि्नमण्डल में वहि्न का लय करना चाहिए। वहीं पर अवस्थित वहि्नशिखा की राशि से ब्रह्म-बिन्दु का क्षरण होता है। उस बिन्दु धारा से तथा जल के द्वारा शरीर का क्षालन करना चाहिए। इस प्रकार शुद्ध देहवाला होकर अधोमार्ग से शनेः शनैः कुण्डलिनी के समागम का ध्यान करना चाहिए।[३]

अ से क्ष वर्ण का ध्यान मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त करना चाहिए। वर्णों का स्मग्ण तथा मन्त्रों के द्वारा अनुलोम-विलोम पूर्वक संपुटित करके वर्णों के ग्रथन का ध्यान करना चाहिए। सारी क्रियाएँ मानसिक होनी चाहिए। प्रत्येक ग्रंथि के भेदन से सहस्रकोटि सूर्य के समान प्रकाश का दर्शन होता है। तदनन्तर मन्त्राक्षर, परब्रह्म, शिव तथा सूर्य का ध्यान करके सहस्रदल का भेदन करके साधक शिव का दर्शन करता है। दल की भावना दक्षिणावर्त देवता की अवस्थिति पूर्वक करनी चाहिए। काकिनी-मुद्रा में स्थित साधक यदि विशुद्ध-पद्म का ध्यान करता है, तो उसे स्फूर्तिविद्या कहा जाता है। इस स्फूर्तिविद्या के द्वारा साधक वाक्पति तथा ईश्वर रूप हो जाता है। स्त्री, पुत्र, धन आदि पातकों से विवर्जित होकर मन्त्री निर्भय होता है। मन्त्रन्यास में परायण व्यक्ति यदि शरीर के क्लेशों का परित्याग करके विवेक का ग्रहण करता है, तो यह साधक का 'वियोग' कहलाता है। इसके बाद पूर्वदिशा में प्रातः ज्ञानरूपी समरस द्रव्य के द्वारा रवि के उदय की भावना करनी चाहिए। इससे साधक को अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान (जाति-स्मरण) होता है। चक्रस्थित नभबीज (हं) मन्त्र का स्मरण करना चाहिए। इस क्रिया के अन्तर्गत सबसे पहले आसनादि के द्वारा शरीर को हल्का कर लेना चाहिए। रसना का छेदन करके तालुमूल से भी ऊर्ध्व तथा पीछे की ओर जिह्वा को ले जाकर मधु का पान करना चाहिए। वहीं पर प्राणायाम करके जप करता हुआ साधक सुधापान करे।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ७१/२१-२२

२. वरिवस्यारहस्यम्, १/२४-२६

३. रुद्रयामल उ०त०, ६०/३१-३९, ६७/२५३-६२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे साधक को समरस की प्राप्ति होती है तथा वह कामलिङ्ग में स्थिर होता है। श्वेत बरिआर-सूत्र की अष्टादश अङ्गुलिमान नातिसूक्ष्म लता बना कर उसे जिह्वा के नीचे सन्निविष्ट करके घर्षण करना चाहिए। इस घर्षण से जिह्वा तालुमूल में स्वतः गमनशील हो जाती है। इस साधना-विधि से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है। एकान्त में मन्त्र का जप करनेवाला जीव-ब्रह्मैक्य विवेक से युक्त हो जाता है। साधक को अनायास ही समरस की प्राप्ति होती है। गंध से शोभित महावनरूप शीतल पद्मवन में स्वकाया की भावना करनी चाहिए, भावना प्रत्येक चक्र तथा उसके दलों में करनी चाहिए। ऐसा करने से शरीर की रक्षा होती है, अन्यथा मनुष्य योगभ्रष्ट होकर मर जाता है। काय-साधना की एक विधि और भी है-चक्षु इन्द्रिय विवर्जित वाराणसी, महाज्वालामुखी, प्रयाग..... गया आदि पीठों में स्थित होकर मन को लीन करके वहाँ काया की कल्पना करनी चाहिए। तदनन्तर शाकिनी योगिनी के गणों से वेष्टित सदाशिव का ध्यान करके तद्वत् काया की कल्पना करनी चाहिए। मन में उन देवताओं के प्रति जो भाव रहता है, वही भाव अपनी काया में करनी चाहिए। इस काय-साधन से साधक वाक्सिद्धि को प्राप्त करता है।[१]

विशुद्धचक्र के भेदन में शाकिनी-कवच[२], श्रीशाकिनीमहाशिवकामनामहाकवच[३], शाकिनी-स्तोत्र[४] और श्री भुवनमङ्गलमहास्तोत्र अष्टोत्तर सहस्रनाम[५] का पाठ तथा शाकिनी-मन्त्रोद्धार,[६] शाकिनी-ध्यान[७], शाकिनी-पूजा[८] आदि अति सहायक हैं। शाकिनी के अतिरिक्त विशुद्ध चक्र में सदाशिव का ध्यान,[९] शाकम्भरी का भी ध्यान[१०] अनिवार्य है।

रुद्रयामल में विशुद्धचक्र में अवस्थित सदाशिव के कुल-चक्रक्रम[११] का भी वर्णन किया गया है। कहा गया है कि सदाशिवकुल-स्थान के ऊपर श्री शाकिनी विराजमान हैं। दोनों ही ज्ञानसिद्धि और खेचरसिद्धि प्रदान करने में समर्थ हैं। षोडशदलों के मध्यमूल में सदाशिवकुलस्थान चक्रराज का ध्यान करना चाहिए। उसके ऊपर कालचक्र है। अनायास गगनग्रंथि का भेदन करके 'पर' में लय करना चाहिए। उसके ऊपर क्रमशः परशिवानन्द चक्र, शक्त्यात्मक चक्र, शब्दनिकर, सकला और निष्कलास्थानस्वरूप परास्थान, बोधनीमण्डल, उन्मनीपीठ, भृगुपुर, नादपुर, नादात्मक, ब्रह्मविष्णुघटाकर क्रियाकर प्राणलय यज्ञस्थान शिखापद,

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६०/४३-८१, ६७/२२६-३०५
२. वही, ७९/२५-४१
३. वही, ७३/१०-६५
४. वही, ७०/४-२०
५. वही, ७२/१३-१३३
६. वही, ६१/७-३८
७. वही, ६८/५-६;७९/४४-४५; ६१/३-६
८. वही०, ६९/१०-१२६; ६२/२-३७
९. वही, ७४/३-६०
१०. वही, ६८/१४-१५
११. वही, ८०/४-२५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्णगिरि, उड्डियान, स्वपद दुर्गस्थान, प्रकाशस्थान, पिङ्गलास्थान, तापदसुषुम्नामण्डल, धौम्निकोण महालय, महाबिन्दु, षट्कोण, वासनापुर, बीजपुर, विष्णुचक्र, कामनगर, शक्रचक्र, भुमिचक्रक, कोषचक्र, वायुचक्रक, वह्निचक्र, अमृतचक्र, जलचक्र, दिवाचक्र, यामिनीचक्र, ताराचक्रक, धर्मचक्र, कालचक्र, सप्तसागरमण्डल, श्रीजलान्तमण्डल तथा महाचक्र महापद्मवनाकर है। सहस्रदलकमल में टङ्कार के ऊपर 'सं' का ध्यान करना चाहिए। उसका भेदन करके कर्णिका में ज्ञानपद्म का दर्शन होता है, जो प्रेत-रूपमहादेवशवाकार तथा निष्क्रिय है। इसके जङ्घा में प्रेतबीज सूर्य के समान प्रभावाला है। उसके उरूमूल में क्रोधबीज भी शत सूर्य के समान कान्तिमान् है। उसके ऊपर साधक 'काली'[१] को अवश्य देखता है।

विवेच्य ग्रन्थ में शक्तिसदाशिव के सिद्धकुलचक्रक्रम का भी वर्णन किया गया है और कहा गया है कि इसके ज्ञानमात्र से साधक कण्ठपद्म (विशुद्ध चक्र) में स्थिर होता है।[२] विशुद्धचक्र के अग्रभाग में योगियों का अतिप्रिय सारचक्र है, जिसके ध्यान से सभी चक्रों का प्रदर्शन होता है तथा साधक ऊर्ध्वरता, कामजेता, ज्ञानी, मौनी, दिगम्बर, कौलिक आदि होता है। चक्रमुख में आगे दो द्वार हैं, उसके अन्त में तिल के आधे भाग इतनी दूसरी रेखा के द्वारा पुनः दो द्वार है। साधक को आगे से उत्तरपर्यन्त इसका दो बार ध्यान करना चाहिए। दोनों के मध्य में चतुर्वद रेखा-मण्डल है। उसके मध्य में षट्कोण, षट्कोण के मध्य में दो षट्कोण, उनके मध्य में अष्टदलपद्म, उसके मध्य चन्द्रमण्डल, चन्द्रमण्डल के मध्य शून्यरूप, निराकार, निरञ्जन, तत्त्वज्ञानाश्रितानन्दविद्यात्मान आनन्दभैरवी का निवास है। वहीं स्थूलसूक्ष्ममय शुद्ध वाच्यवाचक भावन कोटिसूर्य के समान प्रभावाला अभेद-अद्वैत की अवस्था है। वहीं कोटिविद्युत्प्रभाकर, कोटिचन्द्र के समान शीतलता, सर्वव्यापक ईशान से अभेदज्ञान की कारणता है। वहीं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वशास्त्रवेत्ता, ज्ञानज्ञेय, चराचर विधाता परब्रह्म है।[३] वहीं पर अष्टभुज, विशालाक्ष, हरि, ब्रह्मा, ईशान, कन्याश्रीसुन्दरी, वामन, परशुराम आदि का वास है।[४] इस प्रकार साधक आनन्दमयदेव, शाकिनीदेव शक्ति श्रीप्रेमाह्लादपरायण विश्वमय शाक्यरूप सनातन का ध्यान करे। कामविनोदिनी आनन्दभैरवी के नाम की स्तुति योगी करे तो निरालम्ब दिगम्बर होता है और खेचरत्व की सिद्धि होती है और अनायास ही सिद्धि मिलती है। कण्ठपद्म उर्ध्वमुख है, उसके आगे चक्रमण्डल है, उसके ऊपर अधोमुख नेत्रपद्म (आज्ञाचक्र) है, जिसमें सुन्दर दो दल हैं। उसके आगे महाचक्र है, जो परमात्ममय एवं महाप्रभावाला है। रात्रि में योग-साधना से जहाँ दो चक्रों का सङ्गम दिखाई देता है, तो चतुर्द्वार मनोहर होता है। चक्र, निरञ्जन, ज्ञानज्ञेय, मन्त्रमय शिव को जो जानता है, वह महादेव होता है। यही कण्ठपद्म का महात्म्य है, जिसे योगी ध्यान और ज्ञानयुक्त चेतना के द्वारा जानता है।[५]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ८०/२६-४८
२. वही, ८१/१-२
३. वही, ८१/२-११
४. वही, ८१/१२-४४
५. वही, ८१/४५-५३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६) आज्ञा-चक्र (Cerebellum or Pineal Gland)

छठा चक्र है आज्ञा। आज्ञा का अर्थ है आदेश। छठे चक्र के साथ साधक एक आदेश में है, एक क्रम में है; इसके पहले नहीं।[१] इसके साथ ही साधक मालिक होता है, इसके पहले नहीं। इसके पहले तो वह दास होता है। छठे चक्र के साथ, जो कुछ भी साधक कहता है, चाहता है; वह पूरा होता है। इसके साथ ही साधक का संकल्प होता है, इसके पहले नहीं। चौथे चक्र के साथ अंहकार समाप्त हो जाता है। पाँचवें चक्र के साथ सभी अशुद्धियाँ खत्म होती हैं, तब केवल चाह रहती है, इसलिए इस इच्छा के द्वारा कोई हानि नहीं होती। वस्तुतः यह व्यक्ति की इच्छा नहीं होती, बल्कि ईश्वर की इच्छा हो जाती है। अब व्यक्ति पूर्ण शुद्ध सत्ता हो जाता है।[२]

छठवें शरीर–ब्रह्मशरीर का केन्द्र है आज्ञा चक्र। यहाँ से कोई द्वैत नहीं है। आनन्द का अनुभव पाँचवें शरीर पर प्रगाढ़ होगा, अस्तित्त्व का अनुभव छठवें शरीर पर प्रगाढ़ होगा। अस्मिता खो जाएगी छठवें शरीर पर–'हूँ' यह भी चला जाएगा। 'मैं हूँ'– तो 'मैं' चला जाएगा पाँचवें शरीर पर, 'हूँ चला जाएगा पाँचवें को पार करके.... 'है' (इजनेस) का बोध होगा, 'तथाता' का बोध होगा....'ऐसा है'। उसमें 'मैं' कहीं भी नहीं आयेगा, उसमें अस्मिता कहीं नहीं आएगी–जो है, बस वही हो जायेगा।[३] आज्ञाचक्र पर जो पूरा काम करेंगे, तो वहाँ से उन्हें जो दिखाई पड़ना शुरू होगा विस्तार अनंत का, उसको वे 'तृतीय नेत्र' कहना शुरू कर देंगे। वहाँ से वह तीसरी आँख उनके पास आयी, जहाँ से वे अनंत को देखना शुरू कर देते हैं।[४]

स्थान व स्वरूप–विशुद्ध चक्र के ऊपर भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र की अवस्थिति मानी जाती है। यह चक्र चन्द्रमा के समान, ध्यान के विलास से प्रकाशित, ह तथा क्ष की कलाओं से सुशोभित गात्रवाला तथा अत्यन्त शुभ्र है।[५] चक्र के मध्य शक्ति हाकिनी है, जो चन्द्र के समान है तथा षट्मुखों से सुशोभित हैं।[६] देवी हाकिनी ६ भुजाओं से युक्त हैं, जिनमें क्रमशः पुस्तक, वरमुद्रा, कपाल, डमरू तथा जपमाला सुशोभित हैं वे सर्वथा शुद्धचित्तवाली हैं।[७] इस शक्ति के ऊपर कर्णिका के अन्दर के त्रिकोण के भीतर प्रकाशित इतर नामक शिवलिङ्ग है, जिसके ऊपर प्रणव (ॐ) है। यहीं अग्निशिखा के समान अन्तरात्मा की अवस्थिति है।[८] बड़े त्रिकोण के अन्दर के प्रणव (ॐ) के ऊपर अर्धचन्द्राकार रूप बिन्दु से युक्त है। इसके ऊपर वक्राकार नाद है, जो जलकण की अमृतधारा के समान दीप्तिवाला है।[९] आज्ञाचक्र के

---

१. दँ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-२५०
२. वही, पृ० २५०
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२३०
४. वही, पृ०-२३१
५. पूजातत्त्व, पृ०-१७० (रुद्रयामल उ०त० : धर्म और दर्शन, पृ०-३५१ पर वर्णित
६. तंत्रा ऑफ कुण्डलिनीयोग, पृ०-३
७. पट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-३२
८. वही, श्लोक-३३
९. वही, श्लोक-३५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्गत कतिपय अन्यचक्रों की कल्पना की गई है। चित्त की एकाग्रता ही उन चक्रों के ध्यान का प्रयोजन है। आज्ञाचक्र के अन्तर्गत परिगणित चक्रों में त्रिकोण, षट्कोण कामचक्र प्रश्नचक्र तथा फलचक्र प्रमुख हैं। त्रिकोण तो आज्ञाचक्र की कर्णिका के मध्य में है। शेष चार चक्र त्रिकोण के बाहर हैं, किन्तु आज्ञाचक्र के अन्तर्गत ही हैं। अष्टकोण से ऊपर पवर्ग, ओ औ, तवर्ग, लृ, ए, ऐ, ट वर्ग, ऋ, ॠ, लॄं, चवर्ग, ई, उ, ऊ, कवर्ग, अ, आ आदि वर्णों के ध्यान का निर्देश किया गया है। इन चक्रों की भावना करनेवाला चिरंजीवी और अमर होता है।[१]

आज्ञाचक्र से लेकर ऊपर की ओर कुछ विशेष पद और अवस्थायें हैं; जो अति सूक्ष्म हैं। इस सन्दर्भ में षट्चक्र-विवरण में बिन्दु, कला, निबोधिका, अर्धेन्दु, नाद नादान्त, उन्मनी, विष्णुवज्र और ध्रुवमण्डल तथा शिवपद का क्रम निर्दिष्ट है।[२] त्रिकोण में अवस्थित अन्तरात्मा चारों ओर अन्तरिक्ष में प्रकीर्ण होनेवाले अपने प्रकाश युक्त स्फुलिङ्ग से वेष्टित है तथा मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक के समस्त क्षेत्रों का प्रकाशक है। इसके ऊपर सूक्ष्मरूप मन और उसके ऊपर चन्द्रमण्डल के हंस की क्रोड़ में शक्तिसहित शिव की स्थिति है।[३]

आज्ञाचक्र-भेदन–आज्ञाचक्र वायु का भास्वर आस्पद है। सूक्ष्म वायु के द्वारा इस चक्र में शनैः शनैः मन को लीन करना चाहिए तथा सहस्रार के समान, गुरू, आत्मा, ईशान और सनातन देव का ध्यान[४] करना चाहिए। साधक श्री गुरू के चरणकमल से निःसृत परामृतधारा से कुलकुण्डलिनी का अभिषिंचन करे। तदनन्तर बार-बार परं रस का पान कराकर प्रबुद्ध होती हुई कुण्डलिनी का स्मरण करना चाहिए। यह स्थिति प्राणवायु की धारणा के साथ-साथ कंद के संकोच के साथ होनी चाहिए। प्रायोगिक साधना में बार-बार जागरण-क्रियापद्धति का अभ्यास करना चाहिए। इस चक्र की साधना में सर्वप्रथम ऐसे परम महेश्वर का ध्यान करना चाहिए; जो कामरूप हैं, श्मशान के अधिप हैं, पल-अनुपल के ज्ञाता हैं,....., बहुरूपी एवं कालरुद्र हैं। तदनन्तर मन्त्री उस डाकिनी देवी का ध्यान करे, जो रौरव का विनाश करनेवाली, कोटि विद्युत्प्रभा के समान.......,कामहरा, शिवा, परनाथ के वाम में स्थित, पवित्र और सर्वाधारात्मिका है। यह ध्यान आदि कुलमार्ग के अनुसार करना चाहिए। अतः इसके लिए श्वासाभ्यास, अष्टाङ्गयोगाभ्यास, दम तथा धैर्य आवश्यक है। कुलमार्ग के बिना मोक्ष की सिद्धि असम्भव है। सभी चक्रों की साधना में प्राणायाम ही मुख्य अङ्ग है। प्राणायाम को कोटि-कोटि महापातक का विनाश करनेवाला कहा गया है। जो दिन-रात, प्रातः तथा संध्याकाल में १६प्राणायाम करता है, वह एक संवत्सर में खेचर तथा योगिराड् हो जाता है। वह योगी कौलमार्ग का आश्राय ग्रहण कर अमर हो जाता है।[५]

आज्ञाचक्र की साधना में हाकिनी-परशिव-पूजन[६], हाकिनी-स्तोत्र[७], हाकिनीशक्तिकवच[८],

---

१. रुद्रयामल उ०त०,२०/२-४२
२. षट्चक्रनिरूपणम् की श्लोक संख्या-३४ के विवरण में सन्दर्भित
३. वही, श्लोक-३८
४. रुद्रयामल उ०त०, १६/७-१३
५. वही, १६/१७-४४
६. वही, ८५, वाँ पटल
७. वही, ८६/२-१९
८. वही, ८७/७-४८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परनाथकवच[१], हाकिनीसहस्रनाम[२] तथा परनाथ-सहस्रनाम[३] का पाठ तथा वाराणसीपीठ-नाथान्तयजन[४] आतिसहायक हैं।

आज्ञाचक्र अर्थात् भ्रूपद्म की साधना में परनाथ (परशिव) तथा हाकिनी का यजन-पूजन अनिवार्य है। आनन्दभैरवी का कथन है कि जो साधक भ्रूमध्य में भ्रूपद्म-भेदनक्रम को जानता है, वह देवी के निकट होकर जीवन्मुक्त हो जाता है–

यो हि जानाति भ्रूपद्म-भेदनक्रमम्।
स ममाग्रे समायति जीवन्मुक्तो भवार्णवे।।[५]

सर्वप्रथम साधक बद्धभेकासन करके शोभामण्डलानन्दपूरित, भ्रूपद्मनिकर में चित्त को आरोपित करे। सत्त्वग्रंथि का भेदन करके साधक स्थिरचेता हो जाता है।[६] आज्ञाचक्र में सप्तग्रंथियाँ एवं उन ग्रंथियों में सप्तदेवता अधिष्ठित हैं, जो योग की रक्षा एवं योगत्व की प्राप्ति हेतु, वहाँ निवास करते हैं। सप्तदेवता हैं–स्थिरमाया, योगमाया, कालमाया, लाकिनी, देवमाया, धर्ममाया तथा विमाया। सत्त्वग्रंथि आकाश के समान सुशोभित हैं। सूक्ष्मवायुक्रम से भेदकर जिस साधक का मन शीघ्र ही योगिमण्डल में जाता है; वह वीर है, निरा मनुष्य नहीं। सप्तग्रंथियाँ हैं–खगिनी, द्राविणी, धूम्रा, कठिना, कर्कटी, श्यामला तथा कपिला।[७] इन ग्रन्थियों का भेदन क्रम इस प्रकार है–

खगिनी[८]–खगिनी-मन्त्र का उच्चारण करके सूक्ष्मश्वास को क्रमपूर्वक ऊर्ध्वमार्ग में १०८ बार छोड़ना चाहिए। खगिनी-मन्त्र है–"ॐ ह्रीं खं भेदा भेदा खं फट्"।

द्राविणी[९]–द्राविणी-मन्त्र का उच्चारण करके सूक्ष्मश्वास को सूक्ष्ममार्ग के द्वारा १०८ बार छोड़ना चाहिए। द्राविणी-मन्त्र का बार-बार ध्यान करके एवं जप करके भ्रूदल सूक्ष्मदृष्टि के द्वारा के भ्रूदल के अन्दर देखने पर अकस्मात् सिद्धि की प्राप्ति होती है। द्राविणी-मन्त्र है–

"ॐ सौः शं ऐं द्रां ग्रन्थिं द्रावय द्रावय स्वाहा फट्"।

धूम्रा[१०]–धूम्रा-मन्त्र है "ॐ श्रीं श्रीं धूं मृत्युनाशिनि ग्रन्थिं घन घन फट्"।

चक्रासन या भेकासन करके इस मन्त्र का १०८ या १००८ बार जप करना चाहिए। भ्रपद्म के अन्तर्गत द्विदल--पद्म है। उसके अन्दर कर्णिका में महापीठ का ध्यान करें। त्रिकोण के अन्दर बिन्दुषट्कोण लिखें। उसके बाहर सप्तभूरेखा का ध्यान करें। वहीं शतदल विद्युत्कोटिकान्ति के समान प्रभाव वाला दिव्य पङ्कज है। उसके प्रत्येक पत्र में महामुद्रास्थान दिव्यस्थान का ध्यान बार-बार करके कर्णिका में हाकिनी परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए।

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ८८/६-३२
२. वही, ८०/३-१७६
३. वही, ९०/१२-११८
४. वही, ९२वाँ पटल
५. वही, ८४/४
६. वही, ८४/११
७. वही, ८४/१३-१९
८. वही, ८४/१९-२१
९. वही, ८४/२२-२४
१०. वही, ८४/२५-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कठिना[१]–कठिना-मन्त्र इस प्रकार है–"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कठिनग्रंथिं छेदय छेदय परमश्वरि ह्रीं फट्"।

अधोमुण्डासन करके पद्मासन में बैठकर उक्त मन्त्र का १०८ या १००८ बार जप करना चाहिए। साधक महापीठ भ्रूपद्म में चित्त को आरोपित करे। पीठ के त्रिकोण के मध्य में बिन्दु षट्कोण है। उसके बाहर सप्तभूबिम्ब है, वहीं रक्तशतदलपद्म की भावना करनी चाहिए। उसके उत्तर चतुर्द्वार है। प्रत्येक पत्र में तीन-तीन ब्रह्मा-विष्णु-महेश रूपी केशरों का ध्यान करना चाहिए।

कर्कटी[२]–कर्कटी-मन्त्र है–"शं ह्रीं माया कर्कटी कूटग्रंथिं भेदय भेदय क्लीं (?) फट्"। इस मन्त्र का ध्यान चित्शक्तिमण्डल में १०८ बार करना चाहिए।

श्यामला[३]–श्यामला-मन्त्र इस प्रकार है–"ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ह्री ह्रीं श्रीं श्यामला-दृढ-ग्रन्थिं विभेदिनि विलं निर्मलं मां कुरू कुरू क्लीं फट्"।

आसनपूर्वक प्रतिदिन इसका १०८ बार जप करने से साधक धीरे-धीरे सिद्धियुक्त, ज्ञानी, मौनी, महागुणी तथा देवी का आश्रित हो जाता है।

कपिला[४]–कपिला-मन्त्र है–"ॐ ऐं कपिला-ग्रंथिं भेदय भेदय छेदय चित्तं में भ्रूगृहे समारोपय समारोपय कं (कपिलाबीज?) ह्रीं श्रीं फट्"।

इस मन्त्र का यदि साधक १०८ या १००८ बार जप करे तो दो महीने में ही आज्ञाचक्र के अन्तर्गत सप्तग्रंथियों का भेदन होता है तथा साधक साक्षात् भैरव-स्वरूप हो जाता है।

आज्ञाचक्र की साधना से साधक समदृष्टिवाला, यज्ञ आदि के कल्याण से युक्त, पुत्रलाभवाला, दयायुक्त, भूपति, लोकभक्ति, धन, कीर्ति, त्रिवर्ग से युक्त, बहुप्रतापी, शत्रुहन्ता, प्रभुभक्त, देश-विदेशगमन, धनादि के आगम से युक्त, नित्यज्ञानोदय तथा लोकोल्लास से युक्त होता है।[५]

(७) सहस्रार (सहस्रदलपद्म)

सहस्रार निर्वाण काया से संबद्ध है। निर्वाण काया का अर्थ है–शून्यकाया–जहाँ हम होने से न-होने में छलांग लगा जाते हैं; क्योंकि यह भी जान लेना जरूरी है कि न-होना क्या है, मिट जाना क्या है। इसलिए सातवाँ शरीर एक अर्थ में महामृत्यु है।[६] अस्तित्त्व जो है, वह आधी बात है, अनस्तित्त्व भी है। इसी तरह प्रकाश और जीवन भी आधी बात है, क्योंकि अंधकार और मृत्यु भी है। इसलिए आखिरी अनस्तित्त्व को, शून्य को भी जानने की जरूरत है; क्योंकि

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ८४/३२-३८
२. वही, ८४/३९-४०
३. वही, ८४/४१-४५
४. वही ८४/४६-५०
५. वही, १२/४१-५१
६. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-०२३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमतत्त्व तभी पता चलेगा, जब दोनो जान लिए–अस्ति भी और नास्ति भी,....होना भी जाना उसकी सम्पूर्णता में और न–होना भी जाना उसकी सम्पूर्णता में.......तभी हम पूरे को जान पाये, अन्यथा यह भी अधूरा है।[१]

सहस्रार का अर्थ है–एक हजार पटल वाला कमल। जब साधक की ऊर्जा (कुण्डलिनी) सातवें चक्र–सहस्रार तक पहुँचती है, तब वह कमल हो जाता है,......उसका कमल पूर्ण रूप से खिल जाता है। यही कमल निर्वाण है। सबसे नीचे मूलाधार है–इससे जीवन विकसित होता है, शरीर और संवेदनाओं का जीवन। सातवें (सहस्रार चक्र) से शाश्वत जीवन का जन्म होता है, शरीर और संवेदनाओं का जीवन नहीं।[२]

'सहस्र' शब्द बड़ा अनुभव का है, सांयोगिक नहीं है। जैसे ही कुण्डलिनी–शक्ति सहस्रार में पहुँचती है, तो साधक को लगता है कि उसके भीतर जैसे हजार–हजार फूल एकदम से खिले गये–सब बन्द फूल एकदम से खिल गए। हजार भी इसी अर्थ में कि संख्या के बाहर जैसे घटना घटती है....और फूल इस अर्थ में कि कोई चीज़ जो बन्द थी कली की तरह, वह खुलती है।...... कली की तरह कोई चीज़ थी, वह फूल की तरह हो गयी है। फिर एकाध चीज़ नहीं खुल गयी, अनन्त चीज़ें हैं जो पूरी तरह से खुल गई हैं। इसलिए इसको सहस्रदलकमल कहा गया है।[३]

कुण्डलिनी का अन्तिम चरम बिन्दु है–सहस्रार, वह हमारा द्वार है, जहाँ परमात्मा निरंतर प्रतीक्षा कर रहा है।[४] कुण्डलिनी की यात्रा सोये हुए केन्द्र मूलाधार से उस स्थान, उस सीमांत–सहस्रार तक है। मनुष्य एक सीढ़ी के समान है। उसका पहला सोपान काम (मूलाधार) है और सातवाँ सहस्रार–समाधि है पहला सोपान संसार से जोड़ता है और सातवाँ निर्वाण से। पहले सोपान के साथ व्यक्ति जन्म-मृत्यु के दुष्चक्र में बार–बार भटकता है। सातवें के साथ व्यक्ति जन्म-मृत्यु के पार चला जाता है।[५] तब साधक का जीवन शाश्वत हो जाता है।

स्थान व स्वरूप–आज्ञाचक्र के ऊपर परमव्योम में शंखिनी नाड़ी के शिखर में ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व भाग में स्थित विसर्ग के नीचे सहस्रदलकमल की स्थिति मानी गई है, जो प्रकाशमान तथा पूर्ण चन्द्रमा से भी अतिशुभ्र और अधोमुखी है। यह केवलानन्द रूप है। इसे अकुल भी कहा जाता है। इसके तन्तु पुञ्ज तरूणरवि की कान्ति से रंजित हैं। सहस्रार का सम्पूर्ण वपु अकार से लकार पर्यन्त ५० वर्णों से विलसित है।[६] सहस्रार के अन्दर शशकविरहित स्फुरद् ज्योत्स्ना से युक्त सम्पूर्ण चन्द्र अवस्थित है, जो अमृत के समान स्निगध तथा शीतल है। चन्द्रमण्डल के अन्दर सतत् विद्युत्प्रभावत् प्रकाशित त्रिकोण है और इस त्रिकोण के अन्दर

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०–०२३१
२. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०–२५०
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०–१६२–१६३
४. वही, पृ०–१५७
५. तान्त्रिक ट्रांसफारमेशन, पृ०–२९
६. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक–३९–४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सभी सुरों द्वारा गुप्त रूप से सेवित महाशून्य है। यह शून्य मुक्ति की मुख्य जड़ है और जो अमाकला के साथ निर्वाणकला का आभासन करता है। यही परमशिव का पद है, वह सर्वात्मा है और रस तथा विरस का (शिवशक्तियोग सामरस्य रूप) ऐक्य है। वह अज्ञान और मोहरूप अंधकार को नष्ट करनेवाला सूर्य सदृश हंस है।[१] अमा-कला के अन्दर निर्वाण कला पर से भी परतर है, जो केशाग्र के सहस्रभाग के समान सूक्ष्म है तथा अर्धचन्द्राकार है। वह नित्या प्रबोधरूपा तथा सभी प्राणियों में व्याप्त है और एक साथ १२ सूर्यों की प्रभावाली है।[२] वह परमशक्ति परमशिव के समान सर्वविद्यमान है। मानव शरीर उसी शक्ति की सृष्टि है।[३] यहीं शिव का नित्य पद है, जो माया से रहित तथा योगियों द्वारा गम्य है एवं नित्यानन्द के नाम से प्रसिद्ध है। यह सकल सुखमय, शुद्धज्ञानमय, ब्रह्मरूप तथा हंसरूप है। यही विष्णु पद, आत्मज्ञान का स्थान तथा मुक्तिपद भी कहा जाता है।[४]

इस प्रकार मूलाधारादि षट्चक्रों का भेदन करके कुण्डलिनी-शक्ति जब सहस्रार में पहुँचती है, तो यही मोक्ष अवस्था कहलाती है, जो तंत्र का परम लक्ष्य है।

कुण्डलिनी-साधना या कुण्डलिनी-जागरण

आत्मानुभूति का व्यावहारिक ज्ञान तंत्रशास्त्र के द्वारा प्राप्त होता है। मानव का शरीर देव-मन्दिर है तथा उसमें इष्टदेव का चिर निवास है, किन्तु अज्ञानवश हम उसे जानने में असमर्थ रहते हैं। इष्टदेव की अपारशक्ति को अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा पहचानने और उसकी सुषुप्ति को चैतन्य बनाकर आत्म-कल्याण प्राप्त करने के लिए पूर्वाचार्यों ने अनेक मार्ग खोज निकाले हैं, जिनमें एक मार्ग है-'कुण्डलिनी-साधना'।[५]

भौतिक विज्ञान के मुताबिक पूरी दुनिया 'वेव्ज' एवं 'वाइब्रेशंज' का संग्रह है और भौतिक विज्ञान ने कई तरीकों से इन तरंगों पर काबू पाकर चमत्कारी उपलब्धियों से हमें चकित कर दिया है। दूसरी ओर तंत्र, जिसे हम चेतना-विज्ञान कहते हैं, वह इन्सान की चेतना पर काबू पाकर उसे निर्वाण या ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करवाता है। यह निर्वाण-ब्रह्मज्ञान इन्सान की चेतना का ही पूर्ण ज्ञान है।.....भारतीय संस्कृति की यह सबसे बड़ी प्राप्ति है कि उसने, पुरातनकाल से तंत्र-साधना और योग-साधना के द्वारा उसे चेतना-विज्ञान का रूप देने का प्रयत्न किया है और यही कारण है कि यहाँ के ऋषि-महर्षि अपनी साधना के बल पर अलौकिक शक्तियों का समय-समय पर दर्शन करवाते रहे।.......तंत्रशास्त्र के अनुसार उस पराशक्ति का या चिद्शक्ति का विकास, कुंडलिनी शक्ति को जगाकर ही किया जा सकता है। तंत्र की मूल बुनियाद कुंडलिनी-शक्ति का जागरण है।[६]

---

१. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक ४१-४२
२. वही, श्लोक-४७
३. कुण्डलिनी इन टाइम एण्ड स्पेस, २२
४. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-४९
५. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-७१
६. सात मुसाफिर, पृ०-१०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुण्डलिनी मूलाधार-चक्र में स्थित स्वयंभूलिङ्ग को साढ़े तीन चक्करों से आवेष्टित करके अपने मुख से सुषुम्ना पथ को रोककर सुषुप्तावस्था में स्थित है।[१] इसलिए कहा गया है कि उसे महाशक्ति को जगाएँ-

सार्द्धत्रिवलयाकारां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टितम्।
उत्थापयेन्महादेवीं महारक्तां मनोन्मनीम्।।[२]

(क) नामकरण

जिस जगह जीवन की ऊर्जा इकट्ठी है, वह जननेन्द्रिय के पास कुण्ड की भाँति है। इसलिए उस ऊर्जा का नाम कुण्डलिनी पड़ गया, जैसे कोई पानी का छोटा-सा कुण्ड। और इसलिए भी उस ऊर्जा का नाम कुण्डलिनी पड़ गया कि जैसे कोई साँप कुण्डल मारकर सो गया हो।......यह उपयुक्त होगा ख्याल में ले लेना कि यौन से, काम से जो थोड़ा-सा सुख मिलता है, वह सुख भी यौन का सुख नहीं है, वह सुख भी यौन के साथ वह जो कुण्ड है हमारी जीवन-ऊर्जा का, उसमें आए हुए कम्पन का सुख है.....थोड़ा सा वहाँ सोया साँप हिल जाता है। उसी सुख को हम सारे जीवन का सुख मान लेते हैं। जब वह पूरा साँप जागता है और उसका फन पूरे व्यक्तित्त्व को पार करके मस्तिष्क तक पहुँच जाता है, तब जो हमें मिलता है, उसका हमें कुछ भी पता नहीं। हम जीवन की पहली सीढ़ी पर जीते हैं। बड़ी सीढ़ी भी है, जो परमात्मा तक जाती है। वह जो हमारे भीतर तीन फीट या दो फीट का फासला है; वह फासला एक अर्थ में बहुत बड़ा है; वह प्रकृति से परमात्मा तक का फासला है; वह पदार्थ से आत्मा तक फासला है; वह निद्रा से जागरण तक का फासला है। वह बड़ा फासला भी है। ऐसे छोटा फासला भी है। हमारे भीतर हम यात्रा कर सकते हैं।[३]

मूलाधार-चक्र के मध्य त्रिकोण के बीच में एक स्वयम्भूलिङ्ग है।[४] इस स्वयम्भूलिङ्ग को कुण्डलिनी साढ़े तीन बार वेष्टित किए हुए है।[५] वह (कुण्डलिनी) स्वयम्भूलिङ्ग पर सुषुप्तावस्था में साढ़े तीन वृत्ताकार (कुण्डलाकार) होकर स्थित होने से कुण्डलाकार स्वरूपवाली है और इसीलिए उसका नाम कुण्डलिनी है।[६]

शरीर के भीतर में जो गहरे अनुभव हैं, उन गहरे अनुभवों का जो मूल केन्द्र है, वह कुंडलिनी है।.......वस्तुतः शरीर को भी जानने के दो ढंग हैं। एक तो बाहर से जानना, जैसा कि डाक्टर जानता है और दूसरा शरीर को भीतर से जानना। जैसे आँख बन्द करके हमें अपने हाथ की जो आंतरिक प्रतीति होती है, भीतर से जो इसका अनुभव है, वह मेरा अनुभव है। तो

१. रुद्रयामल तंत्र, ७१
२. रुद्रयामल उ०त० ६/१५
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-६-७
४. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-९
५. रुद्रयामल उ०त०, ६/१५; सौन्दर्यलहरी, श्लोक;१०
६. षट्चक्रनिरूपणम्, श्लोक-१०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने ही शरीर को भीतर से जानने अगर कोई जाएगा, तो बहुत शीघ्र वह उस कुण्ड पर पहुँच जाएगा, जहाँ से सारी शक्तियाँ उठ रहीं हैं। उस कुण्ड में सोयी शक्ति का नाम ही कुण्डलिनी है[1]–

यह तेरे और मेरे अंधेरे बदन में
जो दीये की लौ-सी महाचेतना है
वही तो खुदा है.....वही तो खुदा है[2]

कुण्ड का अर्थ है शरीर के भीतर उस बिन्दु की खोज, जहाँ से जीवन की ऊर्जा पूरे शरीर में फैल रही है। असल में ऐसी कोई ऊर्जा नहीं होती, जिसका कोई केन्द्र न हो। चाहे दस करोड़मील दूर हो सूरज, लेकिन किरण है हमारे हाथ में, तो हम कह सकते हैं कि कहीं केन्द्र होगा जहाँ से वह यात्रा कर रही है और जहाँ से वह चल रही है।[3]

मनुष्य का शरीर भी एक शक्ति का पुंज है। वह शक्ति का पुंज है– उठ रहा है, बैठ रहा है, चल रहा है, सो रहा है। फिर ऐसा भी नहीं है कि उसकी शक्ति हमेशा एक-सी ही काम करती हो। कभी ज्यादा भी उसमें शक्ति होती है, कभी कम भी होती है। क्रोध में आदमी इतना बड़ा पत्थर उठाकर फेंक देता है, जिसे वह अक्रोध में हिला भी नहीं सकता। भय में आदमी किसी ओलम्पिक धावक की तरह दौड़ जाता है। इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति के पास कुछ संचय-कक्ष है, जिसमें से कभी शक्ति आ जाती है, कभी नहीं आती; जरूरत होती है तो आ जाती है, नहीं जरूरत होती तो छिपी रहती है। इस तरह व्यक्ति के पास एक केन्द्र है, जिससे शक्ति मिलती है–सामान्यतया भी, असामान्यतया भी; रोजमर्रा के कामों के लिए भी और असाधारण काम के लिए भी। फिर भी मनुष्य उस केन्द्र को कभी रिक्त नहीं कर पाता और कभी उस केन्द्र का पूरा उपयोग भी नहीं कर पाता। इस सम्बन्ध में जिन्होंने खोज की है, उनका ख्याल है कि १५ प्रतिशत से ज्यादा अपनी ऊर्जा का असाधारण से असाधारण आदमी भी उपयोग नहीं करता। हमारा महापुरुष भी १५ प्रतिशत से ऊपर नहीं जाता है। साधारण जन तो दो-ढ़ाई प्रतिशत से काम चलाता है। उसकी ९८ प्रतिशत शक्ति यों ही पड़ी-पड़ी विदा हो जाती है। इसलिए बड़े आदमी में और छोटे आदमी में कोई मौलिक क्षमतागत भेद नहीं होता; बीजशक्ति का कोई भेद नहीं होता; उपयोग का ही भेद होता है।[4]

'कुंड' शब्द महत्त्वपूर्ण है; उसके कई अर्थ हैं। पहला तो अर्थ यह है कि जहाँ ज़रा-सी लहर भी नहीं उठ रही; क्योंकि ज़रा-सी लहर उठे तो सक्रिय हो गयी शक्ति। कुण्ड का अर्थ है जहाँ सब सोया हुआ है, ज़रा सा कम्पन नहीं, सब प्रसुप्त है। दूसरा अर्थ है कि प्रसुप्त तो है, लेकिन किसी भी क्षण सक्रिय हो सकता है; मृत नहीं है। सूखा नहीं है, कुण्ड भरा है। किसी क्षण सक्रिय हो सकता है, लेकिन सब सोया हुआ है।[5] यह जो सोया हुआ कुण्ड है अचेतन,

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ० १०२
२. एक मुट्ठी अक्षर, ६९
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-१०३
४. वही, पृ०-१०३
५. वही, पृ०-१०४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसमें से जितनी शक्ति जग जाती है, वह कुंडलिनी है, कुंड तो अचेतन है, कुंडलिनी चेतन है। कुंड तो सोयी हुई शक्ति का नाम है, कुण्डलिनी जागी हुई शक्ति का नाम है। उसी से जितना हिस्सा जागकर ऊपर आ गया; उस कुण्ड से जितना बाहर आ गया, उतनी कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी पूरा कुंड नहीं है, कुंडलिनी उसमें से बहुत छोटी-सी एक लहर है, जो उठ गई। इसलिए दोहरी खोज है इस यात्रा में।[1] कुण्डलिनी जागरण तो सिर्फ एक सूचना है व्यक्ति के भीतर के एक स्रोत की, जहाँ और भी बहुत कुछ सोया होगा। जब एक किरण आयी है, तो अनंत किरणों की वहाँ सम्भावना है। इसलिए कहा गया है कि कुंडलिनी षट्चक्रों का भेदन करके सहस्रार में पहुँचती है तथा वहाँ परमानन्दमय परमात्मा के साथ एकात्म प्राप्त करती है तथा पुनः मूलाधार-कमल में लौट आती है, अपने कुंड में पुनः आ जाती है-

मूलोन्निद्रभुजंगराज सदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं।
भित्त्वाधारसमूहमाशु विलसत् सौदामिनी-सन्निभाम्।।
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद् दिव्यामृतौघैः पतिं,
सम्भाव्य स्वगृहागतां पुनरिमां सच्चिन्तये कुण्डलीम्।।[2]

(ख) कुण्डलिनी का प्रतीक-सर्प

भारतीय चिन्तन में सर्प कुण्डलिनी-शक्ति का प्रतीक है।[3] कुण्डलिनी के लिए सर्प का प्रतीक बड़ा मौजू (अर्थपूर्ण) है। शायद उससे अच्छा कोई प्रतीक नहीं है। दुनिया के किसी कोने में भी ऐसा नहीं है कि सर्प कभी न कभी उनके धर्म में प्रवेश न कर गया हो; क्योंकि सर्प में कई खूबियाँ हैं, जो कुण्डलिनी से तालमेल खाती हैं।[4]

पहली तो बात यह कि सर्प का ख्याल करते ही सरकने का ख्याल आता है-और कुण्डलिनी का पहला अनुभव किसी चीज़ के सरकने का अनुभव है.......कोई चीज़ जैसे सरक गयी-जैसे सर्प सरक गया। सर्प का ख्याल करते ही एक दूसरी चीज़ ख्याल में आती है कि सर्प के कोई पैर नहीं हैं, लेकिन गति करता है-गति का कोई साधन नहीं है उसके पास, कोई पैर नहीं है लेकिन गति करता है। कुण्डलिनी के पास भी कोई पैर नहीं है, और कोई साधन नहीं है-निपट ऊर्जा है, फिर भी यात्रा करती है। तीसरी बात, सर्प जब बैठा हो, विश्राम कर रहा हो, तो कुण्डल मारकर बैठ जाता है। जब कुण्डलिनी बैठी हालत में होती है, हमारे शरीर की ऊर्जा जब जगी नहीं है, तो वह भी कुण्डल मारे ही बैठी रहती है। असल में एक ही जगह पर बहुत लम्बी चीज़ को बैठना हो तो कुण्डल मार कर ही बैठ सकती है-.......और तो कोई उपाय भी नहीं है उसके बैठने का। और बहुत बड़ी शक्ति बहुत छोटे से बिन्दु पर बैठी है, तो कुण्डल मारकर ही बैठ सकती है। फिर सर्प जब उठता है, तो एक-एक कुण्डल टूटते हैं उसके-जैसे-जैसे वह उठता है उसके कुण्डल टूटते हैं। ऐसा ही एक-एक कुण्डल कुण्डलिनी

---

१. वही, पृ०-१०४-१०५
२. शारदतिलक, ६५-पृ०-५४८
३. सात मुसाफिर, पृ०-१२
४. जिन खोजा तिन पाइयाँ, ३३५-३६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का भी टूटता हुआ मालूम पड़ता है, जब कुंडलिनी का सर्प उठना शुरू होता है।[१] इसलिए इसकी तुलना अधिकतर कुण्डली मारे हुए सर्प से की जाती है।[२]

सर्प कभी खिलवाड़ में अपनी पूँछ भी पकड़ लेता है। सर्प का पूँछ पकड़ने का प्रतीक भी कीमती है। वह कीमती इसलिए है कि जब कुंडलिनी पूरी जागेगी तो वह वर्तुलाकार हो जाएगी...... और भीतर उसका वर्तुल बनना शुरू हो जायेगा-उसका फन अपनी ही पूँछ पकड़ लेगा; साँप एक वर्तुल बन जाएगा। अब कोई प्रतीक हो सकता है कि साँप के मुँह ने उसकी पूँछ को पकड़ा। अगर पुरूष-साधना की दृष्टि से प्रतीक बनाया गया होगा तो मुँह पूँछ को पकड़ेगा-आक्रामक होगा; और अगर स्त्री-साधना के ध्यान से प्रतीक बनाया गया होगा तो पूँछ मुँह को छूती हुई प्रतीत होगी-समर्पित पूँछ है वह; मुँह ने पकड़ा नहीं है। यह अन्तर पड़ेगा प्रतीक में, और कोई अन्तर पड़नेवाला नहीं है।

सर्प का फन भी सार्थक प्रतीत हुआ; क्योंकि पूँछ तो उसकी पतली होती है, लेकिन उसका फन बड़ा होता है। और जब कुंडलिनी पूरी की पूरी जागती है, तो सहस्रार में जाकर फन की भाँति फैल जाती है। उसमें बहुत फूल खिलते हैं, वह बहुत विस्तार ले लेती है; पूँछ तब उसकी बहुत छोटी रह जाती है। सर्प जब कभी खड़ा होता है तो बड़ा आश्चर्यजनक है: वह पूँछ के बल पूरा खड़ा हो जाता है। वह भी एक चमत्कार है। सर्प में हड्डी नहीं होती, वह बिना हड्डी का जानवर है, लेकिन वह पूँछ के बल खड़ा हो सकता है। वह केवल ऊर्जा के सहारे खड़ा होता है, सिर्फ शक्ति के बल, सिर्फ संकल्प के बल खड़ा होता है। इसी तरह जब कुंडलिनी पूरी जागकर खड़ी होती है तो उसके पास भी कोई स्थूल सहारा नहीं होता, एकदम अपदार्थगत शक्ति होती है। इसलिए सर्प प्रतीक की तरह लगा।[३]

फिर एक अर्थ में सर्प बहुत निर्दोष है, बड़ा भोला है। इसलिए भोले शंकर उसको सिर पर रखे हुए हैं। ऐसे अपनी तरफ से किसी को सताने नहीं जाता, लेकिन अगर कोई छेड़ दे तो खतरनाक सिद्ध हो सकता है। तो यह ख्याल भी कुण्डलिनी में है कि कुण्डलिनी ऐसे बहुत निर्दोष, सीधी-सादी शक्ति है।[४] अपनी तरफ से वह साधक को परेशान नहीं करती, लेकिन साधक अगर गलत ढंग से छेड़ दे, तो खतरे में पड़ सकता है। भारी खतरा हो सकता है। इसलिए गलत ढंग से छेड़ना खतरनाक है, वह बोध भी ख्याल में है।

फिर सारी दुनिया में सर्प प्रज्ञा का भी प्रतीक है। जीसस का वचन है-"सर्प जैसे बुद्धिमान-चालाक और कबूतर जैसे भोले....ऐसे बनो"। सर्प बहुत ही बुद्धिमान प्राणी है-बहुत सजग, बहुत जागरूक, बहुत तेज, बहुत गतिमान, ये सब उसकी खूबियाँ हैं। कुण्डलिनी भी ऐसी ही है। बुद्धिमत्ता का चरम शिखर उससे छुआ जायेगा। उतनी ही चपल और गतिमान भी

---

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-३३६
२. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र, पृ०-४४
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-३३६
४. वही, पृ०-३३७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। उतनी ही शक्तिशाली भी है, तो पुराने दिनों में जब यह प्रतीक खोजा गया कुण्डलिनी के लिए, तब शायद सर्प से बेहतर कोई प्रतीक नहीं था–अब भी नहीं है।[१]

हमारी पराशक्ति सर्पाकार है, इसलिए सर्प हमारी संस्कृति का एक अनमोल खज़ाना है। तंत्र या आगमशास्त्र के आदि गुरू शिव की मूर्तियों में हम देखते हैं कि उनके गले में सर्प लिपटा हुआ है और यह प्रतीक हमारी संस्कृति के विभिन्न पहुलओं को दर्शाता है। सर्प पूजा या नागपूजा के मूल में हमारी आध्यात्मिक रहस्यवादी परम्पराएँ गूँजती हैं।.......सर्प हमारी कुंडलिनी शक्ति का प्रतीक है। और यह अनार्य संस्कृति की प्राप्ति होने के कारण सबसे प्राचीन है और यही कालान्तर में नाग-पूजा आदि कई रूपों में, कई संस्कृतियों का प्रतीक बन गया, धार्मिक भी, सामाजिक भी और नैतिक भी।[२]

कुण्डलिनी का आधुनिक प्रतीक–विद्युत व रॉकेट

कुण्डलिनी के शायद भविष्य में और प्रतीक हो जायँ–रॉकेट की तरह। कभी भविष्य का कोई ख्याल राकेट की तरह कुंडलिनी को पकड़ सकता है; वैसी उसकी यात्रा है–एक अन्तरिक्ष से दूसरे अन्तरिक्ष, एक ग्रह से दूसरे ग्रह–बीच में शून्य की पर्त्त है–वह कभी प्रतीक बन सकता है। प्रतीक तो युग खोजता है। यह प्रतीक तो उस दिन खोजा गया जब आदमी और पशु बड़े निकट थे। उस समय सारे प्रतीक हमने पशुओं से खोजे, क्योंकि हमारे पास वही तो जानकारी थी, उन्हीं से हम खोजते थे। सर्प उस समय हमारी नज़र से सबसे निकटतम प्रतीक था। जैसे विद्युत.....उस दिन हम नहीं कह सकते थे। आज कुण्डलिनी के साथ विद्युत की बात की जा सकती है। आज से पाँच हजार साल पहले कुण्डलिनी के साथ विद्युत की बात नहीं की जा सकती थी, क्योंकि विद्युत का कोई प्रतीक नहीं था। लेकिन सर्प में विद्युत जैसा गुण भी है।[३]

(ग) कुण्डलिनी का स्थान व स्वरूप

महाशक्ति कुण्डलिनी उस परमेश्वर की ही चेतना शक्ति है। पिण्ड में उस शक्ति का स्थान शास्त्रों द्वारा स्वीकृत मूलाधार-चक्र में है। मूलाधार चक्र लिङ्गमूल (अण्डकोश) से नीचे और गुदाद्वार से ऊपर (दोनों के बीच में–ध्वजोऽधो गुदोर्ध्वम्) स्थित है।[४] इसका क्षेत्र ४ अङ्गुल मान है।[५] यह स्थान कन्द और सुषुम्णा का सन्धिस्थल है।[६] कुण्डलिनी कन्द या कन्दयोनि स्थान पर सुषुप्तावस्था में रहती है। सामानय रूप से यह स्थान लिङ्ग से २ अंगुल नीचे तथा गुदा स्थान से २ अंगुल ऊपर माना जाता है। मूलाधार-चक्र के मध्य त्रिकोण के

---

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-३३७
२. सात मुसाफिर, पृ०-१२-१३
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-३३७
४. पटचक्रनिरूपणम्, श्लोक-४
५. हठयोग प्रदीपिका, ३/११३
६. षट्चक्रनिरूपणम् के श्लोक-४ का विवरण-'कन्द-सुषुम्णयोः संधिस्थानं संलग्न पत्रम्'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बीच में एक स्वयंभूलिङ्ग है। इस स्वयंभू लिङ्ग को कुण्डलिनी साढ़े तीन बार वेष्टित किए हुए है।

यह कुण्डलिनी द्विमुखी है। अतः एक मुख से तो यह ब्रह्मद्वार को रोककर सोई रहती है और दूसरे मुख से दण्डाहत भुंजगिनी के समान मात्र श्वास-प्रवास का संचालन करती है। यही जीव का निःश्वास-प्रश्वास है।[१] महाशक्ति कुण्डलिनी के दो स्वरूप कहे गये हैं–कुण्डलिनी और कुलकुण्डलिनी। कुलकुण्डलिनी ही महाकुण्डलिनी या ब्रह्मकुण्डलिनी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका स्थान सहस्रार माना गया है। मूलाधार-चक्र में सुषुप्तावस्था में विद्यमान शक्ति 'कुण्डलिनी' है, जो सर्परूपिणी है और जीवात्मा के रूप मे जानी जाती है।[२] यही जागने पर षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में पहुँचकर अपनी दूसरी संज्ञा-'कुलकुण्डलिनी' को चरितार्थ करती है। यही महाकुण्डलिनी मूल प्रकृति का संचालन करती है,[३] जो प्रकृति, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार-इन आठ भागों में विभक्त है।

साधकों ने कुण्डलिनी को अनेक रूपों में विभक्त किया है। यह मूलाधार में रहने से 'अधःकुण्डलिनी' कहलाती है, जबकि सहस्रार में एक और कुण्डलिनी का आवास माना गया है, जिसे 'ऊर्ध्व-कुण्डलिनी' कहते हैं। साधना-क्रम में सृष्टि-क्रम के साधक अधःकुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर षट्चक्र-भेदन कराते हुए उसका सहस्रार में ऊर्ध्व-कुण्डलिनी से योग कराते हैं और संहार-क्रम के उपासक ऊर्ध्व-कुण्डलिनी को सहस्रार से अवरोहित कराते हुए षट्चक्रभेदन पूर्वक मूलाधार में अधःकुण्डलिनी के साथ संयोग कराते हैं।[४]

तंत्रशास्त्र में कुण्डलिनी को एक पारिभाषिक शब्द माना गया है, जिसका अर्थ 'शब्द-ब्रह्म' या 'परावाक्शक्ति' है। सभी मन्त्र, देवता कुुण्डलिनी की अभिव्यक्ति हैं। मन्त्र में प्रयुक्त मातृकाओं (वर्णों) से ही विश्व-सृष्टि होती है, वही नाद-शक्ति और सर्वशक्तिसम्पन्न कला तथा परमेश्वरी है, वही निर्गुण ब्रह्म से प्रवाहमान अमृतस्रोत रूप है, वही ब्रह्म है, वही चित्-शक्ति वर्णों और शब्दों के रूप में प्रकट होती है। मातृकायें ही शाश्वत ब्रह्म का यंत्र हैं। उनकी शक्ति जब मन्त्रशक्ति से मिलती है, तब साधक शक्ति का साक्षात्कार कर पाता है। इसी शक्ति का सूक्ष्मरूप कुण्डलिनी है। उसका स्थूलरूप देवता का रूप है। कुण्डलिनी को अष्टप्रकृति-स्वरूपा कहा गया है।[५]

कुण्डलिनी देवी शक्तिरूपा, समस्त भेदों का भेदन करने वाली तथाा कलिकल्मष का नाश करके मोक्ष देनेवाली है। कुण्डलिसङ्गम से साधक चैतन्य-आनन्द में तल्लीन आकाशगामिनी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। यह अमृत और आनन्द रूप मनुष्यों का पालन

---

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ० ७१

२. मूलाधारे तू या शक्ति-र्भुजंगाकाररूपिणी।
जीवात्मा परमेशानि तनमध्ये वर्त्तते सदा।। मातृकाभेदतंत्र

३. तंत्रसाधानासार, पृ०-२६ (रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-२०४ पर वर्णित)

४. रुद्रयामल तंत्र, ७२

५. शाण्डिल्य उपनिषद्, अध्याय-१, योग-कुण्डलिनी उप०अ०-१ (रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-२०४ पर वर्णित)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करती है और यह श्वास और उच्छ्वास कला के द्वारा शरीरस्थ पञ्चमहाभूतों से आवृत्त होकर पंचप्राणरूपा हो जाती है। कुण्डलिनी परदेवता है, मूलाधार में विराजमान यह कुण्डलिनी कोटिसूर्यप्रतीकाशा, ज्ञानरूपा, ध्यानज्ञानप्रकाशिनी, मोक्षदा, नित्यज्ञानस्वरूपिणी, तेजाव्याप्ति-किरणा, मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक के मार्ग को प्रकाशित करनेवाली, कुण्डलाकृति, योगिज्ञेया एवं ऊर्ध्वगामिनी आदि महानीय स्वरूप वाली है।[1]

इसलिए कहा गया है कि मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति जब तक सोई रहेगी, तब तक मन्त्र, यंत्र एवं भजन-पूजनादि कुछ भी सिद्ध नहीं होते और जब उनके पुण्यों के प्रभाव से वह देवी जागृत हो जाती है तो उसकी कृपा से मन्त्र, यंत्र और भजन-पूजनादि सभी सफल हो जाते हैं-

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किंचिन्न सिद्धयेत् मन्त्र-यंत्रार्चनादिकम्।।
जागर्तियदि सा देवी बहुभिः पुण्यसंचयैः।
तत् प्रसादमायाति मन्त्र-यंत्रार्चनादिकम्।।[2]

(घ) कुण्डलिनी-जागरण

षट्चक्र-भेदन या कुण्डलिनी-जागरण की कोई निश्चित या विशेष पद्धति नहीं है। योग, मनन, निःस्वार्थ-सेवा, पूजा, स्तोत्र आदि सभी परम लक्ष्य की ओर साधक को अग्रेषित करते हैं। केवल भक्ति और निष्ठा की अपरिहार्यता होनी चाहिए।[3] वस्तुतः महाशक्ति कुण्डलिनी और उसका जागरण, साधना-जगत् का एक गंभीर रहस्य है। इसका स्वरूप वाणी का या भाषा का विषय नहीं बन सकता। यह पूर्णरूपेण साधनागम्य है, जिसकी अनुभूति सच्चे साधक या योगी को ही हो सकती है। शास्त्रों के द्वारा तो हम सैद्धान्तिक पक्ष का तात्पर्य समझ सकते हैं।

मूलाधार चक्र से सहस्रार तक का 'कुण्डलिनी-गमन' ही 'षट्चक्र-भेदन' या 'कुण्डलिनी-जागरण' के नाम से प्रसिद्ध है। कुण्डलिनी-जागरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जीवात्मा का परमात्मा में विलय होता है। जो प्रत्येक भारतीय योग का परम लक्ष्य है। कुण्डलिनी-जागरण की यात्रा दो भागों में विभक्त की जाती है। प्रथम-मूलाधार से आज्ञा-चक्र तक तथा द्वितीय-आज्ञा-चक्र से सहस्रार तक। प्रकृति कुण्डलिनी चित् का स्थूल रूप है। जिस क्षण कुण्डलिनी जागृत होती है, वह उसकी कुमारी अवस्था कहलाती है। अनाहत पर पहुँचने पर वह योषित् अवस्था तथा सहस्रार में पहुँचने पर वह 'पतिव्रता' कही जाती है।[4] सहस्रार सदाशिव तथा चित् का मिलन-स्थल है। चित् या शुद्धा विद्या को सदाख्या-१६ वीं कला

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ३२/१-१३
२. गौतमीय तंत्र (रुद्रयामल तंत्र, पृ०-७२ पर उद्धत)
३. कुण्डलिनी इन टाइम एण्ड स्पेस, पृ०-४१-४२
४. तैत्तिरीय आरण्यक, १-२७,१२ (कुण्डलिनी इन टाइम एण्ड स्पेस, पृ०-२४९ पर उद्धृत)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहते हैं। कुण्डलिनी की पतिव्रता अवस्था के प्राप्त होने पर साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

तंत्र के अन्तर्गत अन्नमय, प्राणमय आदि शरीरों को संगठित रखने के लिए साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों का वर्णन मिलता है। इन साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों का तात्पर्य हमारे शरीर की धमनियों, नसों या शिराओं से नहीं, वरन् उन प्रवाहों, मार्गों या वाहिकाओं से है, जिनके द्वारा प्राण, अन्तश्चेतना और स्थूल तथा सूक्ष्म ऊर्जाओं का संचरण होता है। इनमें से ७२ हजार नाड़ियाँ तथा उनमें से ७२ नाड़ियाँ मुख्य मानी जाती हैं। पुन: ७२ नाड़ियों में भी १८, अठारह में १० और दस में ३ नाड़ियाँ क्रमश: मुख्य मानी गई हैं। इन तीन नाड़ियों में एक नाड़ी प्रमुखतम मानी गई है, उसे ब्रह्मनाड़ी कहते हैं, जो सुषुम्ना मार्ग के भीतर अवस्थित है।[१] प्रमुख तीन नाड़ियों को इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना के नाम से जाना जाता है। मेरूदण्ड के बाहर बाँई ओर से इड़ा तथा दाँई ओर पिङ्गला लिपटी हुई। मेररूदण्ड के भीतर से सुषुम्णा नाड़ी कन्द से होकर सहस्रार (ब्रह्मरन्ध्र) तक जाती है। कदलीस्तम्भ की पर्त के समान सुषुम्णा के अन्दर वज्रा, चित्रिणी (चित्रा) और ब्रह्मनाड़ी है। इसी ब्रह्मनाड़ी के द्वारा यौगिक क्रियाओं के प्रभाव से महाशक्ति कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर पुन: लौटती है।[२] इनमें इड़ा का सम्बन्ध चन्द्रस्वर से है और पिङ्गला का सम्बन्ध सूर्यस्वर से है। सुषुम्ना नाड़ी शून्य नाड़ी है। जैसे इड़ा और पिङ्गला नाड़ी मूलाधार से चलकर भ्रूमध्य में होती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक पहुचती हैं, उसी प्रकार सुषुम्ना नाड़ी भी मूलाधार से निकलकर भ्रूमध्य में होती हुई ब्रह्मरन्ध तक पहुँचती है। भ्रूमध्य में इन तीनों नाड़ियों का संगम होता है। इसलिए उस स्थान को अन्तर्जगत् का प्रयागधाम कहा जाता है।[३] पिङ्गला नाड़ी प्राणशक्तिप्रवाह का प्रतीक है। इड़ा नाड़ी स्थूल और सूक्ष्म चित्त शक्ति के प्रवाह का प्रतीक है तथा सुषुम्ना इन दोनों के भीतर संतुलित प्रवाह का लक्षण या परिणाम है। जब इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों में क्रमश: चित्त और प्राणशक्तियों का प्रवाह समरूप से होने लगता है, तब सुषुम्ना की जागृति होती है। सुषम्ना की जागृति के बाद ही ब्रह्मनाड़ी जागृत होती है।.....इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना की जागृति के बाद भी जब तक सुषुम्ना में प्रबलता नहीं आती, तब तक ब्रह्मनाड़ी जागृत नहीं होती, उसमें उत्तेजना नहीं उत्पन्न होती। जिस दिन ब्रह्मनाड़ी में उत्तेजना उत्पन्न हो जाय, सपूर्ण शरीर में एक विद्युत तरंग की तरह शक्ति का उत्थान होता है। इसे ही कहते हैं कुण्डलिनी-शक्ति।[४]

ब्रह्मनाड़ी में ही षट्चक्रों की अवस्थिति मानी जाती है। इन्हीं चक्रों का भेदन करती हुई कुण्डलिनी सहस्रार तक जाती है। प्राणायाम से यह महाशक्ति जागृत होकर विद्युल्लता के रूप में ब्रह्मनाड़ी में प्रविष्ट होकर ऊपर ऊर्ध्वगमनशील होती है। कुण्डलिनी-जागरण-प्रविधि के पूर्व यहाँ विभिन्न चक्रों के तत्त्वों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है- (देखे पृ० 315)

१. तंत्र दर्शन, पृ०-९
२. रुद्रयामल उ०त०: धर्म और दर्शन, पृ०-१८६
३. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-७१
४. तंत्र दर्शन, पृ०-९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चक्र	दल	वर्ण	मण्डल	बीज	लोक	देवी	देवता	तन्मात्रा	कर्मेन्द्रिय	ज्ञानेन्द्रिय	तत्त्व	स्थान
मूलाधार	४	वं शं षं सं	पृथिवी	पृथिवी(लं)	भू	डाकिनी	ब्रह्मा	गंध	पायु	प्राण	पृथ्वी	कन्द
स्वाधिष्ठान	६	बं,भं,मं यं,रं,लं,	जल	जल(वं)	भुवः	राकिणी,	विष्णु,	रस,	लिङ्ग	रसना,	जल,	लिङ्गमूल
मणिपुर	१०	डं,ढं,णं तं,थं,दं धं,नं,पं,फं	अग्नि	अग्नि(रं)	स्वः	लाकिनी,	रुद्र,	रूप,	पाद,	चक्षु	तेज,	नाभिमूल
अनाहत	१२	कं,खं,गं, घं,ङं,चं, छं,जं,झं, ञं,टं,ठं	वायु	वायु(यं)	महः	काकिनी	ईशान/ विष्णु	स्पर्श,	हस्त,	त्वक्	वायु,	हृदय
विशुद्ध	१६	अं,आं,इं, ई,उं,ऊं, ऋं,ॠं,लृं लॄ,एं,ऐं, ओं,औं,अं,अः	नभ	आकाश(हं)	जनः	शाकिनी	सदाशिव,	शब्द,	वाक्,	श्रोत्र,	आकाश,	कण्ठ
आज्ञा	२	हं क्षं,	चन्द्र,	प्रणव(ॐ)	तपः,	हाकिनी,	पराशिव,	सभी तन्मात्राएं		सभी ज्ञानेन्द्रियां	मनअन्तः	भू, भ्रूमध्य
सहस्रार	१००० पर्यन्त वर्ण	अ से ळ सभी५० (अकार या विकल्प से लकार को छोड़कर)	कर्णिका के मध्य चन्द्रमण्डल , चन्द्रमण्डल में त्रिकोण, त्रिकोण के मध्य शून्य या परबिन्दु, शून्यस्थ सर्वेश, तत्रस्थ अमाकला, उसके मध्य निर्वाणकला, उसके मध्य शिवपद।									

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्रशास्त्र के शरीर विज्ञान में जिन छः प्रमुख चक्रों का वर्णन किया जाता है, उनका सम्बन्ध पंचतत्त्वों और मनस् तत्त्वों के साथ रहता है। ये चक्र सृष्टि के विकास-क्रम को दर्शाते हैं। सबसे नीचे स्थित मूलाधार-चक्र पृथिवी तत्त्व का और सबसे ऊपर स्थित आज्ञा-चक्र मनस् तत्त्व का प्रतीक है। कपालशीर्ष में स्थित सहस्रार चक्र परा अनुभूति का केन्द्र है, शिव का केन्द्र है।[१]

षट्चक्रों का भेद कुण्डलिनी के माध्यम से होता है। क्षुब्ध कुण्डलिनी का जागरण षट्चक्र-भेदन का उपक्रम बनता है। जीवात्मा से संयुक्त होकर कुण्डलिनी प्रत्येक चक्रों से यात्रा करते समय प्रत्येक के अधिष्ठातृ-तत्त्व को अपने में अन्तर्भूत कर लेती है। ऊर्ध्वगमन अवस्था में चक्रों के स्थूलतत्त्व क्रमशः विलय को प्राप्त होने लगते हैं और उनके स्थान पर कुण्डलिनी की संप्रभुता स्थापित हो जाती है। आज्ञा-चक्र के बाद समस्त तत्त्वों का विलय हो जाता है। तब तत्त्वों के साथ कार्य करने वाली इन्द्रियों का भी विलय उस कुण्डलिनी में हो जाता है। मूलाधार मे कुण्डलिनी समस्त स्थूल पदार्थों (विराट) की शक्ति है और सहस्रार में वह ईश्वर की शक्ति है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी वाक्शक्तियाँ कुण्डलिनी ही है।[२] कुण्डलिनी सहस्रार की ओर प्रयाण करने पर बैखरी के रूप में सर्वप्रथम मूलाधार में स्वयंभू-लिङ्ग को मोहित करती है। इसके बाद मध्यमा के रूप में हृदयस्थानीय अनाहत चक्रस्थ बाणलिङ्ग तथा उसके बाद पश्यन्ती रूप में आज्ञा-चक्रस्थ इतरलिङ्ग को मोहित करती है। परबिन्दु में पहुँचने पर परावस्था को प्राप्त करती है।

कुण्डलिनी का प्रयाण स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है। मूलाधार में (पाद, प्राण और इन्द्रिय सहित) पृथ्वी-तत्त्व गंध में विलीन हो जाता है। गंध स्वाधिष्ठान की ओर ले जाया जाता है। यहाँ गंध तथा जिह्वा और हस्तइन्द्रियों के साथ अप्-रस में विलीन होता है। तदन्तर रस मणिपुर की ओर अग्रसर होता है तथा वहाँ रस, तेज (अपनी चक्षु और वायु इन्द्रियों साथ) रूप में अनाहत में तथा वायु का स्पर्श में विलय होता है। अब स्पर्श विशुद्धचक्र के स्थान पर पहुँचता है तथा वहाँ स्पर्श तथा (श्रोतृ और वाक् इन्द्रिय सहित)आकाश, शब्द में विलीन होता है। तदन्तर शब्द आज्ञाचक्र की ओर गतिशील होता है। यहाँ पर और इसके आगे शब्द का मन में, मन का महत् तत्त्व में, महत् तत्त्व का सूक्ष्म-प्रकृति में, परबिन्दु से संयुक्त होकर सूक्ष्म प्रकृति का सहस्रार में विलय होता है। आज्ञा-चक्र से सहस्रार तक लय की विभिन्न अवस्थाएँ बतायी गयी हैं-नाद का नादान्त में, नादान्त का व्यापिका में, व्यापिका का समनी में, समनी का उन्मनी में और उन्मनी का विष्णुवक्त्र (पुं बिन्दु) में विलय स्वीकार किया जाता है।[३] इस प्रकार नाना वर्णों वाले दल-विशिष्ट-चक्रों का भी लय हो जाता है।

कुण्डलिनी-जागरण की साधना में षट्चक्रों का भेदन करने के बाद सहस्रार (महापद्म)में

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-१०
२. मायातंत्र, श्लोक-५१, (दॅ सरपेण्ट पावर, पृ०-२३६ पर उद्धृत)
३. वही श्लोक-५२, (पृ०-२३७ पर उद्धृत)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन के लय की पराकाष्ठा को मनोमहाप्रलय कहते हैं। मनोमहाप्रलय की अवस्था को प्राप्त साधक मुक्त होकर काल को वश में करके तत्त्वदर्शी, सर्वविद् और सर्वतोभद्र हो जाता है।[१]

साधक के शरीर में कुण्डलिनी शक्ति का शिव के साथ समागम को सात्त्विक पञ्चतत्त्व का मैथुन कहते हैं।

सहस्त्रारोपरि विन्दो कुण्डल्या मेलनम् शिवे।
मैथुनम् परं द्रव्यम् यतीनां परिकीर्तितम्।।[२]

शिव और शक्ति के सङ्गम के बाद अमृत धारा प्रवाहित होती है तथा समस्त चक्रों के देवताओं को अभिषिक्ति करती रहती है।[३] आज्ञाचक्र तक गुरू-निर्देश आवश्यक होता है। तदनन्तर साधक को स्वतः ब्रह्म-स्थान की अनुभूति हो जाती है। आज्ञाचक्र के बाद गुरू-शिष्य का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। १४ ग्रंथियों (३ लिङ्ग, ६ चक्र, ५ शिव) का भेदन करके तथा परमशिव से प्रवाहित होनेवाले अमृत का पान करके वह पुनः मूलाधार की ओर लौटती है। अब वह सृष्टि-क्रम व्यापार को उत्पन्न करती है। इस समय पुनः समस्त चक्र अपने तत्त्वों सहित अस्तित्त्व में आ जाते हैं। इसी को सौन्दर्यलहरी में सुन्दर ढंग से कहा गया है–

महीमूलाधारे कमपि मणिपुरे हुतवहं
मुखे स्वाधिष्ठाने हृदिमरूत आकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्त्रारे पद्मे सहरहसिपत्या विहरसे।।
सुधाधारा सारेश्चरणयुगलान्ते विगलिते
प्रपंच सिञ्चति पुनरपिरसाभ्नायमहसा।
अवाच्य स्वा भूमि भुजगनिभमध्युष्ठवलयं
स्वभात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी।[४]

अर्थात् "हे देवी कुण्डलिनी, तू भूतत्त्व को मूलाधार चक्र में, अग्नि को मणिपुर में, वायु को हृदयचक्र में, आकाश को विशुद्धचक्र में तथा मनस् तत्त्व को आज्ञा चक्र में कुलमार्ग से भेदती हुई सहस्रार में शिवयुक्त होकर विहार करती है। तत्पश्चात् अपने शीर्ष से बहती हुई अमृत की धारा चक्रों को आप्लावित करती हुई तू पुनः सर्प की तरह कुण्डली मारकर अपने कुलकुण्डरूपी विवर में सो जाती है।"

(ङ.) कुण्डलिनी-जागरण-प्रविधि

रुद्रयामल में कुण्डलिनी-प्रबोधन के लिए स्तोत्र[५], ध्यान[६], न्यास, मन्त्र, कवच[७], सहस्रनाम[८] आदि का वर्णन हुआ है। यथा स्तोत्र है–

---

१. रुद्रयामल, उ०त०, २९/३९-४०
२. योगिनी तंत्र, ६/४१
३. दि सरपेन्ट पॉवर, पृ०-२४०
४. सौन्दर्यलहरी, ९, १०
५. रुद्रयामल उ०त०, ६/२७-३६; ३२/२१-३०
६. वही, ६-१३
७. वही, ३३/६-५६
८. वही, ३६/६-१९१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधारे परदेवता भवानताधः कुण्डलीदेवता,
देवानामधिदेवता त्रिजगतामानन्दपुञ्जस्थिता।
मूलाधारनिवासिनी त्रिरमणी या ज्ञानिनी मालिनी,
सा मे मातृमनुस्थिता कुलपथानन्दैकबीजानना।।[1]

इस स्तोत्र को प्रणव से सम्पुटित कर पाठ करने से सर्वविध सौख्य प्राप्त होने के साथ ही साधक 'कुंडलीपुत्र' बन जाता है। अर्थात् माता कुण्डली उसको अपना लेती है। इसी तरह कुण्डली-कवच का प्रातः तीन बार, मध्याह्न में दो बार एवं सायंकाल में एक बार पाठ करने का विधान है।[2]

इसी प्रकार प्रस्तुत अध्याय में ही 'शारीरिक चक्रों की साधना' के क्रम में 'षट्चक्रभेदन' के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है। षट्चक्रों के भेदन के अनन्तर कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँचती है। अतः षटचक्रभेदन-प्रक्रिया ही कुण्डलिनी-जागरण की प्रविधि है।

एतदतिरिक्त कुण्डलिनी-गमन के विषय में विवेच्य ग्रन्थ में अलग से भी चर्चा की गई है। संक्षेप में कहा गया है कि साधक को सर्वप्रथम शरीर का शोधन करके अपेक्षित आसनों का अभ्यास करना चाहिए। तदनन्तर तीन बार प्राणायाम करके भूतन्यास, अङ्गन्यास, करन्यास, बीजन्यासादि करते हुए भूतशुद्धि करना चाहिए।[3] भूतशुद्धि[4], कुण्डलिनी-जागरण की पृष्ठ भूमि है। यह वह क्रिया है जिसके द्वारा शरीर में विद्यमान पञ्चभूत शुद्ध होकर परमब्रह्म से संयुक्त होते हैं अथवा यह वह क्रिया है जिसके द्वारा मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए शनैःशनैः सुषुम्णा-मार्ग से जीवात्मा का परमात्मा के साथ योग किया जाता है।[5] महाशक्ति कुण्डलिनी का मूलाधार आदि चक्रों से सहस्रार तक गमन ही जीवात्मा का परमात्मा से योग है।

भूतशुद्धि की ही तरह कुण्डलिनी-जागरण के लिए प्राणायाम का अतिशय महत्त्व है। इस हेतु अपेक्षित प्राणायाम के अन्तर्गत पूरक, कुम्भक और रेचक का अनुपात १:४:२ होना चाहिए। कुण्डलिनी पर गहरी श्वास का बहुत परिणाम होता है......हम सब साधारण जनों में, जिनकी कुण्डलिनी जन्मों-जन्मों से सोयी है, उनको बड़े तीव्र आघात की जरूरत है; सारी शक्ति इकट्ठी करके आघात करने की जरूरत है।[6] जिन-जिन केन्द्रों (चक्रों) पर चोट होगी, वहाँ-वहाँ से व्यक्तित्त्व का नया आविर्भाव होगा। और जब सारे केन्द्र सक्रिय होते हैं एक साथ, उसका मतलब है कि जब सबके भीतर से ऊर्जा एक-सी प्रवाहित होती है, तब पहली बार साधक अपने पूरे व्यक्तित्त्व में जीता है। अन्यथा कोई भी अपने पूरे व्यक्तित्त्व में साधारणतः नहीं जीता। हमारे ऊपर के केन्द्र तो अछूते ही रहते हैं।[7]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ३२/२१
२. वही, ३३/४-५
३. वही, ६७/२४६-४७
४. वही, ६२/३८-४३
५. हिन्दी तंत्रसार, पृ०-७५
६. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-८८
७. वही, पृ०-८९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्तु! भूतशुद्धि के बाद ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) में जीवात्मा का परमात्मा से ऐक्य करने के बाद सुषुम्णा में सुखपूर्वक वायु का प्रवेश कराना चाहिए।[1] इसका सविस्तार वर्णन हठयोग प्रदीपिका में किया गया है। कहा गया है कि–

विधि-वत्प्राणसंयामैर्नाडीचक्रे विशोधिते।
सुषुम्नावदनं भित्वा सुखाद्विशति मारूतः।।
मारूते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते।
यो मनः सुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी।।[2]

अर्थात् 'विधि के अनुसार प्राणायाम के संयम से नाड़ी चक्र का शोधन हो जाने पर प्राणवायु, सुषुम्णा के मुख का भेदन कर उसमें सुखपूर्वक प्रविष्ट होता है। जब प्राणवायु सुषुम्णा के मध्य गतिशील होता है, मन में स्थैर्य उत्पन्न होता है और मन के स्थिर होने पर उन्मनी अवस्था होती है।' सुपुम्णा में वायु-गमन होने पर मन की चञ्चलता समाप्त हो जाती है।

सुषुम्णा में वायुगमन के बाद षट्क्रभेदन की प्रक्रिया आरम्भ होती है। कहा गया है कि सुषुम्णा-मुख पर कन्द स्थान में या कर्णिकास्थान में चतुर्दल (मूलाधारस्थ) की अवस्थिति है। चतुर्दल के अन्त में अर्थात् मध्य के त्रिकोण के स्वयंभूलिङ्ग पर वह महाशक्ति कुण्डलिनी विराजमान है। साधक को उसी का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। यत्नपूर्वक अर्थात् विभिन्न प्रकार की यौगिक क्रियाओं द्वारा उसमें क्षोभ उत्पन्न करना चाहिए, जिससे वह ऊर्ध्वमुखी हो सके। इस चक्र के बाद षट्दल वाले स्वाधिष्ठान-चक्र की साधना करनी चाहिए। यहाँ पर मूलाधारस्थ देवताओं (डाकिनी, ब्रह्म) के साथ कुण्डलिनी का प्रवेश कराना चाहिए। यह राकिणी शक्ति का स्थान है। तदनन्तर स्वाधिष्ठान चक्र की देवी (राकिणी) और देवता (विष्णु) तथा कुण्डलिनी को साथ-साथ मणिपुर-चक्र की ओर प्रयाण करना चाहिए। इसी प्रकार एवं इसी क्रम से हृद्पद्म (अनाहत चक्र), विशुद्ध चक्र (षोडशारम्) एवं आज्ञाचक्र (द्विदलम्) की ओर क्रमशः कुण्डलिनी का गमन कराना चाहिए।[3]

आज्ञाचक्र के भेदन के बाद साधक को बोधनी चक्र का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। तदनन्तर कटाह का भेदन करके पूर्णशैल का आश्रयण करना चाहिए। उसके बाद उन्मनी को पार करके घटाधार में मन को लय करें। उसके ऊपर प्रलयाकार ब्रह्मचक्र है। ब्रह्मचक्र के ऊपर ब्रह्मदण्ड, उसके ऊपर केवल जल है। समस्त जल का आलम्बन सहस्रार है। उसके ऊपर कर्णिका स्थान सिद्धखड्ग है, उसके ऊपर सर्वबीजमय मातृकामण्डल है। मातृकामण्डल के ऊपर सुधामय प्रेतबीज है। प्रेतासन पर ही महाकालकुलेश्वरी का ध्यान करना चाहिए तथा वहीं पर श्रीपदाम्भोजतल में मन को संस्थापित करना चाहिए। पूर्वोक्त देवताओं के द्वारा लय करने के बाद वहीं स्थित होकर मूल में अग्नि से संध्यायन करना चाहिए। वायुबीज (यं) से

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/२४८-४९
२. हठयोग प्रदीपिका, २/४१-४२
३. रुद्रयामल उ०त०, ६७/ २४९-५२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देह को प्रज्वलित करें। तदनन्तर भ्रूदल स्थित नेत्रस्थित वह्नि का लय करना चाहिए। उसके शिखा से ब्रह्मबिन्दु क्षरित होता है। उस बिन्दुधारा से देह को प्लावित करना चाहिए। तभी देह शुद्ध होता है। तदनन्तर बीज के द्वारा प्रथमांकुर का ध्यान करना चाहिए। अधोमार्ग के द्वारा कुण्डलिनी के गमन-अगमन का ध्यान करना चाहिए। यही कुण्डलिनी का गमन-विज्ञान है।[१]

(च) कुण्डलिनी-जागरण का स्वरूप एवं अनुभूति

कुण्डलिनी-जागरण हेतु सम्यक् साधना के परिपक्व होने पर सुषुप्त चेतना शक्ति-कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर प्रत्येक चक्र पर आक्रमण करती है। चक्रों के जागृत होने पर मन प्रबुद्ध हो जाता है और योगी चमत्कृत-शक्तियों को प्राप्त करता है। वह देहभावाभिमानी नहीं रह जाता, मन से भी ऊपर उन्मना राज्य में प्रवेश कर जाता है तथा आत्मा भी सभी बन्धनों से मुक्त हो जाती है।[२] जिस समय कुण्डलिनी अपने स्थान को छोड़कर उत्थित होती है तो शरीर में स्फुरण होने लगता है। जैसे-जैसे यह महाशक्ति चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर को बढती जाती है, वैसे ही शरीर में प्रफुल्लता एवं भारहीनता की अनुभूति बढती जाती है। सहस्रार में कुण्डलिनी के पहुँचने पर निर्विकल्प समाधि की दशा में शरीर भारहीन होकर चिदानन्द की प्राप्ति करता है। यही साधना का अन्तिम लक्ष्य है।[३] कुण्डलिनी जागरण चक्रों का ही जागरण है, किन्तु इस जागरण के कई आंशिक और पूर्ण स्वरूप भी हैं। जब सुषुम्णा में जागरण होता है, तब पूर्ण जागरण माना जाता है और जब केवल मूलाधार या किसी एक चक्र में जागरण होता है, तब पूर्ण प्रकाश की अनुभूति नहीं हो पाती। यह आंशिक जागरण है।[४] षट्चक्र-भेद पूरा हो जाने पर आत्मा का तृतीय नेत्र (ज्ञानचक्षु) मलशून्य होकर निर्मल हो जाता है। सारे विकल्पों का विलय हो जाता है और निर्विकल्प स्वरूप का दर्शन होता है, अर्थात् 'शिवोऽहं' रूप आत्मा का साक्षात्कार होता है।[५]

जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित होने पर ईंधन को दग्ध कर देती है, उसी प्रकार कुण्डलिनी के जागृत होने पर सारी साधनाएँ विलुप्त हो जाती हैं बाह्य साधना, भक्ति, मन्त्रयोगदि का कर्तृत्त्य-बोध कुण्डलिनी के जागरण पर लुप्त हो जाता है। जिस प्रकार नौका को अनुकूल प्रवहमणा स्रोत में छोड़ देने पर उसे समुद्र में पहुँचाने के लिए किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार जागृत कुण्डलिनी के प्रवाह में मन और प्राण को डाल देने से जीव को ब्रह्मावस्था की प्राप्ति में किसी अन्य उपाय की अपेक्षा नहीं रह जाती। जीव, केन्द्र में प्रविष्ट होते ही लीलाभूमि के ऊपर से प्रान्त को अपने अधीन कर लेता है।[६] यह साम्यभाव की अवस्था है। इसे उपशम या शान्तावस्था भी कहते हैं। यही निर्वाण पद भी कहा जाता है।[७]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/२५२-६२
२. दें मिस्टीरियस कुण्डलिनी, पृ०-३९
३. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-७३
४. तंत्रा ऑफ कुण्डलिनी योग, पृ०-६
५. भारतीय संस्कृति और साधना, पृ०-३१९
६. वही, पृ०-३१५
७. दें मिस्टीरियस कुण्डलिनी, पृ०-४८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुण्डलिनी के जागृत होने पर प्रचण्ड उष्णता की अनुभूति होती है। जब कुण्डलिनी ऊर्ध्वमुखी होती है तो नीचे की वे सभी ग्रन्थियाँ शव के समान जड़ तथा अतिशीतल हो जाती हैं, जिन्हें कुण्डलिनी पार कर जाती है। इसके विपरीत सिर का उच्च भाग प्रभा से जगमगा उठता है। जिस समय योग पूरा होता है, उस समय योगी अभ्यस्त आसन पर दृढ़ता से स्थित रहता है और उसके पूरे शरीर में उष्णता केवल शिरोभाग में देखी जा सकती है, जहाँ शिव के साथ शक्ति का समागम हुआ रहता है। कुण्डलिनी के सहस्रार में पहुँचने पर समग्र शरीर निर्जीव-सा लगता है। कुण्डलिनी का अवरोह-क्रम उष्णता, प्राणशक्ति तथा सहज चैतन्यावस्था के कारण जाना जाता है।[१]

कुण्डलिनी-जागरण की अनुभूति को काव्यात्मक ढंग में कुछ इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है[२]–

अन्तर नाद-सी हुई चेतना

मुख से किछु ना बोले
एक बूँद पानी की जैसे
कमल पात पर डोले.....
माटी की यह घूँघट खोलो
ओ मेरे तन की बहुरिया!
अन्तर की इस नदिया से तू
भर ले मन की गगरिया
बिन्दु की एक माया लेकर
काया के संग हो ले!
सागर से जो बादल बनता
फिर सागर में मिलता है
यह उस बीज की गाथा है
जो इस मिट्टी में खिलता है
वही रहस्य अलौकिकता का
लौकिक होकर खोले........

अन्तर नाद-सी हुई चेतना.....।

(छ) कुण्डलिनी-जागरण का प्रभाव

कुण्डलिनी जागृत साधक के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। वह साक्षात् परमशिव-स्वरूप हो जाता है। अणिमादि समस्त अष्ट सिद्धियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। यह सब निर्विकल्पक समाधि का प्रभाव है।[३] उस समय योगी चित्तवासनादि के बन्धन से मुक्त हो

१. दॅ सरपेण्ट पावर, पृ०-२४२
२. मन मिर्ज़ा तन साहिबां, पृ०-८६
३. दॅ मिस्टीरियस कुण्डलिनी, पृ०-७९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाता है। कुण्डलिनी-जागरण के समय सशक्त वायवीय धाराएँ (शक्तियाँ) मस्तिष्क और शरीर के अन्य अवयवों को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं और जीव अद्भुत क्षमता से सम्पन्न हो जाता है। नाना प्रकार के असाधारण गुह्य और बौद्धिक स्तर के क्षेत्रों में साधक की अबाध गति दृश्यमान होने लगती है।[१] कुण्डलिनी-जागरण के असीमित फल हैं। साधक काल तथा देश के बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह हर प्रकार से 'सर्वसिद्धीश्वर' की कोटि में पहुँच जाता है।[२]

कुण्डलिनी जागे तो शरीर में बड़े रूपान्तरण होते हैं। कोई भी ऊर्जा शरीर में जागेगी नयी, तो शरीर की पुरानी पूरी की पूरी संरचना बदलती है।[३] उसमें साधक का मांस कम हो सकता है, उसका खून कम हो सकता है, लेकिन उतना ही कम हो सकता है, जितना गैरजरूरी है। शरीर के लिए जितना निपट आवश्यक है, वह रह जाएगा, शेष सब जलकर खाक हो जाएगा।[४] तभी साधक हल्का हो पाएगा। जैसे कंजूस आदमी है। अब कंजूसी तो मन की बात है, लेकिन शरीर भी उसका कंजूस हो जाएगा.....और शरीर उन तत्त्वों को जमा करने लगेगा जिनकी भविष्य में जरूरत है.....आकारण इकट्ठे कर लेगा-इतने इकट्ठे कर लेगा कि उनके इकट्ठे होने से परेशानी में पड़ जाएगा।.......इसी तरह भयभीत आदमी का शरीर भय की ग्रंथियाँ इकट्ठा कर लेता है, भय इकट्ठा कर लेता है।.....हमारा शरीर हमारे चित्त के अनुकूल बहुत कुछ इकट्ठा करता रहता है। जब हमारा चित्त बदलेगा तो शरीर बदलेगा और कुंडलिनी जागेगी तो पूरा रूपान्तरण होगा। उस रूपान्तरण में बहुत कुछ बदलाहट होगी। इसलिए कुण्डलिनी जागृत होने पर अनावश्यक तत्त्व जल जाते हैं। कुछ जगह कुण्डलिनी को अग्नि का ही प्रतीक समझा गया है। वह भी अच्छा प्रतीक था। तो वह आग की तरह ही जलेगी साधक के भीतर और लपटों की तरह ऊपर उठेगी-उसमें साधक का बहुत कुछ जलेगा। अत्यंत रूखापन भीतर पैदा हो सकता है कुण्डलिनी के जगने से। इसलिए व्यक्तित्त्व स्निग्ध चाहिए.... और व्यक्तित्त्व में थोड़ा रस-स्रोत चाहिए। अब अगर क्रोधी आदमी की कुण्डलिनी जग जाय तो वह कठिनाई में पड़ेगा-क्योंकि वह वैसे ही रूखा आदमी है-और एक आग जग जाये उसके भीतर तो कठिनाई हो जाएगी। प्रेमी आदमी है, वह स्निग्ध है-उसके भीतर रस की स्निग्धता है, कुण्डलिनी जगेगी तो कठिनाई नहीं होगी। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर बड़े कठोर ढंग से कहा गया है कि कुण्डलिनी जगेगी तो मांस जलेगा, खून जलेगा, मज्जा जलेगी।[५] संतज्ञानेश्वर ने भी कहा है कि जब कुण्डलिनी जागृत होती है, उस समय वह ऊपर की ओर मुँह फैलाकर बड़े वेग से झटका देती है। लगता है कि बहुत भूखी है तथा कुछ खाने के लिए अधीर हो गई है। इस स्थिति में यह क्षिति और अप् के भाग को चट कर जाती है; यद्यपि अभी वह अपने स्थान से हटती नहीं। अर्थात् वह हथेलियों और पाँव के तालुओं को

---

१. कुण्डलिनी -पाथ टु हायर कॉन्सेसनेस, पृ०-३५
२. रुद्रयामल उ०त० ६/२३
३. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-३३८
४. वही,
५. वही, पृ०-३३९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शोधकर उनका रक्त मांसादि खाकर ऊपर के चक्रों को भेदती है। प्रत्येक अङ्ग के जोड़ तथा नखों के सत्त्व को भी निकाल लेती है।[१]

किन्तु यह प्रतीकात्मक कहने का ढंग बहुत विकसित नहीं है। पर ठीक ही कहा है, क्योंकि साधक पूरे का पूरा बदलेगा–उसकी सारी की सारी व्यवस्था -संरचना बदलेगी। कुण्डलिनी जागृत होने पर साधक की पपड़ी-सी सूखी त्वचा भूसी की तरह निकल जाती है और साधक की देहकान्ति केसर के रंग या रत्नरूप बीज की कोपल, सान्ध्यनभवाली, आत्मचैतन्यतेज, कनक चम्पा की कला, अमृत के पुतले, कोमलता की बहार, शारदीय पूर्णिमा की आर्द्रता में चन्द्र-बिम्ब की शोभा के समान हो जाती है।[२]

अन्ततः कुण्डलिनी-जागरण से सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं, अंहकार विनष्ट हो जाता है, देहाभिमान समाप्त हो जाता है, शिवत्व की प्राप्ति होती है और तभी शिव की साधना सिद्ध की जा सकती है।[३] इस प्रकार साधक जीवन्मुक्त की अवस्था को प्राप्त करता है।

गुप्त साधना

'यामल' शब्द की परिभाषाओं में एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि– 'यामिनी-विहितानि कर्मणि समाश्रीयन्ते तत् तंत्रं नाम यामलम्'। अर्थात् 'रात्रि मे विहित कर्मों का जिसमें आश्रय लिया जाए, वह तंत्र 'यामल' है। इस कथन से यह अभिप्राय लिया जाता है कि तान्त्रिक साधनाएँ गुप्त रखनी चाहिए। इस दृष्टि से यामलोक्त उपासना-कर्म रात्रि में करने का निर्देश है। इसमें यह भी अभिप्राय समाविष्ट है कि रात्रि-जागरणपूर्वक कठिन साधना की प्रक्रिया यामलों में कही गई है। गीता के वाक्य–'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' भी इसमें हेतु माना गया है। यह भी कहा जाता है कि शिव का गुप्त रहस्य शक्ति और शक्ति का गुप्त रहस्य शिव ही जानते हैं और शिव-शक्ति के गुप्त रहस्य को जो जानता है, वह साधक यामलीय उपासना कर सकता है अथवा करता है।[४] यामल की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

यस्माद् रुद्रो भवेज्ज्ञानी नानातन्त्रार्थपारगः।
यामिनीविहितं कर्म कुलतन्त्राभिसाधनम्।।
महावीरहितं यस्मात् पंचतत्त्वस्वरूपकम्।,
लङ्घनं नास्ति मे नाथ! अस्मिन् तंत्रे सुगोपनम्।।
ततो यामलमाख्यातं चन्द्रशेखर शंकर![५]
यदि नो पठ्यते तन्त्रं यामलं सर्वशंकरम्।।
तदा केन प्रकारेण साधकः सिद्धिभाग् भवेत्।[६]

---

१. ज्ञानेश्वरी, (रुद्रयामल उ०तं० : धर्म और दर्शन, पृ०-१९० पर सन्दर्भित)
२. वही, (वही, पृ०-१९० पर सन्दर्भित)
३. भारतीय संस्कृति और साधना, पृ०-३१३
४. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-५१
५. रुद्रयामल उ०त०, १/९४-९६
६. वही, १/१०७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्रशास्त्र की गुप्त-साधनाओं में प्रमुख हैं–क्रियायोग, शव-साधना, पंचमकार-साधना, कुमारी-पूजा, कायसिद्धि, पंचोपासना, शक्तिसाधना, षोडशोपचार-पूजा, पंचाग्नि-साधना और चक्र-पूजा।[१]

यहाँ केवल शव-साधना एवं राक्षसीचीन-साधना पर ही प्रकाश डाला जा रहा है।

(क) शव-साधना

वाममार्ग में श्मशान की साधनाएँ प्रमुख हैं, जहाँ पर भूतप्रेत-सिद्धि, शव-सिद्धि और यक्षिणी-सिद्धि की साधनाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इनमे शव-साधना का विशेष स्थान है।[२] जब तक साधक एक भयानक परिस्थिति का सामना नहीं करता, जब तक उसे एक धक्का या झटका नहीं लगता, तब तक उसमें आंतरिक परिवर्त्तन सम्भव नहीं है। आंतरिक परिवर्त्तन लाने के लिए तंत्रशास्त्र की साधनाओं में परस्पर विरोधात्मक तत्त्वों को शामिल किया गया है।[३] शव-साधना उनमें से एक है। श्मशान में रहना और उत्सवपूर्ण होना। रहना वहाँ, जहाँ केवल मृत्यु दिखाई पड़ती है और आनन्दपूर्ण होना–यही तंत्र की सुन्दरता है। यह (तंत्र) विरोधाभासों, विपरीतताओं को जोड़ता है।[४]

भय साधना में एक बहुत बड़ा विध्न है और सबसे बड़ा भय है मृत्यु का, शरीरिक मृत्यु का। इसलिए तंत्र में निर्भय होने के लिए कई विधियाँ एवं साधनाएँ प्रतिपादित की गई हैं। शव-साधना भी भय से मुक्ति की एक विधि है। तंत्र कहता है[५]–"जब कोई मरता है–ध्यान पूर्ण होओ, जाओ, देखो, निरीक्षण करो। मरते हुए व्यक्ति के नजदीक बैठो। अनुभव करो, उसके मृत्यु में भाग लो। मरते हुए व्यक्ति के साथ गहरे ध्यान में जाओ। और जब कोई मरता है तो वहाँ मृत्यु का स्वाद लेने की एक सम्भावना होती है, क्योंकि जब कोई आदमी मर रहा होता है तो वह अपने स्वाधिष्ठान-चक्र से इतनी अधिक ऊर्जा विसर्जित करता है–उसे विसर्जित करना पड़ता है क्योंकि वह मर रहा है। स्वाधिष्ठान-चक्र पर दमित पूरी ऊर्जा विसर्जित होगी, क्योंकि वह मरा है, इसे बिना विसर्जित किए वह मर नहीं सकेगा। जब आदमी मरता है तो एकाएक ऊर्जा फूटती है और चारों ओर फैल जाती है तथा मृत्यु का एक स्वाद मिल सकता है। वह एक बड़ी मुक्ति देता है।"

स्वाधिष्ठान-चक्र की दो सम्भावनाएँ हैं। मूलत: प्रकृति से जो सम्भावना मिलती है–वह है भय, घृणा, क्रोध, हिंसा। ये सब स्वाधिष्ठान-चक्र की प्रकृति से मिली हुई स्थिति है। अगर इन पर ही कोई अटक जाता है, तो इसकी जो दूसरी, इसके बिल्कुल प्रतिकूल रूपांतरण की स्थिति है–प्रेम, करूणा, अभय, मैत्री–वह सम्भव नहीं हो पाता।[६] भय, हिंसा, क्रोध–ये सब

---

१. तंत्र दर्शन, पृ०-१७४

२. रुद्रयामल उ०त० : धर्म और दर्शन, पृ०-२८०

३. तंत्र दर्शन, पृ०-१७४

४. दॅ तंत्रा एक्सपीरिएन्स, पृ०-१९

५. वही, पृ०-२३५

६. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी अनिवार्य हैं, अन्यथा मनुष्य बच नहीं सकता, सुरक्षित नहीं रह सकता। भय उसे बचाता है; क्रोध उसे संघर्ष में उतारता है; हिंसा उसे साधन देती है दूसरे की हिंसा से बचने का।....लेकिन साधारणतः हम वहीं रूक जाते हैं। अगर कोई भय को समझे तो अभय को उपलब्ध हो जाता है, और अगर कोई हिंसा को समझे तो अहिंसा को उपलब्ध हो जाता है और कोई क्रोध को समझे तो क्षमा को उपलब्ध हो जाता है।....जिसने भय को स्वीकार कर लिया और कहा भय है; और जिसने भय को पूरा जाँचा-पड़ताला, खोजा, वह जल्दी ही उस जगह पहुँच जाएगा, जहाँ वह जानना चाहेगा: भय के पीछे क्या है? जिज्ञासा उसे उलटाने को कहेगी कि सिक्के को उलटा के भी देख लो। और जिस दिन वह उलटायेगा उस दिन वह अभय को उपलब्ध हो जाएगा।[1] इसलिए कहा गया है कि मृदु, कोमल, चूड़क, या अचूड़क शव में वीरासन करके अथवा योनि, त्वक्, काम-रूप, सुरत, सिन्दूर, पर्वत आदि में से कोई भी आसनग्रहण कर जप करें-

मृदु-कोमलकं देवि! चूडकं वाप्यचूडकम्।
शवं वीरासनं कृत्वा, योनि-त्वगासनं च वा।।
काम-रूपासनं देवि! सुरतासनमेव च।
सिन्दूरासनं देवि! पर्वतासनमेव च।।[2]

शव-साधना का उद्देश्य है-मन को इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति से दूर करना।....जब एक साधक मनुष्य के शव की साधना करता है, तो वह भौतिक अस्तित्त्व के इन्द्रजालिक (मायावी) ज्ञान की सिद्धि पाता है और ऐसी स्थिति में अनासक्ति का उदय होता है। यह सभी तरह के चित्तविक्षेप के मूलकारणों को नष्ट कर देता है।[3]

शव-साधना के लिए विस्तृत कर्मकाण्ड प्रतिपादित हैं। साधक को गूढ़ नियमों को कड़ाई से पालन करना चाहिए। केवल एक महाकौल ही किसी को शव-साधना के लिए दीक्षित कर सकता है, एक साधारण गुरु के बस की बात यह नहीं है। तान्त्रिक रहस्यवाद का यह एक अति गूढ़ भाग है, किन्तु इसके अनार्य चरित्र के कारण इसे अत्यधिक गलत समझा गया है।[4] पशुभाव वाले साधक यह साधना नहीं कर सकते; ऐसी साधना केवल वीर और दिव्यभाव से युक्त साधक ही कर सकते हैं।[5]

शव-साधना-प्रक्रिया

शव-साधना के लिए साधक को पद्मासन में बैठना चाहिए। शव-साधना हेतु रण-क्षेत्र में बहादुरी से वीरगति प्राप्त किए हुए योद्धा का शव शार्दूल के चर्म से ढाँपकर घर लाना चाहिए।

---

१. जिन खोजा तिन पाइयाँ, पृ०-२२३
२. पुरश्चर्यार्णव (पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-६३ पर उद्धृत)
३. तंत्रा : इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१७६
४. वही, पृ०-१८४
५. तंत्र दर्शन, पृ०-१७४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस विशेष शव की पूजा तथा जाप करना चाहिए। तदनन्तर कौलासन या कमलासन को सम्पन्न करके महाविद्या के महामन्त्र "ॐ ह्राँ ह्रीं हं फट् स्वाहा" का जाप करना चाहिए। इससे लिङ्ग की अर्थात् शिवत्व की प्राप्ति होती है।[१]

इस साधना के लिए शव ताजा, पूर्ण और अनाहत होना चाहिए। शव ज्यादा दिन का या अपकृत नहीं होना चाहिए। शरीर का कोई भाग टूटा-फूटा नहीं हो। यहाँ तक कि शव में यदि एक ऊँगली भी कम है, या मृत व्यक्ति को एक ही आँख है, तो यह शव तंत्र-साधना के लिए अनुपयुक्त है।[२] रुद्रयामल में कहा गया है कि कुव्याधि के कारण मृत, कुष्ठरोगी, स्त्री के अधीन, गिर कर मरे हुए, अकाल में मृत, उन्मत्तता से मृत, बिना पहचान वाले अर्थात् अनजान, हीनाङ्ग, वृद्ध, पलायनपर अर्थात् कायर और अस्वस्थ व्यक्ति के शव को साधना हेतु नहीं लाना चाहिए। इसी तरह अधिक अङ्गवाले, धार्मिक, स्त्री और योगियों के शव का भी उपयोग नहीं करना चाहिए।[३]

शव-साधना के लिए तरूण, सुन्दर, शूर, मन्त्रविद तथा तेजोमय व्यक्ति का शव उपयुक्त होता है। मनुष्य के शव के हृत्पद्म की साधना से कुल और अकुल मत की सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कभी-कभी कोमलासन पर स्थित होकर शव-साधना की जाती है। कोमलासन के लिए यह निर्देश है कि युवक तथा छः महीने की आयु के बालक का शव परम कोमल होता है। कोमल शव के कई भेद हैं। यथा, गर्भच्युत शिशु का शव 'महाशव कहलाता है। इस महाशव को बाघ के चमड़े में लपेटकर जाप करना चाहिए। आठ महीने के गर्भ से लेकर छः माह तथा दश माह तक सुन्दर मुखवाले शिशु का शव अधिक उपयोगी माना जाता है। इसे एकहस्त, द्विहस्त या चतुर्हसत आसन के द्वारा संस्कार करके पूजन करना चाहिए। पाँच वर्ष की साधना से साधक निर्भय हो जाता है।[४]

उपनयन संस्कार-विहीन बालक के शव को कोमल माना जाता है-'हीनवीतोपनयनो यो मृतः स हि कोमलः।'[५]

शक्तिसङ्गम तंत्र, ताराखण्ड में भी कहा गया है कि जिसका चूड़ाकर्म हो गया हो, किन्तु उपनयन न हुआ हो, ऐसे पञ्चम् वर्ष में मृत बालक के शव को कोमल कहते हैं-

निवृतचूड़को बालो, हीनोपनयनः शिवे।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे, तमेव कोमलं विदुः।।[६]

गर्भच्युत शव की एक वर्ष तक साधना करने पर अणिमादि अष्टमसिद्धियाँ प्राप्त होती

१. रुद्रयामल उ०त०, २४/५८-६३
२. तंत्रा : इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ० १४८
३. रुद्रयामल उ०त०, २४/ ६४-६८
४. वही,२४/६९-७६
५. वही,२४/७६
६. शक्ति-सङ्गम तंत्र, तारा-खण्ड, ६७-६८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। उक्त मृतासन पर महाविद्या के महामन्त्र का जाप करने से शीघ्र सिद्धि की प्राप्ति होती है दस वर्ष आयु में जिसकी मृत्यु हो, उसे शनिवार या मङ्गलवार के दिन लाकर वीरासन या बद्ध पद्मासन करके भद्रकालिका का जप करना चाहिए। रण-स्थल में वीरगति प्राप्त पन्द्रहवर्षीय सुन्दर युवक को रात में लाकर वीरासन द्वारा उसकी साधना की जाय तो अतिशीघ्र खेचरी और धारणा -शक्ति की सिद्धि होती है। सोलह वर्ष के सर्वसिद्धि प्रद शवेन्द्र-साधन द्वारा भोग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार पचास वर्षीय सुन्दर पुरुष के शव-साधना द्वारा साधक योगी होता है। रणस्थ शव की साधना से साधक साक्षात् इन्द्र के समान हो जाता है। सम्मुख युद्ध में वीरगति को प्राप्त शव को अपने मन्दिर में या निर्जन किसी मन्दिर में स्थापित करके जप करना चाहिए। वहाँ वीरासन, पद्मासन या योनिमुद्रासन द्वारा साधना करने का विधान है। एक महीने की साधना द्वारा साधक योगी, गुणवान और निर्मल हो जाता है तथा उसे सूक्ष्म वायु के धारण का ज्ञान भी हो जाता है। शव-साधना के समय योगी जो-जो कर्म करता है, उन कर्मों की साधना द्वारा वह अमरत्व को प्राप्त करता है।[1]

शव-साधना करने का समय रात्रिकाल है, इसे कभी भी दिन में नहीं करना चाहिए, आनन्दभैरवी का कथन है कि-"शव-साधना में जो स्थिर अर्थात् अविचल रहता है, वही मेरा भक्त है। शव मेरा अतिप्रिय द्रव्य है, मेरी तुष्टि का कारक है। मेरी आज्ञा-पालन करने में जो योग्य है, वही वीर शव-साधना करे। यदि मैं वहाँ पहुँचती हूँ तो वह शव शिव हो जाता है, मेरी अनुपस्थिति में ही वह शव है"-

रात्रियोगे प्रकर्त्तव्यं दिवसे न कदाचन।
शवे स्थिरो यो भवति स भक्तो मे न संशयः।।
शवो मेऽतीव सद्द्रव्यं मम तुष्टिनिबन्धनम्।
ममाज्ञापालने योग्यः कुर्य्याद्वीरः शवासनम्।।
यद्यहं तत्र गच्छामि तदैव स शिवो भवेत्।
निःशेषत्यागमात्रेण शवत्वं प्रलयं तनोः।।[2]

जो क्रोधी है, वह क्रूर है, वह वीर कैसे रात में शव की साधना कर सकता है।[3] शव-साधना में साधक शव पर स्वयं वीरासन मुद्रा में बैठता है और मन्त्र का जाप करता है। इसके द्वारा शव में जीवन का सञ्चार होता है और वह हिलने लगता है। वह उठना चाहता है। साधक यहाँ 'यंत्र' का भी उपयोग करता है। 'यंत्र' उसे (साधक को) हर प्रकार के प्रलोभन से बचाता है। एक अपरिचित आवाज, आकाशवाणी उसे सब कुछ प्रदान करने की प्रतिज्ञा करती है। यहीं पर गुरू साधक की रक्षा करता है। और वह अपने शिष्य को प्रलोभन के चक्कर में नहीं पड़ने देता।....... मन्त्रोचर के द्वारा शव में प्राणशक्ति का जो संचार होता है,

---

१. रुद्रयामल उ०त०, २४/७७-९२
२. वही, २४/१०५-१०७
३. वही, २४/११२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीत होता है कि वह साधक की ही प्राणशक्ति हो। इसे देखने पर साधक यदि अपना विवेक खो देता है और चक्र के अन्दर गिर पड़ता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है; यदि वह चक्र के बाहर गिरता है, तो वह स्थायी रूप से पागल हो जाता है। किन्तु यदि वह स्वयं स्थिर और अविचल रहता है और अपनी साधना जारी रखता है तो वह मोक्षत्व प्राप्त करता है और सभी रहस्यमयी शक्तियों का उसे ज्ञान हो जाता है।[१] इसलिए बार-बार कहा गया है कि-"जो भय-विह्वल है, वही क्रोधी है। क्रोध के जैसा अशुभ कुछ नहीं है। जो भक्त पाप से मुक्त है, विवेकी और ध्याननिष्ठ है, स्थिर है वही शव-साधना करके सिद्ध हो सकता है। जब तक चित्तस्थैर्य्य की प्राप्ति न हो, तब तक शवेन्द्र-साधना नहीं करनी चहिए। साधक जितेन्द्रिय होकर अष्टाङ्गसाधन द्वारा साधना करे"।[२]

शवसाधना-सिद्धि

साधक शव-साधना में अष्टाङ्गयोग के अभ्यास द्वारा सिद्धि का अधिकारी होता है। अन्तः और बाह्य शुद्धि के लिए नाड़ी-शोधन, मुद्राओं और कौलाचार का अभ्यास भी अनिवार्य है। शव-साधना में सर्वप्रथम भूतलसिद्धि होती है। तत्पश्चात् क्रमशः भवलोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक की सिद्धि होती है। इस प्रकार, सप्तलोकों की सिद्धि के बाद व्यक्ति पूर्ण साधक हो जाता है। कहा जाता है कि अष्टाङ्ग साधना के लिए देवतागण इस पृथ्वी पर आते हैं तथा भूतलसिद्धि प्राप्त करके पुनःब्रह्मलोक की ओर प्रयाण कर जाते हैं।[३]

शव-साधक के विधि-निषेध[४]

दिन में भूमि पर शव लाकर साधक रख ले और रात में पञ्चतत्त्व के द्वारा शव-साधना करे। दिन में वह अष्टाङ्गसाधन का अभ्यास करे। इस प्रकार वह जितेन्द्रिय, निर्विकार और धनी होती है। शव-साधना चिन्ता और आलस्य से पूर्णतया मुक्त होकर करनी चाहिए, क्योंकि चिन्ता से लोभ, लोभ से काम, काम से मोह, मोह से आलस्य, आलस्य से निद्रा और महानिद्रा से मृत्यु होती है। अपूर्ण निद्रा के भङ्ग से क्रोध, क्रोध से चित्तवैकल्य और चित्तवैकल्य से

---

१. तंत्रा : इट्स मिस्टिक एण्ड साइन्टिफिक बेसिस, पृ०-१४८

२. रुद्रयामल उ०त०, २४/११३-१५,
भय-विह्वलचेता यः स कोधी नात्र संशयः।
नासित क्रोधसमं पापं पापात् क्षिप्तो भवेत् शिवे।।
यो भक्तः पापनिर्मुक्तः सिद्धरूपी निराश्रयः।
विवेकी ध्याननिष्ठश्च स्थिरः संसाधयेत् शवम।।
यावत्कालं स्थिरचित्तं न प्राप्नोति जितेन्द्रियः।
तावत्कालं नापि कुर्य्यात् शवेन्द्रस्यापि साधनम्।।

३. वही, २४/११८-२३

४. वही, २४/१२४-४२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्वासवृद्धि होती है। श्वासवृद्धि से आयु की क्षीणता, आयु की क्षीणता से बल-बुद्धि का नाश, बुद्धि के नाश से जड़ता और जड़ता से मन्त्रों का जाप नहीं हो सकता। जपहीनता से श्वासनाश और श्वासनाश से शरीरनाश होता है। अतः शरीर को दृढ़ करके साधक को जपनिष्ठ होना चाहिए। शरीर की दृढ़ता अष्टाङ्गसाधन के द्वारा होती है। अष्टाङ्गसाधन के अन्तर्गत हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम से ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान से साधक कुलपति होता है। वही योगेश, कुलेश और शिशु के समान निर्मल होता है। नियम के द्वारा पूजा निष्पन्न होती है, पूजा से शिवत्व की प्राप्ति होती है। जहाँ पूजा नहीं होती, वहाँ हर प्रकार की अपवित्रता रहती है। आसन के द्वारा साधक रोग और शोक से मुक्त होकर दीर्घायु होता है। ग्रंथिविभेदन मात्र से साधक शीतल होती है। प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को नियंत्रित करके नाड़ीशोधन होता है। प्रत्याहार के द्वारा अनन्त कामनाओं में भटकता चित्त शिव के चरण-कमल में स्थित होता है। धारणा के द्वारा वायु-सिद्धि और तदनन्तर अष्टमसिद्धि और अणिमादि की सिद्धि होती है। ध्यान के द्वारा मोक्षत्व की उपलब्धि होती है, मोक्ष से सुख और सुख से आनन्द की प्राप्ति होती हैं यही आनन्द ब्रह्म का विग्रह अर्थात् स्वरूप है। समाधि से महाज्ञानी महाशून्य या लयस्थान में परमशिव के श्रीचरणों में आनन्दसागर का लाभ करता है। पारमार्थिक रूप से निर्मल आनन्द-पयोधि की तरङ्गों में मन को एकाग्रकर सहस्रार में करोड़ों सूर्य और चन्द्र तुल्य श्रीपाद की मूर्ति की भावना करके ध्यान करना चाहिए।

शव-साधना अधिकांशतः महासिद्धपीठ में सम्पन्न किया जाता है। महासिद्धपीठ तिब्बत, नेपाल, बंगाल, असम और बिहार में विद्यमान हैं।[१]

(ख) चीनाचार या राक्षसीचीन-साधना

वीरभाव की साधना सच्चे हृदय से करते-साधक अष्टपाशों से विमुक्त हो जाता है। इसके पूर्णरूपेण प्राप्त होते-होते कुछ बीच में माध्यमिक अवस्था रहती है। उस समय साधक को कुछ-कुछ देहाभिमान रहता है। यह अवस्था वीर तथा दिव्यभावों के बीच की 'सिद्धवीर' अथवा 'दिव्यवीर' अवस्था है। इस मध्यकालीन अवस्था में साधना के प्रयोग और भी कठिन हो जाते हैं। साधक इस समय 'चीनाचार' से साधना करने लगता है।[२]

राक्षसीचीन-साधना से शिवत्व की प्राप्ति होती है।[३] राक्षसियों की साधना से ही चीनाचार की सिद्धि होती है। चीनाचार की साधना १८ प्रकार से हो सकती है। किन्तु सर्वत्र शुद्ध और निष्काम भाव से साधना की जानी चाहिए। दिन,पक्ष, महीने, और वर्ष के भेद से इसकी साधना करनी चाहिए। सात प्रकार के उत्तम चीनाचार, ४ प्रकार के मध्यम चीनाचार और ७ के अधम चीनाचार के भेद से ये कुल १८ चीनाचार हैं।[४]

---

१. तंत्राः इट्स मिस्टिक एंड साइंटिफिक बेसिस, पृ०-१४९
२. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०५९
३. रुद्रयामल उ०त०, ६७/५५
४. वही, ६७/५६-६३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(i) उत्तम चीनाचार

(१) उत्तमोत्तम–जब पृथ्वी ऋतुमती हो तो वर्षाकाल में तीन दिन तक मांस का सेवन करनेवाला तथा चीनद्रुमासवानन्द से पञ्चतत्त्व (पञ्चमकार) का अबाधित निषेवण करनेवाला उत्तमोत्तम साधक कहलाता है।[१]

(२) अनुत्तमोत्तम–अनुत्तमोत्तम चीनाचार में साधक पूजाकाल में पञ्चतत्त्वों का सेवन अति गुप्त रूप से करता है। इस साधना में साधक मैथुन के अपने वीर्य का त्याग नही करता। इस साधना में कुलपीठ के मंथन से उत्पन्न सुधारस को सभी आसवों में नियोजित करके आसव का उपभोग करना चाहिए। साधक आठ प्रकार के मासों को खाने में सर्वदा तत्पर रहता है। किन्तु पूजाकाल के अतिरिक्त इन द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।[२]

(३) अत्यन्तोत्तम–इस साधना के द्वारा साधक को सदाशिव का दर्शन होता है। एक वर्ष तक प्रतिदिन आधी रात को आठ नायिकाओं के साथ पञ्चतत्त्व के द्वारा इसकी साधना करनी चाहिए। साधक पंचतत्त्वों का मंथन करके आसव में मिलाकर प्रतिदिन शुद्धभाव से ग्रहण कर ब्राह्मणी में बीज को अर्पित करे और उस बीज से पंकज और मस्तकादि पर तिलक करे। अष्टनायिकाओं को दान-दक्षिणा आदि भी देना चाहिए।[३]

(४) अत्यन्तानुत्तम–इस साधना में आनन्द में त्याग (वीर्यत्याग) होने पर पुनः आनन्द का आश्रय लेना चाहिए। हमेशा आनन्दित होकर यजनादि में पूजन करना चाहिए। इसके लिए किसी विशेष दिन या रात का विधान निश्चित नहीं है। बल्कि निर्जन स्थान में उपयुक्त आसन में बैठकर प्रिया के साथ कौल-साधना करनी चाहिए।[४]

(५) अनुत्तमोत्तम–यह साधना मायाजाला को नष्ट करनेवाली है। कालाकाल को देखकर प्रारम्भ में स्वकुल या दूसरे के नाम का आह्वान करके यत्नपूर्वक आसनादि करना चाहिए। महाशङ्ख, कुलद्रव्य आदि लाकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करके दाता, भोक्ता आदि का शोधन करना चाहिए। अपने अङ्गों का न्यास करके नायिकाओं के अंगों का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर शिवपूजा करके कौलाचार सम्पन्न करना चाहिए। पीठ मिलाकर शम्भु को एक साथ जपना चाहिए। अपने बीज का विसर्जन करने के बाद नित्य तर्पण करना चाहिए तथा प्रिय के साथ मधुपान करना चाहिए। वामभाग में कुल (शक्ति) को करके एक लाख जाप करना चाहिए। होम कुलद्रव्यों के द्वारा हो तथा उसके १० वें अशं द्वारा तर्पण करना चाहिए। पुनः दशांश के द्वारा अभिषेक एवं दशांश विप्र को खिलाना चाहिए। तदनन्तर कुमारियों को मद्य-मांसासव का भोजन कराना चाहिए। प्रति शनिवार को एक वर्ष तक इसकी साधना करने पर आनन्दभैरवी के चरण-कमलों का दर्शन प्राप्त होता है।[५]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/६४-६५
२. वही, ६७/६६-७०
३. वही, ६७/७१-७५
४. वही, ६७/७६-७७
५. वही, ६७/७८-८६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६) अत्युत्तम–साधक जितेन्द्रिय और योगाभ्यासपरायण होकर मांसासवादि से कालिका का संतर्पण करे। एकादशी को कुल (शक्ति) को लाकर उसमें साक्षात् परब्रह्म की भावना करके केवल लयभाव से देवी-पूजा करनी चाहिए। मूलाधार-महाचक्र में योगिनी रहती है। सूक्ष्ममार्ग के द्वारा साधक यहाँ नित्यानन्दस्वरूपिणी, विश्वमाता त्रिलोचना कुलकुण्डलिनी देवी का ध्यान करे। केवल बिन्दुधारा से उसका तर्पण करना चाहिए। साधक जगद्रूपा स्थूलसूक्ष्मस्वरूपिणी कुलदेवी को मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सहस्रार तक तर्पण करता है। ऐसी भावना जिसके मन में है, उसके लिए बाहरी पूजा करने का क्या प्रयोजन? फिर भी शारदीय महोत्सव में जैसे कुलवती दुर्गा है, वैसे ही कुलनायिका है। मूलपद्म से नागकन्या नागिनी को आकर्षित करके तथा कुलपीठ में अपने वामभाग में मनुष्य की कन्या का साधक पूजन करता है और महाबिन्दु से उत्पन्न आसव, आठ प्रकार के मांस, मुद्रा और मत्स्य को मिलाकर तर्पण करता है।[1] इस प्रकार साधना करते हुए साधक कहता है–"जैसे अन्तःकरण में तर्पण करता हूँ, वैसे ही मेरा बाह्यतर्पण भी है। मेरा प्रतिदिन शुभ हो, मेरी रात्रि सुखप्रदा हो, मेरी कौलपूजा शुभ हो, मेरी बाह्य पूजा शुभ हो"–

यथान्तःकरणे सा तु तथा मे बाह्यतर्पणम्।
शुभं भवतु नित्यं मे महारात्रिश्च सौख्यदा।।
कुलं भवतु सौख्यं मे बाह्यपूजा शुभा मम्।[2]

ऐसी भावना जिसके मन में है, उसके लिए सुख ही सुख है। उसके लिए तो सर्वदा पूजाकाल ही है। अत्युत्तम साधना में अभेदबुद्धि से पूजा करनी चाहिए।[3] यदि साधक इस साधना में फलप्राप्ति चाहता है तो उसे जाति-पाँति नहीं मानना चाहिए–'जातिवृत्तं न तत्रैव यदीच्छति फलोदयम्'[4]

(७) उत्तम–उत्तम साधना में तान्त्रिक क्रिया अत्यंत गुप्त होनी चाहिए, कुल(नायिका) को गुप्त रूप से आमंत्रित करना चाहिए, कुलरस गुप्त हो तथा मद्यपान भी हमेशा गुप्त ही हो। इस प्रकार पूर्णसिद्धि प्राप्त होती है।[5] यहाँ पर कौल का लक्षण भी बताया गया है। कहा गया है–

मासे मासे तर्पणन्तु पक्षे पक्षे कुलक्रिया।
दिने दिने सदा पानं कौलानामिति लक्षणम्।।[6]

अर्थात् 'प्रत्येक महीने तर्पण, प्रत्येक पक्ष कौलक्रिया और प्रतिदिन मद्यपान करना ही कौलों का लक्षण है।'

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/८८-१०२
२. वही, ६७/१०३-१०४
३. वही, ६७/१०४-१०५
४. वही, ६७/१०६
५. वही, ६७/१०७-१०८
६. वही, ६७/१०९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तम साधना को गुप्त क्रियाओं द्वारा करना चाहिए, इसका कभी प्रकाशन नहीं करना चाहिए। यदि इसका प्रकाशन हुआ तो साधक सब कुछ खो बैठता है। इस भाव की साधना से शीघ्र ही सिद्धि मिलती है।[१]

(ii) मध्यम राक्षसीचीनसाधना

(१) अत्यन्तमध्यम–इस साधना के द्वारा साधक सभी कौलज्ञानों का ज्ञाता हो जाता है। पीठ और उपपीठ के मध्य में और कुलार्णव महापीठ में महाचीनद्रुमलता से वेष्टित साधक एकासन करके तीन दिन तक वहीं स्थित-चित्त रहे। साधक प्रतिदिन कामनाविषयस्थित होकर एक लाख जप करे एवं कृष्ण या शुक्लपक्ष में होमादि करे। कुमारी को भोजन कराकर कण्ठ में उसकी भावना करे। कुलद्रव्य के प्रसाद से एक ही माह में सिद्धि प्राप्त होती है।[२]

(२) अतिमध्यम–इस साधना से साधक योगीपद प्राप्त करता है। साधक समय-कुसमय का विचार छोड़कर सदा अपने अन्तःकरण में स्थित हो जाय। सुधा देवी डाकिनी आदि की भावना करके पञ्चशक्ति को लाकर कुलजरसों के द्वारा पूजन करना चाहिए। साधक कुलपुष्प के द्वारा भावना करे। जैसे बाह्यपूजा है, उसी तरह हृदय, कण्ठ, मणिगृह (मणिपुर चक्र) तथा विष्णुकमल और मूलाधार में पुनः पुनः भावना करनी चाहिए। इस प्रकार ध्यान कर-कर के जो तर्पण करता है, वह काम-विजयी होता है। यह साधना योगियों के लिए अतिदुर्लभ है।[३]

(३) मध्यमध्यम–इस साधना से वाञ्छित सिद्धि होती है तथा साधक शिव के समान विहार करता है। महीने के मध्य में पाँच बार पञ्चमतत्त्वों के द्वारा पूजन करना चाहिए। यजन, भावन, नित्य कर्म और होमादि कर्म करना चाहिए। इस साधना में श्मशान या जंगल में बाह्यकर्मकाण्डों में निपुणता प्राप्त करनी चाहिए तथा शिर में काकिनी और शाकिनी की भावना करनी चाहिए। पञ्चशक्ति का तर्पण करने के बाद अनातुर होकर दिन-रात विद्या (महाविद्या) का जाप करना चाहिए। होमतर्पणकाल में कुलशक्ति की पूजा करनी चाहिए, आसन देकर उनका स्वागत करना चाहिए तथा उनके पैरों को धोएँ, मधुपर्क देकर मनस्नान करके वस्त्र दें तथा पके हुए अन्न, पके हुए मांस एवं पके हुए अनय व्यञ्जन देकर कर्पूर से सुगन्धित जल दें। उसके बाद उन्हे ताम्बूल खिलाना चाहिए। लौंग आदि से युक्त गन्धानुलेपन, सुगंधित माला आदि देकर उसकी प्रार्थना करनी चाहिए तथा अपनी आत्मा में स्थिर होना चाहिए। शक्तिमन्त्र के प्रभाव से मन कण्ठ पद्म में स्थिर होता है।[४]

(४) मध्यम–इस साधना मे उचित समय पर कुलद्रव्य लाकर नवशक्ति और त्रिशक्ति की पूजा करनी चाहिए। गुप्तस्थान में गुप्त द्रव्यों के द्वारा दशोपचारविधि से अष्टदेवता की पूजा करनी चाहिए। साधक प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल और आधी रात को अर्थात् चार

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/११०-१११
२. वही, ६७/११३-१७
३. वही, ६७/११८-२२
४. वही, ६७/१२३-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बार सहस्रजप और कृत्यार्चन करे। आधी रात को शक्ति आगे स्थित करके दिगम्बरी मुद्रा के द्वारा पूजन करें[१]–

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते।।[२]

इस प्रकार परब्रह्मस्वरूपिणी की अर्चना करने के बाद और कुलद्रव्य को शक्ति को देने के बाद स्वयं कुलद्रव्य का पान करना चाहिए। शक्तिप्रसाद को विधिपूर्वक संशोधित करके उसका पान कना चाहिए।[३] शोधन और पान की भावदशा इस प्रकार है–

शोधयामि परां देवी कुलास्यपद्मनिर्गताम्।।
पिबामि परमानन्दैस्तत्प्रासादात्कुलेश्वरि।[४]

(iii) अधम चीनाचार

(१) अत्यन्ताधम–अन्यन्ताधम चीनाचार की साधना में साधक महीने के मध्य में तीन दिन तीन-तीन बार तर्पण करे। शक्तिशोधन में १०८ बार जप करे तथा अपने अङ्ग में ऋषिन्यास, मातृकान्यास, कराङ्गादिन्यास करे।[५] यथा-ऋषिन्यास में मन्त्र के द्वारा शिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा सर्वाङ्ग का स्पर्श किये जाने का विधान है[६]–

(अ) इह रुद्रशक्तिः महा विष्णुऋषये नमः–हाथ से सिर का स्पर्श।

(आ) हड्क्तिछन्दसे नमः–मुख का स्पर्श।

(इ) महारुद्राणी लाकिनी महाविद्यात्रिशक्तिदेवतायै नमः–हृदय।

(ई) ॐ निजबीजाय ते नमः–गुह्य स्थान।

(उ) सकलायैव वजाय कीनक‍ाय नमः– सर्वाङ्ग

इसी तरह कुलशक्ति के अङ्गों में भी न्यास करके पीठ में शम्भु को नियोजित करना चाहिए–

धर्माधर्मकलास्नेहमात्माग्नौ मनसा स्त्रुचा ।।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।[७]
क्लीं विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि नमः स्वाहा।।[८]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/१३२-३६
२. वही, ६७/१३७
३. वही, ६७/१३८-३९
४. वही, ६७/१३९-४०
५. वही, ६७/१४१-४२
६. वही, ४८/१०९-१२
७. वही, ६७/१४३-४४
८. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस तरह जप करने के बाद विधिपूर्वक स्तोत्र और कवच का पाठ करना चाहिए। कवच के अन्त में साधक अपने बीज (वीर्य) का होमार्चन करे–

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।[१]
सौः शिवतत्त्वेन कारणदेहं शोधयामि नमः स्वाहा।[२]

तदनन्तर तर्पण करना चाहिए। तर्पण के अन्त में स्वशक्तिकुल के रस द्वारा अभिषेक करना चाहिए। ब्रह्मस्थान में शक्ति को भोजन कराना चाहिए।[३]

(२) अत्यन्तात्यधम–इस साधना में साधक स्वयं अपने को परब्रह्म मानते हुए तर्पण करे। साधक पञ्चतत्त्व को स्वयं पीकर सदा आनन्दित रहे और वीर्यत्याग न करे। दन्तावलि से शोभित मुँह में बीजोच्चारण के द्वारा साधना करें। मन में या धीमे-धीमे गुप्त रूप से जप करके साधक ब्रह्ममय हो जाता है। जप बाह्य या दिखाकर नहीं करना चाहिए, यह एकादशी व्रत के बिना महापूजा है। एकादशी को निश्चित रूप से सभी स्थान औरा सभी पीठ में सुरसुन्दरी की पूजा करनी चाहिए तथा साधक यथाविधि शक्ति को सन्तुष्ट करे। किन्तु मन में कोई अपवित्रता न हो, अपवित्रता का भाव लेकर साधना करने पर साधक नरक को प्राप्त होता है। विष्ठा, मांस मेदादि गंध या सुगन्धित पदार्थों में एक भाव से पूजन करना चाहिए। पूजा के अन्त में षट्सहस्राख्य स्तोत्र और कवच का पाठ करना चाहिए। तदनन्तर वीरसाधक मदनाह्लाद से विमुक्त होकर विहार करे। अन्तर में कुण्डली-युक्त होकर स्वयं कामकर्त्ता हो, बाहर स्थूल रूप से अपने वीर्य का त्याग न करे। तब जाकर साधक योग में स्थिरचित्त होता है।[४]

(३) अत्यधमाधम–यह साधना महीने में एक बार करनी चाहिए। कुलमाला को लेकर शक्ति से युक्त हो साधक मन्त्र-ध्यानपरायण होकर जाप करे। रात में चार दण्ड समय बीत जाने पर जप का प्रारम्भ करना चाहिए और सम्पूर्ण रात जप होना चाहिए, किन्तु वेद-दण्ड के समय में नहीं। साधना के क्रम में भय और हास्य से साधक दूर रहे। कालीतंत्रविधान से या तारातंत्रक्रम से पूजा-जप समर्पित करके शक्ति की प्रार्थना करनी चाहिए[५]। स्तोत्र और कवच का पाठ करके यथाविधि विहार करना चाहिए। इस प्रकार माह के मध्य में एक दिन साधना करने पर साधक योगी होता है–

स्तोत्रं कवचमुच्चार्य विहरेच्च यथाविधिम्।
मासमध्ये दिनमेकं कृत्वा योगी भवेन्नरः।।[६]

अत्यधमाधम चीनाचार की साधना करने पर साधक का पशुत्व छूट जाता है।[७]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७-१४७
२. पञ्चमकार तथा भावत्रय, पृ०-४९
३. रुद्रयामल उ०त०, ६७/१४८-१४९
४. वही, ६७/१५०-५९
५. वही, ६७/१६०-६४
६. वही, ६७/१६५
७. वही, ६७/१६७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) अत्यन्ताधमाधम–इस साधना मे साधक उच्च स्थान में मण्डलाकार घेर करके मनुष्य के १३ खोपड़ी में शक्ति के बिना कर्मकाण्ड करे तथा वहाँ आसन को शोधित करके शङ्खमाला के द्वारा जप करे। अनुकल्पित द्रव्य के द्वारा तथा साक्षात्कल्पित द्रव्यों के द्वारा पराभक्ति से अपनी शक्ति कुण्डलिनी की पूजा करे। एकाकी निर्जन स्थान में जाकर साधक जप करे तथा कुलपूजाक्रम में आत्मशक्ति को तर्पण करे। १००० योगाङ्ग का नाम तथा षट्चक्रभेदन के क्रम से स्तोत्र एवं कवच का पाठ करके अपने हृदय का न्यास करे। गुप्तजाप से मनुष्य सिद्ध होता है। इस साधना में साधक के लिए दिन-रात का कोई विशेष नियम नहीं है। इस प्रकार इस साधना से साधक पशुभाव को छोड़कर सिद्ध हो जाता है।[1]

(५) अत्यधम–इस चीनाचार-साधना से साधक सिद्ध होकर पशुभाव को छोड़ देता है। साधक पातालमण्ड बनाकर वहाँ आसन लगाकर तीन-तीन मुण्ड (खोपड़ी) रखे तथा उनके बीच कुलविद्या-समन्वित होकर निवास करे। साथ ही अपने वामभाग में कुलीना, विदूषी, दिव्यालङ्कार से विभूषित, रसिका, सदा आनन्दित रहनेवाली, क्रोधादि विकारों से मुक्त, देवयोगिनी, यौवनाह्लाद से ललित कुलशक्ति को लाए एवं पराभक्ति से इष्ट देवता की पूजा करे। साधक कुलमन्दिर में तीन दिन केवल पूजा करे या सात दिन पूजा जप-विधि करे अथवा भक्तिपूर्वक नौ कुमारी-शक्ति को तर्पण करे। लिङ्गध्यानपरायण साधक वस्त्रालङ्काराभूषण तथा कुलद्रव्यों से यथाविधि उसे संतुष्ट करे एवं हमेशा धूप-दीप आदि दे। इस प्रकार अत्यधम-साधना से साधक चित्त का तमस् नष्ट हो जाता है।[2]

(६) अधमाधम–यह साधना निर्जन स्थान, जंगल, गङ्गा के गर्भ में, (गंगा के बीच स्थित किसी टापू या पहाड़ी) पर्वत पर, बेल के पेड़ के नीचे, चौराहे, वटवृक्ष के नीचे, पीपल-वृक्ष के नीचे या चीनद्रुमलता के निकट मुक्तकेश दिगम्बर होकर तथा घृणा-लज्जा आदि से मुक्त होकर कृष्णपक्ष के चतुर्दशी को प्रारम्भ की जाती है। साधक गंध-चन्दन से लेपित एक मुण्ड नीचे रखे तथा चाण्डाल का आधा हाथ लाए एवं वहाँ रखकर भयविहीन होकर जप करे। तदनन्तर कुलद्रव्य तथा चाण्डाली शक्ति को लाकर १०८ बार जप करे। साधक विधिपूर्वक शोधन करके पहले शक्ति को कुलद्रव्य दे, तदनन्तर स्वयं पान करे एवं आनन्दसागर में निमग्न होकर सर्वदर्शी बना रहे। मांस -मुद्रा का सेवन करता हुआ तथा सदानन्दित रहता हुआ वर्ष के मध्य में एक महीने तक प्रतिदिन साधना करे। इस प्रकार एक महीने में ही सिद्धि की प्राप्ति होती है।[3]

(७) अधम–अधम चीनाचार की साधना से साधक एक वर्ष के अन्त में आनन्दभैरवी का दर्शन कर पाता है। इस साधना में सभी कार्य एवं कुलक्रिया रात में ही करना चाहिए। कुलध्यानपरायण साधक मनोरम कुलपीठ में तीन रात कुलदेवी का परमानन्दित होकर साङ्गोपाङ्ग विधि से कुलपुष्प एवं कुलद्रव्यों से पूजन करे।......इस साधना से साधक अकालमृत्यु को जीत लेता है तथा परमानन्दित रहता हुआ अकस्मात् सिद्धि की प्राप्ति करता है।[4]

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/१६८-७४
२. वही, ६७/१७५-८३
३. वही, ६७/१८४-९२
४. वही, ६७/१९३-९९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार स्पष्ट है कि शव साधना एवं चीनाचार जैसी साधनाएँ अतिगोपनीय ढंग से ही अनुष्ठित की जाती हैं।

साधना के कतिपय आयाम

यहाँ उन विषयों की चर्चा की गई है, जिन्हें अन्य अध्यायों या उप अध्यायों में समेटना दुष्कर था और उनकी अवहेलना शायद तान्त्रिक अध्ययन की सम्पूर्णता पर एक प्रश्नचिन्ह होता। इसी दृष्टिकोण से यहाँ कतिपय प्रमुख अवशिष्ट तान्त्रिक साधना-विषयों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(१) न्यास-विद्या

तंत्र का एक अर्थ 'विस्तार' भी है। यह विस्तार आगम और अनेक रूपों से अभिव्यक्त हुआ है। कायिक, वाचिक, और मानसिक क्रियाओं के समन्वित प्रयास से ही तान्त्रिक साधना संपन्न होती है। इनमें कायिक कर्मों में विभिन्न कर्म सम्मिलित हैं। स्थूल शरीर की पूरी तैयारी होने पर ही सूक्ष्म शरीर तत्त्वज्ञान की भूमिका प्राप्त करता है और इसी से वाणी एवं मन भी साधनोपयोगी क्रियाओं की वास्तविकता के निकट पहुँच पाते हैं। इस दृष्टि से आसनं, प्राणायाम, ध्यान, अर्चन के क्रम में 'न्यास ' का भी बड़ा महत्त्व है। किसी भी कर्म के लिए जो विनियोग किया जाता है, उसमें जो मन्त्र, स्तोत्र, कवच आदि प्रयुक्त होते हैं, उन सभी में 'न्यास' आवश्यक माने गये है।[१]

'देवो भूत्वा देवं यजेत्'–देव बनकर देवता की पूजा करें–इस आदेश का पालन भी न्यासों पर ही आधरित है। यहाँ देव बनने का तात्पर्य है कि अपने शरीर में देवताओं को विराजमान करना और ऋषि, छन्द, देवता, बीजशक्ति, कीलक और विनियोग के न्यास द्वारा मन्त्रमय देह बनाना। करन्यास, अंगन्यास, शरीरावयवन्यास, आयुधन्यास तथा मातृका-मन्त्राक्षर आदि के न्यास साधना के अनिवार्य अंग हैं, जो 'निःशेषेण आस्यत इतिन्यासः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार निश्चित देव-ऋषियों की स्थापना की भावना को पूर्ण करते हैं।[२]

तान्त्रिकों का यह सिद्धान्त है कि भूतशुद्धि द्वारा शरीर को शुद्ध किया जाता है और न्यासों के द्वारा 'मन्त्रमय' देवता को आत्मा में संक्रान्त कर तन्मयता-बुद्धि प्राप्त की जाती है। 'न्यासस्तन्मयता-बुद्धिः'। विवेच्य ग्रन्थ में भी जिन-जिन मन्त्रों अथवा स्तोत्रों का कथन हुआ है, उनके विनियोगों में कथित ऋष्यादिन्यास, मन्त्रांगभूतन्यास, करन्यास, हृदयादिषडंगन्यास आदि अनेक न्यास वर्णित हैं।

सामान्यतः सभी न्यास-विधि में सूचित स्थानों का तत्त्वमुद्रा (अनामिका और अंगुष्ठ के अग्रभागों के सम्मिलित रूप) से स्पर्श करने का विधान है। किन्तु अंगुलियों के स्पर्श में केवल अंगुष्ठाग्र से नीचे वाले पर्व से अग्रभाग तक स्पर्श होता है। इसी प्रकार अंगुष्ठ में तर्जनी द्वारा पर्वस्पर्श करते हैं। यह न्यास का सृष्टि-क्रम है। विशेष साधक कलानुकूल अथवा कर्मानुकूल न्यासों में अग्रभाग से मूलपर्व तक स्पर्श से संहार-न्यास और मध्यपर्व से ऊपर-नीचे

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ० ७४-७५

२. वही, पृ०-७५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पर्श द्वारा स्थिति-न्यास करते हैं। हृदयादि न्यासों में दाहिने हाथ से जो स्पर्श होता है, वह भिन्न-भिन्न मुद्राओं द्वारा सम्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त जो स्वंतत्र विशेष न्यास कहे गये हैं, उनमें शरीर के निर्दिष्ट अंगों का स्पर्श मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन स्थानों में उक्त देवता का आवाहन, वहाँ स्थित होने की प्रार्थना और 'वे स्थित हो गए हैं' ऐसी भावना करके उन्हें प्रणाम करना-ये तीनों क्रियाएँ एक साथ होती हैं। ये न्यास जब और भी गूढ़ होते हैं तो योनि-मुद्रा, त्रिखण्डमुद्रा, एक-एक अंगुलिमुद्रा, तर्जनीभ्रमण संहारमुद्रा आदि अनेक रूपों में मुद्राएँ बनाकर किये जाते हैं।[१]

न्यासों की यह विशेषता है कि ये कहीं तो व्यष्टि रूप में रहते हैं और कहीं समष्टि रूप में। जब समष्टि होती है तो इनके प्रकार बड़े अद्‌भूत हो जाते हैं। यथा षोढ़ान्यास। इनमें छह पृथक्-पृथक् न्यास होते हैं, जिनमें गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि और पीठों के न्यास होते हैं।[२] अनेक प्रकार के न्यास होते हैं, जिनका यथोचित विचार करके ही उनका प्रयोग करना चाहिए।

रुद्रयामल के ४८ वें पटल में अनेक न्यासों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यथा-ऋषिन्यास। ऋषिन्यास में मन्त्र के द्वारा शिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा सर्वाङ्ग का स्पर्श किये जाने का विधान है[३]-

(अ) इह रुद्र शक्तिः महाविष्णुऋषये नमः-हाथ से शिर का स्पर्श।

(आ) हङ्क्तिछन्दसे नमः-मुख का स्पर्श।

(इ) महारुद्राणी लाकिनी महाविद्यात्रिशक्तिदेवतायै नमः-हृदय।

(ई) ॐ निजबीजाय ते नमः-गुह्य स्थान।

(उ) सकलायैव वज्राय कीलकाय नमः-सर्वाङ्ग।

अङ्गन्यास के बाद करन्यास का विधान शास्त्र में निर्दिष्ट है। इसके बाद अङ्गुलिव्यापकन्यास, हृदादिन्यास, रुद्रशक्तिमहाषोढ़ान्यास मन्त्रन्यास तथा तालत्रय, दिग्बन्ध तथा प्राणायाम को सम्पन्न करके रुद्रशक्ति का ध्यान करना चाहिए।[४]

इसी तरह विवेच्य ग्रन्थ में श्रीकण्ठन्यास[५], पञ्चमूर्तिन्यास[६], कलान्यास[७], पञ्चमन्त्रन्यास[८], पीठन्यास[९], मृत्युञ्जयऋष्यादिन्यास[१०],कराङ्गन्यास[११] आदि का वर्णन किया गया है।

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ०-७५-७६
२. वही, पृ०-७६
३. रुद्रयामल उ०त०, ४८/१०९-११२
४. वही, ४८/११३-१५
५. वही, ४८/१२६-३५
६. वही, ४८/१३६-४०
७. वही, ४८/१४१-७६
८. वही, ४८/१७७-२३५
९. वही, ४८/२३५-५५
१०. वही, ४८/२५६-५९
११. वही, ४८/२६०-६२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) रिपुविद्वेषण

रिपुविद्वेषण के प्रसादमात्र से साधक शत्रुविहीन हो जाता है एवं कण्ठपद्म (विशुद्ध-चक्र) में स्थिरता प्राप्त करता है। इस हेतु शाकिनी एवं श्री सदाशिव की पूजा करके विधिपूर्वक मञ्जुघोष एवं सदाशिव के मन्त्र से पुटित करके मन में भावना करनी चाहिए।[१] रिपुविद्वेषण का मन्त्र है-

"(ॐ) तारय तारय रक्ष आत्मानं रक्ष आत्मानं परपक्षं क्षेदय परपक्षं

योगशत्रून् विनाशय योगशत्रून् विनाशय श्रीं श्रीं श्रीं रं रं रं मारय मारय खादय खादय शत्रुकण्ठत्रिशूलि निकण्ठरिपुपञ्चकान् हारय हारय स्वाहा"।[२]

रिपुविद्वेषण का दूसरा मन्त्र भी है। दूसरे मन्त्र को अघोरमन्त्र एवं शाकिनी के अपने मन्त्र से पुटित करना चाहिए। मन्त्र है-

"क्लीं रिपुं में योगविघ्नदं दारय दारय विद्वेषय विद्वेषय परपक्षं छेदय कालजालं हर हर स्वाहा"।[३]

इस मन्त्र का उच्चारण करके कण्ठाधि देवता का जप करने से साधक रिपुविद्वेषी हो जाता है तथा योग के विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

(३) पराशक्तिनिर्मूलस्थाननिर्णय

भ्रूदल के अन्दर शिखामध्य में होमस्थान है। वहीं जगत्प्रिया शिखारूपा परब्रह्मस्वरूपा उस स्वाहाशक्ति का मन में ध्यान करके प्रतिदिन होमकर्म सिद्ध करना चाहिए। यही परमज्ञान है। शिखा के ऊपर परब्रह्मस्वरूपिणी पराशक्ति है। उस उष्ट्रमुखी, रक्तमुखी, ...रौद्री, पर देवी का ध्यान करना चाहिए।[४] उसके चारों ओर सर्वदा सैकड़ो योगिनीमंडल चक्रपंक्ति के आकार में सुशोभित हैं। उनके नाम श्मशानवासिनी, दुर्गा, हरिणाक्षी,.....,इलावती, रत्नमाला, मूलमाता आदि हैं।[५] चारों दिशाओं में इन सबका ध्यान करके पारिजातवन के अन्दर तैजसी तेजोमाला विनाशिनी अतिसौन्दर्यलहरी की भावना करनी चाहिए। रत्नसन्ताननिर्मित महामण्डल के मध्य में ग्रह के चतुर्द्वार का चिन्तन करना चाहिए। मण्डप के ऊपरी भाग में कोटिमणियों से विनिर्मित चार तोरणद्वारों से विभूषित महाचन्द्रातप शीतल है। मण्डप के मध्य ऊपरी भाग में मुक्तादाम से विभूषित सैकड़ों सूर्य की प्रभा मनोहर है। उसके नीचे स्वर्णनिर्मित छत्र मणिमय एवं रूचिकर है। उसके नीचे सिंहरूपाक्षियुक्त परमसिंहासन है। उसके ऊपर प्रेतलिङ्ग के समान प्रेतबीज है। प्रेतलिङ्ग के ऊपर ध्यान करने पर वहीं काञ्चन का मण्डल दिखाई पड़ता है। कर्णिका में त्रिकोण महापीठ शुक्लपद्म एवं षोडशच्छदमण्डित है। केशकों में षोडशस्वरसहित

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ६७/१९९-२०१
२. वही, ६७/२०२-२०४
३. वही, ६७/२०६-०७
४. वही, ९१/३-११
५. वही, ९१/१३-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ण दक्षिणावर्त्त रूप में विद्युत के समान सुशोभित हैं। तीन चतुष्कोण एवं उसके बाद चतुर्द्वार है। वहीं वारूणीमित्रविग्रहा देवी का ध्यान करना चाहिए। चतुर्द्वार में तरूणादित्य सहित पराम्बारूपिणी तारा का ध्यान करें, यही देवताओं का भी मण्डल है। पूर्वद्वार में वाहन एवं परिवारसहित इन्द्र का ध्यान करना चाहिए। वह्निकोण में सर्वतोमुखी वह्निमण्डल है। दक्षिण में यमलोक है। इनका भी परिवार एवं वाहनसहित ध्यान करें। नैर्ऋत में राक्षसीपुरी है। उसके उत्तर में मेषवाहन वरूण का परिवार सहित ध्यान करें। उसके उत्तर में मरूल्लोक है। मरूत् का वाहन कृष्णसार है। परिवार एवं वाहनसहित इनका भी ध्यान करना चाहिए। उत्तरद्वार में परिवार सहित कुबेर हैं। इशानकोण में ईशलोक है। वाहन एवं परिवारसहित इनकी पूजा सभी लोकों में होती है।[१]

पूर्वलोक का ध्यान सहस्रकोटि भेरीतुरी आदि सहित, दुन्दुभिकुलितामोदगायन से पूरित एवं अनेक सुन्दर वाद्यों सहित करना चाहिए। साधक वेणुवीणा एवं मृदङ्गों के सहस्रकोटि नादसहित यमलोक का ध्यान करे। नैर्ऋत में मन्त्रकोटिसमन्वित करताल, ढाक आदि के ध्वनि से पूरित, दुन्दुभि के ध्वनि से विमोहित जलेश्वर महाकाल का ध्यान करें। यंत्रकोटि ध्वनिश्रेणि से मोहित वहाँ झर-झर, पर-पर आदि रूचिकर नादसहित मरूल्लोक का ध्यान करना चाहिए। कुबेरस्थान का ध्यान दुन्दुभिश्रेणि एवं ढाकादि वाद्यों के ध्वनि से झंकृत रागतालनृत्यगीत मूर्तिमन्त्र सहित करें। उसके बाद दीप्तिश्रेणिधर गन्धर्वनगर अप्सराओं से घिरा हुआ है। वहाँ सर्वत्र गानरस रसिक का ध्यान करना चाहिए।[२] सबके गायन से अन्वित ब्रह्मर्षिमण्डल एवं परमावृत्त वाद्यवादक का ध्यान करें। देवर्षि सभी ज्ञानवाक्यरत्न एवं अपने गायन का ध्यान करके विधिपूर्वक अपने पीठ की भावना करनी चाहिए।[३] पीठशक्ति एवं पीठनायक का ध्यान करने पर साधक आनन्दमग्न हो जाता है तथा शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति होती है–

पीठशक्तिं विचिन्त्याशु पीठनायकमेव च।
विचिन्त्यानन्दमगनः स्यादचिरात् सिद्धिमाप्नुयात्।।[४]

(४) वाराणसीपीठनाथान्तयजन

'वाराणसी' का अर्थ यहाँ कोई स्थान-विशेष नहीं है। वस्तुतः इड़ा और पिङ्गला (दो प्रमुख नाड़ियों के नाम) रूप वरणा और असी अर्थात् वाराणसी में विश्वनाथ का निवास है इसलिए वाराणसी को ही परतत्त्व कह दिया जाता है। साधक को विश्वनाथ का दर्शन करना चाहिए।[५]

वाराणसी पीठ की कल्पना भ्रूपद्म अर्थात् आज्ञा-चक्र के मध्य में की गई है।[६] योगी

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ९१/३२-४९
२. वही, ९१/५०-५७
३. वही, ९१/५९-६०
४. वही, ९१/६१
५. शिवसंहिता ५/१२६-२७
६ रुद्रयामल उ०त०, ८५/१४४, ९२/३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने कल्याण के लिए उसका ध्यान करे। उक्त पीठ भ्रूमध्य में मण्डलाकार, मातृकायंत्ररूप, सर्वसार, कोटिस्वयंभूलिङ्ग से वेष्टित, पुण्यकोटिफलोदय, अतिसिद्धिप्रद एवं प्रियपद है।.... कोटिलिङ्गप्रधान, योगेश्वर शिव..... त्रिशूल, मुदगर आदि से विभूषित पञ्चमुख एवं दशभुजाओं वाले का ध्यान करके दश दिशाओं में शंभु की भावना करनी चाहिए। स्थान-स्थान पर दश-दश मूर्तिचिन्हों का ध्यान करना चाहिए। ध्यान करके पीठविद्या को वश में करना चाहिए। अयुतशिवलिङ्ग दश दिशाओं में दशा स्थल पर हैं।[१]

(१) पूर्वदिशा में दशरूप एवं अयुतावरण हैं। दश नाम हैं- जटिल, काल, उन्मत्त, क्रोधराज, सदाशिव, परा, दधीचिनाथ, सुवाशी, प्रमथेश्वर और यज्ञनाथेश्वर। अयुतशिवलिङ्ग है ईश्वरवल्लभ।

(२) वह्निकोण दिशा में शिव के ये दस रूप शोभित होते हैं-वज्रधर, महाकाल, कपिलेश्वर, पञ्चानन, योगिनाथ, घर्घरेश, पिनाक्धृक, पशुपाल, क्षेमद एवं ब्रह्मनाथ इनका ध्यान करके घी की धारा से पूजन करना चाहिए।[२]

(३) दक्षिण दिशा में शिव की दश मूर्तियाँ हैं-वीर, शूलेश्वर, सिद्धेश्वर, श्रीपार्वतीश्वर, शम्भु, प्रचण्ड, दक्षयज्ञहा, काशीपति, पशुपति एवं शिवा। ये अयुतानन्द लिङ्गेश कपालशून्य धारक शिवमण्डल के मध्य में मूर्तिमान् होकर शोभित होते हैं। पीठक्षेत्र एवं दक्षिण में इनका भक्तिपूर्वक ध्यान करना चाहिए।

(४) नैर्ऋत में दश ईश्वर का ध्यान करें। ये हैं-कामाख्य, शिवलिङ्गक, दक्षिणामूर्तिरीशान, वामनेश, मनोहर, वामदेव, बाणनाथ, रघुवीरेश्वर, कामराजेश्वर एवं कामकालेश। इनका ध्यान करके पराभक्तिपूर्वक बिल्वपत्र से पूजन करना चाहिए। सर्वत्र मानसिक-पूजा ही करनी चाहिए।[३]

(५) वरूण कोण में निम्न दशरुद्र का ध्यान करना चाहिए। ये हैं-अरूणेश्वर, योगेन्द्र, काशीराज, सुरान्तक, त्रिशूली, वरूणेश, कालाख्या, कामदायक, कालाग्निरुद्र एवं भद्रेश। ये शिवलिङ्गायुतेश सर्वशक्तिसमन्वित हैं।[४]

(६) वायुकोण में अवस्थित दशरुद्रों का पूजन-ध्यान कामनाफल की सिद्धि के लिए करना चाहिए। ये हैं- महारुद्र, वातनाथ, रुद्रात्मा, रौद्ररूपक, हनुमान, सूर्येश, वसुधेश्वर, वासुकीवल्लभ एवं सत्यपति।[५]

(७) उत्तर तथा इसके उत्तर के पूजनीय एवं ध्यातव्य देवता हैं-कुबेरेश्वर, ईश्वर, पञ्चाधार, पारमेश, परहंसप्रभाकर, अनन्तेश, कायरक्ष, रतनेश्वर एवं उमापति।[६]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ९२/२-११
२. वही, ९२/१२-१७
३. वही, ९२/१८-२४
४. वही, ९२/२५-२६
५. वही, ९२/२७-२९
६. वही, ९२/३०-३१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(८) ईशानकोण के ध्यातव्य देव हैं–ईश, वैश्वानेश, विश्वामित्रेश्वर, ईशान, मायेश, बटुकेश, रमेश्वर, कालान्तकेश, कामाख्य, महाकामपुरीश्वर, श्मशानवासिदेवेश एवं सर्वरूपप्रकाशक। ये रुद्र काम–पीठ निवासी हैं।[१]

(९) वाराणसीमध्य पीठ में १३ शिवेश्वर हैं। इनका अधोमण्डल के मध्य में ध्यान करके पूजन करना चाहिए। ये हैं–मृत्युञ्जय, मोक्षद, शिवेश, वैरवेश्वर, भूतनाथ, भूतकर्त्ता, क्षेत्रपाल, परापर, मञ्जुघोषेश्वर, कालदमन, कोशलेश्वर एवं मुनिनाथ। ये आनन्दशिवरूप एवं पञ्चतत्त्वों के प्रकाशन करनेवाले हैं।[२]

(१०) वाराणसी के ऊर्ध्व पीठ में परमानन्द के साधक को स्थिरचित्त होकर १३ शिवों का ध्यान–पूजन करना चाहिए। ये हैं–ब्रह्मेश, ब्रह्मकुलेश, ब्रह्मलिङ्ग, विधीश्वर, ब्रह्मण्डभेदक, आत्माराम, वक्रेश्वर, बलीश, भार्गवेश, सदानन्देश्वर, हर, कृष्णेश्वर एवं रामनाथ।[३]

ये रुद्र ज्ञान से ज्ञेय, निर्मलचेतसा, सर्वालङ्कार से सुशोभित, रत्नकुण्डल से मण्डित, सृष्टि–संहार करनेवाले एवं देवकार्य में नियोजित हैं। इनका ध्यान करके चित्तपुष्पों से पूजन करना चाहिए। तदनन्तर सिद्धि की प्राप्ति होती है।[४]

द्रां द्रीं दश महाविद्याएँ पञ्चतत्त्वों का प्रकाशन करनेवाली हैं। ये सभी सिद्धियों को देनेवाली एवं सभी युगों में पूर्ण फल देनेवाली हैं। रुद्र के द्वारा पूजित विद्याएँ हैं–त्रिपुरासुन्दरी देवी, त्रिपुरभैरवी, भुवनेशी (भवुनेश्वरी), अन्नपूर्णा, मातङ्गी, विन्ध्यवासिनी, छिन्नमस्ता, वगला, त्रिकूटा, पञ्चमी, कालिका तथा तारिणी (तारा)। इनकी पूजा तान्त्रिक–विधि से करनी चाहिए। कुलापूजाक्रम से साधक सिद्धिप्राप्त करता है तथा एक महीने में ही योग की सिद्धि होती है। विशेषकर भ्रूपद्मभेदनकाल में तो इनकी पूजा अवश्य करनी चाहिए।[५]

(५) वाराणसीपञ्चपीठपद्धति

साधक वाराणसी मध्य–पीठ में पञ्चकोण की भावना करे, वहाँ श्री हाकिनी देवी के पञ्चपीठ की भावना करे। पञ्चपीठ में रत्नमाला विमण्डित पञ्चदेव हैं। ...... पञ्चकोण में पञ्चतत्त्व एवं पञ्चबीज है। पूर्वकोण में इन्द्रबीज (लं) और पृथ्वी का त्रिकोण है। उसके दक्षिण में वायुबीज (यं) तथा वायवीशक्तिमण्डल है। उसके नीचे त्रिकोणमंडल गृहपीठ में वारूणाख्य जलबीज (वं) है। सबसे नीचे तैजस् रूप वह्निबीज (रं) है, जो महोग्र सर्वभक्ष एवं जलीय दोषभञ्जक है। सबसे अन्त में आकाशबीज (हं) रूपी आकाश महाप्रलयसङ्गम कुम्भकाधार–चक्र है। यह सभी का लय संस्थान निर्मल एवं तत्त्वसिद्धि देने वाला है।[६]

---

१. रुद्रयामल उ०त०, ९२/३३–३५
२. वही, ९२/३६–४०
३. वही, ९२/४१–४४
४. वही, ९२/४५–४७
५. वही, ९२/४९–५५
६. वही, ९३/१–११

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हाकिनी पञ्चपीठ के अन्दर पाँच प्राण हैं। ये हैं– प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान। लोकों के मृत्यु नाश से ये यहाँ मूर्तिमान् होकर शोभित हैं। इन वायुकुण्डों में पञ्चवायुओं की पूजा करनी चाहिए। वायुओं को नित्य पञ्चतत्त्वों–शुद्धासव, शुद्धमांस, शुद्धमीन, शुद्धमुद्रा एवं शुद्धकुलचन्दन-का अर्पण करना चाहिए।[१]

प्रस्तुत ग्रन्थ में इसके बाद वाराणसी–मध्य–पीठ चक्र–विद्या, हाकिनीमण्डल, एवं भ्रूपद्म के ऊपर के आध्यात्मिक संसार की विशद विवेचना की गई है।[२]

(६) बिन्दुस्थिरीकरण

तंत्र में वीर्यपात् का निषेध किया गया है। वीर्य ही शक्ति है। इसलिए कहा गया है–

यावद् बिन्दु स्थिरो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः?।।
बिन्दुपाताद् भवेन्नाशस्ततो हि बिन्दुरक्षणम्।[३]

अर्थात् 'जब तक वीर्य देह में है, तब तक मृत्यु का भय कहाँ? वीर्यपात से ही विनाश होता है, इसलिए वीर्य की रक्षा करनी चाहिए'।

इस हेतु विवेच्य ग्रन्थ में औषधीय उपाय सुझाया गया है। कहा गया है कि श्वेत अपराजिता का मूल(जड़), सिद्धिमूल, शतपद्मीमूल, कदम्बमूल, श्वेतकुन्दपुष्पमूल, करवीरमूल, सितमूल, कृष्ण धतुरा का मूल, शेफालीमूल चितामूल तथा निर्गुण्डीमूल को अर्कमूलों के द्वारा रविवार को विधिपूर्वक एकत्र करके पृथक्–पृथक् बराबर भाग में उन्हें चूर्ण करना चाहिए। शुक्रवार पूर्वाहन में तीन दिन उन्हें मिलाकर काम मुद्राओं के द्वारा छः बार उनका शोधन करें। मध्यमा अङ्गुलि उठाकर दाहिने मुष्टि से पकड़कर पहले शोधन करके विजर्या–चूर्ण के साथ दो तोला चूर्ण का पान करना चाहिए। आधा तोला चूर्ण एवं आधा तोला विजया को विधिपूर्वक मिलाकर मंगलवार के दिन इसके सेवन से कामदेव वश में हो जाता है। यदि फिर भी काम का विचार मन में आता है तो आनन्दभैरव की पूजा द्वारा उसका निवारण करना चाहिए।[४]

विवेच्य ग्रन्थ में हठयोग के अनुसार भी काम–मर्दन का निर्देश किया गया है। कहा गया है अङ्गुष्ठ, गुल्फ, जानू, उरू, सिमनी, लिङ्ग, नाभि, हृद्ग्रीवा, कण्ठ, नाक, भ्रूमध्य, मस्तक तथा मूर्ध्नि में वायुरूप अपने देह को स्थापित करके जप करना चाहिए। कुम्भक प्राणायाम के द्वारा अपना देह व्यवस्थित रहता है।[५]

• • •

---

१. रुद्रयामल उ०त०, १३/१२-१६
२. वही, १३/१८-५१
३. वही, ६७/३०८
४. वही, ६७/३०८-३१७
५. वही, ६७/३१८-२०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपसंहार

सहज जीवन की भूमि में तंत्र का अङ्कुरण हुआ। यह तब की बात है, जब मनुष्य तथाकथित शिक्षा-सभ्यता से अनभिज्ञ था, समाज पुरूष-प्रधान नहीं हुआ था और स्त्रियाँ जीवन की अनिवार्य और पूरक अंग हुआ करती थीं। इसलिए तान्त्रिक परम्परा में मातृदेवियों की उपासना प्रारम्भ हुई। मनुष्य ने जाना कि स्त्री ही नये जीवन को जन्म देती है और उसका पालन-पोषण करती है। इसलिए कहीं स्त्री के योनि से निर्गत वृक्ष, कहीं योनि-प्रतीक, कहीं स्त्री के अन्य प्रतीक पूजा-अर्चना के आराध्य बन गए। और यह धारा विभिन्न युगों से प्रवाहित होती हुई वहाँ तक पहुँच गई, जब उसने अपनी कीर्ति-पताका खजुराहो, पुरी और कोणार्क के मन्दिरों पर फहरा दी। सहजता का यह जीवन-दृष्टिकोण धर्म की सीमाओं को न माना और क्या हिन्दू, क्या बौद्ध, क्या जैन-सब तंत्रमय हो गया।

'तन्त्र' शब्द का अर्थ है-जिस (शास्त्र) के द्वारा मनुष्य के जीवन में ज्ञान का विस्तार-प्रस्तार होता है। अज्ञान ही बन्धन है। ज्ञान ही मुक्ति है। तंत्र के लिए (यामल' और 'आगम' शब्दों का भी प्रयोग देखा जाता है। प्रमाण स्वरूप 'रुद्रयामल' ग्रन्थ शिव के योगिनी वक्त्र से आविर्भूत ६४ भैरवागमों के अन्तर्गत है। यही नहीं रुद्रयामल के साथ 'उत्तरतंत्र' शब्द भी जुड़ा हुआ है। तंत्र को जिस किसी भी शब्द से अभिहित किया जाय, किन्तु तंत्र के सम्बन्ध में लोगों में कई भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। वस्तुतः तंत्र को सम्यक् रूप से बहुत कम ही समझा गया है। कुछ तुच्छ स्वार्थी लोगों ने तंत्र के नाम पर भोग-विलास और काला जादू-चमत्कार की ही छवि प्रदर्शित की है। किन्तु तंत्र बहुत ऊँचा और सूक्ष्म विज्ञान है। भोग-वासना का आध्यातिमक रूपान्तरण सम्भव है, किन्तु यह कार्य सरल नहीं है। यहाँ भोग से ही प्रांरभ करना है, लेकिन यहीं अटक नहीं जाना है। योग ही इसका भी लक्ष्य है। काम से राम तक की यात्रा का नाम है-तंत्र, वाममार्ग, अघोरपन्थ और नाथपन्थ। तंत्र केवल दर्शन नहीं है। दर्शन को समझना आसान है; क्योंकि उसके लिए सिर्फ मस्तिष्क की जरूरत पड़ती है; उसके लिए व्यक्ति को स्वयं परिवर्तित होने की आवश्यकता नहीं। किन्तु तंत्र के लिए करना ही जानना है। तंत्र में प्रवेश का अर्थ है-स्वयं को रूपान्तरित करने के लिए तैयार रहना। तंत्र तथाकथित धर्म भी नहीं है। तथाकथित धर्म में शुभ और अशुभ का विभाजन रहता है, पुरोहित रहता है। किन्तु तंत्र में ऐसा कुछ भी नहीं है। इसलिए तंत्र तथाकथित नैतिकता भी नहीं है। नैतिकता व्यक्ति के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समक्ष आदर्श निर्मित करती है और परिणामतः व्यक्ति आर्दश नहीं हो सकने के कारण अपराध-भाव से ग्रसित हो जाता है। तंत्र आत्म-निंदा के विरोध में है। तंत्र न नैतिक है, न अनैतिक। वह अधिनैतिक है। जब तक नैतिकता का दबाब रहेगा, तब तक संसार में पाखण्ड रहेगा। तंत्र सच्चे व्यक्ति की खोज है। तंत्र अन्तर्दृष्टि का विज्ञान है। विज्ञान की भाँति तंत्र में भी विधियों का महत्त्व है। सारतः हम यही कह सकते हैं कि तंत्र न भोग है न दमन, वरन् जागरण है। यदि काम, क्रोध, लोभ आदि को सजगतापूर्वक व्यक्ति जान ले, तब वह उससे मुक्त हो जाता है। समझ ही रूपान्तरण बनती है।

तंत्र की धारा सतत् प्रवाहित होती रही है। लोगों ने अपनी सुविधानुसार उसे कभी शैलीमूलक आधार पर वर्गीकृत करके आगम, डामर, यामल आदि के रूप में जाना; कभी उपास्य देवता के आधार पर काली, तारा, श्रीविद्या आदि से सम्बद्ध माना; कभी क्षेत्र के आधार पर विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता और अवश्क्रान्ता के रूप में पहचाना; कभी शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर आदि सम्प्रदायमूलक कहा; कभी आस्तिकता-नास्तिकता के रूप में, तो कभी स्वतन्त्र रूप से बौद्ध तंत्र कहकर उसका परिचय दिया।

रुद्रयामल कौलमत का प्रधान ग्रन्थ है। कौलमत का ग्रन्थ होते हुए भी इसे वैदिक तंत्र कहा जा सकता हैं, क्योंकि वेदों के प्रति इसका दृष्टिकोण उदार एवं सम्मानजनक है। रुद्रयामल उत्तरतंत्र ही वस्तुतः 'रुद्रयामल तंत्र है। कतिपय साक्ष्यों के आधार पर इसका प्रणयन-काल ७वीं-८वीं सदी के बीच किसी समय सिद्ध होता है। रुद्रयामल तंत्र के व्यापक अर्थ में आने वाली सभी विद्याओं को अपने में समाहित किए हुए है। इसका स्वरूप विराट-स्वरूपात्मक है। इसके वर्ण्य-विषय की परिधि अत्यन्त विस्तृत है।

प्रायः तंत्र-ग्रन्थ संवाद रूप में मिलते है। रुद्रयामल में भी विषय का प्रवर्त्तन आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी के संवाद के रूप में होता है। यह संवाद एक गुरू और शिष्य के बीच नहीं होता है, यह संवाद घटित होता है दो प्रेमियों के बीच। तंत्र इसके द्वारा एक बहुत अर्थपूर्ण बात का संकेत करती है कि गहराई की शिक्षा तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक शिष्य और गुरु के बीच प्रेम का सम्बन्ध न हो। यह प्रेम की भाषा है। तर्क सदा बौद्धिक होता है, उसमें तर्क और सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रेम की भाषा में क्या कहा जाय, यह महत्त्व का नहीं है; कैसे कहा जाय, महत्त्व का है।

तंत्र में गुरू की अतिशय महिमा है। पञ्चमकार-साधना, कुण्डलिनी-साधना, दीक्षा आदि गुरू के बिना सम्भव नहीं है। रुद्रयामल में कहा गया है कि अज्ञान रूपी तिमिर से अन्धी हुई आँखों को ज्ञानरूपी अञ्जन-शलाका से जो खोल देते हैं, उन श्री गुरू को नमस्कार है। गुरू तो तटस्थ शब्द है। गुरू सच्चा भी हो सकता है, मिथ्या भी। सद्गुरू का अर्थ है, जो-जो भी कह रहा है अपने बलबूते पर कह रहा है; जिसके भीतर का दीया जला है। असद्गुरू को स्वयं का अनुभव नहीं है, वह किसी परम्परा को पीट रहा है।

दीक्षा है गुरू की कृपा एवं शिष्य की श्रद्धा-इन दो पवित्र भावनाओं का संगम। गुरू की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टि से यह आत्मदान या ज्ञान-सञ्चार है, तो दूसंरी दृष्टि से यह शिष्य की प्रसुप्त शक्तियों का उद्बोधन है। दीक्षा से शरीर की समस्त अशुद्धियों, मन की समस्त भ्रांतियों और सिद्धि का मार्ग खुल जाता है। दीक्षा पूर्ण समर्पण की अवस्था में ही सम्भव है। गुरू को दीक्षा देने से पूर्व अपने भावी शिष्य की पूरी परीक्षा कर लेनी चाहिए।

समग्रता, समानता, सहजता और सर्वस्वीकार्यता तंत्र की महत्त्वपूर्ण विलक्षणताएँ हैं। तंत्र का सारा सौन्दर्य इन्ही स्रोतों से उद्भूत होता है। इसी अर्थ में तंत्र को सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनिक कहा जाता है। स्त्री-पुरूष, शूद्र-विप्र, अमीर-गरीब आदि का कोई भेद यहाँ नहीं है। सहजता और सर्वस्वीकायता के कारण ही तंत्र में पञ्चमकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन की स्वीकृति है। विष ही विष का प्रतिकारक है, काँटे के द्वारा ही काँटे को निकाला जाता है-यही तंत्र का उद्घोष है। सामान्य मनुष्य इन्हीं पञ्चमकारों के पीछे जीवन पर्यन्त भागता रहता है। तथाकथित धर्म इन्हें आध्यात्मिक-साधना में विघ्न मानता है, किन्तु तंत्र इन्हीं के द्वारा व्यक्ति की काम-ऊर्जा को आध्यात्मिक-ऊर्जा में रूपान्तरित करता है। आवश्यकता केवल सजगतापूर्वक इनके उपयोग का है, क्योंकि विवेक ही अतिक्रमण का कारण बनता है। अज्ञान ही लिप्तता का कारण है, ज्ञान या विवेक मुक्ति प्रदान करता है।

योग एवं तंत्र में बुनियादी भेद है। योग में लड़ना अनिवार्य है; वह योद्धा का पथ है। तंत्र के मार्ग पर लड़ना बिल्कुल नहीं है। उल्टे तंत्र में भोग है, भोगना है; लेकिन बोधपूर्वक। तंत्र है समर्पण, योग है संकल्प। योग प्राकृतिक धारा से लड़ने का प्रयास है। इस दृष्टि से यह अप्राकृतिक मार्ग है। तंत्र एक प्राकृतिक मार्ग है-बिल्कुल सहज। इसलिए तंत्र प्रेम का मार्ग है। यद्यपि तंत्र और योग का लक्ष्य तो एक ही है, किन्तु उनकी साधना-पद्धतियाँ भिन्न हैं। तथापि रुद्रयामल सदृश तान्त्रिक ग्रन्थों में साधना के सिलसिले में किञ्चित् योगों का वर्णन हुआ है।

रुद्रयामल में परमतत्त्व के रूप में कुण्डलिनी पराशक्ति का वर्णन हुआ है, जो मूलाधार चक्र में निवास करती है तथा षट्चक्रभेदन होने पर सहस्रार में जाकर परशिव का सायुज्य और सामरस्य प्राप्त करती है। इस महाशक्ति की डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, भेदिनी, छेदनी आदि शक्तियाँ भी हैं। सूक्ष्म अर्थ में मूलाधार चक्र में सुप्त कुण्डलिनी की अवस्था ही सृष्टि कहलाती है, इसका (कुण्डलिनी का) जागरण ही पालन है। प्रकृति के गुणों का जब विस्तार हो जाता है तो उन्हे प्रलयोन्मुख करने के लिए संहार-रूप कार्य का जन्म होता है। मल, कर्म और माया ही बन्धन के कारण हैं। कुंडलिनी-जागरण की साधना में षट्चक्रों का भेदन करने के बाद सहस्रार में मन के लय की पराकाष्ठा को मनोमहाप्रलय कहते हैं। शिव में चित्त को इस तरह एकाग्र करना चाहिये, जिससे जीव और ब्रह्म (शिव) के ऐक्य की अनुभूति हो सके। इस समय साधक तन्मय (ब्रह्ममय) हो जाता है। भक्ति की कृपा से साधक निश्चित ही जीवन्मुक्त हो जाता है।

तान्त्रिक साधना में भाव का अतिशय महत्त्व है। रुद्रयामल में कहा गया है कि भाव से परे कुछ भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् भाव के ही अधीन है। भाव से ही योग की प्राप्ति होती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। साधना के दृष्टिकोण से साधक की तीन भाव-श्रेणियाँ हैं-पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। पशुभाव की स्थिति प्रारम्भिक है। इस अवस्था में साधक ज्ञान और शक्ति इकट्ठा करता है। इसलिए इस अवस्था में यम-नियमादि पर विशेष ध्यान दिया जाता है और पञ्चमकारों के स्थान पर उनके प्रतिस्थानापन्न प्रयुक्त किये जाते हैं। जब साधक घृणा, शङ्का, भय आदि अष्टपाशों को विनष्ट कर वीरभाव अवस्था में प्रविष्ट होता है, तब उसके लिए पञ्चमकार प्रकृत रूप में स्वीकार्य हो जाते हैं। इन पञ्चमकारों से साधना करते-करते साधक अध्यात्म के उस शिखर पर पहुँच जाता है, जहाँ प्रकृत रूप में पञ्चमकारों का प्रयोग बहुत तुच्छ लगने लगता है। ऐसे में पञ्चमकार का अर्थ अत्यंत सूक्ष्म और आन्तरिक हो जाता है। यही दिव्यभाव की अवस्था है। दिव्यभाव शेष दोनो भावों से श्रेष्ठ है। इसी अवस्था में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यामलीय उपासना के पाँच अङ्ग हैं-पटल, पूजा-पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र। पटल के अन्तर्गत मंत्र, बीजाक्षर आदि परिगणित हैं। पूजा-पद्धति के अन्तर्गत देवी-देवताओं की उपासना की जाती है। षट्चक्रों की अधिष्ठातृ देवियाँ क्रमशः हैं-डाकिनी,राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, और हाकिनी। षट्चक्र-साधना में इनका अतिशय महत्त्व है। बाह्य एवं आंतरिक कामनाओं पर नियंत्रण रखने के लिए 'कवच' की आवश्यकता होती है। लौकिक एवं पारलौकिक उद्देश्य की साधना में काकिनी, शाकिनी आदि कई कवचों का पाठ लाभदायक है। इसी तरह सहस्रनाम एवं स्तोत्र भी साधना मे फलप्रद हैं।

मनुष्य के शरीर में प्रमुखतः सात चक्र हैं-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार। कुण्डलिनी-शक्ति मूलाधार चक्र में अवस्थित स्वयम्भूलिङ्ग को साढ़े तीन चक्करों में वेष्टित कर सुप्तावस्था में है। विभिन्न साधनाओं के द्वारा इसी कुण्डलिनी-शक्ति को उत्थापित करके सहस्रार में लाया जाता है। इसे ही षट्चक्र-भेदन या कुण्डलिनी-जागरण कहते हैं। सहस्रार में कुण्डलिनी परशिव से सायुज्य और सामरस्य प्राप्त करती है। यह जीवन्मुक्त की अवस्था है। तदनन्दर कुण्डलिनी पुनः मूलाधार में लौट आती है।

गुप्त साधना के अन्तर्गत शव-साधना और चीनाचार विशेष उल्लेखनीय है। श्मशान में शव के साथ साधना करने का अभिप्राय है निर्भय होना। मरते हुए व्यक्ति के स्वाधिष्ठान चक्र से ऊर्जा विमुक्त होती है, इसलिए वहाँ साधक को मृत्यु का स्वाद मिल सकता है। मृत्यु ही सबसे बड़ा भय का कारण है। यदि साधक मृत्यु को समझ ले, देख ले तो वह भय से मुक्त हो जाता है। चीनाचार में पञ्चमकारों का प्रकृत रूप में प्रयोग किया जाता है। अठारह प्रकार के चीनाचार की साधना-विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं।

'देवो भूत्वा देवं यजेत्'-इस आदेश का पालन न्यासों पर ही आधारित है। तान्त्रिकों का यह सिद्धान्त है कि भूतशुद्धि द्वारा शरीर को शुद्ध किया जाता है और न्यासों के द्वारा 'मन्त्रमय' देवता को आत्मा में संक्रान्त कर तन्मयता-बुद्धि प्राप्त की जाती है। 'रिपुविद्वेषण' के प्रसाद से साधक शत्रुविहीन हो जाता है तथा विशुद्ध चक्र में स्थिरता प्राप्त करता है। इसी प्रकार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'पराशक्तिनिर्मूलस्थाननिर्णय', 'वाराणसीपीठनाथान्तयजन', 'वाराणसीपञ्चपीठपद्धति' आदि साधना के गुह्य आयाम हैं।

तंत्र एक नया दृष्टिकोण दे सकता है। तंत्र ठीक समय पर दस्तक दे रहा है। व्यक्ति को असहजता से सहजता की ओर, असमानता से समानता की ओर, पाखण्ड से स्वाभाविकता की ओर, नीरस तर्कबुद्धि से सरस भावभूमि की ओर और काम-ऊर्जा के आध्यामिक रूपान्तरण द्वारा कामुकता से परम भगवत्ता की ओर लौट आना है–रुद्रयामल का यही सन्देश है, इसी में इसकी प्रासांगिकता भी है।

• • •

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-१

रुद्रयामल की साहित्य-सम्पदा

भारत के प्राचीन ग्रन्थागारों में रुद्रयामल तंत्र से उद्धृत साहित्य का पर्यालोचन करने से ज्ञात होता है कि इस महाग्रन्थ में अनेकानेक विषयों का सांगोपांग विवेचन किया गया था। सम्भवत: भारतीय आस्तिक सम्प्रदाय में प्रचलित सभी शास्त्रीय उपासना-विधानों की एक व्यवस्थित परम्परा का उद्घाटन जैसा रुद्रयामल में हुआ, वैसा अन्यत्र नहीं। आज हमारे समक्ष यह ग्रन्थ अपने पूर्ण स्वरूप में उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि रुद्रयामल का पूरा कलेवर सवा लाख पद्यों से अलंकृत था। कालबल से वह समग्र सहित्य यत्र-तत्र बिखर गया है। उत्तरतंत्र के रूप में रुद्रयामल का एक भाग हमें मुद्रित प्राप्त होता है, किन्तु उसके अतिरिक्त शताधिक ऐसे प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थ भी हैं, जिनमें पूर्णतया अथवा कुछ अंशों में रुद्रयामलोक्त साहित्य का संग्रह मिलता है। रुद्रयामल साहित्य से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करने से पहले विभिन्न भण्डारों का संक्षिप्त रूप स्पष्ट किया जा रहा है–

अ०ब०	–	बड़ौदा पुस्तकालय का अकारादि
इं०आ०	–	इंडिया ऑफिस पुस्तकालय, लन्दन
ए०बं	–	एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल
क०का०	–	कलकत्ता संस्कृत कॉलेज पुस्तकालय
के०के०	–	केटलॉगस कैटलोगोरम्
द्रि०के०	–	त्रिवेन्द्रम कैटलॉग
डे०क़ा०	–	डेक्कन कॉलेज, पूना
न्यू के०के०	–	न्यू केटलॉगस केटलॉगोरम्
ने०द०ला०	–	नेपाल दरबार लाइब्रेरी
नो०सं०	–	संस्कृत पुस्तकों पर म०.म० हर प्रसाद शास्त्री के विवरण
बं०प०	–	बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
बी०कै०	–	बीकानेर कैटलॉग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

र०मं०	–	रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, जम्मू
रा०पु०	–	राजस्थान पुरातत्त्व ग्रन्थ-सूची
रा०ला०	–	राजेन्द्र लाल मित्र के संस्कृत पुस्तकों पर विवरण।
सं०वि०	–	संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

अस्तु! रुद्रयामल से सम्बन्धित साहित्य का विवरण विभिन्न भण्डारों में स्थित उनकी पाण्डुलिपियों एव उनकी सूची-क्रम-संख्या के अनुसार निम्न हैं[1]–

क्र.स.	ग्रन्थ का नाम	प्राप्ति-स्थान	सूचीपत्र-संख्या
१.	अघोर-पंचांग	न्यू के०के०-	१/४७
२.	अघोर-पूजा-पद्धति (अघोर-सहस्रकल्पगत श्लोक १०२, पूर्ण)	सं०वि०-	२४४९५
३.	अंग-भैरव	न्यू०के०के०-	१/४७
४.	अन्नपूर्णाकल्प	न्यू०के०के०-	१/१९
५.	अन्नपूर्णासहस्रनाम	न्यू०के०के०-	२/४
६.	अन्नपूर्णेश्वरी पंचांग	न्यू०के०के०-	२/४
७.	अयोध्यामाहात्म्य हरगौरी संवाद रूप,	ए०ब०-	५८८७
८.	अयोध्यामाहात्म्य	के०के०-	३/७
९.	आपदुद्धर-पद्धति	न्यू० के०के०-	२/१२२
१०.	आपदुद्धर-कवच	न्यू० के०के०-	२/१२२
११.	आम्नाय-पद्धति श्लोक संख्या १५००	अ०ब०-	१०६९१
१२.	आम्नाय-अपूर्ण	सं०वि०-	२६५७९
१३.	आम्नाय चारपटल	न्यू०के०के०-	२/१४७
१४.	इन्द्राक्षी-पंचांग	ए०बं०-	६४३२
१५.	उग्रतारा-पंचांग	सं०वि०-	२५०६३
१६.	उग्रतारा-स्तोत्र	ए०बं०-	६३३२
१७.	उग्रतारा-स्तोत्र	न्यू०के०के०-	२/२८
१८.	कालीबाण पंचक	स्वतन्त्र संग्रह	
१९.	कालीभुजंग स्तोत्र	"	
२०.	कालिका स्तवराज	"	
२१.	चक्रनिरूपण, उमामहेश्वर संवादरूप	"	

१. रुद्रयामल तंत्र, पृ० ४१-५०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसमें महाकुलाचार क्रम से ५ चक्र, उनके आचार तथा विधि-विधान का वर्णन है। रुद्रयामलोक्त श्रीतन्त्र में दिए गए निर्देशानुसार ऐहिक सुखदायक और मोक्षप्रद, इन चक्रों के नाम-१. राजचक्र, २. महाचक्र, ३. देवचक्र, ४. वीरचक्र, ५. पशुचक्र की विधि-विधान से पूजा करनें से लाभ होता है। इसी ग्रन्थ में सुरूपा चारों वर्णों की कुमारियों की पूजा का भी विधान है।......यन्त्र-राज की पूजा में-१. तुलसीदल, २. बिल्वदल तथा ३. धात्रीदल का प्रयोग करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होने का भी संकेत है।

२२.	चण्डीनवार्णपटल	ए०बं०-क	५८६९

इसमें चण्डी के नवार्णमन्त्र से सम्बद्ध विस्तृत चर्चा है।

२३.	चन्द्रोन्मीलन	बी०कै०-	१२६३

इसमें ४९ पटलों में अनेक विषय चर्चित हैं, जिन्हें रुद्रयामल के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, उमा तथा बुद्धयामल से भी लिया गया है।

२४.	चिन्तामणि-प्रयोग	स्वतन्त्र संकलन	
२५.	छिन्नमस्ता कल्प, पटल १ से १८, तथा म०द० ७८३६, श्लोक सं० ५००	अ०ब०-	१६९२
२६.	ज्वाला-कवच	क०का०-	७८
२७.	ज्वाला-पटल	क०का०-	८०
२८.	ज्वाला-पूजन-पद्धति	क०का०-	८०
२९.	ज्वाला-मुखी-पंचांग, २३२ श्लोक	र०मं०-	४८३५
३०.	ज्वाला सहस्रनाम	र०मं०-	४८३५
३१.	तारा-पंचांग, २०८पद्य,	सं०वि०	
३२.	त्रिपुरासुन्दरीमन्त्रगर्भसहस्रनाम	अ०ब०-	१२१८०
३३.	त्रिकूटा-रहस्य	ए०बं०-	५८८२
३४.	त्रिपुरसुन्दरीतत्त्वविधार्गाभसहस्रनाम, पद्य २९२,	र०मं०-	२७०
३५.	त्रिपुरसुन्दरी-दीपदान-विधि	र०म०	
३६.	त्रिपुरसुन्दरी पंचांग, श्लोक-३५०	र०म०	
३७.	त्रिपुरसुन्दरी पटल	अ०ब०-	५८८६
३८.	त्रिपुरसुन्दरीपूजाविधि	अ०ब०-	२४७६
३९.	त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्र, शिवकृत,	क०का०-	३५
४०.	त्रिपुरा पटल	सं०वि०-	२५१३७
४१.	त्रिपुरा स्तव	ने०द०ला०-	१/१३७६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४२.	त्रिपुराहृदय	के०के०-	२/५६
४३.	त्रैलोक्य मोहनकवच	र०मं०-	
४४.	त्रैलोक्यकालिकाकवच	के०के०-	३/५२
४५.	त्रैलोक्यविजयकवच, श्लोक-३०,	अ०ब०-	३५३१
४६.	त्वरित रुद्रविधान, श्लोक-१३२,	सं०वि०-	२३८५
४७.	दक्षिणकालिका पंचांग, श्लोक-१५००,	अ०ब०-	१३७८२
४८.	दक्षिणकालिका स्तोत्र	ए०वं-	६६३७

यह राजराजेश्वरी अनिरूद्ध सरस्वती दक्षिण-कालिका देवी का संसारतारक स्तोत्र है।

४९.	दक्षिणकालीकवच	के०के०-	३/५२
५०.	दत्तात्रेय-हृदय, श्लोक-४२,	नो०सं०-	२/९६
५१.	दुर्गानाम-माहात्म्य	बं०प०-	३८३(ख)
५२.	दुर्गा-पंचांग, देवी-भैरव संवाद रूप,	अ०ब०-	११२९५
५३.	दुर्गापूजापटल, उत्तरखण्ड से अ०.६तक	सं०वि०-	२४११५
५४.	देवदूजीपूजाविधि, श्लोक-२९६	सं०वि०-	२४३९०
५५.	देवीचरित्र, श्लोक-१०००	एं०बं०-	५८७९

यह नवरात्रोत्सव पर की जानेवाली दुर्गापूजा का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इसमें १३ अध्याय हैं, जिनमें उमा-पूजा-विधि, देवी-प्रभाव, देवी-रहस्य आदि का विषय वर्णित है।

५६.	देवीरहस्य अथवा परारहस्य	इं०ऑ०-	२५४६

इसमें ६० पटल हैं तथा यह पूर्वार्ध और उत्तरार्ध रूप दो भागों में है।

५७.	देवीरहस्य, (तन्त्रोक्त विशेष प्रक्रिया-रूप सहित)		बी०कै०-१२६२
५८.	देवीरहस्य	अ०ब०-८/३००	
५९.	देवीरहस्य, तन्त्र सूर्य एवं गणपति पूजा सहित,	अ०बं०-	१३६८०
६०.	देवी सूक्त	अ०ब०(क)	३४५८
६१.	देवीसूक्तवर्णन, श्लोक ११०,	र०मं०-	५०२८(ख)
६२.	धूमावती दीपदान पूजा	बी०कै०-	१३११
६३.	नरसिंह-पंचांग, श्लोक-४६८	र०मं०-	४८१७
६४.	नवग्रह-सिंह-यन्त्र-पूजा	ए०बं०-	५८८९=
६५.	नवदुर्गा-पूजा-रहस्य, ११ पटल		
६६.	नवदुर्गापूजा-विधि एवं देवीदूती पूजाविधि २९५ पद्य,	सं०वि०-	२४३९०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६७.	नवरात्रकृत्य (उत्तरखण्डस्थ),	३५७ पद्य,	सं०वि०-२४१२६
६८.	नवार्णचण्डी-पंचांग, श्लोक ८९२,	र०मं०-	४८१८
६९.	नित्यामृत-कल्प, १ पटल,	सं०वि०-	२५०२५
७०.	नित्यदीप-विधि, ४६० पद्य,	अ०ब०-	३४५९
७१.	नीलसरस्वती प्रयोग-विधि, ९० पद्य मात्र,	सं०वि०-	२५४८०
७२.	पंचचक्रपूजन	क०का०-	५२
७३.	पंचदश यन्त्रविधान, ७२ पद्य,	सं०वि०-	२६२२४
७४.	पंचमी वरिवस्या-रहस्य	के०के०-	१/३१५
७५.	पंचमी स्तवराज, (वल्गी पंचमी)	र०मं०	४४७८तथा
		अ०ब०-	५१४३
		के०के०-	३/३१५
७६.	पंचमी हनुमत्वकवच	अ०ब०-	९००१
७७.	पंचाक्षरी-मन्त्रोपदेश	के०के०-	१/३१७
७८.	परमहंस पंचांग	ए०वं०	६५१६, ६८०५
	परमहंस पटल, पटल आदि	नो०सं०-	२/११५
		एं०म०	४८१५
		के०के०-	१/३२५
७९	परादेवी रहस्य, पत्र २२५	सं०वि०२५४३३,	
		के०के०-	१/३२७
८०.	पात्र-वन्दन-नवस्तोत्र	ने०द० ला०-२/पे०२०७	
८१.	पात्र-स्तव-विधि, पत्र २४०	सं०वि०-	२४०३३
८२.	पार्थिव पूजा, पत्र-९३	सं०वि०-	२४३३३
८३.	पार्थिव लिंग पूजा-विधि	क०का०-	४७
८४.	पार्थिवेश्वर पूजा-विधि, पत्र ७२	के०के०-	२/७५
८५.	प्रत्यंगिरा पंचांग	ए०बं०	६४३०, ६७१५
		अ०ब०-	१०१५१,
		सं०वि० २३८८८,(ख) २४०१५	
८६.	प्रत्यंगिरा-पटल	सं०पि०-२४६४४, २४६५३	
८७.	बकरादि बालात्रिपुरासुन्दरी रहस्य	र०मं०-	११३३
८८.	बटुक दीपदान प्रकार	के०के०-	२/८२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८९.	बटुक भैरव-पंचांग, ३६२ पत्र	सं०वि०- र०मं०	२४००८, ४८५०
९०.	बटुक-भैरव-पूजा-प्रयोग	सं०वि०-	२५०७७
९१.	बटुक-भैरव बकरादि सहस्रनाम	ए०बं०-	६७५०
९२.	बटुक-भैरव सहस्रनाम	के०के०-	२/८२
९३.	बालभैरव सहस्रनाम	के०के०-	२/७७
९४.	बाला-भैरवी सहस्रनाम	नो०सं०-	१/२४६
९५.	बाला-कवच	अ०ब०-	११४२०
९६.	बालाखड्गमाला, ६५ पत्र	ट्रि०के०-	१०६ (ख)
९७.	बालात्रिपुरसुन्दरी नित्यपूजापद्धति, ६०० पत्र	अ०ब०-	८०५४
९८.	बाला-सहस्रनाम	क०का०-	९
९९.	बालासुन्दरी स्तवराज,पत्र-३०	ट्रि०के०-	१०६ (ख)
१००.	बाला त्रिपुरा पटल, पत्र १५०	अ०ब०-	१६९४
१०१.	बाला पंचांग, पत्र ८५२	र०मं०-	४८१९
१०२.	बाला पूजा-पद्धति, पत्र ७००	अ०ब०-	१६८३
१०३.	भवानी-कवच	अ०ब०-	३४७७
१०४.	भवानी-पंचांग, पत्र ६३०	र०मं-	४८१९
१०५.	भवानी पूजा-पद्धति, पत्र२२०	र०मं०-	४८६६
१०६.	भवानी सहस्रनाम पटल, पत्र ७८	सं०वि०-	२६६७५
१०७.	भवानी सहस्रनाम स्तोत्र, पत्र २२४	र०वि०-	५३४
१०८.	भवानी स्तवराज, पत्र १५०	रं०ला०-	३७८
१०९.	भुवनेश्वरी कल्प	के०के०-	३/४१४
११०.	भुवनेश्वरी नित्यपूजा-पद्धति	सं०वि०-	२६३७३
१११.	भुवनेश्वरी दीपदान	बी०कै०-	१३१७
११२.	भुवनेश्वरी पंचांग	ए०बं०-	६३८४
११३.	भुवनेश्वरी पद्धति	रा०पु०-	७०५६
११४.	भुवनेश्वरी रहस्य, २६ पटल पत्र, २५००	अ०ब०-	१०६९०
११५.	भुवनेश्वरी स्तोत्र, १३० पद्य	रं०म०-	४४९२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११६.	भैरव सहस्रनाम	के०के-	१/४१७
११७.	मंगलविधि	ए०बं०-	५८९१
११८.	मतोत्सव	ए०बं०-	५८६८
११९.	महाकाल-पंचाग,पत्र ४४८	र०मं०-	४८२८
१२०.	महाकाली प्रस्ताराराज कथन, १२४ पत्र	र०मं०-	११२५
१२१.	महाकाली सूक्त, पत्र २७०	डे०का०-	३९५
१२२.	महागणपति पंचांग, पत्र ३०९	सं०वि०-	२४००५
१२३.	महागणपति विधान	रा०पु०-	५०४९
१२४.	महात्रिपुरसुन्दरी पद्धति	सं०वि०-	३६५५१
१२५.	महात्रिपुरसुन्दरी पादूकार्चन क्रमोत्तम		
१२६.	महात्रिपुरसुन्दरी पूजा-पद्धति		
१२७.	महात्रिपुरसुन्दरी पूजा-विधि		
१२८.	महात्रिपुरसुन्दरी वरिवस्या-विधि	सं०वि०-	२४८३०
१२९.	महाषोडशी सहस्रनाम	के०के०-	२/२१७
१३०.	महाराज्ञी कवच (श्लोक ६०)	र०मं-	११५४
१३१.	मातंगी दीपदान-विधि	बी०कै०-	१३१३,१२२६
१३२.	मेघमाला, ११ अध्याय	बी०कै०	१३१४
१३३.	योगिनी दशा, श्लोक १८३	अ०ब०-	९२५७
१३४.	योगिनी विभाग (५०७ अ०)	सं०वि०-	२४३३४
१३५.	योगिनी सहस्रनाम, श्लोक २००	रा०ला०-	८७८
१३६.	यजस्वला मन्त्रोद्धार, श्लोक ४०	सं०वि०-	२५०६०
१३७.	रजस्वला स्तोत्र	ए०बं०-	६७३२
१३८.	रसकल्प	ए०बं०-	५८७१
		बं०पं०-	१०८३
१३९.	रसरत्नाकर, श्लोक ५७८	डे०का०-	२४८
१४०.	रस-हृदय, १८पटल, पत्र ६७५	सं०वि०-	२६७०५,
		ट्रि०कै०-	११०९ (ग)
१४१.	रसार्णवकल्प (रसकल्प) (पारद से विविध रसों का निमार्ण-शोधन मारणादि)	ए०बं०-	५८७०
१४२.	राज्ञी पंचाग, प०४९४	र०मं०-	४८४६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१४३.	राधा सहस्त्रनाम, पद्य ३१७	रा०ला०-	३१२४
१४४.	रामनाम लिखन विधि	रा०ला०-	४२१७
१४५.	रामनाम प्रयोगचक्र	र०मं०-	११२१
		सं०वि०-	२४७६६
१४६.	राम मन्त्रविधि	सं०वि०-	४३९७१
१४७.	राम सहस्त्रनाम (अकारादि क्रमेण)	ए०बं०-	६७६५
१४८.	रुद्रचण्डी (चार अध्याय)	ए०बं०-	५८७२
		सं०वि०-	२५२३१
१४९.	रुद्रचण्डी कवच (अध्याय)	बं०प०-	११४८
१५०.	रुद्रयामल तंत्र (इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में रुद्रयामल की पाण्डुलिपियाँ देखें, अनेक प्रतियाँ प्राप्त हैं।)		
१५१.	वंश कवच	बं०प०-	४३३(क)
१५२.	बगलामुखी कवच	बं०प०-	८०१
१५३.	बगलामुखीदीपदान	बी०कै०-	१३१७
१५४.	बगलामुखीत्रैलोक्य विजय कवच	ए०बं०-	६३९१
		र०मं०-	४८५१
१५५.	बगलामुखी पंचांग	सं०वि०-	२४२०५
१५६.	बगलामुखी रहस्य	अ०बं०-	१०६६१
१५७.	वज्रपंजर सूर्यकवच	ए०बं०-	६७८६
१५८.	वरदगणेश-पंचांग	रा०पु०-	५१२९,
		सं०वि०-	२५९७५
१५९.	वर्णाभिधान, प०१९०	ए०बं०-	६२६२,
		सं०वि०-	२४७४५
१६०.	विज्ञान भैरव/विज्ञान भट्टारक	ने०द०ला०-	२/२४६डी०
१६१.	विधान-मुक्तावली (रू०या०मतोत्सव)	ने०द०ला०	
१६२.	विश्वावसु गन्धर्व राजतन्त्र	सं०वि०-	२५४६१
१६३.	शकुन	र०मं०-	४०४१
१६४.	शक्तिपूजन विधि	अ०ब०-	९५८०
१६५.	शत्रुविमोचन बगला कवच	रा०ला०-	९९०
१६६.	शारदा-पंचांग	र०मं०-	४८४७
१६७.	शारिका-भगवती पंचांग, पत्र ५०५	इं०आ०	२५४९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६८.	शिवपंचांग, पत्र ५०९	र०मं०-	४८२०
१६९.	शिव सहस्रनाम स्तोत्र	ब०पं०-	५१०/ख ४४९
१७०.	शिव सहस्रनाम गद्यमय नमोऽन्त	ए०बं०-	६७४३
१७१.	शिवाम्बु कल्प, पत्र १०४	र०मं०-	११२३
		सं०वि०-	२४५५१
१७२.	श्यामस्तोत्र (महद्विशेषण)	ए०बं०-	६३३५
१७३.	षट्चक्रप्रपंच	ब०पं०-	१२१२
१७४.	षट्चक्रप्रपंचविवरण	सं०वि०-	२४६४९
१७५.	षष्ठीविद्या प्रशंसा (१२५०६० श्लोक)	ने०द०ला०-	२/३६१डी०
१७६.	षोढ़ान्यास क० ४००, ख २२०	अ०ब०-	७१४१, ११७३०
१७७.	संवित्सेविनी मन्त्र	अ०ब०-	८३३४
१७८.	सदाशिव-कवच	बं०प०-	८९२
१७९.	समयाचार तन्त्र	स०वि०-	२३९२४
१८०.	समयाष्टक(कौलाचार-क्रम-सदाचार)	स०वि०-	२५३८३
१८१.	सर्वज्वर-विपाक-ज्वर-चिकित्सा	बी०कै०-	१३१५
१८२.	सर्वमंगलमन्त्र पटल	र०मं०-	४९४४
१८३.	साम्राज्य-षोडशी लघुमकरन्द स्तोत्र	र०मं०-	१०६४
१८४.	सुदर्शन चक्र	र०मं-	२९७३
१८५.	सुमुखी पंचांग	रा०पु-	९६ क
१८६.	सुमुखी पटल (उच्छिष्ट मातंगी आदि)	ए०बं०-	६३०९ (२)
१८७.	सुमुखी विधान	रा०पु०-	७६९२
१८८.	सूर्यपंचांग	सं०वि०-	२५२२४
१८९.	सूर्यपटल	ए०बं०-	५८८८
१९०.	स्वर्णाकर्षण भैरवदीप-प्रकाश	सं०वि०-	२५८७५
१९१.	हनुमत्कल्प	सं०वि०-	२६१८१
१९२.	हनुमत्कवच	एं०बं-	६७८०

ऊपर वर्णित ग्रन्थों की सूची के अतिरिक्त भी अनेक स्तोत्र और अन्यान्य तान्त्रिक विषयों के विवेचक छोटे-बड़े ग्रन्थों में भी रुद्रयामल का विषय प्रतिपादित है। यह एक स्वतन्त्र गवेषणा का विषय ही है कि महान् उत्तरवर्त्ती आचार्यों ने अपने कथन तथा विवेचन की पुष्टि के लिए कहाँ-कहाँ रुद्रयामल के वचनों को उद्धृत किया है।

• • •

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-२

बीजमन्त्र या बीजाक्षर

बीजमन्त्र एक विशेष ध्वनि लिए हुए होते हैं तथा वे अन्य मन्त्रों की तुलना में अधिक शक्तिशाली होते हैं। अनेक प्रकार के देव-देवियों के नाम से उनके बीजमन्त्रों का ज्ञान होता है। कहीं-कहीं बीजमन्त्र का संकेत न करके देव-बीज या शक्तिबीज का उल्लेख किया जाता है। इससे उनके बीजमन्त्रों का ज्ञान करना चाहिए। अनेक ग्रंथों एवं विवेच्य ग्रन्थ में उल्लिखित कतिपय देवी-देव परक तथा कुछ अन्य बीजमन्त्रों का संकेत इस प्रकार है-

अग्नि	बीजमन्त्र	-रं
अजपा	" "	-हंसः
अस्त्र	" "	-फट्
आकाश	" "	-हं
इन्द्र	" "	-लं
ईश्वर	" "	-एँ
ईशान	" "	- हं
उग्रतारा	" "	- ॐ ह्रीं स्त्रीं हुँ फट्
अंकुश	" "	- क्रों
कमला	" "	-श्रीं
कलहर	" "	-ह्रीं
कवच	" "	-हुँ
कृष्ण या काम	" "	-क्लीं
कामराज	" "	-ह्स्क्ल्रीं/क्लीं
कर्पूर या काली	" "	-क्रीं
कूर्च	" "	-हूँ
कूट	" "	-क्षं
गणपति	" "	-गं
गणेश	" "	-ग्लौं, गं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्र	बीजमन्त्र	–ठं
छिन्नमस्ता	" "	–हं या हुँ
जल	" "	–वं
डाकिनी	" "	–वं
तार	" "	–ॐ
तारा	" "	–ॐ
दुर्गा	" "	–दूँ
देवी	" "	–श्रीं
धरा	" "	–लं
धूमावती	" "	–धूं
धेनु	" "	–हं या हुँ
नकुलीश	" "	–हं
निज	" "	–गं
नृसिंह एकाक्षर	" "	–क्षौं
परा	" "	– सौः, ह्रीं
प्रसाद	" "	–ह्रौं
वधू	" "	–स्त्रीं
बाला	" "	–ऐं
ब्रह्म	" "	–शं
भुवनेश्वरी	" "	–ह्रीं
भैरव	" "	–भ्रं
मातङ्गी	" "	–ह्रीं, हूँ
मारुत	" "	–यं
माया	" "	–ह्रीं
मूलमन्त्र	" "	–ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा
रमा	" "	–श्रीं
लज्जा	" "	–ह्रीं
श्री बीज या लक्ष्मी	" "	–श्रीं
वगलामुखी	" "	–ह्लृं
वरूण	" "	–वं
वर्म	" "	–हुँ
वर्म दीर्घ	" "	–हूँ
वाक्	" "	–ऐं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाग्भव	बीजमन्त्र	–ऐं
विष्णुवनिता	" "	–श्रीं
वायु	" "	–यं
विश्व	" "	–ट्रिं
विष्णु	" "	–दं
वैसर्गिकी कला	" "	–ह(:)
हल्लेखा या ह्रेखा	" "	–ह्रीं
शम्भुवनिता	" "	–ह्रीं
शक्ति	" "	–ह्रीं
शक्ति कूटबीज	" "	–ह्सौः/सौः
शिव बीज मन्त्र	" "	–ह्रौं
शेष	" "	–सौः
शंकर	" "	–श
षडङ्ग मन्त्र	" "	–ॐनमः शिवाय
षोडशी	" "	–श्रीं
सदाशिव	" "	–सं
सरस्वती	" "	–ऐं
हनुमत्	" "	–फ्रौं
हन्	" "	–मनः
हंस	" "	–ह
त्रिपुरा	" "	–ऐं क्लीं सौः
त्रिपुरा पञ्चाक्षर	" "	–ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं
ज्ञान	" "	–ज्ञं
श्रीकण्ठ	" "	–अः

मन्त्र-वर्ण-सङ्केत

अद्रि	–	द
अनन्त	–	आ
अनल	–	र
अमृतात्मक	–	व
अभ्र	–	ह
अर्धीश	–	ऊ
अर्धचन्द्र	–	ँ
आकाश	–	ह
इन्दु	–	०(अनुस्वार)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्र	–	ल
ईश	–	ह
ऋद्धि	–	ख
काम	–	क
कामदेव	–	स्वा
काज	–	म
कालेश	–	म
कूर्म	–	च
गगन	–	ह
गोविन्द	–	ई
चन्द्र	–	स
जीव	–	स
झिण्टी	–	ए
ठद्वन्द्व	–	स्वाहा
तैजस्	–	रेफ
तार	–	ओं
द्विठ	–	स्वाहा
देवी	–	स
दीप	–	रेफ्
नाद	–	बिन्दु
नारायण	–	आ
पुरन्दर	–	ल
प्रतिष्ठा	–	आ
पञ्चातक	–	ग
प्रजापति	–	क
प्राण	–	इ
प्राणेश	–	ह
पृथ्वीपति	–	व
ब्रह्मा	–	क
भग	–	ए
भेरूण्डा	–	ई
भृगु	–	स
भौतिक	–	ऐ
मदन	–	क

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मस्त	–	०(अनुस्वार)
महेश	–	ह
महेश्वर	–	ह
मृगाङ्क	–	ईं
माया	–	ई
योनि	–	ए
रक्त	–	र
रति	–	ह
रुद्र	–	ह
लोहिता	–	क्ष
वह्निकानता	–	स्वाहा
वायु	–	य
वाणी	–	ऐ
विजया	–	ऐ
विन्दु	–	०(अनुस्वार)
विष्णु	–	अ
वियत्	–	ह
वैरवरी शक्ति	–	फट्
शक्र	–	ल
शक्ति	–	स
शम्भु	–	ह
शिव	–	ह
शून्य	–	ह
शेषदन्त	–	औ
सत्य	–	ओ
संवर्त	–	क्ष
सुरेन्द्र	–	ज
सूर्य	–	म
सोम	–	स
सूक्ष्मान्त	–	ई
हर	–	ह
हान्त	–	क्ष
त्रिपुरा	–	ऐ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिपुरसुन्दरी	–	र
त्रैलोक्य-विजया	–	ओ

शरीर क अवयवों द्वारा मन्त्र-वर्ण-सङ्केत

ललाट या शिर	–	अ
मुख	–	आ
दक्षिण नेत्र	–	इ
वाम नेत्र	–	ई
दक्षिण कर्ण	–	उ
वाम कर्ण	–	ऊ
दक्षिण नासा	–	ऋ
वाम नासा	–	ॠ
दक्षिण कपोल	–	ऌ
वाम कपोल	–	ॡ
अधर	–	ए
ओष्ठ	–	ऐ
अधोदन्त	–	ओ
ऊर्ध्वदन्त	–	औ
जिह्वा	–	अं
ग्रीवा	–	अः
दक्षिण बाहुमूल	–	क
दक्षिण कूर्पर (केहुनी)	–	ख
दक्षिण मणिबंध	–	ग
दक्षिण अंगुलिमूल	–	घ
दक्षिण अंगुलि-अग्र	–	ङ
वाम बाहुमूल	–	च
वाम कूर्पर	–	छ
वाम मणिबन्ध	–	ज
वाम अंगुलिमूल	–	झ
वाम अंगुल्यग्र	–	ञ
दक्षिण ऊरूमूल	–	ट
दक्षिण जानु	–	ठ
दक्षिण गुल्फ	–	ड

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दक्षिण अंगुलिमूल	–	ढ
दक्षिण अंगुल्यग्र	–	ण
वाम ऊरूमूल	–	त
वाम जानु	–	थ
वाम गुल्फ	–	द
वाम अंगुलिमूल	–	ध
वाम अगुल्यग्र	–	न
दक्षिण कुक्षि	–	प
वाम कुक्षि	–	फ
पृष्ठ	–	ब
नाभि	–	भ
उदर	–	म
हृदय	–	य
दक्षिण स्कन्ध	–	र
वाम स्कन्ध	–	ल
तालु	–	व
हृदय से दक्षिण हस्त	–	श
हृदय से वाम हस्त	–	ष
हृदय से दक्षिण पाद	–	स
हृदय से वाम पाद	–	ह
ब्रह्मरन्ध्र	–	क्ष

• • •

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट-३

रुद्रयामल के विभिन्न प्रमुख संस्करण

रुद्रयामल उत्तरतंत्र का दो संस्करण कलकत्ता से श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य द्वारा प्रकाशित किया गया था। दूसरा संस्करण १८९२ ई० में प्रकाशित हुआ था, जिसमें ६६ पटल थे तथा श्लाकों की संख्या ५५८९ थी। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के योगतंत्र विभाग द्वारा रुद्रयामल (उत्तरतंत्र) का प्रथम संस्करण १९८० में प्रकाशित किया गया, जिसमें जीवानंद द्वारा प्रकाशित ६६ पटलों के अतिरिक्त २५ पटल और हैं। इस प्रकार इसमें पटलों की कुल संख्या-९१ तथा श्लोकों की कुल संख्या-७७३८ है। कृष्णदास अकादमी, वाराणसी द्वारा डा० रामकुमार राय के सम्पादन में, १९८६ में रुद्रयामल (उत्तरातंत्र) का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया गया। इसमें पटलों की कुल संख्या-९३ है तथा कुल श्लोक-७८५४ है। इस प्रकार इसमें जीवानंद संस्करण से २२६५ श्लोक एंव संपूर्णानंद संस्करण से ११६ श्लोक अधिक हैं। इस पुस्तक का आधारग्रंथ रामकुमार राय द्वारा संपादित रुद्रयामल को स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत संस्करण में एवं सम्पूर्णानंद संस्करण में जीवानंद संस्करण के वर्ण्य-विषय तक तो वर्ण्य-विषय की क्रमिकता लगभग-लगभग समान है, किन्तु उसके बाद वर्ण्य-विषय की क्रमिकता में असंगतता है। प्रस्तुत संस्करण, संपूर्णानंद संस्करण एवं जीवानंद संस्करण की श्लोकों की संख्या पटलानुसार यथाक्रम प्रदर्शित किया जा रहा है-

पटल संख्या	श्लोक संख्या		
	प्रस्तुत संस्करण	सम्पूर्णानंद संस्करण	जीवानंद संस्करण
१.	२४५	२४४	२४५
२.	१६१	१६२	१६१
३.	१४०	१४५	१४०
४.	१८६	१९२	१८६
५.	४४	४५	४४
६.	१०२	१०६	१०२
७.	९३	९४	९३
८.	६५	६७	६७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पटल संख्या	प्रस्तुत संस्करण	सम्पूर्णानंद संस्करण	जीवानंद संस्करण
९.	४३	४४	४४
१०.	१८०	१८५	१९३
११.	७६	७५	७६
१२.	५१	५३	४९
१३.	८९	९०	९०
१४.	७४	७४	७४
१५.	६६	६६	६६
१६.	४४	४६	४४
१७.	१६३	१६३	१६३
१८.	८३	८३	८३
१९.	४९	५०	४९
२०.	४२	४३	४२
२१.	११३	११४	११३
२२.	१०८	१०९	१०८
२३.	११३	११४	११३
२४.	१४३	१४४	१४३
२५.	१२९	१२९	१२९
२६.	१४६	१४८	१४५
२७.	१०४	१०५	१०४
२८.	९२	१०२	९९
२९.	५०	४३	४१
३०.	३८	४१	३७
३१.	४४	४६	४२
३२.	३२	४३	३२
३३.	६५	६५	६५
३४.	५९	५७	६१
३५.	४५	४५	४५
३६.	२०६	२१०	२०६
३७.	३५	३५	३५
३८.	५७	५८	५७
३९.	३१	३४	३०
४०.	२२	२३	२२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पटल संख्या	प्रस्तुत संस्करण	सम्पूर्णानंद संस्करण	जीवानंद संस्करण
४१.	४५	४६	४५
४२.	१३८	१४८	१३८
४३.	४०	३७	४०
४४.	८६	८७	८६
४५.	३७	३८	३७
४६.	५६	५८	५६
४७.	५९	५७	५८
४८.	२७४	२८२	२७४
४९.	३२	३२	३१
५०.	३२	३२	३३
५१.	७१	७३	७१
५२.	२०९	२१२	२०९
५३.	२३	२५	२३
५४	७३	७७	७३
५५.	३३	३४	३३
५६.	१६	१६	१६
५७.	७०	७४	७०
५८.	३८	४३	३८
५९.	३८	३९	३८
६०.	१०३	२६	१०३
६१.	३५	२३	३५
६२.	१४०	२४२	१४०
६३.	२२	२२	२२
६४.	२४२	८२	१६६
६५.	२२	३२८	२२
६६.	८३	३८	७४
६७.	३२७	१२६	२२
६८.	३८	२०	इति
६९.	१२६	२६	
७०.	२०	१५८	
७१.	२३	७७	
७२.	१५८	६०	

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पटल संख्या	प्रस्तुत संस्करण	सम्पूर्णानंद संस्करण	जीवानंद संस्करण
७३.	७७	४६	
७४.	६०	२१	
७५.	४७	१११	
७६.	२१	१४१	
७७.	१११	५०	
७८.	१४१	४८	
७९.	५०	६०	
८०.	४८	३९	
८१.	६०	२५	
८२.	३९	५०	
८३.	२५	२२६	
८४.	५०	२९	
८५.	२२६	५९	
८६.	२९	४०	
८७.	५९	२१७	
८८.	४०	१३७	
८९.	२१७	६१	
९०.	१३६	५५	
९१.	६१	५१	
९२.	५५	इति	
६३.	५१		
	इति		

यहाँ ध्यातव्य है कि प्रारम्भ से लेकर ५९ वें पटल तक तीनों संस्करणों का वर्ण्य-विषय एक समान रहा है। किन्तु प्रस्तुत संस्करण में ६४ वें पटल से लेकर ९३ वें पटल तक का वर्ण्य-विषय यदि संपूर्णानंद संस्कार में खोजना हो तो प्रस्तुत संस्करण की पटल संख्या में दो घटा कर प्राप्त किया जा सकता है। जैसे प्रस्तुत संस्करण का ७० वाँ पटल का वर्ण्य-विषय शाकिनी-स्तोत्र है, संपूर्णानंद संस्करण में यह ७०-२= ६८ वें पटल में है। संपूर्णानंद संस्करण, १९८० में यद्यपि कुल ९१ पटल हैं, किन्तु ४२ वें पटल के बाद ४३ वाँ पटल न लिखा जाकर पुनः ४२ वाँ पटल ही लिख दिया गया है। इसलिए इस हिसाब से इसमें ९० पटल ही परिगणित हैं। प्रस्तुतः संस्करण में ६० से लेकर ६३ पटल तक की विषय-सामग्री संपूर्णानंद संस्करण में अव्यवस्थित रूप में है तथा अधिकांश नहीं भी है। प्रस्तुत संस्करण और जीवानंद संस्करण में प्रारम्भ से लेकर ६३ वें पटल तक तथा ६५ वें पटल में प्राय: समरूपता है, किन्तु ६४ वाँ, ६६वाँ तथा ६७ वाँ पटल कुछ अव्यवस्थित हो गया है।

• • •

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(क) मूल (संस्कृत) ग्रन्थ-सूची

१. अमरकोश : अमरसिंह, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९६१ ई०।

२. ईशानशिवगुरूदेवपद्धति (भाग-१) : ईशानशिवगुरूदेव मिश्र, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावलि, ग्रन्थांक-६९, त्रिवेन्द्रम, १९२० ई०।

३. ईशानशिवगुरूदेवपद्धति (भाग-३) : ईशानशिवगुरूदेव मिश्र, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थवलि, ग्रन्थांक-७७, त्रिवेन्द्रम, १९२२ ई०।

४. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा (दो भागों में) : सं०-मधुसूदन कौलशास्त्री, कश्मीर संस्कृत टेक्ट्स एण्ड स्टडीज, श्रीनगर, १९२१ ई०।

५. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृति-विमर्शिनी (भाग-३) : काश्मीर संस्कृत ग्रथावलि, ग्रन्थांक-६५, श्रीनगर, १९४३ ई०।

६. कुमारी तंत्रम् : सं-ज्योतिर्लालदास, नवभारत, ग्रन्थाक-१३८३।

७. कुलार्णव तंत्रम् : सं० तारानाथ विद्यारत्न तथा आर्थर एवेलॉन, मोतीनाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७५ ई०।

८. कूर्म पूराण (ब्राह्ममी संहिता समेतम्) : मुद्रक-गोपाल प्रिंटिंग वर्क्स, प्रथम संस्करण, कलकत्ता-६।

९. कौलज्ञाननिर्णय : सं०-पी०सी बागची, कलकत्ता संस्कृत सीरीज ३,कलकत्ता १९३४ ई०।

१०. गुप्तसाधन तन्त्रम् : सं०-श्री भद्रशील शर्मा, कल्याण मन्दिर, प्रयाग, सम्वत्-२०२७।

११. गोरक्षसंहिता : संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली, १९७४ ई०।

१२. घेरण्डसंहिता : घेरण्डयोगीन्द्रविरचिता, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेङ्कटेख्वरस्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई, सं०२०१३।

१३. चक्रकौमुदी : बदरीनाथविरचिता, सं०-जीवेश्वर झा, प्रकाशक-डा० गयाचरण त्रिपाठी, प्राचार्य, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, १९७९ ई०।

१४. तैत्तिरीय आरण्यक : सं०-महादेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८५ ई०।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५. तंत्रसार : अभिनवगुप्तविरचित, कश्मीर संस्कृत टेक्ट्स एण्ड स्टडीज, खण्ड १७ श्रीनगर, १९१८ ई०।

१६. तंत्रालोक : अभिनवगुप्तविरचित, १२ खण्डों में, कश्मीर संस्कृत टेक्ट्स एण्ड स्टडीज, खण्ड २७-३९ कश्मीर गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन्स, श्री नगर, १९२१-३८ ई०।

१७. नित्याषोडशिकार्णवः : सं०- व्रजवल्लभ द्विवेदी, योगतंत्र ग्रन्थमाला (१), वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६८ ई०।

१८. निरूत्तर तंत्रम् : सं०- भद्रशील शर्मा, कल्याण मन्दिर, प्रयाग, सम्वत्-२०१७ ई०।

१९. नीलतंत्रम् : सं०-ज्योतिर्लाल दास, नवभारत, ग्रन्थांक-१३८८।

२०. परशुरामकल्पसूत्रम् : गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, नं०-२२, ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, १९७९ ई०।

२१. पातञ्जलयोगदर्शनम् : महर्षि पतञ्जलिविरचितम्, व्याख्याकार-स्वामी श्री ब्रह्मलीन मुनि, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणासी, चतुर्थ संस्करण, १९९० ई०।

२२. ब्रह्मसूत्र : सं०- स्वामी विरेश्वरानन्द, अद्वैत आश्रत, इन्टल्ली रोड, कलकत्ता, १९६३ ई०।

२३. महानिर्वाणतन्त्रम् : प्रकाशक-जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता, १८८४ ई०।

२४. महाभारत (नीलकंठी सहित) : सम्पादक-पंचानन तर्करत्न, -कलकत्ता, शक-१८२७ ई०।

२५. मातृकाभेदतंत्रम् : सम्पादक-पं०टी० गणपति शास्त्री, चोखम्भा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १९६३ ई०।

२६. मुण्डक उपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर।

२७. मुण्डमाला तंत्रम् : सम्पादन-पंचानन शास्त्री, नवभारत, ग्रन्थांक-१३८७।

२८. मेरूतंत्रम् : सम्पादन-पं० रघुनाथ शास्त्री, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई, १९४० ई०।

२९. मृच्छकटिकम् : महाकविशूद्रकविरचितम्, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

३०. मन्त्र-महोदधि : महीधरविरचित, सं०-शुकदेव चतुर्वेदी, प्राच्यप्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९८१ ई०।

३१. योग के सर्वोत्तम उपाय-विज्ञान भैरव तंत्रम् : सं०-कृपालशंकर अवस्थी, पुनीत प्रकाशक, १८३-बंसीनगर, हरदोई, १९८१ ई०।

३२. योगिनी तन्त्रम् : प्रकाशक-गंगाविष्णुश्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई, सम्वत्-२०१३।

३३. योग़िनी-हृदयम् (सेतुबन्ध टीकासहित) : सम्पूर्णनन्द संस्कृत यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, तृतीय संस्करण, १९७९ ई०।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३४. रुद्रयामलम् (उत्तरतंत्रम्) : सं०-डॉ० रामकुमार राय, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, प्रथम संस्कार, १९८६ ई०।

३५. रुद्रयामलम् (उत्तरतंत्रम्) : योगतंत्र ग्रन्थमाला खण्ड-३, योगतंत्र विभाग, सम्पूर्णनन्द विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, वाराणसी, १९८० ई०।

३६. रुद्रयामलम् (उत्तरतंत्रम् प्रथमोभागः) :-सं० आचार्य श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, सम्पूर्णनन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, द्वितीय संस्कारण, १९९१ ई०।

३७. रुद्रयामलतन्त्रम् : पं० प्रयागसूनु पं० रामचरण नंदराम शर्मा-प्रणीत, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई, १९९१ ई०।

३८. वरिवस्यारहस्यम् : श्री भास्करराय मखिन्, दि अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, अड्यार, मद्रास, १९६८ ई०।

३९. वामकेश्वरीमतम् : सं०-माइकेल मैगी, प्राच्य प्रकाशन, वराणसी, प्रथम संस्करण, १९८६ ई०।

४०. विश्वामित्र संहिता : केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति, १९७० ई०।

४१. विष्णुपुराणम् : अनुवादक-श्री मुनिलाल गुप्त, गीता प्रेस, गोरख, अष्टम संस्करण, सम्वत्-२०३३ ई०।

४२. विज्ञानभैरवः : व्याख्याकार-व्रजवल्लभ द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८४ ई०।

४३. व्यासभाष्यम् (पातञ्जलोयोगदर्शनम) : व्यासदेव, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९७१ ई०।

४४. शारदातिलकम् : प्रकाशक-संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली, १९७३।

४५. शिवदृष्टिः : सोमनन्दनाथविरचित, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि, ग्रन्थांक-५४, श्रीनगर, १९३४ ई०।

४६. शिवयोगप्रदीपिका : सदाशिवयोगीश्वरविरचिता, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, ग्रन्थांक-१३९, पूना १९७८ ई०।

४७. शिवसंहिता : प्रकाशक-संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली, १९७५ ई०।

४८. श्वेताश्वेतर उपनिषद : गीता प्रेस, गोरखपुर।

४९. श्री गुरू तन्त्र : सं०-कुलभुषण पं० रमादत्त शुक्ल व श्री ऋतशील शर्मा, कल्याण मन्दिर प्रकाशन, इलाहाबाद-६, संस्करण-१९८७ ई०।

५०. श्रीमद् देवीभागवतमहापुराणम् : संकलन- दौलतराम गौड़, ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी।।

५१. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण (भाग प्रथम) : गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् २०२४।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५२. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण (भाग द्वितीय) : वही, सम्वत् २०३५।

५३ श्री शक्ति सङ्गमतन्त्रम् (द्वितीयोभागः, ताराखण्ड) : गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज नं०-९१, ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, १९४१ ई०।

५४. श्री शक्ति सङ्गम तन्त्रम् (चतुर्थोभागः छिन्नमस्ता खण्ड) : गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज नं०-१६६, ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, १९७८।

५५. श्री शिवसूत्र व्याख्या : अभयानन्द सरस्वतीप्रणीता, सं०-श्री हरिशंकर शर्मा, प्रकाशक-मार्कण्डेय संन्यासाश्रम, ओंकारेश्वर, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण वि०-२०४१।

५६. षट्चक्रनिरूपणम् : श्री पूर्णानन्दयतिविचितम्, तान्त्रिक टेक्टस, खण्ड-२ सं०-आर्थर एवेलॉन, गणेश एण्ड कं०, मद्रास, १९५३ ई०।

५७. षट्चक्रविवृतिः (विश्वनाथकृता) : : वही।

५८. सनत्कुमारसंहिता : सं०-पं० वी कृषणमाचार्य, दॅ अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, अड्यार, मद्रास, १९६९ ई०।

५९. सर्वोल्लासतंत्रम् : सर्वानन्दनाथविरचितम्, सं०-श्री रासमोहन चक्रवर्ती, राममाला, ग्रन्थारम्, कुमिल्ला, वंगदेश, १९४१ ई०।

६०. सविधि श्रीकालीकर्पूरस्तव : सं०-'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग, तृतीय संस्करण, सम्तत् २०४० ई०।

६१. सांख्यकारिका : चौखम्मा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, १९६० ई०।

६२. सौन्दर्यलहरी : हिन्दी टीकाकार-स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज, योगश्रीपीठ, मुनि की रेती (ऋषिकेश), टिहरी गढ़वाल(उ०प्र०), सम्वत् २०३४।

६३. सौन्दर्यलहरी (लक्ष्मीधरा तथा अरूणामोदिनी टीका सहिता) : गणेश एण्ड कं०, मद्रास, १९५७ ई०।

६४. हठयोग प्रदीपिका : प्रकाशक-संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली, १९७८ ई०।

६५. हर्यशीर्षपाञ्चरात्रम् (खण्ड-१) : सं०-भुवनमोहन सांख्यतीर्थ वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, ईस्ट बंगाल, १९५२ ई०

६६. ज्ञानार्णवतन्त्रम् : आनन्दाश्रम-संस्कृत ग्रन्थवलि, ग्रन्थांक ६९, पूना, १९५२ ई०

(ख) समालोचनात्मक ग्रन्थ (हिन्दी)

१. आगम और तंत्रशास्त्र : ब्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८४.

२. आचार्यशुक्ल : प्रतिनिधि निबन्ध : सं०- सुधाकर पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-२, आवृति-१९८३.

३. एक मुट्ठी अक्षर : अमृता प्रीतम, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली-९५, द्वितीय संस्करण-१९८४, ISBN : ८३ २१६-०२८२-९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४. ऐतिहासिक सन्दर्भ में शाक्त तंत्र : मुनीश चन्द्र जोशी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-२, प्रथम संस्करण १९८९.

५. गोपीनाथ कविराज : गोविन्द चन्द्र पांडे, अनुवादिका-सुशीला डोभाल, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण-१९९३, नई दिल्ली.

६. गोरखनाथ : नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, १९९१.

७. जिन खोजा तिन पाइयाँ : ओशो, रेबल पब्लिशिंग प्रा० लि०, ५० कोरेगाँव पार्क, पूना, द्वितीय विशेष राजसंस्करण-१९९३.

८. जो बोलैं तो हरि कथा : भगवान श्री रजनीश, ताओ पब्लिशिंग प्रा०लि०, पूना.

९. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन : डॉ० गोपीनाथ कविराज, अनुवादक-पं० हंस कुमार तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण, १९७७.

१०. तंत्र दर्शन : परमहंस निरंजनानन्द, श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा, देवघर, बिहार प्रथम संस्करण-१९९३:

११. तंत्र महाविज्ञान (प्रथम खण्ड) : पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली, १९६९.

१२. तंत्र सूत्र (पॉ० बु० सं०) (भाग-१,३,४,५,एवं, ६) : भगवान् श्री रजनीश, रजनीश फाउंडेशन, १७, कोरेगाँव पार्क, पूना, प्रथम संस्करण, १९८१.

१३. तंत्र-सूत्र (विशेष राजसंस्करण)(भाग १,४, एवं ५) : ओशो, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि०, ५०, कोरेगाँव पार्क, पूना, १९९३।

१४. तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य : नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, नागरी प्रचारणी सभा काशी, सं० २०१५.

१५. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि : म०म० डॉ० श्री गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना-४, द्वितीय संस्करण, १९७८.

१६. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त : म०म० गोपीनाथ कविराज, अनुवादक-हंस कुमार तिवारी, बिहार राष्ट्र परिषद, पटना, संस्करण, १९७९.

१७. तान्त्रिक साहित्य : म०म० गोपीनाथ कविराज, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९७२.

१८. त्रिपुरारहस्य का तंत्रविश्लेषण : व्याख्याकार-डॉ० अरविन्द यू वसावड़ा, अनुवादक भवानीशंकर उपाध्याय, चौखम्भा सरस्वती भवन, वाराणसी, १९८१.

१९. धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग-५) : डॉ० पाण्डुरङ्ग वामन काणे, अनु०-अर्जुन चौबे काश्यप, उ०प्र० हिन्दी संस्थान, हिन्दी समिति प्रयाग, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, १९८४.

२०. ध्यानयोग: प्रथम और अन्तिम मुक्ति : ओशो, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि०, ५०, कोरेगाँव पार्क, पूना, द्वितीय विशेष राज संस्करण, मार्च १९९२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२१. ध्यान-सूत्र : वही, तृतीय संस्करण, मार्च १९९१.

२२. नाथ सम्प्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी-५, द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, १९६६...

२३. पञ्चमकार तथा भावत्रय : पं० देवीप्रसाद घिल्डियाल, कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, १९९०.

२४. पंतजलि योगसूत्र (भाग-१) : व्याख्याकार-ओशो, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि०, ५०, कोरेगाँव पार्क, पूना, विशेष राज संस्करण, दिसम्बर १९८९.

२५. पातञ्जल योगससूत्र का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन : डॉ० नलिनी शुक्ला.

२६. प्राचीन भारत का इतिहास : ओमप्रकाश, वाणी एजुकेशनल बुक्स, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि०, नई दिल्ली, संस्करण, १९८७.

२७. पूजा तत्त्व : म०म० गोपीनाथ कविराज, शंकर सदन, ५२/४६, लक्ष्मीकुण्ड, वाराणसी, १९७७

२८. पैगम्बर : खलील जिब्रान, अनु०-डॉ० नीलिमा सिंह, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा०लि०, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८८, ISBN-८१-२१६-००६३-४.

२९. भारतीय दर्शन : सं०-डा०न०कि० देवराज, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, १९९२.

३०. भारतीय संस्कृति और साधना (भाग-१) : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९६३.

३१. भारतीय संस्कृति और साधना (भाग-२) : वही, १९६४.

३२. मन्त्र रहस्य : डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली, हिन्दी पुस्तक भण्डार, खारी बावली, दिल्ली, १९८१.

३३. मन मिर्ज़ा तन साहिबां : अमृता प्रीतम, किताबघर, नई दिल्ली संस्करण-१९९३.

३४. मन ही पूजा मन ही धूप : भगवान् श्रीरजनीश, रजनीश फाउंडेशन लि०, पूना, प्रथम संस्करण, १९७९.

३५. मरौ हे जोगी मरौ : ओशो, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि०, ५०, कोरेगाँव पार्क, पूना, प्रथम संस्करण, १९९०.

३६. मैं कहता आँखन देखी : भगवान श्री रजनीश, रजनीश फाउउंडेशन लि०,१७ कोरेगाँव पार्क, पूना, प्रथम संस्करण, १९७९.

३७. योगदर्शन : डॉ० सम्पूर्णानन्द, हिन्दी समिति, सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ,१९६५.

३८. रुद्रयामल उत्तरतंत्र : धर्म और दर्शन : डॉ० रमाशंकर मिश्र, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८९.

३९. रुद्रयामल तंत्र : व्याख्याकार एवं सं० रुद्रदेव त्रिपाठी, रंजन पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली-२, संस्करण-१९९४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४०. लक्ष्मीतंत्र: धर्म और दर्शन : डॉ० अशोक कुमार कालिया, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद, महात्मा गाँधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ, १९७७.

४१. वाम मार्ग : पं० देवीदत्त शुक्ल, कल्याण मन्दिर प्राकाशन, प्रयाग, पंचम संस्करण, सं०-२०४३.

४२. शिवसूत्र : व्याख्याकार-भगवान श्री रजनीश, ताओ पब्लिशिंग प्रा० लि०, पूना, विशेष राजसंस्करण, अक्टूबर १९८८.

४३. षट्चक्रनिरूपण : (हिन्दी टीका) श्री स्वामी हंस स्वरूप विज्ञान मन्दिर, ऋषिकेष (देहरादून), १९७३.

४४. संत कबीर : ले०-डॉ० (आचार्य) उपेन्द्र पाण्डेय, सी०बी० एस० पब्लिशर्स, नयी दिल्ली-२ प्रथम संस्करण, १९९५.

४५. सहज साधना : हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली-२, प्रथम संस्करण, १९८२.

४६. संभोग से समाधि की ओर : ओशो, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा०लि०, पूना, तृतीय संस्करण, मार्च १९९१.

४७. सात मुसाफिर : अमृता प्रीतम, किताबघर, दरियाबंज, नई दिल्ली-२, संस्करण-१९८८.

४८. हिन्दी कुलार्णव तंत्र : सं०-प्र० रमादत्त शुक्ल, कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग, द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण-२०३७ वि०

४९. हिन्दी तंत्रसार : सं०-वही, " "सम्वत-२०३०.

५०. हिंसा से परे : जे० कृष्ण मूर्ति, अनु०-हरीश, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी, संस्करण-१९८४.

(ग) आंग्ल ग्रन्थ-सूची

1. Buddhist philosobhy in Theory and practice : Herbert V.Guenther, Penguin Books, INC, Baltimore, Mary Land, 1971.
2. Cult of the Goddess : James J. Preston, vikas publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1980.
3. History of Classical Sanskrit Literature : M. Krishnamachariar; Motilal Banarsidas, Delhi, 1958.
4. Introduction to Tantra Sastra : Sir John woodruffe; Ganesh and co; Madras, 1973.
5. Kudalini-Path to Higher consciousness : Pandit Gopi Krishna, orient paperbacks, New delhi, 1976.
6. Kundalini-Time and Space : Gopi Krishna Kundalini Research and publication Trust, New Delhi, 1978.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

7. Puranik and Tantric Religions : J.N. Banerjee, university of calcutta, 1966.
8. Shaiv cults in Northern India : V.S. Pathak, Varanasi, 1960.
9. Shakti and Shakta : Sir John woodruffe, Ganesh and Co; private Ltd; Madrad 17, 7th Edition, 1969.
10. Shakti cult in Ancient India : Dr. Pushpendra kumar, Bharatiya publishing House, Varanasi, 1974.
11. Shakti Monism-The Cult of Shakti : Jadunath Sinha, publishing House, Calcutta.
12. Sri Aurobindo on Tantra : Compiled by M.P. Pandit, Dipti Publications, Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1972.
13. Studides in the Tantras (Part-I) : P.C. Bagchi, University of Calcutta,1975
14. Tantrabhilasir Sadhusanga : Promod Kumar Chattopadhyay, Calcutta, No-1390.
15. Tantra : Its Mystic and Scientific Basis : Lalan prassed Singh, concept publishing company, Delhi-35 (1st Eddition), 1976.
16. Tantra of Kundalini Yoga : Sw. Satyananda, Bihar School of yoga, Monghyer, Bihar, 1973.
17. Tantra : The Erotic Cult : Capt. F.D. colaabarala, Orient paperbacks, New Delhi, 1976.
18. Tantra : The Indian cult of Ecstasy : Philip Rawson, Pub. by Thames and Hudson; 30. Bloomsbury street, London, Re printed in 1989, ISBN-0500-81001-X.
19. Tantra : The secret power of Sex : Capt. F.D. colaabarala, orient paperbacks, New Delhi, 1976.
20. Tantra : The Supreme Understanding : Osho, The Rebel Publishing House, GmbH, cologne, Germany (3rd Edition) ISBN-3-89338-109-0.
21. Tantras : A General Study : Manoranjan Basu, Pub by Mira Basu, 50/B, Haldar Para Road, Calcutta, 1976
22. Tantras : Studies on their Religion and Literature : Chintaharan chakravarti, punthi pustak; 34 Mohan Bagan Lane, Calcutta, 1972.
23. Tantras : Their Philosophy and occult Secrets : D.N. Bose & Hiralal Haldar, oriental Publishing Co.,11-d Suredra Lal Dyne Lane, Calcutta (3rd Edition)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

24. Tantric Tansformationa : Osho, The Rebel publishing House, GmbH, cologne, Germany, (2nd Edition)
ISBN: 3-89338-140-6.

25. The Buddhist Tantras : Alex Wayman, Samul weiser, New York, 1973.

26. The Dawn of Tantra : Herbert V. Guenther and Chogyam Trungpa, Shambhala Boulder, London, 1975.

27. The Garland of letters : Sir John woodruffe, Ganesh and co; Madras, 1979.

28. The Mysterious Kudalini : V.G. Rele, D.B. Taraporewala Sons and co; Ltd; 210 Dadabhai Naoroji Road, Bom bay,1960

29. The Principle of Shakti : Dr. Pushpendra Kumar, Eastern Book Linkers, Delhi-7 (First Edition), 1986.

30. The Shakta Pithas : D.C. Sircar, Motilal Banarasidas, Delhi, 1973.

31. The Serpent Power : Sir John woodruffe, Ganesh and co; Madras, 1953.

32. The Tantra Experience : Osho, The Rebel Publishing House, GmbH, Cologne, Germany, (2nd Edition),
ISBN-389338-139-2.

33. Thoughts on Tantra and vaisnavism : Dr. K.P. Sinha, Punthi Pustak, 136/4B, Bidhan Sarani, Calcutta-4, 1993.

34. Yuganaddha : The Tantric View of Life : Herbert V.Guenther, Chowkhamba Sanskrit series office, Varanasi (3rd Edition), 1976

(घ) पत्रिकाएँ.

क. हिन्दी

१. ओशो टाइम्स इंटरनेशनल (१-३१ जनवरी, १९९५) : सं०-स्वामी चैतन्य कीर्ति, ताओ पब्लिशिंग प्रा० लि० ५० कोरेगाँव पार्क, पूना

ख. हिन्दी-अँग्रेजी

१. ओशो दर्शन : सं०-मा अमृत साधना, ताओ पब्लिशिंग प्रा०लि०, ५० कोरे गाँव पार्क, पूना.

Vol. ४ No. 2, अक्टू०-दिसम्बर, १९९२

तथा Vol. ४ No. 4, अप्रैल-जून, १९९३

ग ,अँग्रेजी

1- Cosmic Society, Vol 3, No-7 New Delhi, July, 1967.

• • •

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- **तन्त्रसार** : परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
- **नित्योत्सव** : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- **त्रिपुरारहस्यम्** : (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र (1-2 भाग)
- **तन्त्रालोक** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **स्वच्छन्दतन्त्रं** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- **नेत्रतन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : (कामकला-कालीखण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : (गुह्यकाली-खण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **रुद्रयामलम्** : सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **शारदातिलकम्**-सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **मन्त्रमहोदधि** : सुधाकर मालवीय
- **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **तन्त्रराजतन्त्रम्**-कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **कामकलाविलास** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **वरिवस्यारहस्यम्** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **स्पन्दकारिका** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **विज्ञानभैरव** : बापूलाल अँजना
- **श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्** । कपिलदेवनारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- **देवीरहस्यम्** : (रुद्रयामलतन्त्रोत्तरम्) कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **स्वर्णतन्त्र** : भाषा टीका
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **बृहत्तन्त्रसार** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **सौन्दर्यलहरी** : लक्ष्मीधरी टीका सहित सुधाकर मालवीय
- **सिद्धसिद्धान्तपद्धति** : द्वारकादास शास्त्री
- **आगमतत्त्वविलास** : एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- **राधातन्त्रम्** : एस.एन. खण्डेलवाल
- **सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम्** एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित
तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- **श्रीविद्या-साधना** : (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **भारतीय शक्ति-साधना** : (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- **ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना** : (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- **काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र** : (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- **मुद्राविज्ञान एवं साधना** : (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति

(दक्षिणकालिका-पूजक प्रबन्ध)

डॉ. रामप्रिय पाण्डेय

वितरक
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली - 110002
फोन न. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
फोन न. 0542-2335263, 2335264

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक से ....

"विश्व की सृष्टि आनन्दपूर्ण अवस्था में आनन्द के द्वारा हुई है। वही आनन्द स्त्री और पुरुष के सम्मिलन में धुँधले रूप में प्रकाशित होता है। फिर मनुष्य को अनुभव हुआ कि बिना संभोग में जाये भी चित्त शून्य हो सकता है। और जो रस की अनुभूति संभोग में हुई थी, वह बिना संभोग के भी बरस सकती है। फिर संभोग क्षणिक हो सकता है, क्योंकि शक्ति और ऊर्जा का वह निकास और बहाव है। लेकिन ध्यान सतत् हो सकता है। एक युगल संभोग के क्षण में जिस आनन्द को अनुभव करता है, एक योगी चौबीस घंटे उस आनन्द को अनुभव कर लेता है। लेकिन इन दोनों आनन्द में बुनियादी विरोध नहीं हैं, और इसलिए जिन्होंने कहा कि विषयानन्द और ब्रह्मानन्द भाई-भाई हैं, उन्होंने जरूर सत्य कहा है। वे सहोदर है, एक ही उदर से पैदा हुए हैं, एक ही अनुभव से विकसित हुए हैं।"

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यकारः श्रीकपिलदेवनारायण

'**श्रीविद्या**' का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्तद् यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक बृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। अंग-उपांगसहित श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप मे विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपास्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वही इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नही रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्य यति-प्रणीत 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है।

अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, बिना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरूह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के तात्पर्य से अवगत न हो पाने के कारण वे बार-बार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनहृद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। सर्वनसुलभी इस हिन्दी भाष्य द्वारा श्री नारायण ने कुटाक्षर में निबद्ध मन्त्र-यन्त्रों को भी स्पष्ट करके साधकों का महनीय उपकार किया है। पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी बृहद् कलेवर को प्राप्त हो गयाः फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों (पूर्वार्द्ध–दो भाग एवं उत्तरार्द्ध–तीन भाग) में प्रकाशित किया जा रहा है। वृहत्तन्त्रसार, देवीरहस्य आदि मूल ग्रन्थों को सर्वजनसंवेद्य भाषा भाष्य से विभूषित कर सर्वजन सुलभ बनाने वाले विद्वान् भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविध समर्थ होगा–इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नही है।

सैट (पाँच भागों में) प्रथम संस्करण 2010 मूल्य : 7500.00

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal